बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर

सम्पूर्ण वाङ्मय

खंड–22

बुद्ध और उनका धम्म

बाबासाहेब डॉ. बी. आर. अम्बेडकर

जन्म : 14 अप्रैल, 1891 परिनिर्वाण 6 दिसंबर, 1956

बाबासाहेब

डॉ. अम्बेडकर

सम्पूर्ण वाङ्मय

खंड 22

डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय

खंड : 22

बुद्ध और उनका धम्म

पहला संस्करण : 2019 (जून)

ISBN : 978-93-5109-130-1

© सर्वाधिकार सुरक्षित

आवरण परिकल्पना : श्री देबेन्द्र प्रसाद माझी

पुस्तक के आवरण पर उपयोग किया गया मोनोग्राम बाबासाहेब डॉ. बी. आर. अम्बेडकर के लेटरहेड से साभार

ISBN (सेट) : **978-93-5109-129-5**

खंड 22–40 सामान्य (पेपरबैक) के 1 सेट का मूल्य :

प्रकाशक :

डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान

15, जनपथ

सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय

भारत सरकार, नई दिल्ली – 110 001

फोन : 011–23320588, 23320571

जनसंपर्क अधिकारी मोबाइल नं. 85880–38789

वेबसाइट : http://drambedkarwritings.gov.in

Email-Id : cwbadaf17@gmail.com

मुद्रक : अरावली प्रिंटर्स एंड पब्लिशर्स प्रा.लि., W-30 ओखला, फेज–2, नई दिल्ली–110020

परामर्श सहयोग

डॉ. थावरचन्द गेहलोत
सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री
भारत सरकार
एवं
अध्यक्ष, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान

श्री रामदास अठावले
सामाजिक न्याय और अधिकारिता राज्य मंत्री

श्री कृष्णपाल गुर्जर
सामाजिक न्याय और अधिकारिता राज्य मंत्री

श्री रतनलाल कटारिया
सामाजिक न्याय और अधिकारिता राज्य मंत्री

श्रीमती नीलम साहनी
सचिव
सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय
भारत सरकार

श्रीमती रश्मि चौधरी
संयुक्त सचिव
सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार
एवं सदस्य सचिव, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान

श्री देबेन्द्र प्रसाद माझी
निदेशक
डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान

डॉ. बृजेश कुमार
संयोजक
बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर संपूर्ण वाङ्‌मय
डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान

अंग्रेजी में सकंलन
श्री वसंत मून

अनुवादक
सीताराम खोड़ावाल

पुनरीक्षक
श्री उमराव सिंह

सत्यमेव जयते

सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री
भारत सरकार
MINISTER OF SOCIAL JUSTICE & EMPOWERMENT
GOVERNMENT OF INDIA
तथा
अध्यक्ष, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान
CHAIRPERSON, DR. AMBEDKAR FOUNDATION

संदेश

स्वतंत्र भारत के संविधान के निर्माता डॉ. अम्बेडकर, बहुआयामी प्रतिभा के धनी थे। डॉ. अम्बेडकर एक उत्कृष्ट बुद्धिजीवी, प्रकाण्ड विद्वान, सफल राजनीतिज्ञ, कानूनविद्, अर्थशास्त्री और जनप्रिय नायक थे। वे शोषितों, महिलाओं और गरीबों के मुक्तिदाता थे। डॉ. अम्बेडकर सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष के प्रतीक है। डॉ. अम्बेडकर ने सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सभी क्षेत्रों में लोकतंत्र की वकालत की। एक मजबूत राष्ट्र के निर्माण में डॉ. अम्बेडकर का योगदान अतुलनीय है।

डॉ. अम्बेडकर के लेख एवं भाषण क्रांतिकारी वैचारिकता एवं नैतिकता के दर्शन–सूत्र है। भारतीय समाज के साथ–साथ संपूर्ण विश्व में जहां कहीं भी विषमतावादी भेदभाव या छुआछूत मौजूद है, ऐसे समस्त समाज को दमन, शोषण तथा अन्याय से मुक्त करने के लिए डॉ. अम्बेडकर का दृष्टिकोण और जीवन–संघर्ष एक उज्ज्वल पथ प्रशस्त करता है। समतामूलक, स्वतंत्रता की गरिमा से पूर्ण, बंधुता वाले एक समाज के निर्माण के लिए डॉ. अम्बेडकर ने देश की जनता का आह्वान किया था।

डॉ. अम्बेडकर ने शोषितों, श्रमिकों, महिलाओं और युवाओं को जो महत्त्वपूर्ण संदेश दिए, वे एक प्रगतिशील राष्ट्र के निर्माण के लिए अनिवार्य दस्तावेज है। तत्कालीन विभिन्न विषयों पर डॉ. अम्बेडकर का चिंतन–मनन और निष्कर्ष जितना उस समय महत्त्वपूर्ण था, उससे कहीं अधिक आज प्रासंगिक हो गया है। बाबासाहेब की महत्तर मेधा के आलोक में हम अपने जीवन, समाज राष्ट्र और विश्व को प्रगति की राह पर आगे बढ़ा सकते हैं। समता, बंधुता और न्याय पर आधारित डॉ. अम्बेडकर के स्वप्न का समाज–"सबका साथ सबका विकास" की अवधारणा को स्वीकार करके ही प्राप्त किया जा सकता है।

मुझे यह जानकर अत्यंत प्रसन्न्ता हो रही है, कि सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय का स्वायत्तशासी संस्थान, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, "बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर : संपूर्ण वांग्मय" के अन्य अप्रकाशित खण्ड 22 से 40 तक की पुस्तकों को, बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर के अनुयायियों और देश के आम जन–मानस की मांग को देखते हुए मुद्रत किया जा रहा है।

विद्वान, पाठकगण इन खंडों के बारे में हमें अपने अमूल्य सुझाव से अवगत कराएंगे तो हिंदी में अनुदित इन खंडों के आगामी संस्करणों को और बेहतर बनाने में सहयोग प्राप्त हो सकेगा।

(डॉ. थावरचंद गेहलोत)

प्राक्कथन

भारत रत्न बाबासाहेब डॉक्टर भीमराव अम्बेडकर अप्रतिम प्रतिभा के धनी थे। वे सच्चे देशभक्त थे। उन्होंने देश की महान सेवा की। देश को कमजोर बनाने वाली समस्याओं को समझा और उनके कारणों को एक अन्वेशी के रूप में तह तक पहुंचकर जानने का अथक प्रयास किया। समाज में व्याप्त जाति व्यवस्था को वे प्रजातंत्र के लिए घातक मानते थे। वे वर्ण–व्यवस्था को, जाति व्यवस्था की जननी मानते थे। मनुष्य–मनुष्य के साथ अमानवीय व्यवहार करे, उसके साथ छुआछूत बरते, वह मनुष्य सभ्य नहीं कहा जा सकता, वह समाज जो इसकी आज्ञा दे वह समाज सभ्य नहीं कहा जा सकता। आज समाज की कुप्रथा को अवैध करार दे दिया गया है। बाबासाहेब के प्रयासों का ही परिणाम है।

बाबासाहेब डॉक्टर भीमराव अम्बेडकर के अंग्रेजी में प्रकाशित वाङ्मय को हिन्दी के अतिरिक्त देश की अन्य 8 क्षेत्रीय भाषाओं में अनुदित किया जा रहा है।

मैं प्रतिष्ठान की ओर से माननीय, सामाजिक न्याय और अधिकारिता 'मंत्री' एवं सचिव, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार का आभार व्यक्त करती हूँ जिनके सद्परामर्श एवं प्रेरणा से प्रतिष्ठान के कार्यों में अपूर्व प्रगति आई है।

प्रस्तुत हिन्दी खंड–22 में **''बुद्ध और उनका धम्म''** नामक शोधपूर्ण रचना समाहित है। मानविकी के अध्येताओं लिए तो आधारभूत सामग्री है ही, साथ ही यह सामग्री समाज निर्माण के सुधी एवं सजग प्रहरियों के लिए चिंतन का आधार बनेगी। पाठकों के बहुमूल्य सुझावों की प्रतिक्षा बनी रहेगी।

नई दिल्ली

रश्मि चौधरी
सदस्य सचिव,
डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान

प्रकाशकीय

महाराष्ट्र सरकार द्वारा अंग्रेजी में प्रकाशित डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर, वाड़्मय का हिंदी एवं अन्य 8 क्षेत्रीय भाषाओं में डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा अनुवाद किया गया। इस अनूदित कार्य का सुधी पाठकों ने हृदय से स्वागत किया है।

हमें प्रसन्नता है कि हम अपने पाठकों के समक्ष खंड 22 (अंग्रेजी खंड–12) हिंदी में समर्पित कर रहे है।

प्रस्तुत खंड में **"बुद्ध और उनका धम्म"** में शोधपूर्ण सामग्री समाहित की गई है। बाबासाहेब अम्बेडकर ने भारतीय इतिहास के तथाकथित स्वर्णयुग से छुआछूत के औचित्य पर प्रश्न चिन्ह लगाया है। आज की सभ्यता और आवश्यकता के संदर्भ में सुधी पाठक, इतिहास को नए सिरे से देखना चाहेगा।

अंत में मैं अपने संयोजक, अनुवादकों, पुनरीक्षकों आदि सभी सहयोगियों के प्रति आभार प्रकट करता हूँ जिनकी निष्ठा एवं सतत् प्रयत्न से यह कार्य संपन्न किया जा सका है।

हमें आशा और विश्वास है कि हमारे पाठक पूर्ववत की तरह इस खंड का भी स्वागत करेंगे।

नई दिल्ली

देबेन्द्र प्रसाद माझी
निदेशक,
डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान

अस्वीकरण

डॉ. अम्बेडकर के लेख एवं भाषण क्रांतिकारी वैचारिकता एवं नैतिकता के दर्शन—सूत्र हैं। भारतीय समाज के साथ—साथ संपूर्ण विश्व में जहां कहीं भी विषमतावादी भेदभाव या छुआछूत मौजूद है, ऐसे समस्त समाज को दमन, शोषण तथा अन्याय से मुक्त करने के लिए डॉ. अम्बेडकर का दृष्टिकोण और जीवन—संघर्ष एक उज्ज्वल पथ प्रशस्त करता है। समतामूलक, स्वतंत्रता की गरिमा से पूर्ण, बंधुता वाले एक समाज के निर्माण के लिए डॉ. अम्बेडकर ने देश की जनता का आह्वान किया था।

सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय का स्वायत्तशासी संस्थान, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, **''बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकरः संपूर्ण वाङ्मय''** के अन्य अप्रकाशित खण्ड 22 से 40 तक की पुस्तकों को, बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर के अनुयायियों और देश के आम जन—मानस की मांग को देखते हुए मुद्रण किया जा रहा है।

विद्वान एवं पाठकगण इन खंडों के बारे में तथा व्याकरण एवं मुद्रण सम्बधी सुझाव से डॉ अम्बेडकर प्रतिष्ठान को उसकी वैधानिक ई—मेल आई.डी. **cwbadaf17@gmail.com** पर अवगत कराएं ताकि हिंदी में प्रथमवार अनुदित, इन खंडों के आगामी संस्करणों को और बेहतर बनाने में सहयोग प्राप्त हो सकें।

पाठकों के बहुमूल्य सुझावों की प्रतिक्षा बनी रहेगी।

निदेशक

बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर संपूर्ण वाङ्मय
डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान,
नई दिल्ली—01

जिस समाज में कुछ वर्गों के लोग जो कुछ चाहें वह सब कुछ कर सकें और बाकी वह सब भी न कर सकें जो उन्हें करना चाहिए, उस समाज के अपने गुण होते होंगे, लेकिन इनमें स्वतंत्रता शामिल नहीं होगी। अगर इंसानों के अनुरूप जीने की सुविधा कुछ लोगों तक ही सीमित है, तब जिस सुविधा को आमतौर पर स्वतंत्रता कहा जाता है, उसे विशेषाधिकार कहना अधिक उचित होगा।

—डॉ. भीमराव अम्बेडकर

विषय सूची

संदेश v

प्राक्कथन vii

प्रकाशकीय viii

अस्वीकरण ix

अध्याय—एक

भाग—I

जन्म से प्रव्रज्या तक

1. उनका कुल 3
2. उनके पूर्वज 4
3. जन्म 4
4. असित का आगमन 7
5. महामाया का निधन 10
6. बचपन और शिक्षा 11
7. आरंभिक प्रवृत्तियां 11
8. विवाह 15
9. पुत्र को रोकने हेतु पिता की योजनाएं 17
10. राजकुमार को जीत पाने में स्त्रियां असफल 18
11. राजकुमार को प्रधानमंत्री द्वारा समझाना 21
12. राजकुमार का प्रधानमंत्री को उत्तर 23
13. शाक्य—संघ में दीक्षा 24
14. संघ से मतभेद 26
15. देश छोड़ जाने का प्रस्ताव 28
16. प्रव्रज्या ही समाधन 30
17. विदाई के शब्द 32
18. गृह—त्याग 35
19. राजकुमार और उनका सेवक 37
20. छन्न की वापसी 41
21. शोकग्रस्त परिवार 42

भाग–II

सदा के लिए अभिनिष्क्रमण

1. कपिलवस्तु के राजगृह तक 46
2. राजा बिम्बिसार और उनका परामर्श 47
3. बिम्बिसार को गौतम का उत्तर 50
4. गौतम का उत्तर (समाप्त) 54
5. शांति का समाचार 56
6. नए परिप्रेक्ष्य में समस्या 57

भाग–III

नए प्रकाश की खोज में

1. भृगु आश्रम पर पड़ाव 60
2. सांख्य का अध्ययन 62
3. समाधि–मार्ग का प्रशिक्षण 63
4. तपश्चर्या का परीक्षण 64
5. तपश्चर्या का त्याग 66

भाग–IV

ज्ञान–प्राप्ति और नए मार्ग का दर्शन

1. नए प्रकाश हेतु ध्यान 70
2. ज्ञान–प्राप्ति 71
3. नए धम्म का आविष्कार 72
4. बोधिसत्व गौतम सम्बोधि के पश्चात् बुद्ध हो गए 73

भाग–V

बुद्ध और उनके पूर्ववर्ती

1. बुद्ध और वैदिक ऋषि 78
2. कपिल–दार्शनिक 80
3. ब्राह्मण–ग्रन्थ 83
4. उपनिषद् और उनकी शिक्षाएं 89

भाग–VI

बुद्ध और उनके समकालीन

1. उनके समकालीन 92
2. अपने समकालीनों के प्रति व्यवहार 93

भाग–VII

समानता और विषमता

1. जिन्हें उन्होंने अस्वीकार किया 96
2. जिन्हें उन्होंने परिवर्तित किया 97
3. जिन्हें उन्होंने स्वीकार किया 97

अध्याय–दो

भाग–I

बुद्ध और उनका विशद योग

1. उपदेश देना या नहीं देना 101
2. ब्रह्म सहपति द्वारा शुभ समाचार की घोषणा 103
3. दो प्रकार के धर्मांतरण 104

भाग–II

परिव्राजकों का धर्मांतरण

1. सारनाथ आगमन 106
2. बुद्ध का पहला प्रवचन 107
3. बुद्ध का पहला प्रवचन (जारी) 109
4. बुद्ध का पहला प्रवचन (जारी) 110
5. बुद्ध का पहला प्रवचन (जारी) 115
6. बुद्ध का पहला प्रवचन (जारी) 116
7. परिव्राजकों की प्रतिक्रिया 119

भाग–III

कुलीनों और धार्मिकों का धर्मांतरण

1. यश का धर्मांतरण 122
2. काश्यपों का धर्मांतरण 123
3. सारिपुत्र और मौग्गल्लान का धर्मांतरण 127
4. राजा बिम्बिसार का धर्मांतरण 130
5. अनाथ पिण्डिक का धर्मांतरण 132
6. राजा प्रसेनजित का धर्मांतरण 135
7. जीवक का धर्मांतरण 138
8. रट्ठपाल का धर्मांतरण 139

भाग–IV

जन्म–भूमि का आह्वान

1. शुद्धोदन से (अंतिम) भेंट 148
2. यशोधरा और राहुल की भेंट 150
3. शाक्यों द्वारा स्वागत 153
4. गृहस्थ बनाने का अंतिम प्रयास 156
5. बुद्ध का उत्तर 157
6. मंत्री का उत्तर 159
7. बुद्ध की दृढ़ता 161

भाग–V

धर्म–दीक्षा का पुनरारंभ

1. गँवार ब्राह्मणों की धर्म–दीक्षा 164
2. उत्तरवती के ब्राह्मणों की धर्म–दीक्षा 166

भाग–VI

निम्नस्तर लोगों की धर्म–दीक्षा

1. नाई उपालि का धर्म–दीक्षा 170
2. मेहतर सुणीत की धर्म–दीक्षा 170
3. अछूत सोपाक और सुप्पिय का धर्म–दीक्षा 171
4. सुमंगल तथा अन्य निम्न जाति वालों की धर्म–दीक्षा 172
5. कोढ़ी सुप्रबुद्ध की धर्म–दीक्षा 173

भाग–VII

स्त्रियों की धर्म–दीक्षा

1. महाप्रजापति गौतमी, यशोधरा और अन्य स्त्रियों की प्रव्रज्या 176
2. प्रकृति नामक चाण्डालिका की प्रव्रज्या 179

भाग–VII

पतितों तथा अपराधियों की धर्म–दीक्षा

1. एक आवारा की धर्म–दीक्षा 184
2. डाकू अंगुलिमाल की धर्म–दीक्षा 185
3. अन्य अपराधियों की धर्म–दीक्षा 188
4. धर्म–दीक्षा में जोखिम 190

अध्याय–तीन

भाग–I

धम्म में भगवान् बुद्ध का स्थान

1. भगवान् बुद्ध ने अपने धम्म में स्वयं के लिए कुछ भी स्थान नहीं रखा। 193
2. भगवान् बुद्ध ने कभी किसी को मुक्ति का वचन नहीं दिया। उन्होंने कहा कि वे मार्गदाता, हैं मोक्षदाता नहीं। 195
3. बुद्ध ने अपने लिए यह अपने धम्म के लिए किसी दैवत्व का दावा नहीं किया। धम्म मनुष्य द्वारा मनुष्य के लिए आविष्कृत था। यह एक अपौरुषेय धम्म नहीं था। 200

भाग–II

भगवान बुद्ध के धम्म के विषय में विभिन्न दृष्टिकोण

1. दूसरों ने उनके उपदेशों को किस प्रकार समझा 202
2. भगवान बुद्ध का अपना वर्गीकरण 203

भाग–III

धम्म क्या है?

1. जीवन की पवित्रता बनाये रखना धम्म है 206
2. जीवन में पूर्णता तक पहुँचना ही धम्म है 209
3. निर्वाण प्राप्त करना धम्म है 210
4. तृष्णा का त्याग करना धम्म है 216
5. सभी संस्कार अनित्य हैं–यह मानना धम्म है 217
6. 'कर्म' कौ नैतिक व्यवस्था का साधन मानना धम्म है 219

भाग–IV

अ–धम्म क्या है?

1. परा–प्राकृतिक में विश्वास अ–धम्म है। 224
2. ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास अ–ध्म्म है। 225
3. ब्रह्म से संयोजन पर आधारित धम्म मिथ्या धम्म है। 226
4. आत्मा में विश्वास अ–धम्म है। 234
5. यज्ञ (बलि–कर्म) में विश्वास अ–धम्म है। 240
6. कल्पनाश्रित विश्वास अ–धम्म है। 245
7. कर्म के ग्रंथों का वाचन मात्रा अ–धम्म है। 247
8. धर्म–ग्रन्थों की गलती को सम्भावना से परे मानना अ–धम्म है। 251

भाग–V

सद्धम्म क्या है?

परिच्छेद एक

(क) सद्धम्म के कार्य

1. मन के मैल को दूर कर उसे निर्मल बनाना। 257
2. संसार को एक धम्म–'राज्य' बनाना। 259

परिच्छेद दो

(ख) धम्म तभी सद्धम्म हो सकता है, जब वह प्रज्ञा की वृद्धि करे।

1. धम्म तभी सद्धम्म है, जब वह सभी के लिए ज्ञान के द्वार खोल दे। 263
2. धम्म तभी सद्धम्म है, जब वह यह भी शिक्षा देता है कि केवल 'विद्वान' होना पर्याप्त नहीं, इससे मनुष्य पंडिताऊपन' की ओर अग्रसर हो सकता है। 266
3. धम्म तभी सद्धम्म है, जब वह सिखाता है कि जिस चीज की आवश्यकता है वह प्रज्ञा है। 267

परिच्छेद तीन

(ग) धम्म सद्धम्म हो सकता है, जब वह मैत्री की वृद्धि करे।

1. धम्म केवल तभी सद्धम्म है, जब वह शिक्षा देता है कि मात्र प्रज्ञा ही पर्याप्त नहीं है इसके साथ शील का होना अनिवार्य है। 270
2. धम्म केवल तभी सद्धम्म है, जब वह शिक्षा देता है कि प्रज्ञा और शील के साथ–साथ करुणा का भी होना अनिवार्य है। 271
3. धम्म केवल तभी सद्धम्म है, जब वह यह शिक्षा देता है कि करुणा से भी अधिक मैत्री की आवश्यकता है। 272

परिच्छेद चार

(घ) धम्म तभी सद्धम्म हो सकता है, जब वह समस्त सामाजिक (भेद–भावों के) प्रतिबन्ध मिटा दे।

1. धम्म तभी सद्धम्म है जब वह मनुष्य–मनुष्य के बीच अवरोधों (दीवारों) को मिटा दें। 276
2. धम्म तभी सद्धम्म है, जब वह यह शिक्षा दे कि मनुष्य का जन्म से नहीं बल्कि योग्यता के आधर पर मूल्यांकन किया जाना चाहिए। 281
3. धम्म तभी सद्धम्म है जब वह मनुष्य–मनुष्य के मध्य समानता की अभिवृद्धि करे। 283

अध्याय—चार

भाग—I

धर्म और धम्म

1. धर्म क्या है? 287
2. धम्म धर्म से कैसे भिन्न है? 288
3. धर्म का उद्देश्य और धम्म का उद्देश्य 290
4. नैतिकता और धर्म 294
5. धम्म और नैतिकता 295
6. केवल नैतिकता ही पर्याप्त नहीं है। उसे पवित्र और व्यापक भी होना चाहिए। 296

भाग—II

किस प्रकार शाब्दिक समानता तात्विक भेद को छिपाये रखती है

विभाग—1 पुनर्जन्म

1. प्रारम्भिक 301
2. पूनर्जन्म किस (चीज) का? 302
3. पुनर्जन्म किस (व्यक्ति) का? 305

विभाग — दो, कर्म

1. क्या बौद्धों का 'कर्म–सिद्धांत' ब्राह्मणवादी–सिद्धांत के समान ही है? 309
2. क्या भगवान बुद्ध यह मानते थे कि अतीत कर्म भावी जीवन को प्रभावित करते हैं? 310
3. क्या भगवान बुद्ध यह मानते थे कि अतीत कर्म भावी जीवन को प्रभावित करते हैं? 314

विभाग —तीन, अहिंसा

1. अहिंसा के भिन्न–भिन्न अर्थ और व्यवहार 317
2. 'अहिंसा' का वास्तविक अर्थ 318

विभाग —चार, संसरण

(आत्मा का एक शरीर से दूसरे शरीर में प्रवेश करना) 320

विभाग — पांच,

भ्रम के कारण 322

भाग—III

बौद्ध जीवन—मार्ग

1. शुभ–कर्म, अशुभ–कर्म और पाप 325

2. लोभ और तृष्णा 327
3. क्लेश और द्वेष 328
4. क्रोध और शत्रुता 329
5. मनुष्य, मन और मन का मैल 330
6. स्वयं के बारे में और स्व–विजय 331
7. बुद्धि, न्याय और सुसंगति 333
8. चित्त की सतर्कता और एकाग्रता 336
9. सावधानी, अप्रमाद और निर्भीकता 338
10. दुख, सुख तथा दान और करुणा 338
11. ढोंग 340
12. सम्यक् मार्ग का अनुसरण 340
13. सद्धम्म के साथ मिथ्या धर्म को मत मिलाओ 342

भाग–IV

तथागत की देशनाएं

परिच्छेद–एक

गृहस्थों के लिए प्रवचन

1. सुखी–गृहस्थ 346
2. पुत्री पुत्र से अच्छी हो सकती है 346
3. पति और पत्नी 347

परिच्छेद–दो

सुचरित्र बने रहने के लिए प्रवचन

1. मनुष्य का पतन कैसे होता है? 349
2. दुष्ट मनुष्य 350
3. सर्वश्रेष्ठ मनुष्य 351
4. प्रबुद्ध मनुष्य 352
5. न्यायी और सज्जन मनुष्य 353
6. शुभ–कर्म करने की आवश्यकता 354
7. शुभ संकल्प करने की आवश्यकता 355

परिच्छेद–तीन

सदाचरण सम्बन्धी प्रवचन

1. सदाचरण क्या है? 356
2. सदाचरण की आवश्यकता 359

3. सदाचरण और संसार की जिम्मेदारियाँ 360
4. सदाचरण में सम्पूर्णता कैसे प्राप्त की जाए? 362
5. सदाचरण के पथ पर चलने के लिए साथी की प्रतीक्षा अनावश्यक 364

परिच्छेद—चार

निर्वाण सम्बन्धी प्रवचन

1. निर्वाण क्या है? 366
2. निर्वाण के मूलाधार 367

परिच्छेद—पाँच

धम्म सम्बन्धी प्रवचन

1. सम्यक्—दृष्टि का पहला स्थान क्यों हैं? 369
2. मरणोपरान्त जीवन की चिन्ता व्यर्थ 369
3. 'ईश्वर' से प्रार्थनाएं और याचनाएं करना व्यर्थ 370
4. मनुष्य का भोजन उसे 'पवित्र' नहीं बनाता 371
5. भोजन नहीं, कुशल कर्मों का महत्त्व है 372
6. बाह्य—शुद्धि अपर्याप्त है 374
7. पवित्र जीवन क्या है? 375

परिच्छेद—छह

सामाजिक—राजनैतिक प्रश्नों पर प्रवचन

1. राजाओं के अनुग्रह पर निर्भर मत रहो 376
2. यदि राजा सदाचारी होगा, तो उसकी प्रजा भी सदाचारी होगी 376
3. राजनैतिक और सामरिक शक्ति सामाजिक व्यवस्था पर निर्भर करती है 377
4. युद्ध अनुचित है 379
5. युद्ध विजेता के कर्त्तव्य 380

अध्याय—पाँच

भाग—I

संघ

1. संघ और उसका संगठन 385
2. संघ में प्रवेश 385
3. भिक्षु और उसके व्रत 387
4. भिक्षु और सांघिक नियम संबंधी अपराध 389
5. भिक्षु और संयम (प्रतिबन्ध) 389
6. भिक्षु और शिष्टाचार के नियम 390
7. भिक्षु और अपराध—परीक्षण 391

8. भिक्षु और अपराध–स्वीकरण 391

भाग–II

भगवान् बुद्ध की भिक्षु की संकल्पना

1. भगवान् बुद्ध की आदर्श भिक्षु की संकल्पना 393
2. भिक्षु और तपस्वी 395
3. भिक्षु तथा ब्राह्मण 400
4. भिक्षु और उपासक 402

भाग–III

भिक्षु के कर्त्तव्य

1. धम्म–दीक्षा देना भिक्षु का कर्त्तव्य 405
2. चमत्कारों (प्रतिहार्यों) द्वारा धम–दीक्षा नहीं 406
3. जोर–जबर्दस्ती से धर्मान्तरण नहीं 409
4. भिक्षु को धम्म–प्रचार के लिए संघर्ष करना चाहिए 413

भाग–IV

भिक्षु और गृहस्थ

1. भिक्षा का बंधन 415
2. पारस्परिक प्रभाव 415
3. भिक्षु का 'धम्म' और गृहस्थ का 'धम्म' 416

भाग–V

उपासकों (गृहस्थों) के लिए विनय (जीवन–नियम)

1. धनवानों के लिए विनय (जीवन–नियम) 421
2. गृहस्थों के लिए विनय (जीवन–नियम) 422
3. बच्चों के लिए विनय (जीवन–नियम) 426
4. शिष्य के लिए विनय (जीवन–नियम) 426
5. पति और पत्नी के लिए विनय (जीवन–नियम) 426
6. मालिक और नौकर के लिए विनय (जीवन–नियम) 427
7. उपसंहार 427
8. लड़कियों के लिए विनय (जीवन–नियम) 427

अध्याय–छह

भाग–I

उनके समर्थक

1. राजा बिम्बिसार का दान 431

2. अनाथपिण्डिक का दान 432
3. जीवक का दान 433
4. आम्रपालि का दान 434
5. विशाखा की दान–शीलता 436

भाग–II

भगवान् बुद्ध के विरोधी

1. जादू–टोना द्वारा धर्मान्तरण का आरोप 441
2. समाज पर व्यर्थ का भार होने का आरोप 442
3. सुखी गृहस्थियों को उजाड़ने का आरोप 444
4. तैर्थिकों द्वारा हत्या का मिथ्यारोप 445
5. तैर्थिकों द्वारा अनैतिकता का मिथ्यारोप 446
6. देवदत्त फुफेरा भाई तथा शत्रु 448
7. ब्राह्मण और भगवान् बुद्ध 450

भाग–III

उनके धम्म के आलोचक

1. संघ में सभी के खुले प्रवेश के आलोचक 458
2. व्रत–ग्रहण करने के आलोचक 459
3. अहिंसा–सिद्धान्त की आलोचना 459
4. शील का उपदेश देकर अंध्कार (निराशा) उत्पन्न करने का आरोप :– 462
(i) दु:ख निराशा का कारण बताना
(ii) अनित्यता को निराशा का कारण बताना
(iii) क्या बौद्ध धम्म निराशावादी है?
5. आत्मा और पुनर्जन्म के सिद्धान्तों की आलोचना 466
6. उच्छेदवादी होने के आरोप 466

भाग–IV

मित्र और प्रशंसक

1. धानन्जानी ब्राह्मणी की श्रद्धा 468
2. विशाखा की दृढ़ श्रद्धा 470
3. मल्लिका की निष्ठा 472

4. एक गर्भवती माँ की तीव्र अभिलाषा 475
5. केनिय द्वारा स्वागत 478
6. प्रसेनजित् के द्वारा तथागत की प्रशंसा में 478

अध्याय–सात

भाग–I

उनके निकटस्थ जनों से भेंट

1. उनके धम्म–प्रचार के केन्द्र 483
2. स्थल, जहाँ वे पधारे थे 483
3. माता और पुत्र तथा पत्नी और पति की अंतिम भेंट 485
4. पिता और पुत्र की अंतिम भेंट 485
5. बुद्ध और सारिपुत्त की अंतिम भेंट 487

भाग–II

वैशाली से प्रस्थान

1. वैशाली से विदाई 490
2. पावा में पड़ाव 491
3. कुसिनारा में आगमन 492

भाग–III

महापरिनिर्वाण

1. उत्तराधिकारी की नियुक्ति 495
2. अंतिम धम्म–दीक्षा 496
3. अंतिम वचन 499
4. आनन्द का शोक 501
5. मल्लों का विलाप और एक भिक्षु की प्रसन्नता 504
6. अंतिम संस्कार 505
7. अस्थियों के लिए संघर्ष 506
8. बुद्ध के प्रति श्रद्धार्पण 507

अध्याय–आठ

भाग–I

भगवान् बुद्ध का व्यक्तित्व

1. उनका व्यक्तिगत स्वरूप 511
2. प्रत्यक्षदर्शियों के साक्ष्य 512
3. उनके नेतृत्व की सामर्थ्य 513

भाग–II

उनकी मानवता

1. महाकारुणिक की करुणा 516
2. दुःखियों का दुःख दूर करने वाले महान् मानसिक चिकित्सक 517
   (i) विशाखा को दी गई सांत्वना
   (ii) किसा–गौतमी को सांत्वना
3. रोगियों के प्रति उनकी सेवा 519
4. असहनशीलों के प्रति सहनशीलता 524
5. समानता और समान–व्यवहार के समर्थक 526

भाग–III

उनकी पसंद और नापसंद

1. उन्हें दरिद्रता पसंद नहीं थी 529
2. उन्हें संग्रह–वृत्ति नापसंद थी 530
3. उन्हें सुसंगति पसंद थी 531
4. वे सुसंगति से प्रेम करते थे 532

उपसंहार

1. भगवान् बुद्ध की प्रशस्ति 535
2. उनके धम्म के प्रचार की शपथ 539
3. भगवान् बुद्ध के पुनः स्वदेश लौट आने की प्रार्थना 539

अध्याय-एक

सिद्धार्थ गौतम-बोधिसत्त्व किस प्रकार बुद्ध बने?

पहला भाग - जन्म से प्रव्रज्या तक
दूसरा भाग - सदा के लिए अभिनिष्क्रमण
तीसरा भाग - नए प्रकाश की खोज में
चौथा भाग - बुद्धत्व और नवदृष्टि
पांचवां भाग - बुद्ध और उनके पूर्ववर्ती
छठा भाग - बुद्ध और उनके समकालीन
सातवां भाग - समानता और विषमता

नोट : बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय

पहला भाग

जन्म से प्रव्रज्या तक

1. उनका कुल
2. उनके पूर्वज
3. जन्म
4. असित का आगमन
5. महामाया का निधन
6. बचपन और शिक्षा
7. आरंभिक प्रवृत्तियां
8. विवाह
9. पुत्र को रोकने हेतु पिता की योजनाएं
10. राजकुमार को जीत पाने में स्त्रियां असफल
11. राजकुमार को प्रधानमंत्री द्वारा समझाना
12. राजकुमार का प्रधानमंत्री को उत्तर
13. शाक्य-संघ में दीक्षा
14. संघ से मतभेद
15. देश छोड़ जाने का प्रस्ताव
16. प्रव्रज्या ही समाधान
17. विदाई के शब्द
18. गृह-त्याग
19. राजकुमार और उनका सेवक
20. छन्न की वापसी
21. शोकग्रस्त परिवार

1. उनका कुल

1. अतीत में देखने पर हमें ज्ञात होता है कि ईसा पूर्व छठी शताब्दी में उत्तर भारत में कोई प्रभुसत्ता-सम्पन्न राज्य नहीं था।

2. देश छोटे-बड़े अनेक राज्यों में बंटा हुआ था। इनमें से कुछ राजतंत्रीय थे और कुछ अराजतंत्रीय।

3. राजतंत्रीय राज्यों (जनपदों) की संख्या सोलह थी, वे अंग, मगध, कासी, कोसल, वज्जि, मल्ल, चेदि, वत्स कुरु, पांचाल, मत्स्य, सौरसेन, अष्मक, अवन्ति, गंधार व कम्बोज के नाम से जाने जाते थे।

4. जिन राज्यों में किसी एक राजा का आधिपत्य नहीं था, वे थे, कपिलवस्तु के शाक्य, पावा एवं कुशीसिनारा के मल्ल, वैशाली के लिच्छवि, मिथिला के विदेह, रामगाम के कोलिय, अल्लकप्प के बुलि, कालाम, केसपुत्त के कलिंग, पिप्पलवन के मौर्य तथा भग्ग थे जिनकी राजधानी सिंसुमार गिरि में थी।

5. राजतंत्रीय राज्य जनपद और जिन राज्यों पर किसी राजा का आधिपत्य नहीं था वह राज्य संघ या गण कहलाते थे।

6. कपिलवस्तु के शाक्यों की राज्य-व्यवस्था के बारे में यह जानकारी नहीं है कि वह गणतंत्र था अथवा कुछ लोगों का कुलतंत्र कहलाते थे।

7. फिर भी, इतना निश्चित रूप से मालूम है कि शाक्यों के गणतंत्र में अनेक राज-परिवार थे जो बारी-बारी से राज करते थे।

8. राज-परिवार का प्रधान 'राजा' कहा जाता था।

9. सिद्धार्थ गौतम के जन्म के समय राजा बनने की बारी शुद्धोदन की थी।

10. शाक्यों का राज्य भारत के उत्तर-पूर्वी कोने में था। यह एक स्वतंत्र राज्य था। परन्तु बाद में कोशल नरेश इस पर अपनी प्रभुता स्थापित करने में सफल हो गया।

11. इस प्रभुता का परिणाम यह हुआ कि शाक्य राज्य कुछ राजकीय अधिकारों का प्रयोग कोसल-नरेश की स्वीकृति के बिना नहीं कर सकता था।

12. तत्कालीन साम्राज्यों में कोसल एक शक्तिशाली साम्राज्य था। इसी प्रकार मगध भी एक शक्तिशाली साम्राज्य था। कोसल-नरेश प्रसेनजित और मगध-नरेश बिम्बिसार सिद्धार्थ गौतम के समकालीन थे।

2. उनके पूर्वज

1. शाक्यों की राजधानी कपिलवस्तु थी। संभवतः, यह नाम बुद्धिवादी कपिल मुनि के नाम पर पड़ा हो।
2. कपिलवस्तु में जयसेन नाम का एक शाक्य रहता था। सिनहू उसका पुत्र था। सिनहू का विवाह कच्चाना से हुआ था। सिनहू के पांच पुत्र थे-शुद्धोदन, धोतोदन, सक्कोदन, शुक्लोदन तथा अमितोदन। पांच पुत्रों के अलावा सिनहू के अमिता तथा पमिता नाम की दो पुत्रियां थीं।
3. परिवार का गौत्र आदित्य था।
4. शुद्धोदन का विवाह महामाया से हुआ था। उसके पिता का नाम अञ्जन और मां का नाम सुलक्षणा था। अञ्जन एक कोलिय था और वह देवदह नामक गांव का रहने वाला था।
5. शुद्धोदन महान योद्धा सैन्य-बल संपन्न व्यक्ति था। जब शुद्धोदन ने अपनी वीरता का परिचय दिया, तो उसे विवाह करने की अनुमति मिल गई और उसने महाप्रजापति को चुना। वह महामाया की बड़ी बहन थी।
6. शुद्धोदन धनी व्यक्ति था। वह अपार भू-संपदा का स्वामी था और उसके अधीन बहुत नौकर चाकर थे। ऐसा कहा जाता है कि अपनी भूमि को जोतने के लिए उसे एक हजार हल चलवाने पड़ते थे।
7. वह विलासितापूर्ण जीवन बिताता था और उसके कई महल थे।

3. उनका जन्म

1. सिद्धार्थ गौतम का जन्म शुद्धोदन के यहां हुआ और उनके जन्म की कथा इस प्रकार है-
2. शाक्यों में एक वार्षिक मध्यग्रीष्मकालीन महोत्सव आषाढ़ के महीने में मनाने की प्रथा थी। यह महोत्सव संपूर्ण राज्य में सभी शाक्यों और राज-परिवार के सदस्यों द्वारा मनाया जाता था।
3. सामान्यतः महोत्सव सात दिनों तक चलता था।
4. एक बार महामाया ने इस महोत्सव को खूब धूम-धाम और भव्यता से, फूलों के साथ लेकिन मादक पेयों के बिना ही मनाने का निश्चय किया।

5. सातवें दिन वह सवेरे जागी, सुगंधित जल में स्नान किया, दान में मुद्रा के चार लाख सिक्के प्रदान किए, बहुमूल्य आभूषणों से अपने को सुसज्जित करके, मनपसंद खाना खाकर, व्रत रखने की प्रतिज्ञा कर सुसज्जित राजकीय शयन-कक्ष में प्रवेश कर गई।

6. उस रात शुद्धोदन और महामाया संपर्क में आए और महामाया ने गर्भधारण किया। राजकीय शय्या पर पड़े-पड़े उसे नींद आ गई और उसने एक स्वप्न देखा।

7. स्वप्न में उसने देखा कि संसार के चतुर्दिक महाराजिक देवता उसे सोते हुए चारपाई सहित उठा कर हिमाचल तलप्रदेश पर ले गए हैं और एक विशालकाय शाल-वृक्ष के नीचे रख कर एक तरफ खड़े हो गए हैं।

8. तब चार चतुर्दिक देवताओं की पत्नियां वहां आईं और उसे उठाकर मानसरोवर झील ले गईं।

9. उन्होंने उसे स्नान कराया सुंदर वस्त्र पहनाए, सुगंधित लेप किए और फूलों से इस प्रकार सजाया ताकि वह दिव्यात्मा से मिलने योग्य हो सके।

10. तब 'सुमेध' नाम का बोधिसत्व यह कहते हुए उसके समक्ष उपस्थित हुआ-''मैंने अपना अंतिम जन्म इस पृथ्वी पर लेने का निश्चय किया है, क्या तुम मेरी मां बनना स्वीकार करोगी''? उसने कहा-''हां, बड़ी खुशी से।'' ठीक उसी समय महामाया की आखें खुल गईं।

11. दूसरे दिन सुबह महामाया ने अपने स्वप्न के बारे में शुद्धोदन को बताया। स्वप्न की व्याख्या करने में असमर्थ शुद्धोदन ने आठ ब्राह्मणों को बुलाया जो स्वप्न-व्याख्या में विख्यात थे।

12. उनके नाम थे राम, ध्वज, लक्ष्मण, मंती, यन्न, सुयाम, सुभोग और सुदत्त। शुद्धोदन ने उनके लिए स्वागत की तैयारी की।

13. उसने जमीन पर सुंदर पुष्प बिछवाए और उनके लिए ऊंचे आसन लगवाए।

14. उसने ब्राह्मणों के पात्र सोने और चाँदी से भर दिए और उन्हें घी, मधु, शक्कर, उत्तम चावल और दूध से पके पकवान खिलाए। उसने नए वस्त्र और कपिला गायें जैसी अन्य भेंटें भी उन्हें दी।

15. जब ब्राह्मण पूरी तरह संतुष्ट हो गए तब शुद्धोधन ने महामाया के स्वप्न के बारे में उन्हें बताया और पूछा ''मुझे बताएं कि इसका क्या अर्थ है?''

16. ब्राह्मणों ने कहा-''आप चिंता न करें। आपके यहां एक पुत्र होगा और अगर

वह गृहस्थ जीवन में रहा तो वह चक्रवर्ती राजा होगा और अगर वह गृहत्याग कर सन्यासी बन गया तो वह संसार के अंधकार को दूर करने वाला बुद्ध बनेगा।''

17. पात्र में तेल धारण किए रहने की तरह महामाया बोधिसत्त्व को दस महीने तक अपने गर्भ में धारण किए रही। जब उसके प्रसव के दिन निकट आए, तो प्रसव के लिए उसे अपने मायके जाने की इच्छा हुई। अपने पति से उसने कहा–''मैं अपने मायके देवदह जाना चाहती हूं।''

18. ''तुम जानती हो कि तुम्हारी इच्छाएं पूरी की जाएंगी,'' शुद्धोदन ने उत्तर दिया। सुनहरी पालकी में बिठाकर अनेक सेवकों के साथ महामाया को उसके मायके भिजवा दिया गया।

19. देवदह जाने के मार्ग में महामाया को शाल व अन्य वृक्षों के एक सुन्दर उपवन से गुजरना था, जिनमें कुछ पुष्पित थे कुछ अपुष्पित, यह लुम्बिनी वन के नाम से जाना जाता था।

20. पालकी लुम्बिनी वन से गुजर रही थी, संपूर्ण लुम्बिनी वन किसी दिव्य चित्रलता उपवन या किसी प्रतापी नरेश के लिए सजाया हुआ भोज-मंडल जैसा प्रतीत हो रहा था।

21. सभी वृक्ष पूर्णतः फलों और फूलों से लदे थे। वृक्षों पर रंग-बिरंगे भंवरे विचित्र आवाजें कर रहे थे और अनेक प्रकार के पक्षी मधुर राग आलाप रहे थे।

22. इस मनोरम दृश्य को देखकर महामाया को वहां थोड़ी देर रुककर मनोविनोद करने की इच्छा उत्पन्न हुई। उसने अपने पालकी वाहकों को उसे शाल उपवन ले जाने तथा वहां प्रतीक्षा करने को कहा।

23. पालकी से उतरकर महामाया एक सुंदर शाल वृक्ष तक पैदल गई। मनमोहक मंद-मंद पवन बह रही थी और वृक्षों की शाखाएं ऊपर-नीचे हिल रही थीं। महामाया की इच्छा उनमें से एक को पकड़ने की हुई।

24. संयोग से एक शाखा इतनी झुक गई कि वह उसे पकड़ सके। तुरन्त शाखा ऊपर उठ गई और उसका हल्का-सा झटका लगने से उसे प्रसव-वेदना आरम्भ हो गई। शाल-वृक्ष की शाखा को पकड़े, खड़े ही खड़े महामाया ने पुत्र को जन्म दिया।

25. 563 ई.पू. वैशाख पूर्णिमा के दिन बालक का जन्म हुआ। महामाया ने पंजों के बल खड़ी होकर उसे पकड़ लिया।

26. शुद्धोदन और महामाया के विवाह को हुए बहुत समय बीत गया था, परन्तु उन्हें कोई संतान नहीं हुई थी। आखिर जब उन्हें पुत्र की प्राप्ति हुई, तो उसका जन्मोत्सव न केवल शुद्धोदन, बल्कि उसके परिवार और सभी शाक्यों द्वारा खूब धूम-धाम और प्रसन्नतापूर्वक मनाया गया।

27. बालक के जन्म के समय कपिलवस्तु के शासक (राजा) बनने की बारी शुद्धोदन की थी। इस प्रकार, उस समय उसे राजा की उपाधि धारण करने की खुशी मिली। स्वाभाविक रूप से बालक को राजकुमार कहा गया।

4. असित का आगमन

1. जिस समय बालक का जन्म हुआ उस समय हिमालय पर्वत पर असित देवल नाम के एक बड़े ऋषि रहते थे।

2. असित ने सुना कि आकाश में देवता 'बुद्ध' शब्द पुकार रहे हैं और उसकी पुनरावृत्ति कर रहे हैं। उसने देखा कि वे अपने वस्त्रों को लहराकर प्रसन्नतापूर्वक इधर-उधर घूम रहे हैं। उसने सोचा कि मैं उस जगह क्यों न जाऊं, जहां 'बुद्ध' ने जन्म लिया है।

3. संपूर्ण जम्बुद्वीप पर दिव्य चक्षु से अवलोकन करने पर असित ऋषि ने देखा कि शुद्धोदन के घर एक दिव्य बालक का जन्म हुआ है और अपनी प्रभा से प्रकाशमान हो रहा था उसके जब असित ऋषि ने जन्म पर ही सारे देवतागण रोमांचित हो रहे हैं।

4. इसलिए महान ऋषि असित अपने भांजे नरदत्त के साथ राजा शुद्धोदन के निवास स्थान पर आए। राजमहल के दरवाजे पर खड़े हो गए थे।

5. तब असित ऋषि ने देखा कि शुद्धोदन के द्वार पर लाखों आदमी एकत्रित हुए हैं। इसलिए वह द्वारपाल के पास गए और बोले-"हे द्वारपाल!, राजा को जाकर सूचित करो कि दरवाजे पर एक ऋषि खड़े हैं।"

6. तब द्वारपाल राजा के समीप गया और हाथ जोड़कर कहने लगा-"राजन! एक वृद्ध ऋषि आए हुए हैं, जो द्वार पर खड़े हैं और आप से भेंट करना चाहते हैं।"

7. राजा ने असित के लिए एक आसन की व्यवस्था की और द्वारपाल से कहा-"ऋषि को अंदर आने दो।" बाहर निकलकर द्वारपाल ने असित से कहा-"कृपया अंदर पधारें।"

8. तब असित राजा शुदोदन के पास गए और उसके सामने खड़े होकर बोले–"राजन! तुम्हारी जय हो। तुम्हारी जय हो। तुम दीर्घायु हों और अपने राज्य का धर्मानुसार शासन करें।"

9. तब शुद्धोदन ने असित के आदरपूर्वक असित ऋषि के चरणों में साष्टांग प्रणाम किया और उनसे आसन पर बैठने का आग्रह किया और उन्हें आराम से बैठे हुए देखकर शुद्धोदन ने पूछा–'ऋषिवर! मुझे स्मरण नहीं कि इससे पूर्व कभी आपके दर्शन हुए हों। आपके यहां आने का क्या उद्देश्य है? क्या कारण है?"

10. तब असित ने राजा शुद्धोदन से कहा–"राजन! तुम्हें पुत्र–लाभ हुआ है, मैं उसे देखने की इच्छा से यहां आया हूं।"

11. शुद्धोदन ने कहा–"ऋषिवर! बालक सोया हुआ है। क्या आप थोड़ी देर प्रतीक्षा करेंगे।" ऋषि ने कहा–"राजन! ऐसी महान् विभूतियां देर तक नहीं सोई रहतीं। ऐसी विभूतियां स्वभाव से ही जागरूक होती हैं।"

12. तब बालक ने असित ऋषि पर अनुकम्पा करके जाग्रत होने का संकेत दिया।

13. यह देखकर कि बालक जग गया है, शुद्धोदन अपने दोनों हाथों से बालक को अच्छी तरह संभालकर असित के पास ले आए।

14. असित ने देखा कि बालक बत्तीस महापुरुष–लक्षणों और अस्सी अनुव्यंजनों से युक्त है, उसका शरीर शुक्र और ब्रह्मा से भी बढ़कर है और उसका तेजोमंडल उनसे लाखों गुणा अधिक दीप्तमान है। ऋषि के मुख से अनायास ही यह पवित्र शब्द निकले–"निस्संदेह जगत में अच्छा हुआ, यह अद्भुत पुरुष में आविर्भूत हुआ है।" ऋषि ने आसन से उठकर दोनों हाथ जोड़े और उसके पैरों पर गिर पड़े। उन्होंने बालक की परिक्रमा की और उसको अपने हाथों में लेकर विचार–मग्न हो गए।

15. असित ऋषि को पूर्व भविष्यवाणी जानते थे कि जिसके शरीर में गौतम की तरह बत्तीस महापुरुष–लक्षण होंगे, उसकी केवल दो ही गतियों में से एक ही होगी तीसरी नहीं। "यदि वह गृहस्थ जीवन में रहा तो वह चक्रवर्ती सम्राट बनेगा, लेकिन यदि वह घर को त्यागकर प्रव्रजित हो गया तो वह सम्यक् सम्बुद्ध बनेगा।"

16. असित ऋषि पूर्ण आश्वस्त थे कि यह बालक गृहस्थ–जीवन में नहीं रहेगा।

17. बालक की ओर देखकर वे सिसकियां भरकर रोने लगे और आंसू बहाने लगे।

18. शुद्धोदन ने असित ऋषि को सिसकियां भरकर रोते और आंसू बहाते हुए देखा।

19. ऋषि को इस प्रकार रोता हुआ देखकर शुद्धोदन के रोंगटे खड़े हो गए और दु:खी होकर असित से कहा–"हे ऋषिवर! आप क्यों रो रहे हैं? क्यों आंसू बहा रहे हैं और क्यों इतनी गहरी सिसकियां भर रहे हैं? भविष्य में बालक के लिए कोई अशुभ तो नहीं है?"

20. इस पर असित ऋषि ने राजा से कहा–"राजन्!" मैं बालक के लिए नहीं रो रहा हूं। उसको तो भविष्य विल्कुल निर्विघ्न है, लेकिन मैं अपने लिए रो रहा हूं।"

21. "लेकिन ऐसा क्यों?" शुद्धोदन ने पूछा। असित ऋषि ने उत्तर दिया–"मैं वयोवृद्ध हूं, मेरी बहुत आयु हो गई है और यह बालक निश्चित रूप से बुद्ध बनेगा, परम और पूर्ण ज्ञान प्राप्त करेगा, उसके बाद यह धम्म चक्र प्रवर्तन करेगा, जिसे पहले किसी ने नहीं किया। तदनंतर संसार की खुशी और लोककल्याण के लिए 'सुधम्म' का उपदेश करेगा।"

22. "जिस श्रेष्ठ जीवन की, जिस सद्धर्म की वह घोषणा करेगा वह आदि में कल्याणकारक मध्य में कल्याणकारक और अंत में कल्याणकारक होगा। वह अर्थ और भाव से निर्दोष और पूर्ण होगा। वह परिपूर्ण और परिशुद्ध होगा।"

23. "जिस प्रकार उदुम्बर (गूलर) का फूल कभी-कभी किसी स्थान पर उगता है, उसी प्रकार कभी-कभी किसी स्थान पर, अनंत युगों के बाद इस संसार में सम्यक् सम्बुद्ध बुद्ध की उत्पत्ति होती है। इसलिए, हे राजन्! निश्चित रूप से यह बालक महा ज्ञान प्राप्त बुद्धत्वप्राप्त करेगा, सम्यक् सम्बुद्ध होगा, फिर अनंत जीवों पर दया करके दु:ख के सागर से पार कर सुख की अवस्था में ले जाएगा।"

24. "लेकिन मैं उस बुद्ध को नहीं देख सकूंगा, इसलिए राजन! मैं रो रहा हूं, दु:ख में मैं जोर से सिसकियां भर रहा हूं। मैं बुद्ध की पूजा नहीं कर पाऊंगा।"

25. तब राजा ने महान ऋषि असित और उसके भांजे नरदत्त को अनुकूल भोजन कराया, उन्हें वस्त्र-दान देकर, उनकी परिक्रमा कर वंदना की।

26. तब असित ऋषि ने अपने भांजे नरदत्त से कहा, "जब कभी तुम सुनो कि यह बालक सम्यकसम्बुद्ध हो गया है, तब उसके शिक्षण में शरण ग्रहण करना। यह तुम्हारे सुख, कल्याण और प्रसन्नता के लिए होगा।" इतना कहने के पश्चात् असित ने राजा से विदा ली और अपने आश्रम को चले गए।

5. महामाया का निधन

1. पांचवे दिन नामकरण संस्कार किया गया। बालक का नाम सिद्धार्थ रखा गया। उसके गोत्र का नाम गौतम था। इसलिए वह सिद्धार्थ गौतम (पालि में गोतम) के नाम से विख्यात हुआ।

2. बालक के जन्म के आनंदोत्सव और नामकरण संस्कार के दौरान ही महामाया अचानक बीमार पड़ गई और उसकी बीमारी ने गंभीर रूप धारण कर लिया।

3. अपना अंत समय निकट आया जानकर उसने शुद्धोदन और प्रजापति को अपनी शय्या के पास बुलाया और कहा :- ''मुझे विश्वास है कि मेरे बच्चे के बारे में असित द्वारा की गई भविष्यवाणी सच होगी। मुझे दुःख है कि मैं इसे पूरा होते नहीं देख पाऊंगी।''

4. ''मेरा बच्चा शीघ्र ही मातृविहीन हो जाएगा। लेकिन इसकी मुझे तनिक भी चिंता नहीं है कि मेरे बाद इसकी देखभाल, पालन-पोषण उसके भविष्य के अनुरूप होगा कि नहीं।''

5. ''प्रजापति! मैं अपना बच्चा तुम्हें सौंपती हूं, मुझे इसमें किंचित भी संदेह नहीं है कि तुम उसके लिए मुझ से भी बढ़कर होगी।''

6. ''अब चिंता न हो। मुझे मरने दो। यमराज का बुलावा आ गया है और उनके दूत मुझे ले जाने के लिए प्रतीक्षा कर रहे हैं।'' ऐसा कहते-कहते महामाया ने अंतिम सांस ली। शुद्धोदन और प्रजापति दोनों बहुत दुःखी हुए और फूट-फूट कर रोने लगे।

7. जब उसकी मां का निधन हुआ सिद्धार्थ केवल सात दिन का था।

8. सिद्धार्थ का एक छोटा भाई था, जिसका नाम नंद था। वह महाप्रजापति से उत्पन्न शुद्धोदन का पुत्र था।

9. उसके बहुत से चचेरे भाई भी थे। महानाम और अनुरुद्ध चाचा शुक्लोदन के पुत्र थे तथा आनंद चाचा अमितोदन के। देवदत्त उसकी बुआ अमिता का पुत्र था। महानाम सिद्धार्थ से बड़ा था और आनंद छोटा था।

10. सिद्धार्थ उनके साथ खेलता-खाता बड़ा हुआ।

6. बचपन और शिक्षा

1. जब सिद्धार्थ चलने और बोलने योग्य हो गया तो शाक्यों के वरिष्ठ जन एकत्रित हुए और उन्होंने शुद्धोदन से कहा कि बालक को ग्राम देवी अभया के मंदिर में ले जाना चाहिए।
2. शुद्धोदन ने स्वीकार किया और उन्होंने महाप्रजापति से बालक को कपड़े पहनाने को कहा।
3. जब वह बालक सिद्धार्थ को कपड़ा पहना रही थी तब बालक ने अत्यंत मधुर वाणी में अपनी मौसी से पूछा कि उसे कहां ले जाया जा रहा है? जब उसे मालूम हुआ कि उसे मंदिर ले जाया जा रहा है, तो वह मुस्कराया। लेकिन शाक्यों के रीति-रिवाज के अनुरूप वह मंदिर गया।
4. आठ वर्ष की आयु में सिद्धार्थ ने अपनी शिक्षा आरंभ की।
5. जिन आठ ब्राह्मणों को शुद्धोदन ने महामाया के स्वप्न की व्याख्या करने के लिए बुलाया था और जिन्होंने उसके बारे में भविष्यवाणी की थी, वे ही उसके प्रथम आचार्य हुए।
6. जो कुछ भी वे जानते थे, उतना उसे पढ़ा देने के बाद शुद्धोदन ने उदिक्क देश के उच्च कुल के प्रतिष्ठित विद्वान, भाषाविद और वैयाकरण, वेद-वेदांग और उपनिषदों में निपुण सब्बमित्त को बुलवाया। उनके हाथ में स्वर्ण कलश से समर्पण का जल डालकर शुद्धोदन ने उसे पढ़ाने के लिए उनको सौंप दिया। वह उसका दूसरा आचार्य था।
7. उसके अधीन गौतम ने उस समय के सभी दर्शन और शास्त्रों में निपुणता प्राप्त की।
8. इसके अतिरिक्त उसने भारद्वाज से एकाग्रता और समाधि का ज्ञान प्राप्त किया। भारद्वाज आलार कालाम का शिष्य था, जिसका कपिलवस्तु में ही आश्रम था।

7. आरंभिक प्रवृत्तियाँ

1. जब भी वह अपने पिता के खेतों पर जाता और जब वहाँ कोई काम नहीं रहता, तब वह एकांत स्थान में ध्यान का अभ्यास करता था।
2. उसके मानसिक विकास के लिए सभी प्रकार की शिक्षा-व्यवस्था की गई थी और क्षत्रिय के अनुरूप सैन्य कला की शिक्षा की भी अवहेलना नहीं की गई थी।

3. शुद्धोदन को यह चिंता थी कि कहीं ऐसा न हो कि उसके पुत्र में मानसिक गुणों के ही विकास हों और वह पौरुष में पिछड़ जाए।

4. सिद्धार्थ स्वभाव से ही कारुणिक था। उसे यह पसंद नहीं था कि एक आदमी दूसरे आदमी का शोषण करे।

5. एक बार वह अपने मित्रों के साथ अपने पिता के खेतों में गया और वहाँ उसने मजदूरों को खेत जोतते, बाँध बनाते और वृक्ष काटते हुए देखा। वे तेज धूप में बहुत कम कपड़े पहने ही काम कर रहे थे।

6. उस दृश्य का उसके मन पर बहुत प्रभाव पड़ा और द्रवित हो उठा।

7. उसने अपने मित्रों से कहा कि क्या यह उचित है कि एक आदमी दूसरे आदमी का शोषण करे? यह कैसे सही हो सकता है कि मजदूर मेहनत करे और मालिक उसकी मजदूरी पर ऐश करे।

8. उसके मित्र नहीं जानते थे कि इसका क्या उत्तर दिया जाए, क्योंकि वे जीवन की पुरानी विचार–परम्परा में विश्वास रखते थे कि मजदूर का जन्म सेवा करने के लिए होता है और अपने मालिक की सेवा करना ही उसकी नियति है।

9. शाक्य लोग वप्रमंगल नामक एक उत्सव मनाया करते थे, जो खेत बोने के प्रथम दिन मनाया जाने वाला यह एक ग्रामीण उत्सव था। प्रथा के अनुसार उस दिन प्रत्येक शाक्य को अपने हाथों से हल चलाना पड़ता था।

10. सिद्धार्थ हमेशा इस प्रथा का पालन करता था और हल चलाने में अपने आपको व्यस्त रखता था।

11. यद्यपि वह एक विज्ञ पुरुष था, फिर भी शारीरिक श्रम से उसे घृणा नहीं थी।

12. वह योद्धा (क्षत्रिय) वर्ग से था और उसे धनुष चलाने और शस्त्रों का प्रयोग सिखाया गया था, लेकिन अनावश्यक रूप से किसी प्राणी को कष्ट पहुँचाना उसे अच्छा नहीं लगता था।

13. वह शिकारियों के दल के साथ जाने से इंकार कर देता था। उसके मित्रगण उसे कहा करते थे–''तुम बाघों से डरते हो?'' वह यह कहते हुए जवाब दिया करता था–''मैं जानता हूं कि तुम बाघों को मारने नहीं जा रहे हो, तुम हिरन और खरगोशों जैसे निरीह प्राणियों को मारने जा रहे हो।''

14. ''शिकार के लिए न सही, कम से कम अपने दोस्तों का अचूक निशाना तो देखने आओ'' वे कहते थे। इस तरह के निमंत्रणों को भी सिद्धार्थ यह कहते

हुए अस्वीकार कर देता था– ''मैं निर्दोष पशुओं का वध होते नहीं देखना चाहता।''

15. सिद्धार्थ की इस प्रवृत्ति से प्रजापति गौतमी बहुत चिंतित हो गई।

16. वह उससे यह कहते हुए तर्क देती–''तुम भूल गए हो कि तुम एक क्षत्रिय हो और लड़ना तुम्हारा कर्तव्य है। युद्धकला केवल शिकार से ही सीखी जा सकती है, क्योंकि शिकार से ही तुम सही निशाना लगाना सीख सकते हो। आखेट ही योद्धा, वर्ग के लिए प्रशिक्षण–भूमि है।''

17. सिद्धार्थ अक्सर गौतमी से पूछा करता–''लेकिन माँ! क्षत्रिय को क्यों लड़ना चाहिए?'' और गौतमी उत्तर दिया करती–''क्योंकि यह उसका कर्तव्य है।''

18. सिद्धार्थ उसके उत्तर से कभी संतुष्ट नहीं होता। वह गौतमी से पूछा करता–''अच्छा मां! यह बताओ, एक आदमी को जान से मारना दूसरे आदमी का कर्तव्य कैसे हो सकता है?'' गौतमी तर्क देती–''इस तरह की मनोवृत्ति एक संन्यासी के लिए ठीक है, लेकिन क्षत्रियों को अवश्य लड़ना चाहिए। यदि वे लड़ेंगे नहीं तो साम्राज्य की रक्षा कौन करेगा।''

19. ''लेकिन माँ। यदि सभी क्षत्रिय एक दूसरे से प्रेम करें, तो हिंसा के बिना क्या वे अपने साम्राज्य का संरक्षण नहीं कर सकते?'' गौतमी को उसे उसके अपने निर्णय पर छोड़ना पड़ता।

20. उसने अपने मित्रों को अपने साथ ध्यान लगाने के लिए प्रेरित करने का प्रयास किया। उसने उन्हें बैठने का सही ढंग सिखाया। उसने उन्हें किसी एक विषय पर चित्त को एकाग्र करना सिखाया। उसने उन्हें ऐसे विचार चुनने का परामर्श दिया जैसे ''मैं प्रभुदित रहूँ, मेरे संबंधी प्रमुदित रहें, सभी जीवित प्राणी प्रभुदित रहें।''

21. लेकिन उसके मित्र उसकी बातों को गंभीरता से नहीं लेते थे। वे उस पर हँसते थे।

22. आँखें बंद करने पर वे ध्यान के विषय पर एकाग्र नहीं हो पाते थे। कोई अपनी आँखों के सामने मारने के लिए हिरण देखते थे या खाने के लिए मिठाइयां।

23. उनके माता-पिता को उसका ध्यान लगाना अच्छा नहीं लगता था। वे सोचते थे कि यह क्षत्रिय जीवन के एकदम विपरीत है।

24. सिद्धार्थ को विश्वास था कि ठीक विषय वस्तु पर चित्त एकाग्र करने से व्यापक मैत्री भावना का विकास होता है। वह यह कहते हुए अपने को न्यायोचित

ठहराता था–"जब हम जीवित प्राणियों के बारे में सोचते हैं, तो हम भेद-विभेद करना शुरू कर देते हैं। हम मित्रों को शत्रुओं से अलग कर लेते हैं, हम पालतू जानवरों को मनुष्यों से अलग कर लेते हैं। हम मित्रों और पालतू जानवरों से प्यार करते हैं और शत्रुओं व जंगली जानवरों से घृणा करते हैं।"

25. "हमें इस विभाजन-रेखा की सीमा अवश्य लांघनी चाहिए और ऐसा हम तभी कर सकते हैं, जब हम अपने ध्यान में व्यावहारिक जीवन की सीमाओं से ऊपर उठ सकें।" ऐसा उसका तर्क था।

26. अत्यधिक कारुणिक होना बचपन से ही उसकी प्रवृत्ति थी।

27. एक बार वह अपने पिता के खेतों पर गया। विश्राम के समय वृक्ष के नीचे वह प्राकृतिक शांति और सुन्दरता का आनंद ले रहा था। जब वह बैठा था, आकाश से एक पक्षी ठीक उसके सामने आ गिरा।

28. पक्षी एक तीर से घायल था, जो उसके शरीर में बिंधा हुआ था और जिसके कारण वह पीड़ा से छटपटा रहा था।

29. सिद्धार्थ पक्षी की सहायता के लिए दौड़ा। उसने तीर निकाला, घाव पर पट्टी बाँधी और पीने के लिए उसे पानी दिया। उसने पक्षी को उठाया,जहाँ बैठा था वहाँ गया, अपनी चादर से पक्षी को लपेट लिया और उसे गर्मी देने के लिए छाती से लगा लिया।

30. सिद्धार्थ को आश्चर्य हो रहा था कि इस निर्दोष पक्षी पर तीर किसने चलाया होगा। शिकार के सभी हथियारों से सुसज्जित उसका फुफेरा भाई देवदत्त वहाँ जल्दी ही आया। उसने सिद्धार्थ से कहा कि उसने आकाश में उड़ते एक पक्षी को तीर मारा है, पक्षी कुछ दूरी पर उड़ा फिर गिर गया। उसने पूछा "क्या तुमने उसे देखा है"?

31. सिद्धार्थ ने 'हाँ' में उत्तर दिया और उसने पक्षी दिखाया, जो अब तक पूर्णतः स्वस्थ हो चुका था।

32. देवदत्त ने माँग की, कि वह पक्षी उसके हवाले कर दिया जाए। सिद्धार्थ ने इससे इनकार कर दिया। दोनों के बीच तर्क-वितर्क और विवाद होने लगा।

33. देवदत्त का तर्क था कि वही पक्षी का मालिक है, क्योंकि शिकार के नियमों के अनुसार, जो पक्षी को मारता है उसी का पक्षी पर अधिकार है।

34. सिद्धार्थ ने नियम के आधार को अस्वीकार कर दिया। उसका तर्क था कि जो

किसी की रक्षा करता है, वही उसका स्वामी हो सकता है। हत्यारा कैसे किसी का स्वामी हो सकता है?

35. दोनों में से एक भी पक्ष झुकने को तैयार नहीं था। मामला फैसले के लिए न्यायालय पहुंचा। न्यायालय द्वारा सिद्धार्थ गौतम के तर्क को न्यायोचित ठहराया गया।

36. देवदत्त तभी से उसका स्थायी शत्रु बन गया। लेकिन सिद्धार्थ की करुणा भावना इतनी अनुपम थी कि उसने अपने फुफेरे भाई से अच्छा संबंध बनाए रखने से ज्यादा एक निर्दोष पक्षी की जान बचाना श्रेयस्कर समझा।

37. सिद्धार्थ गौतम के आरंभिक जीवन के आचरण की कुछ ऐसी ही प्रवृत्तियाँ थीं।

8. विवाह

1. दण्डपाणि नाम का एक शाक्य था। यशोधरा उसकी बेटी थी। वह अपने सौन्दर्य और शील के लिए प्रसिद्ध थी।
2. यशोधरा सोलह वर्ष की हो गई तो दण्डपाणि उसके विवाह के बारे में सोचने लगा।
3. प्रथा के अनुसार दण्डपाणि ने अपनी बेटी के स्वयंवर में शामिल होने के लिए पड़ोसी देशों के युवाओं के पास निमंत्रण भेजे।
4. सिद्धार्थ गौतम को भी आमंत्रित किया गया।
5. सिद्धार्थ गौतम सोलह वर्ष का हो गया था। उसके माता-पिता भी उसके विवाह के लिए उतना ही चिंतित थे।
6. उन्होंने उसे स्वयंवर में जाने और यशोधरा का पाणिग्रहण करने को कहा। उसने अपने माता-पिता की बातों को मान लिया।
7. स्वयंवर में उपस्थित सभी युवाओं में यशोधरा ने सिद्धार्थ गौतम को चुना।
8. दण्डपाणि बहुत खुश नहीं था। उसे उनके दाम्पत्य-जीवन की सफलता पर संदेह था।
9. उसे लगता था कि सिद्धार्थ को साधु-संतों की संगति अच्छी लगती है। वह एकांत चाहता है। वह एक सफल गृहस्थ कैसे हो सकता है?

10. यशोधरा निश्चय कर चुकी थी कि वह सिद्धार्थ से ही विवाह करेगी। उसने अपने पिता से पूछा – "क्या साधु-संतों की संगति करना कोई अपराध हैं?" लेकिन वह ऐसा नहीं समझती थी।

11. अपनी बेटी का सिद्धार्थ के साथ विवाह करने का निश्चय जानकर यशोधरा की माँ ने दण्डपाणि से कहा कि अनुमति दे देनी चाहिए। दण्डपाणि ने अनुमति दे दी।

12. गौतम के प्रतिद्वंद्वी न केवल निराश हुए, बल्कि उन्हें लगता था कि उनका अपमान किया गया है।

13. वे चाहते थे कि सबके साथ न्याय के लिए यशोधरा को चुनाव के लिए किसी प्रकार की परीक्षा लेनी चाहिए, परंतु उसने वैसा नहीं किया।

14. कुछ समय के लिए वे चुप रहे। उन्हें विश्वास था कि दण्डपाणि यशोधरा को सिद्धार्थ को चुनने की अनुमति नहीं देगा और उनका उद्देश्य पूरा हो जाएगा।

15. लेकिन जब दण्डपाणि असफल रहा, तो उन्होंने दृढ़तापूर्वक धनुर्विद्या की लक्ष्यवेध परीक्षा आयोजित करने की माँग की। दण्डपाणि को वह प्रस्ताव स्वीकार करना ही पड़ा।

16. पहले तो सिद्धार्थ इसके लिए तैयार नहीं था। परंतु उसके सारथी छन्न ने उसे बताया कि यदि वह इसे अस्वीकार करेगा तो उसके पिता, परिवार और यशोधरा के लिए बहुत ही लज्जा की बात होगी।

17. इस तर्क से सिद्धार्थ गौतम बहुत प्रभावित हुआ और उसने परीक्षा में भाग लेना स्वीकार कर लिया।

18. प्रतियोगिता आरम्भ हुई। बारी-बारी से प्रत्येक प्रतिद्वंद्वी ने अपना-अपना कौशल दिखाया।

19. गौतम की बारी सबसे अंत में आई। किन्तु उसका लक्षबेध सवोत्तम माना गया।

20. उसके बाद विवाह संपन्न हुआ। शुद्धोदन और दण्डपाणि दोनों बहुत प्रसन्न थे। यशोधरा और महाप्रजापति भी प्रसन्न थीं।

21. विवाह के काफी समय पश्चात् यशोधरा ने एक पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम राहुल रखा गया।

9. पुत्र के संरक्षण हेतु पिता की योजनाएँ

1. यद्यपि राजा प्रसन्न थे कि पुत्र का विवाह हो गया और वह गृहस्थ आश्रम में प्रवेश कर गया, लेकिन असित ऋषि की भविष्यवाणी उन्हें अभी भी परेशान कर रही थी।

2. भविष्यवाणी को पूरा होने से रोकने के लिए उसने सोचा कि सिद्धार्थ को काम-भोगों के बंधन में लीन रखा जाये।

3. इसी उद्देश्य से शुद्धोदन ने अपने पुत्र के रहने के लिए तीन शानदार महल बनवाए- एक ग्रीष्म ऋतु, दूसरा वर्षा ऋतु और तीसरा शीत ऋतु के लिए। तीनों महलों को भोग-विलास के सभी साधनों से सुसज्जित कराया गया था।

4. प्रत्येक महल एक विस्तृत उद्यान से घिरा हुआ था, जिसे विभिन्न प्रकार के वृक्षों और पुष्पों से सुन्दर ढंग से सजाया गया था।

5. अपने कुल-पुरोहित उदायीके परामर्श से शुद्धोदन ने राजकुमार के लिए एक ऐसा अन्तःपुर बनाने की सोची जहाँ अत्यधिक सुन्दर स्त्रियां हों।

6. शुद्धोदन ने उदायी को इन सुन्दरियों को यह समझा देने के लिए कहा कि राजकुमार का मन सुख-सुविधाओं में आसक्त रखने के लिए क्या-क्या प्रयास किए जाएं।

7. अन्तःपुर की सुन्दरियों को एक जगह बुलाकर उदायी ने सबसे पहले कुमार का चित्त लुभाने का संकेत तो किया ही, विधि भी बताई।

8. उन्हें सम्बोधित करते हुए उसने कहा-"आप सभी ललित कलाओं में निपुण हैं, आप सभी कामुक भावनाओं की भाषा समझने में निपुण हैं, आप में सुन्दरता और लावण्य है, आप अपनी कला में कुशल हैं।"

9. "आप अपने रूप-लावण्य से ऋषियों को भी जीत सकती हैं, जिन्होंने अपनी इच्छाओं पर विजय प्राप्त कर ली है, देवताओं को भी अपने जाल में फँसा सकती हैं जिन्हें केवल स्वर्गलोक की अप्सराएँ ही भाती हैं।"

10. दिल की भावनाओं को व्यक्त करने की कला, अपने नाज-नखरों व रूप-लावण्य और अपूर्व सुन्दरता के बल पर आप पुरुषों की तो बात ही क्या, महिलाओं को भी मोहित कर सकती हैं।"

11. "आप अपने-अपने क्षेत्र में इतनी दक्ष हैं कि राजकुमार को कामरूपी रस्सी से

बांध कर अपने वश में कर लेना आपके लिए किसी भी तरह कठिन नहीं हो सकता।''

12. ''आपका कोई भी शर्मीला कदम उन नवागत वधुओं को शोभा दे सकता है, जिनकी आँखें शर्म से मिची रहती हैं (आपकी नहीं)।''

13. ''अपने उन्नत गौरव के कारण यह वीर भी महान है। लेकिन इससे तुम्हें क्या! स्त्री की शक्ति भी तो महान है'' यहीं तुम्हारा दृढ़ संकल्प होना चाहिए।''

14. ''प्राचीन काल में देवताओं से भी अविजित एक ऋषि को काशी की एक वेश्या ने अपने रूप के वश में कर अपने पैरों में लिटाया था।''

15. ''और महान तपस्वी ऋषि विश्वामित्र भी गहन तपस्या मेंलीन था, उसे घृतकी नामक अप्सरा द्वारा दस वर्षों तक जंगल में बंदी बना रखा था।''

16. ''इसी प्रकार अनेक ऋषि-मुनियों को स्त्रियाँ रास्ते पर ले आईं, तो इस तरुण राजकुमार को, जिसने अभी-अभी यौवन के दहलीज पर कदम रखा है, जीतना काफी आसान है।''

17. ''यदि स्थिति ऐसी है, तो दृढ़तापूर्वक प्रयास करो, ताकि राजपरिवार की परम्परा राजकुमार द्वारा न टूटे।''

18. ''सामान्य स्त्रियां सामान्य पुरुषों को अपने वश में कर लेती हैं, लेकिन सही अर्थ में स्त्रियां वहीं हैं जो कठोर स्वभाव वाले पुरुषों को अपने वश में कर लें''

10. राजकुमार को जीतने में स्त्रियाँ असफल

1. उदायी के ये शब्द सुनकर स्त्रियाँ दिल से उत्तेजित हो गईं और राजकुमार को वशीभूत करने के लिए वे अपनी सारी सामर्थ्य लगा देने के लिए तैयार हो गईं।

2. लेकिन भाव-भंगिमाओं, अपने-कटाक्षों, अपनी मुस्कराहटों, अपने कोमल अंग-संचालनों के बावजूद अन्तःपुर की षोडशियां राजकुमार को जीतने के प्रति आश्वस्त महसूस नहीं कर रही थीं।

3. लेकिन राजपुरोहित की प्रेरणा के कारण, राजकुमार के कोमल स्वभाव तथा उन्माद और प्रेम के कारण उनमें शीघ्र ही आत्मविश्वास का पुनः में संचालन हो गया।

4. तब स्त्रियाँ अपने काम में जुट गईं और राजकुमार को घेरकर ऐसे चलने लगीं, जैसे हिमवत के जंगल में हथिनी-समूह के बीच गजराज चलता हो।

5. स्त्रियों के बीच सुन्दर उपवन में राजकुमार ठीक वैसे ही सुशोभित हो रहा था, जैसे दिव्य उपवन में सूर्य अप्सराओं के बीच चमकता है।

6. वहाँ उनमें से कुछ ने कामातिरेक से अपने पुष्ट और कठोर उरोजों को दबाकर उसके मनोभाव को उत्तेजित किया।

7. कुछ अन्य ने लड़खड़ाने का बहाना करते हुए उसे जोर से आलिंगनबद्ध कर लिया और अपने कंधों और लता सदृश बाहों के सहारे अपना बोझ भी उस पर डाल दिया।

8. कुछ अन्य ने मादक सुरा की गंध और ताम्रवर्णी लाल होठों वाले मुँह से उसके कान में फुसफुसाया-"मेरी रहस्यपूर्ण बात सुनो।"

9. कुछ जो इत्र विलेप से भींजी थीं, उसके हाथ पकड़कर उत्सुकतापूर्वक उसे आज्ञा देने की मुद्रा में कहा-"यहाँ मेरी आराधना करो।"

10. एक अपने नीले वस्त्र में नशे से लड़खड़ाने का बहाना कर जान-बूझकर अपनी जीभ बाहर निकालकर खड़ी हो गई, जैसे रात में बिजली कौंध रही हो।

11. कुछ सुनहरे घुंघरुओं की आवाज करती हुई अर्ध-आच्छादित पतले वस्त्र से ढँके शरीर को दिखाती हुई इधर-उधर घूम रही थीं।

12. कुछ हाथ में आम के पेड़ की शाखा लेकर झुकी हुई थीं और स्वर्ण-कलश तुल्य जैसे अपने उरोजों को दिखा रहीं थीं।

13. कुछ कमलनयनी हाथ में कमल लेकर, कमल शय्या से आकर कमलदेवी पद्मा की तरह कमल मुख राजकुमार के बगल में खड़ी थी।

14. कुछ ने उचित भाव-भंगिमाओं के साथ मधुर गीत गाये, ताकि संयत राजकुमार उत्तेजित हो सके। वे अपनी नजरों द्वारा कह रही थीं-"अरे! तुम किस भ्रम में पड़े हो?"

15. अन्य ने अपने आयायुक्त मुखमंडल पर पूरी तरह से भौंहें तानकर राजकुमार की मुख-मुद्रा की नकल, जैसे कि नायक की भूमिका निभा रही हो।

16. एक अन्य, जिनके उरोज सुन्दर एवं पूर्ण विकसित थे, जिनके कानों की बालियां हवा में झूम रही थीं, जोर से हंसी जैसे कह रहो हो, और बोली-"यदि आप पकड़ सकते हैं, तो पकड़ें।"

17. जब वह वहां से चलने को हुआ, तो कुछ ने उसे पुष्प-हारों द्वारा बाँधने की कोशिश की और कुछ ने मधुर, किन्तु महावत के अंकुश के चुभने के समान शब्दों से प्रहार किया।

18. किसी ने उससे बात करने के लिए आम की शाखा को हाथ में पकड़ उससे फूल लेकर वासना में लिप्त कहा–''यह किसका फूल है?''

19. किसी ने आदमी की तरह चाल-ढाल बनाकर उससे कहा–''तुम स्त्री द्वारा जीते जा चुके हो, जाओ अब इस पृथ्वी को जीतो।''

20. फिर एक दूसरी आँखें मटकाती हुई, नील-कमल को सूँघती हुई अस्पष्ट स्वर में राजकुमार को सम्बोधित करने लगी।

21. ''मेरे स्वामी! मधु की तरह सुगंध वाले फूलों से आच्छादित इस आम्रकुंज को देखें, जहाँ कोकिल ऐसे गाती है, जैसे किसी स्वर्ण-पिंजर में कैद हो।''

22. ''स्वामी! यहां आएं, इस अशोक वृक्ष को देखें, जो प्रेमियों के विरह को बढ़ाता है, जहाँ मधुकर गूँजते हैं, जैसे वे आग द्वारा झुलसा दिए गए हों।''

23. ''आइए! इस तिलक वृक्ष को देखें, जिस पर आम्र-शाखाएँ लिपटी हुई हैं। जैसे स्वेत वस्त्र में कोई पीत वस्त्र वाली स्त्री किसी श्वेत वस्त्रधारी पुरुष से लिपटी हो।''

24. ''ताजा अंगूरी-रस की तरह चमकीले पुष्पित कुरबक वृक्ष को देखें, जो इस प्रकार झुका हुआ है, जैसे यह स्त्रियों के नाखूनों की लाली द्वारा हुआ हो।''

25. ''आइए, नवपल्लव से आच्छादित इस अशोक वृक्ष को देखें, वह ऐसे खड़ा है मानो हमारे हाथों की सुन्दरता पर लज्जित हो।''

26. ''इस झील को ही देखें जिसके तट पर सिंदवार उगी हुई है, मानो एक सुन्दर स्त्री श्वेत वस्त्र में लेटी हुई हो।''

27. ''महिलाओं की राजसी सामर्थ्य शक्ति को देखें, पानी में वह चकवी आगे-आगे जाती है और उसका पति दास की भाँति उसका पीछा करता है।''

28. ''आओ! और मतवाली कोयल के गीत सुनें। दूसरे कोयल बेफिक्र ऐसे गाती हैं जैसे दूसरी उसका अनुकरण कर रहे हों।''

29. ''अच्छा होता यदि सर्वदा अपनी बुद्धिमत्ता का मनन करने वाले चिन्तनशील व्यक्ति के विचार की जगह वसन्त ऋतु में उत्पन्न पक्षियों का उन्माद भी आप में होता।''

30. इस प्रकार इन सभी प्रेमासक्त नवयुवतियों ने राजकुमार को अनेक प्रकार की चालों से अपने वश में करने का प्रयास किया।

31. इतने प्रयासों के बाद भी वह संयतेन्द्रिय न तो प्रसन्न हुआ और न ही मुस्कराया।

32. उनकी वास्तविक अवस्था देखकर राजकुमार दृढ़ एवं शांत चित्त से मनन करता रहा।

33. "इन स्त्रियों में ऐसी क्या कमी है, जो ये अनुभव नहीं कर पातीं कि यौवन अस्थिर है। बुढ़ापा उनकी समस्त सुन्दरता को क्षय कर देगा।"

34. इन चिकनी-चुपड़ी बातों का दौर महीनों, वर्षों चलता रहा, लेकिन कुछ भी परिणाम नहीं निकला।

11. राजकुमार को प्रधानमंत्री के द्वारा समझना

1. उदायी समझ गया कि युवतियाँ असफल हो गई हैं और राजकुमार ने उनमें कोई रुचि नहीं दिखायी।

2. नीति में कुशल उदायी ने राजकुमार से स्वयं बात करने का विचार किया।

3. एकांत में उदायीन ने में राजकुमार से कहा-"आपको योग्य मित्र की तरह राजा ने मेरी नियुक्ति की है, इसलिए मैं आपसे प्रिय मित्र के रूप से बातें करना चाहता हूँ।" इस प्रकार उदायी ने कहना आरम्भ किया :

4. "अहितकर काम से बचाना, हितकर काम में लगाना और विपत्ति में साथ न छोड़ना-मित्र के यही तीन लक्षण हैं।"

5. "मित्रता का वचन देकर भी अगर मैं आपको पुरुषार्थ से विमुख होने पर सावधान नहीं कर सका, तो मैं अपने मैत्री-धर्म से च्युत होता हूँ।"

6. "ऊपरी मन से भी स्त्रियों से संबंध रखना अच्छा होता है। यह संकोच खत्म करने तथा अपना मनोरंजन करने दोनों में ही लाभदायक है।"

7. "स्त्री के प्रति आदरपूर्वक व्यवहार करने और उसकी इच्छानुसार कार्य करने से स्त्री का मन जीता जा सकता है। निस्संदेह, सद्गुण भी प्रेम के ही कारण होते हैं और स्त्रियाँ आदर चाहती हैं।'"

8. "हे विशाल - नयन वाले राजकुमार! दिल से न चाहते हुए भी उनकी सुन्दरता के अनुरूप उन्हें प्रसन्न रखने के लिए कुछ शिष्टाचार नहीं दिखा सकते?"

9. ''शिष्टाचार ही स्त्रियों का मरहम है, शिष्टाचार ही उत्तम आभूषण है और शिष्टाचार के बिना सौंदर्य ठीक वैसा ही है जैसे फूलों के बिना उपवन।''

10. ''लेकिन मात्र शिष्टाचार का अकेले क्या उपयोग? उसे हृदय-भावना से सुमेलित होना चाहिए। निस्संदेह, कठिनाई से प्राप्त होने वाली सांसारिक भोगों की वस्तुएँ जब आपके हाथों में हैं, तो आप उनका अनादर न करें।''

11. ''काम-सुख को सर्वोत्तम मानकर ही पुराने जमाने में पुरंदर (इन्द्र) ने भी गौतम मुनि की पत्नी अहिल्या का आलिंगन किया।''

12. ''इसी प्रकार अगस्त्य ऋषि ने सोम की पत्नी रोहिणी के साथ रमण किया तथा जैसा कि श्रुति के अनुसार लोपामुद्रा के साथ भी यही हुआ।''

13. ''उतथ्य की पत्नी मरुत की पुत्री ममता के साथ महान ऋषि बृहस्पति ने संभोग किया और भारद्वाज को जन्म दिया।''

14. ''अर्घ्य अर्पण करती हुई बृहस्पति की पत्नी के साथ चन्द्रमा ने ग्रहण किया और दिव्य बुध को जन्म दिया।''

15. ''इसी प्रकार पुराने जमाने में रागातिरेक से पाराशर ऋषि ने यमुना तट पर वरुण-पुत्र की पुत्री काली के साथ सहवास किया।''

16. ''ऋषि वशिष्ठ ने वासना के वशीभूत होकर एक निम्न जाति की तिरस्कृत महिला अक्षमाला के साथ सहवास किया और कपिंगलाद नामक पुत्र को जन्म दिया।''

17. ''और राजर्षि ययात ने अपने यौवन की जीवंतता समाप्त होने के बाद भी कैत्ररथ वन में अप्सरा विश्वाकी के साथ मनोविनोद किया।''

18. ''पत्नी के साथ संभोग मृत्यु का कारण होगा-यह जानते हुए भी कौरव नरेश पाण्डु माद्री की सुन्दरता और सद्गुणों से प्रभावित होकर प्रेम सुख के वशीभूत होकर सहवास किया।''

19. ''इन जैसे महान् व्यक्तियों ने भी जब काम-सुख के लिए इन घृणित इच्छाओं के अनुसार काम किया, तो प्रशंसनीय भोग-विलास में क्या दोष है?''

20. ''यह सब होने पर भी आप जैसा सुन्दर और शक्तिशाली युवक भोग-विलास का तिरस्कार करता है। जिस पर आपका अधिकार है और जिसके लिए पूरी दुनिया लालायित रहती है।''

12. राजकुमार का प्रधानमंत्री को उत्तर

1. पवित्र परम्परा से समर्थित उचित ही प्रतीत होने वाले इन वचनों को सुनकर मेघ-गर्जन की भाँति दहाड़कर राजकुमार ने उत्तर दिया :

2. "प्रेमभाव प्रकट करने वाला यह अभिभाषण आपके योग्य ही है, लेकिन मैं बताऊँगा कि मुझे समझने में आपने कहाँ गलती की है।"

3. "मैं सांसारिक विषयों का तिरस्कार नहीं करता, मैं जानता हूँ कि सम्पूर्ण मानव-जगत इसी में लिप्त है। लेकिन यह जानते हुए कि संसार अनित्य है, मैं इनमें कोई सुख नहीं देखता हूँ।"

4. "यदि स्त्रियों की सुन्दरता स्थायी रहे, तो भी इच्छाओं के सुखों में आनंद लेना बुद्धिमान व्यक्ति के योग्य नहीं है।"

5. "और जो आप कहते हैं कि बड़े-बड़े महान् व्यक्ति भी विषयों के वशीभूत हुए हैं, तो वे इस विषय में प्रमाण नहीं हैं, क्योंकि वे भी क्षय को प्राप्त हुए हैं।"

6. "जहाँ क्षय है, जहाँ सांसारिक वस्तुओं में आसक्ति है और जहाँ असंयम है, वहाँ वास्तविक महानता नहीं हो सकती।"

7. "और जो यह आपका कहना है कि 'ऊपरी मन से भी स्त्रियों से प्यार करना चाहिए, यह शिष्टाचार के द्वारा किया गया हो, तो भी मुझे यह रुचिकर नहीं है।"

8. "यदि उसमें सत्यता नहीं है, तो स्त्रियों की इच्छाओं के अनुसार अनुपालन भी मुझे अच्छा नहीं लगता। जहां संपूर्ण रूप से व्यक्ति का मन और स्वभाव उसके अनुकूल नहीं है, तो ऐसे अनुपालन का भी क्या अर्थ है?"

9. "जहाँ मन राग से वशीभूत है, जहाँ असत्यता में विश्वास किया जाता है, जहाँ वस्तुओं के दोष में आसक्ति और भ्रम का सहारा लिया जाता है, वहाँ किसी योग्यता की बात कहाँ है?"

10. "और, यदि राग से वशीभूत प्राणी एक दूसरे को धोखा देते हैं, तो क्या पुरुष स्त्रियों के लिए अयोग्य और स्त्रियाँ पुरुषों के लिए अयोग्य नहीं हैं?"

11. "अगर वे चीजें ऐसी ही हैं, तब मुझे उम्मीद है, आप मुझे विषयभोग के अशोभन कुपथ पर नहीं ले जाएँगे।"

12. राजकुमार के सुनिश्चित दृढ़ संकल्प से उदायी निरुत्तर हो गया और उसने इसकी सूचना राजा को दी।

13. जब शुद्धोदन ने सुना कि उसके पुत्र का चित्त सभी प्रकार के विषयों से विमुख हो गया है, तो उसे रातभर नींद नहीं आई। उसके दिल में वैसा ही दर्द था, मानो किसी हाथी की छाती में तीर लगा हो।

14. उन्होंने अपने मंत्रियों के साथ एक लम्बी मंत्रणा की ताकि सिद्धार्थ को सांसारिक सुख-सुविधाओं की ओर अभिमुख करने के उपाय खोजे जाएँ और उसे जीवन के संभावित झुकाव से दूर किया जाए। परंतु पहले जो उपाय किए जा चुके थे, उनके अलावा उन्हें कोई दूसरा उपाय नहीं सूझा।

15. जिनकी पुष्प की मालाएँ और अलंकार व्यर्थ सिद्ध हो चुके थे, जिनके हाव-भाव और आकर्षण का कोई फल नहीं निकला था, उन सभी स्त्रियों को विदा कर दिया गया।

13. शाक्य संघ में दीक्षा

1. शाक्यों का अपना संघ था। बीस वर्ष की आयु के ऊपर सभी शाक्यों को संघ में दीक्षित होना पड़ता था और उसका सदस्य बनना पड़ता था।
2. सिद्धार्थ गौतम बीस वर्ष का हो चुका था। यह उसके संघ में प्रवेश करने तथा उसके सदस्य बनने का समय था।
3. शाक्यों का एक सभा भवन था, जिसे संथागार कहा जाता था। यह कपिलवस्तु में स्थित था। संघ की सभा संथागार में भी होती थी।
4. सिद्धार्थ को संघ में दीक्षित कराने के लिए शुद्धोदन ने शाक्यों के पुरोहित को संघ की सभा बुलाने को कहा।
5. तदनुसार कपिलवस्तु में शाक्यों के संथागार में संघ एकत्रित हुआ।
6. संघ की सभा में पुरोहित ने प्रस्ताव रखा कि सिद्धार्थ को संघ का सदस्य बनाया जाए।
7. शाक्यों का सेनापति तब अपने स्थान पर खड़ा हुआ और उसने संघ को इस प्रकार संबोधित किया-''शाक्य कुल के शुद्धोदन-परिवार में जन्मा सिद्धार्थ गौतम संघ का सदस्य बनना चाहता है। यह बीस वर्ष का है और हर तरह से शाक्य-संघ का सदस्य बनने के योग्य है। अतः मेरा प्रस्ताव है कि इसे शाक्य-संघ का सदस्य बनाया जाए। जो कोई इस प्रस्ताव के विरुद्ध हों, बोले।''

8. इस प्रस्ताव के विरुद्ध कोई नहीं बोला। "दूसरी बार भी मैं पूछता हूँ, जो कोई इस प्रस्ताव के विरुद्ध हों, बोलें।" सेनापति ने कहा।

9. प्रस्ताव के विरुद्ध बोलने के लिए कोई खड़ा नहीं हुआ। सेनापति ने फिर कहा–"मैं तीसरी बार पूछता हूँ, जो कोई भी इस प्रस्ताव के विरुद्ध हों, बोले।"

10. तीसरी बार भी कोई भी प्रस्ताव के विरुद्ध नहीं बोला।

11. शाक्यों के संघ की कार्यप्रणाली का यह नियम था कि बिना प्रस्ताव के कार्यवाही नहीं की जा सकती थी और जब तक प्रस्ताव तीन बार पारित नहीं हो जाता था, उसे मान्यता नहीं मिलती थी।

12. सेनापति का प्रस्ताव तीन बार निर्विरोध पास हो गया तब सिद्धार्थ को शाक्य-संघ के सदस्य के रूप में स्वीकार करने की घोषणा की गई।

13. तब शाक्यों का पुरोहित खड़ा हुआ और उसने सिद्धार्थ को अपने स्थान पर खड़ा होने को कहा।

14. सिद्धार्थ को सम्बोधित करके उसने कहा–"क्या आप अनुभव करते हैं कि संघ ने सदस्य बनाकर आपको सम्मानित किया है?" "मैं अनुभव करता हूँ, मान्यवर"–सिद्धार्थ ने उत्तर दिया।

15. "क्या आप संघ के सदस्यों के कर्त्तव्य जानते हैं?" "मुझे खेद है, मान्यवर, मुझे पता नहीं हैं, किन्तु उन्हें जानकर मुझे प्रसन्नता होगी।" सिद्धार्थ ने उत्तर दिया।

16. "सबसे पहले मैं आपको संघ के सदस्य के कर्त्तव्य बताऊँगा"–पुरोहित ने कहा और एक-एक करके उसने बताया :-

1. तन, मन और धन से आपको शाक्यों के हितों की रक्षा करनी चाहिए।
2. आपको संघ की सभाओं से अनुपस्थित नहीं रहना चाहिए।
3. बिना भय और पक्षपात के आपको किसी शाक्य के आचरण में पाए गए दोष को बताना चाहिए।
4. यदि आप पर कोई दोषारोपण होता है, तो आपको क्रोधित नहीं होना चाहिए और निर्दोष होने के लिए सफाई देनी चाहिए।"

17. पुरोहित ने तब आगे कहा–"मैं इसके बाद आपको बताऊँगा कि क्या करने से आप संघ की सदस्यता खो देंगे :

(1) यदि आप बलात्कार करते हैं, तो संघ के सदस्य नहीं रह पाएँगे।

(2) यदि आप किसी की हत्या करते हैं, तो संघ के सदस्य नहीं रह पाएँगे।

(3) यदि आप चोरी करते हैं, तो संघ के सदस्य नहीं रह पायेंगे।

(4) यदि आप गलत साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं, तो संघ के सदस्य नहीं रह पाएँगे।''

18. ''मान्यवर! मैं आपका कृतज्ञ हूँ कि आपने मुझे संघ-अनुशासन के नियमों को बताया। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं उनके अर्थ और व्यञ्जन सहित उन्हें पालन करने की पूरी कोशिश करूँगा।'' सिद्धार्थ ने कहा।

14. संघ से मतभेद

1. सिद्धार्थ को शाक्य-संघ का सदस्य बने आठ वर्ष बीत चुके थे।
2. वह संघ का एक पक्का और समर्पित सदस्य था। जितनी रुचि उसे अपने मामलों के लिए थी, उतनी ही उसे संघ के मामलों में भी थी। संघ के सदस्य के रूप में उसका आचरण अनुकरणीय था, इसलिए वह सब का प्रियभाजन बन गया था।
3. उसकी सदस्यता के आठवें वर्ष में एक ऐसी घटना घटी, जो शुद्धोदन के परिवार के लिए दुर्घटना बन गई और सिद्धार्थ के जीवन के लिए संकट।
4. इस दुःखद प्रकरण का आरम्भ इस प्रकार हुआ था :
5. शाक्यों के राज्य से सटा हुआ कोलियों का राज्य था। दोनों साम्राज्यों की विभाजक रेखा रोहिणी नदी थी।
6. खेत सींचने के लिए शाक्य और कोलिय दोनों रोहिणी नदी के पानी का उपयोग करते थे। प्रत्येक वर्ष दोनों के बीच विवाद होता था कि रोहिणी नदी का पानी पहले कौन और कितना लेगा? इन विवादों के कारण कभी-कभी झगड़े हो जाते थे और दोनों ओर से लोग घायल भी हो जाते थे।
7. सिद्धार्थ की आयु के अठाइसवें वर्ष में पानी के लिए शाक्यों के नौकरों और कोलिय के नौकरों के बीच बड़ा विवाद हो गया। दोनों तरफ के लोग घायल भी हुए।
8. ऐसा जानकर शाक्यों और कोलियों ने अनुभव किया कि युद्ध के द्वारा इस विवाद को सदा के लिए सुलझा देना चाहिए।

9. इसलिए शाक्यों के सेनापति ने कोलियों के विरुद्ध युद्ध छेड़ने की चर्चा के लिए संघ की एक सभा बुलाई।

10. संघ के सदस्यों को सम्बोधित करते हुए सेनापति ने कहा–"हमारे लोगों पर कोलियों ने आक्रमण किया और हमारे लोगों को पीछे हटने के लिए मजबूर होना पड़ा। कोलियों द्वारा इस प्रकार की आक्रामक कार्यवाही पहले भी हो चुकी है। आज तक हमने उन्हें सहन किया है। लेकिन ऐसे काम नहीं चल सकता। इसे रोकना ही चाहिए और रोकने का एक ही उपाय है–कोलियों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा। मेरा प्रस्ताव है कि संघ द्वारा कोलियों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी जाए, जो इसका विरोध करना चाहें, वह बोलें।"

11. सिद्धार्थ गौतम अपने स्थान पर खड़े हुए और बोला–"मैं इस प्रस्ताव का विरोध करता हूँ। युद्ध से कभी किसी समस्या का हल नहीं होता। युद्ध छेड़ देने से हमारे उद्देश्य की पूर्ति नहीं होगी। इससे दूसरे युद्ध का बीजारोपण होगा। किसी की हत्या करने वाले को कोई दूसरा हत्या करने वाला मिल जाता है। जीतने वाले को दूसरा जीतने वाला मिल जाता है, लूटने वाले को दूसरा लूटने वाला मिल जाता है।"

12. सिद्धार्थ गौतम ने अपना कहना जारी रखा–"मुझे लगता है कि कोलियों के विरुद्ध युद्ध छेड़ने में संघ को जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए। पहले सावधानीपूर्वक जाँच करनी चाहिए कि कौन पक्ष दोषी है। मैंने सुना है कि हमारे आदमियों ने ज्यादती की है। यदि यह सत्य है, तो हम लोग भी दोष-मुक्त नहीं हैं।"

13. सेनापति ने उत्तर दिया–"हाँ, यह ठीक है कि हमारे आदमियों ने ही पहल की थी, लेकिन यह नहीं भूलना चाहिए कि पानी लेने की बारी पहले हमारी थी।"

14. सिद्धार्थ गौतम ने कहा–"इससे स्पष्ट है कि हम लोग भी पूर्णतः दोषमुक्त नहीं है। इसलिए हम अपने में से दो आदमियों को चुनें और कोलियों से भी कहा जाए कि वे भी दो आदमी चुनें। फिर चारों मिलकर एक पाँचवाँ आदमी चुनें और पाँचों मिलकर विवाद का निपटारा करें।"

15. सिद्धार्थ गौतम ने जिस संशोधन का सुझाव दिया, उसे विधिवत समर्थन मिला। लेकिन सेनापति ने इस सुझाव का यह कहते हुए विरोध किया–"मैं पूर्णतः आश्वस्त हूँ कि कोलियों का संकट उन्हें कठोर दण्ड दिए बिना समाप्त नहीं हो सकता।"

16. इसलिए प्रस्ताव और संशोधन दोनों मतदान के लिए रखे गए। पहले सिद्धार्थ के संशोधन को मतदान के लिए रखा गया, वह भारी बहुमत से अमान्य हो गया।

17. उसके बाद सेनापति ने अपने प्रस्ताव पर मत माँगे। सिद्धार्थ गौतम इसके विरोध में फिर खड़ा हुआ और उसने कहा–"मेरी प्रार्थना है कि संघ इस प्रस्ताव को स्वीकार न करे। शाक्य कोलियों के निकट संबंधी हैं। एक दूसरे को बरबाद करना मूर्खता है।"

18. सेनापति ने सिद्धार्थ गौतम के तर्क का सर्वथा विरोध किया। उसने इस बात पर जोर दिया कि युद्ध में क्षत्रिय के लिए कोई अपना और पराया नहीं होता। साम्राज्य की रक्षा के लिए उन्हें अपने भाइयों से भी संघर्ष करना चाहिए।

19. यज्ञ करना ब्राह्मणों का, युद्ध करना क्षत्रियों का, व्यापार करना वैश्यों का और सेवा करना शूद्रों का धर्म है। हर वर्ग को अपना धर्म निभाने में पुण्य मिलता है। यही शास्त्र का आदेश है।

20. सिद्धार्थ ने उत्तर दिया–"जहाँ तक मैंने धर्म को समझा है, वह इसे समझने में है कि वैर से वैर कभी शान्ति नहीं होता। वैर केवल प्रेम से ही शान्त हो सकता है।"

21. अधीर होकर सेनापति ने कहा–"इस प्रकार के दार्शनिक शास्त्रार्थ में पड़ना एकदम बेकार है। सिद्धार्थ को मेरा प्रस्ताव अमान्य है। हम संघ का मत लेकर इसका निश्चय करें कि इस पर संघ का क्या विचार है।"

22. सेनापति ने अपना प्रस्ताव मत लेने के लिए रखा। भारी बहुमत से प्रस्ताव पास हो गया।

15. देश छोड़ने का प्रस्ताव

1. संघ द्वारा सैन्य संगठन पर विचार करने के लिए अगले दिन सेनापति ने शाक्य संघ की सभा बुलाई।

2. जब संघ मिला तो उसने इस प्रस्ताव के पास करने की घोषणा की कि कोलियों के विरुद्ध युद्ध में बीस से पचास वर्ष के प्रत्येक शाक्य के शामिल होने का आदेश जारी हो।

3. सभा में दोनों पक्ष उपस्थित थे–वे भी जिन्होंने संघ की पहली सभा में युद्ध घोषणा के पक्ष में मत दिया था और वे भी जिन्होंने इसके विरुद्ध मत दिया था।

4. जिन्होंने प्रस्ताव के समर्थन में मत दिया था, उन्हें सेनापति के प्रस्ताव को स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं थी। पहले के निर्णय का यह सहज परिणाम था।

5. लेकिन जिन्होंने प्रस्ताव के विरोध में मत किया था, उन अल्पसंख्यकों के सामने समस्या यह थी कि वे बहुमत के निर्णय को स्वीकार करें या न करें।

6. अल्पमत वाले बहुमत के सामने सर झुकाने को तैयार नहीं थे। यही कारण था, जिसके चलते वे सभा में उपस्थित थे। दुर्भाग्यवश किसी में भी खुलकर कहने का साहस न था। शायद वे बहुमत के विरोध करने का परिणाम जानते थे।

7. अपने समर्थकों को चुप बैठा देखकर सिद्धार्थ खड़ा हुआ और संघ को सम्बोधित करके कहा–''मित्रो!, जो आपकी इच्छा हो, करें। आपका और बहुमत है, लेकिन मुझे खेद है कि मैं इस सैन्य संगठन का विरोध करूँगा। मैं न तो आपकी सेना में शामिल होऊँगा और न ही युद्ध में भाग लूँगा।''

8. सिद्धार्थ गौतम को उत्तर देते हुए सेनापति ने कहा–''संघ के सदस्य बनते समय ली गई शपथ को आप याद करें। किसी एक को भी तुमने तोड़ा तो तुम्हें सार्वजनिक निन्दा का शिकार बनना पड़ेगा।''

9. सिद्धार्थ ने उत्तर दिया–''हाँ, मैंने तन, मन, धन से शाक्यों के सर्वोत्तम हितों की रक्षा का वचन दिया है। लेकिन मुझे लगता है कि यह युद्ध शाक्यों के सर्वोत्तम हित में नहीं है। शाक्यों के सर्वोत्तम हितों के मुकाबले मेरे लिए सार्वजनिक निन्दा क्या है?''

10. सिद्धार्थ ने संघ को याद दिलाते हुए सावधान किया कि किस प्रकार कोलियों से लड़ाई करते रहने के कारण शाक्य लोग कोसल-नरेश के जागीरदार जैसे हो गए हैं। उसने कहा–''इसकी कल्पना करना आसान है कि यह युद्ध कोसल नरेश को शाक्यों की स्वतंत्रता घटाने का अवसर देगा।''

11. सेनापति क्रोधित हो गया और उसने सिद्धार्थ को सम्बोधित करते हुए कहा–''तुम्हारी वाकपटुता तुम्हारी सहायता नहीं करेगी। शायद तुम सोच रहे हो कि कोसल देश की अनुमति के बिना संघ की अवहेलना करने वाले को संघ मृत्यु-दण्ड या देश-निकाले की सजा नहीं दे सकता और यदि दोनों में से कोई भी सजा तुम्हें मिल जाती है, तो कोसल-नरेश उसकी अनुमति नहीं देंगे।''

12. ''लेकिन याद रखो, संघ के पास तुम्हें सजा देने के दूसरे रास्ते भी हैं। संघ तुम्हारे परिवार के विरुद्ध सामाजिक बहिष्कार की घोषणा कर सकता है। संघ तुम्हारे परिवार को भूमि से बेदखल कर सकता है। इसके लिए संघ को कोसल-नरेश से अनुमति लेने की कोई आवश्यकता नहीं है।''

13. सिद्धार्थ कोलियों के विरुद्ध संघ की युद्ध-घोषणा का विरोध करते रहने के परिणाम को समझ रहा था। उसके पास सोचने के तीन विकल्प थे-सेना में भर्ती होकर युद्ध में भाग लेना, मृत्यु-दण्ड या देश-निकाले के लिए राजी होना या अपने परिवार के सदस्यों के सामाजिक बहिष्कार का तिरस्कार झेलना व सम्पत्ति से हाथ धोने के लिए राजी करना।

14. पहले विकल्प को स्वीकार करने के लिए वह किसी स्थिति में तैयार नहीं था। इसी तरह तीसरे के बारे में भी वह नहीं सोच सकता था। इन परिस्थितियों में उसे लगा कि दूसरा विकल्प ही उसके लिए सर्वाधिक मान्य था।

15. तब सिद्धार्थ ने संघ से कहा-"कृपया! मेरे परिवार को दण्डित न करें। सामाजिक बहिष्कार कर उन्हें विपत्ति में न डालें। उनकी भूमि छीनकर उन्हें निःसहाय न बनाएँ, क्योंकि भूमि ही उनकी जीविका का एकमात्र साधन है। वे निर्दोष हैं, दोषी मैं हूँ। मेरी गलती के लिए मुझे अकेले दण्डित होने दें। मृत्यु-दण्ड या देश-निकाला में से जो आप चाहें मुझे सजा दें। मैं स्वेच्छा से उसे स्वीकार करूँगा और मैं आपको वचन देता हूँ कि मैं इसके लिए कोसल-नरेश से शिकायत नहीं करूँगा।

16. प्रव्रज्या-अभिनिष्क्रमण

1. सेनापति ने कहा-"तुम्हारा सुझाव मानना कठिन है। यदि तुम मृत्यु-दण्ड या देश-निकाले की सजा स्वेच्छा से भी पाओगे, तो भी निश्चित रूप से कोसल-नरेश को इसकी जानकारी हो जाएगी और वह निश्चितापूर्वक इसी परिणाम पर पहुँच जाएगा कि संघ ने ही यह सजा दी है और वह संघ के विरुद्ध कार्यवाही करेगा।"

2. सिद्धार्थ गौतम ने कहा-"यदि यही कठिनाई है, तो मैं देश से बाहर निकलने का सुझाव आसानी से दे सकता हूँ। मैं परिव्राजक बनकर देश छोड़ दूँगा। यह भी एक तरह से देश निकाला ही है।"

3. सेनापति ने सोचा कि यह एक अच्छा सुझाव है। लेकिन सिद्धार्थ के बारे में उसे अभी संदेह था कि सही रूप से वह इसे पूरा करेगा।

4. इसलिए सेनापति ने सिद्धार्थ से पूछा-"तुम अपने माता-पिता और अपनी पत्नी की अनुमति के बिना परिव्राजक कैसे बन सकते हो?"

5. सिद्धार्थ ने विश्वास दिलाया कि वह अनुमति लेने का पूरा प्रयास करेगा और

कहा–"मैं वचन देता हूँ कि मुझे अनुमति मिले या न मिले मैं तुरंत ही देश छोड़ दूँगा।"

6. संघ को लगा कि सिद्धार्थ का सुझाव इस विवाद से बाहर निकलने का सबसे अच्छा रास्ता है। इसलिए संघ तैयार हो गया।

7. सभा की कार्यवाही समाप्त कर संघ विसर्जित ही होने वाला था कि एक युवक शाक्य अपने स्थान पर खड़ा हुआ और उसने कहा–"मुझे कुछ महत्त्वपूर्ण बात कहनी है।"

8. बोलने की अनुमति मिलने के बाद उसने कहा–"मुझे संदेह नहीं है कि सिद्धार्थ गौतम अपना वचन पूरा करेगा और तुरंत देश छोड़ देगा। फिर भी एक बात है कि जिसके लिए मैं बहुत प्रसन्न नहीं हूँ।"

9. "अब जबकि सिद्धार्थ जल्दी ही आँखों से ओझल हो जाएगा, कोलियों के विरुद्ध युद्ध छेड़ने की घोषणा का संघ का प्रस्ताव अभी से लागू हो जाएगा?"

10. "मैं चाहता हूँ कि संघ इस पर फिर से विचार करे। किसी भी तरह से सिद्धार्थ गौतम को देश निकाले के बारे में कोसल–नरेश को मालूम हो ही जाएगा। यदि शाक्य कोलियों के विरुद्ध तुरंत युद्ध की घोषणा करते हैं तो कोसन–नरेश समझेगा कि सिद्धार्थ को देश इसलिए छोड़ना पड़ा, क्योंकि उसने कोलियों के विरुद्ध युद्ध का विरोध किया। यह हम लोगों के लिए अच्छा नहीं होगा।"

11. "इसलिए मेरा सुझाव है कि सिद्धार्थ गौतम के देश–निकाला और कोलियों के विरुद्ध युद्ध की वास्तविक घोषणा के बीच एक अंतराल होना चाहिए, ताकि कोसल–नरेश इन दोनों घटनाओं में संबंध स्थापित न कर सकें।"

12. संघ को लगा कि यह एक बहुत महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव है और औचित्यपूर्ण होने के कारण संघ ने इसे स्वीकार कर लिया।

13. इस प्रकार शाक्य–संघ की एक दुःखान्त सभा की समाप्ति हुई और अल्पमत वालों, जिन्होंने युद्ध का विरोध किया था, लेकिन जिनमें बोलने का साहस नहीं था, उन्होंने भी राहत की सांस ली कि किसी तरह से भी अत्यन्त भयावक स्थिति से वे पार हो गए।

17. विदाई के शब्द

1. शाक्य संघ की सभा में जो कुछ हुआ इसका समाचार सिद्धार्थ गौतम के वापिस पहुँचने से पहले ही राज-महल में पहुँच गया था।

2. घर पहुँचकर उसने देखा कि उसके माता-पिता काफी दुःखी हैं और रो रहे हैं।

3. शुद्धोधन ने कहा-"हम लोग युद्ध के दुष्परिणाम की चर्चा करते थे। लेकिन मैंने यह कभी नहीं सोचा था कि तुम इस सीमा तक चले जाओगे।"

4. सिद्धार्थ ने उत्तर दिया-"मैंने भी नहीं सोचा था कि बात यहाँ तक बढ़ जाएगी। मुझे आशा थी कि शांति के लिए मैं अपने तर्क द्वारा शाक्यों को मना लूँगा।"

5. "दुर्भाग्यवश सैनिक अधिकारियों ने लोगों की भावनाओं को इतना भड़का दिया था कि उन पर मेरे तर्कों का कुछ भी असर नहीं पड़ा।"

6. "लेकिन, मुझे उम्मीद है कि आप यह महसूस करते होंगे कि मैंने स्थिति को और अधिक खराब होने से कैसे बचा लिया। मैंने सत्य और न्याय को नहीं छोड़ा है, जिस पर अड़िग रहने की जो सजा होगी, उसे अपने ऊपर लेने में मैं सफल हो गया।"

7. शुद्धोदन इससे संतुष्ट नहीं था और बोला-"तुमने यह नहीं सोचा कि इससे हम लोगों पर क्या गुजरेगी?" सिद्धार्थ ने उत्तर दिया-"लेकिन इसीलिए तो मैं परिव्राजक बनने के लिए तैयार हुआ। जरा सोचिए! यदि शाक्यों ने आपकी भूमि छीन लेने का आदेश दे दिया होता को क्या होता।"

8. "लेकिन तुम्हारे बिना यह भूमि किस काम की है?" शुद्धोदन गुस्से में बोला-"पूरा परिवार ही तुम्हारे साथ देश निकाले पर क्यों न चले?"

9. रोती हुई प्रजापति गौतमी भी शुद्धोदन के तर्क को समर्थन देती हुई बोली-"मैं भी सहमत हूँ। हम लोगों को इस हाल में छोड़कर तुम अकेले कैसे जा सकते हो?"

10. सिद्धार्थ ने कहा-"माँ, क्या तुम हमेशा यह दावा नहीं करती हो कि तुम एक क्षत्रिय की माँ हो? क्या ऐसा नहीं है? तुम्हें अब वीरता का परिचय देना चाहिए। इस प्रकार दुःखी होना तुम्हें शोभा नहीं देता है। यदि मैं युद्ध-भूमि में जाता और मारा जाता, तो तुम क्या करती? क्या तुम तब भी इसी तरह दुखी हुई होती?"

11. गौतमी ने उत्तर दिया–"नहीं, वैसा तो क्षत्रिय धर्म के प्रतिकूल होता। लेकिन अब तुम लोगों से बहुत दूर जंगल जा रहे हो, जहाँ तुम जंगली जानवरों के साथ रहोगे, तो हम लोग यहाँ शाँति से कैसे रह सकते हैं?"

12. उसने गौतमी से कहा–"मैं तुम लोगों को अपने साथ कैसे ले जा सकता हूँ? नन्द अभी बच्चा है। मेरा बेटा राहुल अभी पैदा हुआ है। क्या आय इन्हें यहाँ छोड़कर मेरे साथ जा सकती हो?"

13. गौतमी संतुष्ट नहीं हुई। उसने अर्ज किया–"यह संभव है कि हम लोग सभी शाक्य देश छोड़कर कोसल-नरेश के संरक्षण में कोसल-देश चलें।"

14. सिद्धार्थ ने कहा–"लेकिन माँ! शाक्य लोग क्या कहेंगे? क्या वे इसे देशद्रोह नहीं समझेंगे? इसके अलावा, मैंने प्रतिज्ञा की है कि मैं वचन से या कर्म से ऐसा कुछ नहीं करूँगा, जिससे कोसल-नरेश को मेरी प्रव्रज्या के सही कारण की जानकारी हो सके।"

15. "यह सही है कि मुझे अकेले जंगल में रहना पड़ेगा। लेकिन जंगल में रहना या कोलियों के विरुद्ध लड़ाई में हिस्सा लेना–दोनों में से क्या अच्छा है?"

16. शुद्धोदन ने पूछा–"लेकिन इतनी जल्दी क्या है? शाक्य संघ ने लड़ाई की तिथि कुछ समय के लिए रोक दी है।"

17. "शायद, लड़ाई शुरू ही न हो। तुम अपनी प्रव्रज्या को क्यों नहीं स्थगित कर देते? ऐसा भी संभव है कि शाक्यों के साथ रहने की अनुमति संघ में मिल जाए।

18. सिद्धार्थ को यह विचार बिल्कुल पसंद नहीं था। उसने कहा–"मैंने प्रव्रज्या लेने की प्रतिज्ञा की है, इसलिए संघ ने कोलियों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा रोक दी है।"

19. "यह भी संभव है कि मेरी प्रव्रज्या के बाद संघ को युद्ध की घोषणा वापस लेने के लिए मना लिया जाए। किन्तु ये सब पहले मेरे प्रव्रज्या ले लेने पर ही निर्भर करता है।"

20. "मैंने वचन दिया है और मुझे उसे अवश्य पूरा करना चाहिए। वचन तोड़ने का परिणाम बहुत बुरा हो सकता है–हम लोगों के लिए भी और शांति पक्ष के लिए भी।"

21. "माँ! मेरा रास्ता न रोको। अपनी अनुमति और आशीर्वाद मुझे दो। जो हो रहा है, वह अच्छे के लिए हो रहा है।"

22. गौतमी और शुद्धोदन चुप रहे।

23. अब सिद्धार्थ यशोधरा के कमरे में गया। उसे देखकर वह चुप खड़ा रहा। उसे समझ नहीं आ रहा था कि उससे कैसे बोले और क्या बोले। यशोधरा ने चुप्पी तोड़ी–''कपिलवस्तु में संघ की सभा में जो कुछ हुआ है, उसे मैंने सुन रखा है।''

24. सिद्धार्थ ने उससे पूछा–''यशोधरा! मुझे बताओ कि प्रव्रज्या लेने के मेरे निर्णय के बारे में तुम्हारा क्या विचार है?''

25. सिद्धार्थ समझते थे कि यशोधरा हिम्मत हार जाएगी। लेकिन वैसा कुछ नहीं हुआ।

26. अपनी भावनाओं को नियंत्रित कर उसने उत्तर दिया, ''यदि मैं तुम्हारी जगह होती, तो इसके अतिरिक्त मैं और कर ही क्या सकती थी? कोलियों के विरुद्ध युद्ध-पक्ष में मैं निश्चित रूप से नहीं होती।''

27. ''तुम्हारा निर्णय सही है। मैं तुम्हें अपनी अनुमति और सहयोग देती हूँ। मैं भी तुम्हारे साथ प्रव्रज्या ग्रहण करती। लेकिन केवल राहुल की देखभाल के लिए ही मैं ऐसा नहीं कर पाऊँगी।''

28. अच्छा होता यदि ऐसा न हुआ होता। लेकिन स्थिति का सामना करने के लिए हमें दृढ़ और वीरवत् होना चाहिए। तुम अपने माता-पिता और अपने पुत्र की चिंता न करो। जब तक मैं जीवित रहूँगी, उन लोगों की देखभाल करती रहूँगी।

29. ''अपने निकट और प्रियजनों को छोड़कर परिव्राजक बनने जा रहे हो, मैं चाहती हूँ कि तुम जीवन का एक नया रास्ता खोजो, जिससे पूरी मानवता सुखी हो।''

30. सिद्धार्थ गौतम इससे बहुत प्रभावित हुए। इसके पहले वह कभी नहीं जान पाया था कि यशोधरा इतनी बहादुर, साहसी और कुलीन स्त्री है। और वह कितना भाग्यशाली है, जिसे यशोधरा जैसी स्त्री पत्नी के रूप में मिली है और किस प्रकार आज समय ने दोनों को अलग-अलग कर दिया है। उसने यशोधरा से राहुल को लाने के लिए कहा। एक पिता की वात्सल्यपूर्ण दृष्टि डालकर वह वहाँ से विदा हो गया।

18. गृह-त्याग

1. सिद्धार्थ ने भारद्वाज के हाथों प्रव्रज्या लेने की सोची, जिनका आश्रम कपिलवस्तु में था। इसलिए वह अगले दिन सवेरे जागा और अपने सारथी छन्न के साथ अपने प्रिय अश्व कन्थक पर सवार होकर आश्रम की ओर चल पड़ा।

2. जैसे ही वह आश्रम के निकट पहुँचा, स्त्री और पुरुष बाहर द्वार पर एकत्रित हो गये और उससे मिलने के लिए उसे ऐसे घेरा लिया जैसे कोई नई-नवेली वधू आई हो।

3. और जैसे ही वे उसके निकट गए, उनकी आँखें आश्चर्य से खुली रह गई। उन्होंने बंद कमल की तरह हाथ जोड़कर उसका उचित स्वागत कर नमस्कार किया।

4. तब उसे वे घेरकर खड़े हो गए, उनके चित्त भाव-विह्वल थे, जैसे वे अपनी स्थिर और प्रेम से खुली आँखों से उसका पान कर रहे हों।

5. कुछ स्त्रियों ने तो उन्हें कामदेव का अवतार समझा, क्योंकि वह अपने चमकीले लक्षणों और अलंकारों से ऐसा सुसज्जित था।

6. कुछ दूसरी स्त्रियों ने उसकी शलीनता और ऐष्वर्य को देखकर सोचा कि वह दिव्य प्रकाशमान चन्द्रमा है, जो पृथ्वी पर उतर आया है।

7. कुछ स्त्रियाँ उसकी सुन्दरता से वशीभूत होकर इस प्रकार मुँह फैलाए खड़ी थी, जैसे उसे निगल जाएँगी। वे एक दूसरे को टकटकी लगाकर देख रही थीं और धीरे-धीरे आहें भर रही थीं।

8. इस प्रकार स्त्रियाँ केवल एक टक उसे निहार रही थीं, न तो वे बोलीं, न मुस्कराईं। वे उसे घेरे हुए थीं और उसके प्रव्रजित होने के निर्णय पर आश्चर्य से विचार कर रही थीं।

9. बड़ी मुश्किल से वह अपने को भीड़ से अलग कर पाया और उसने आश्रम में प्रवेश किया।

10. सिद्धार्थ नहीं चाहता था कि शुद्धोदन और गौतमी उसकी प्रव्रज्या होते देखें, क्योंकि वह जानता था कि ऐसे समय में वे इतना दुःख सहन नहीं कर पाएँगे और टूट जाएँगे। लेकिन उसे जानकारी। दि बिना ही वे आश्रम पहुँच चुके थे।

11. जैसे ही उसने आश्रम के परिसर में प्रवेश किया, उसने अपने माता-पिता को भीड़ में देखा।

12. माता-पिता को देखने पर सबसे पहले वह उनके पास गया और आशीर्वाद मांगा। वे भावना से इस प्रकार अभिभूत थे कि वे एक शब्द भी बोल न सके और वे रोते रहे। उन्होंने उसे जोर से पकड़कर छाती से लगा लिया और आसुओं से नहला दिया।

13. छन्न ने कन्थक को आश्रम में एक वृक्ष से बांध दिया और वह पास खड़ा रहा। शुद्धोदन और प्रजापति को आंसु बहाते देखकर वह भी भावना के वशीभूत हो गया और रोने लगा।

14. बड़ी मुश्किल से अपने को माता-पिता से अलग कर सिद्धार्थ वहां गया जहां छन्न खड़ा था। उसने अपने वस्त्र और आभूषण घर वापस ले जाने के लिये उसे दे दिए।

15. तब उसने अपना सिर मुडवाया, जो परिव्राजक के लिए आवश्यक था। उसका चचेरा भाई महानामा परिव्राजक के अनुकूल वस्त्र और भिक्षापात्र ले आया था। सिद्धार्थ ने उन्हें पहन लिया।

16. परिव्राजक के जीवन में प्रवेश करने के लिए तैयार होकर सिद्धार्थ प्रव्रज्या के लिए भारद्वाज के पास गया।

17. अपने शिष्यों की सहायता से भारद्वाज ने आवश्यक संस्कार किए और सिद्धार्थ गौतम के परिव्राजक होने की घोषणा की।

18. यह याद करके कि उसने वाक्य-संघ को दो वचन दिए थे-प्रव्रज्या लेना और अविलम्ब ही शाक्य साम्राज्य छोड़ना। प्रव्रज्या संस्कार के पूरा हो जाने के तुरंत बाद, बिना देरी किए वह अपनी यात्रा पर निकल पड़ा।

19. आश्रम में असामान्य रूप से बड़ी भारी भीड़ थी, क्योंकि गौतम की प्रव्रज्या के कारण स्थितियां विलक्षण थीं। सिद्धार्थ जैसे ही आश्रम से बाहर निकला भीड़ भी उसके पीछे-पीछे चल दी।

20. उसने कपिलवस्तु छोड़ दिया और अनोमा नदी की ओर बढ़ा। पीछे मुड़ने पर उसने देखा कि भीड़ अभी भी उसका पीछा कर रही है।

21. उन लोगों को संबोधित करते हुए उसने कहा-"भाइयों एवं बहनों! मेरा पीछा करने से कोई लाभ नहीं है। मैं शाक्यों और कोलियों के बीच विवाद को सुलझाने में असफल हो गया हूं। लेकिन यदि आप लोग समझौते के पक्ष में

जनमत बना लें तो आप लोग इसमें सफल हो सकते हैं। इसलिए आप लोग अच्छी तरह लौट जाएं।" उसकी प्रार्थना सुनकर भीड़ ने पीछे लौटना शुरू कर दिया।

22. शुद्धोदन और गौतमी भी महल की ओर लौट गए।

23. सिद्धार्थ द्वारा उतारे गए वस्त्र और आभूषण को देखने में गौतमी असमर्थ थी, इसलिए उसने उन्हें कमल के तालाब में फिंकवा दिया।

24. प्रव्रज्या ग्रहण करने के समय सिद्धार्थ गौतम की आयु मात्र उनत्तीस वर्ष की थी।

25. लोग यह कहकर उसकरी प्रशंसा करते और आंहें भरते थे–"यह उच्च कुल का शाक्य था, श्रेष्ठ माता-पिता की संतान था, धनी था, तरुण था, सुंदर शरीर और बुद्धि से युक्त था, सुख-सुविधा में पला था, उसने पृथ्वी पर शांति और मानवता के कल्याण के लिए अपने संबंधियों से संघर्ष किया।

26. यह शाक्य युवक था, जिसने अपने संबंधियों के बहुमत के आगे झुकने से इंकार कर दिया और स्वेच्छा से वह दण्ड भोगने के लिए तैयार हो गया, जिसमें अमीरी के बदले गरीबी, सुविधा के बदले भिक्षाटन और घर के बदले बेघर मिलना था। और जब वह गया, तो अपने साथ न तो सेवा करने वाला ले गया और न ही अपने साथ कुछ ऐसी चीज ले गया, जिसे वह इस संसार में अपना कह सके।

27. स्वेच्छा से किया गया यह कार्य उसका परम त्याग था। उसकी यह वीरता है और कार्य साहसिक है। विश्व के इतिहास में इसके समान कोई उपमा नहीं मिलती है। यह शाक्स-मुनि या शाक्य-सिंह कहलाने का अधिकारी है।

28. एक शाक्य कुमारी कृषा गौतमी का कथन कितना सही था। तब सिद्धार्थ गौतम को निमित्त करके उसने कहा था–"सचमुच धन्य है वह मां, धन्य है वह पिता, जिसे ऐसा पुत्र मिला। सचमुच धन्य है वह पत्नी, जिसे ऐसा पति मिला।"

19. राजकुमार और उसका सेवक

1. छन्न को भी कंथक के साथ घर लौट जाना चाहिए था। लेकिन उसने लौटने से इंकार कर दिया। उसने आग्रह किया कि कंथक के साथ वह राजकुमार को विदा करके कम से कम अनोमा नदी के किनारे तक चलेगा और छन्न का आग्रह इतना अधिक था कि गौतम को उसकी बात माननी पड़ी।

2. अन्त में वे अनोमा नदी के किनारे पहुँचे।
3. उसके बाद छन्न की ओर घूमकर उसने कहा–''अच्छा मित्र! मेरे साथ आने से मेरा और तुम्हारा स्नेह प्रमाणित हो चुका है। अपने स्वामी के प्रति ऐसा प्यार देकर तुमने मुझे दिल से जीत लिया है।''
4. ''मेरे प्रति तुम्हारी अच्छी भावनाओं से मैं काफी प्रसन्न हूँ, परन्तु इस समय मैं तुम्हें कुछ भी देने में असमर्थ हूँ।''
5. ''जिससे उपकार की आशा हो, उसके प्रति कौन अनुरक्त नहीं होगा? लेकिन बुरे दिनों में साधारणतया अपने सगे-संबंधी पराए हो जाते हैं।''
6. ''परिवार के लिए एक पुत्र का पालन-पोषण होता है, भावी सुख के लिए पुत्र पिता को मानता है, आशा के लिए संसारी लोग प्रेम दिखाते हैं, बिना आशा के निःस्वार्थ जैसी कोई चीज नहीं है।''
7. ''केवल तुम्हीं इसके एक अपवाद हो। इस अश्व को लेकर वापस लौट जाओ।''
8. ''राजा का प्रेम-विश्वास अभी भी बना होगा। किसी तरह उन्हें दुःख सह लेने में साथ देना होगा।''
9. ''उन्हें कहना, न स्वर्ग की कामना से, न प्यार के अभाव में और न ही क्रोधवश मैंने उन्हें छोड़ा है।''
10. ''घर छोड़ने पर उन्हें मेरे लिए शोक नहीं करना चाहिए, संयोग चाहे कितना ही दीर्घकालीन क्यों न हो, उसका अंत समय या वियोग एक-न-एक दिन आएगा ही।''
11. ''जब वियोग अनिवार्य है तो अपने सम्बंधियों से वियोग क्यों नहीं होगा?
12. ''किसी व्यक्ति के मरने पर उसकी सम्पत्ति के उत्तराधिकारी निस्संदेह मिल जाते हैं, लेकिन उसके पुण्य के उत्तराधिकारी को इस संसार में खोजना बहुत ही कठिन है। शायद होता ही नहीं।''
13. ''उसके मेरे पिता राजा को देखभाल की आवश्यकता है। वे कह सकते हैं कि मैंने अनुपयुक्त समय पर गृह-त्याग किया है, लेकिन कर्त्तव्य के लिए कोई गलत समय नहीं होता।''
14. ''मित्र! तुम मेरे पिता-राजा को इन्हीं शब्दों से सम्बोधित करना और कोशिश करना कि वे मुझे याद न कर सकें।''

15. "हाँ, माँ से कहना कि मैं उसके प्यार के लायक सिद्ध नहीं हुआ। वे अच्छे व्यक्तित्व वाली हैं, मृदुभाषी भी हैं।"

16. इन शब्दों को सुनकर, दुःख से अभिभूत होकर भावनापूर्ण रुँधे कंठ से छन्न ने हाथ जोड़कर उत्तर दिया।

17. "स्वामी! यह देखकर कि आप अपने संबंधियों को वियोग-दुःख देकर जा रहे हैं, मेरा दिल ऐसे बैठा जा रहा है, जैसे दलदल में फंसा हुआ हाथी।"

18. "आपके ऐसे दृढ़ निश्चय से किसके आँसू न टपकेंगे, चाहे उसका दिल लोहे का ही क्यों न बना हो और यदि यह प्रेम से कम्पित हो तो फिर क्या कहना?"

19. "कहाँ तो यह कोमल शरीर, जो केवल महल में रहने योग्य है और कहाँ यह संन्यासी वन की भूमि, जो नुकीली कुश घास से ढँकी है।"

20. "हे राजकुमार! आपका यह निर्णय जानकर मैं कपिलवस्तु के लोगों को दुःख देने के लिए इस घोड़े को वापस कैसे ले जा सकता हूँ?"

21. "निश्चय ही आप अपने वृद्ध पिता को छोड़कर वैसे नहीं जाएँगे, जैसे कोई विधर्मी सही धर्म को छोड़ कर जाता है।"

22. "और आप अपनी द्वितीय माता को, जिसने आपको सावधानीपूर्वक पाला-पोसा, छोड़कर वैसे नहीं जाएँगे, जैसे कोई कृतघ्न उपकारी छोड़कर चला जाता है।"

23. "आप अपनी पत्नी को छोड़कर कैसे जा सकते हैं, जो सर्वगुणसम्पन्न है, जो अपने परिवार के लिए यशस्वी है, जो पतिव्रता है और जो एक बच्चे की माँ है।"

24. "धर्म और यश को अच्छी तरह जानने वाले! आप इस तरह यशोधरा के बेटे को कैसे छोड़ सकते हैं जैसे दुराचारी गौरव को छोड़ देता है?"

25. "अथवा स्वामी अगर आपने अपने संबंधियों और अपने साम्राज्य को छोड़ देने का संकल्प कर ही लिया है, तो मुझे नहीं छोड़ेंगे, क्योंकि आप ही मेरे शरण-स्थल हैं।"

26. "आपको अकेला वन में छोड़कर मैं अपना दग्ध-हृदय लेकर शहर में नहीं लौट सकता।"

27. "अगर मैं आपके बिना शहर जाऊँगा, तो राजा मुझसे क्या कहेगा और मैं आपकी पत्नी को शुभ-समाचार सुनाने की जगह क्या कहूँगा?"

28. ''आप कहते हैं कि मैं आपके अवगुण राजा को सुनाऊँ, ताकि उनका स्नेह कम हो जाए। यदि मैं निर्लज्ज होकर भी सुनाऊँ तो भी मेरी बातों पर किसी को विश्वास नहीं होगा।''

29. ''जो हमेशा दयावान रहा हो, जो दया करने में कभी असफल नहीं हुआ हो, उसको यह शोभा नहीं देता कि वह उसे छोड़ दे, जो उसे प्यार करता हो। इसलिए आप मुझ पर दया कीजिए और लौट चलिए।''

30. छन्न के इन दुःख भरे शब्दों को सुनकर सिद्धार्थ गौतम ने अति विनम्रतापूर्वक उत्तर दिया –

31. ''छन्न! मुझसे उत्पन्न वियोग के दुःख को छोड़ो। भिन्न–भिन्न और नाना जन्म धारण करने वाले प्राणियों के लिए परस्पर वियोग अनिवार्य है।''

32. ''यदि मैं स्नेहवश अपने सगे–सम्बन्धियों को न भी छोड़ूँ, तो भी मृत्यु हम लोगों को एक न एक दिन एक दूसरे को छोड़ने के लिए अनिवार्यतः पृथक कर देगी।''

33. ''मेरी माँ, जिसने मुझे कितने कष्ट से जन्म दिया, उसके लिए मैं कहाँ हूँ? और मेरे लिए वह कहाँ है?''

34. ''जैसे पक्षी वृक्ष पर एक साथ बसेरा करते हैं, फिर एक दूसरे से दूर चले जाते हैं, उसी प्रकार सभी जीवों के मिलन का अंत वियोग में ही होता है।''

35. ''जिस प्रकार बादल एक साथ होकर फिर दूर चले जाते हैं, उसी प्रकार मैं प्राणियों के मिलन और विछोह को समझता हूँ।''

36. ''एक दूसरे को धोखा देते हुए यह दुनिया चलती रहती है, इसमें मिलन के समय किसी को अपना समझना सही नहीं है, क्योंकि ऐसा समझना खतरनाक है।''

37. क्योंकि ऐसा ही है इसलिए मेरे प्रिय मित्र! शोक मत करो। लेकिन वापिस लौट जाओ और यदि तुम्हारा प्रेम बरकरार रहे, तो जाओ और फिर लौट कर चले आना''।

38. ''मेरी निन्दा किए बिना ही तुम कपिलवस्तु के लोगों को कहना कि उसके लिए तुम्हारा प्रेम है, उसे छोड़ दें, क्योंकि यह उसका दृढ़ निश्चय है।''

39. स्वामी और सेवक के बीच वार्तालाप सुनकर श्रेष्ठ कंथक अपनी जीभ से उसके पैर चाटने लगा और अपनी आँखों से गर्म आँसू बहाने लगा।

40. झिल्ली द्वारा युक्त उँगलियों वाले हाथ, जिस हाथ पर मंगल स्वास्तिक से चिन्हित था और हथेली अन्दर की ओर मुड़ी थी, हाथ द्वारा गौतम ने उसे थपथपाया और एक दोस्त की भाँति उसे सम्बोधित करके कहा –

41. ''कंथक! सहन कर। आँसू मत बहा। तेरा परिश्रम जल्दी ही सफल होगा।''

42. विदाई का समय आया जानकर छन्न ने गौतम को परिव्राजक रूप को नमन किया।

43. तब, कंथक और छन्न से विदाई लेकर गौतम भी अपने मार्ग पर चल पड़ा।

44. साम्राज्य छोड़कर, तुच्छ पोशाक में अपने स्वामी को जंगल में जाता देख वह हाथ उठाकर रो-रोकर चिल्लाया, फिर वह जमीन पर गिर पड़ा।

45. पीछे देखकर वह जोर-जोर से फिर रोने लगा। उसने अश्व कंथक को अपनी बाँहों में भर लिया। फिर निस्सहाय होकर बार-बार विलाप करते उसने वापसी यात्रा शुरू की।

46. रास्ते में कभी वह सोचता, कभी विलाप करता, कभी लड़खड़ाता और कभी गिर जाता। अपने टूटे हुए हृदय के कारण रास्ते में वह बहुत बड़बड़ाता जा रहा था लेकिन उसे कुछ मालूम नहीं था कि वह क्या कर रहा है।

20. छन्न की वापसी

1. जब उसका स्वामी जंगल में चला गया तो छन्न ने सड़क पर चलते हुए अत्यन्त शोक संतप्त मन का दुःख कम करने का भरसक प्रयास किया।

2. उसका हृदय इतना भारी था कि कंथक के साथ वह जिस रास्ते को एक रात में तय कर लेता था, उस रास्ते को तय करने में उसे आठ दिन लग गए। पूरी राह वह अपने स्वामी की अनुपस्थिति के बारे में सोचता जा रहा था।

3. अश्व कंथक अभी भी थकान से चूर होकर बहादुरी से चल रहा था, लेकिन उसने अपनी जीवंतता खो दी थी और हालाँकि अभी वह अलंकृत था, लेकिन अपने स्वामी की अनुपस्थिति में उसने अपना तेज खो दिया था।

4. जिस तरफ उसका स्वामी गया था। उस दिशा में घूम-घूमकर शोक संतप्त आवाज में वह बार-बार हिनहिनाता और भूखे होने के बावजूद उसने पहले की तरह रास्ते में न तो घास खायी, न पानी पिया।

5. धीरे-धीरे अंत में दोनों कपिलवस्तु पहुँच गए, जो गौतम के चले जाने से एकदम खाली लग रहा था। वे शरीर से शहर पहुँच गए, लेकिन हृदय से नहीं।

6. कमल से भरे तालाब थे, फूलों से सुसज्जित वृक्ष थे, लेकिन नागरिकों के हृदय प्रसन्नता शून्य थे।

7. आँसुओं से डूबी निस्तेज आंखों के साथ जब दोनों ने धीरे से शहर में प्रवेश किया, तो शहर ऐसे लग रहा था, जैसे अधंकार में नहाया हुआ हो।

8. जब लोगों ने सुना कि वे शाक्य-जाति के गौरव के बिना दोनों अकेले थके हुए आ गये हैं तो वे आँसू बहाने लगे।

9. रोष में लोगों ने छन्न का पीछा किया। आँखों से आँसू बहाते हुए वे चिल्ला रहे थे-''राजा का बेटा, वंश और उसके साम्राज्य का गौरव कहाँ है?''

10. ''यह शहर उसके बिना जंगल है, उसके सहित जंगल, शहर है; उसके बिना हमारे लिए शहर का कोई महत्त्व नहीं है।''

11. स्त्रियाँ कतार में खिड़कियों पर आ गईं। एक दूसरे को चिल्लाकर कहने लगीं-''राजकुमार लौट आया है,'' लेकिन अश्व की पीठ खाली देखकर उन्होंने अपनी खिड़कियाँ फिर से बन्द कर लीं और जोर-जोर से विलाप करने लगीं।

21. शोक ग्रस्त परिवार

1. शुद्धोदन के परिवार के सदस्य उत्सुकतापूर्वक छन्न की वापसी का इंतजार कर रहे थे। वे आशा लगाए बैठे थे कि हो सकता है कि छन्न को घर लौटाने के लिए राजी कर ले।

2. राजकीय अस्तबल में पहुँचते ही कंथक बड़े जोर से हिनहिनाया, इस प्रकार उसने अपना दुःख राजमहल के लोगों के सामने व्यक्त कर दिया।

3. तब राजमहल के अंतःपुर के लोगों ने सोचा-''चूँकि अवश्य कंथक हिनहिना रहा है, इसलिए राजकुमार वापस आ गया होगा।''

4. और स्त्रियाँ जो शोक से मूर्छित सी बैठी हुई थीं, अब बड़ी प्रसन्न हो गईं। उनकी आँखें राजकुमार को देखने के लिए इधर-उधर घूम रही थीं। वे पूरी आशा से महल के बाहर आईं, लेकिन वहाँ बिना राजकुमार के कंथक को देखकर निराशा हो गईं।

5. आत्मसंयम छोड़कर गौतमी जोर से चीखीं-वह मूर्च्छित हो गईं और रोती हुई चिल्लाईं-

6. ''जो लम्बी बाँहों वाला हो, जिसकी शेर के समान चाल हो, जिसकी वृषभ जैसी आँखें हों, जो स्वर्ण समान सुन्दर हो, जिसकी चौड़ी छाती हो, जिसका

ढोल या बादल के समान गम्भीर आवाज हो, क्या वैसा महान व्यक्ति आश्रम में रह सकता है?''

7. ''यह पृथ्वी ही अब रहने लायक नहीं रह गई है, क्योंकि अच्छा कार्य करने वाला आदर्श नायक हम लोगों को छोड़कर चला गया है।''

8. ''जिसके दोनों पैर के अंगूठे के बीच सुन्दर जाली हो, जिसके चरणकमल नीले कमल की तरह सुन्दर हों, जिसके बीच में चक्र चिन्ह हो वह जंगल की पगडंडी की कठोर भूमि पर कैसे चल सकेगा?''

9. ''वह शरीर, जो महल की छत के तले रहने-लेटने योग्य है, जो बहुमूल्य आभूषणों, और चन्दन से अलंकृत रहता था, वह पुरुषोचित शरीर वाला जंगलों में कैसे रहेगा, जहाँ सर्दी, गर्मी और वर्षा से बचने का कोई उपाय नहीं।''

10. ''जिसे अपने परिवार शील, शक्ति, बल, पवित्र, विद्या, सौन्दर्य और यौवन का अभिमान था, जो हमेशा देने को तैयार रहता था, जो किसी से कुछ नहीं लेता था, वह दूसरों से भिक्षा कैसे मांगेगा?''

11. ''वह जो स्वच्छ सुनहरी शय्या पर सोता था, जिसे मधुर संगीत वाद्यों की झनकार से जगाया जाता था, वह मेरा तपस्वी अब सिर्फ एक कपड़े के साथ कठोर जमीन पर कैसे सोएगा?''

12. इस दयनीय विलाप को सुनकर स्त्रियाँ एक-दूसरे को अपनी बाहों में पकड़े हुए अपनी आँखों से आँसू ठीक वैसे ही बरसा रही थीं, जैसे लताओं को हिलाने पर उनके फूलों से मधु बरसता है।

13. तब यशोधरा यह भूलकर कि उसने ही उसे जाने की अनुमति दी थी, जमीन पर गिर पड़ी और विलाप करने लगी।

14. ''उसने मुझ जैसी पतिव्रता पत्नी को कैसे छोड़ दिया? उसने मुझे विधवा बनाकर छोड़ दिया। वह अपने नए जीवन में अपनी धर्मपत्नी को संगी-साथी बना सकता था।''

15. ''मुझे स्वर्ग की कोई इच्छा नहीं है। मुझे एक ही अभिलाषा थी कि मेरा पति मुझे इस जीवन में और न परलोक में मेरा साथ न छोड़े।''

16. यदि मैं अपने पति की बड़ी-बड़ी आंखों वाले और सुन्दर मुस्कुराहट वाले चेहरे को देखने लायक नहीं हूँ, तो क्या बेचारा राहुल भी अपने पिता की गोद में लेटने योग्य नहीं है?''

17. ''खेद है, उस बुद्धिमान नायक का हृदय अत्यंत कठोर है। उसका सौन्दर्य जो देखने में इतना सुन्दर लगता है, अत्यंत कठोर और निर्दयी है। कौन ऐसा है, जो शत्रु को भी मुग्ध कर लेने वाले, तोतली बोली बोलने वाले इस प्रकार के बच्चे तक को छोड़कर चला जाए।''

18. ''मेरा हृदय भी बहुत कठोर है, पत्थर या लोहे से बना हुआ, जो अपने स्वामी के जंगल जाते समय भी नहीं पसीजा। वह राजकीय गर्व को, जो सुख पाने के योग्य है, अनाथ बनाकर चले गए। लेकिन मैं क्या कर सकती हूँ? मेरा दुःख मेरे लिए असह्य है।''

19. इसलिए अपने दुःख से होश-हवास खोकर यशोधरा जोर-जोर से विलाप करने लगी। यद्यपि वह स्वभाव से धैर्यवान थी, लेकिन इस समय दुःख में वह अपना धैर्य खो बैठी थी।

20. इस प्रकार यशोधरा को दुःख में जोर-जोर से रोते और जमीन पर गिरी देखकर सभी स्त्रियाँ चीखने लगीं। आँसुओं से भरे उनके चेहरे ठीक उसी प्रकार हो गए थे, जैसे वर्षा से प्रताड़ित कमल हों।

21. छन्न व कंथक दोनों के वापस लौट आने की बात सुनकर और अपने पुत्र का दृढ़ निश्चय सुनकर शुद्धोदन दुःख से घायल हो गया।

22. अपने पुत्र के लिए दुःख से उद्विग्न होकर अपने नौकर-चाकरों द्वारा सहारा देने पर शुद्धोदन ने घोड़े की ओर देखा तो उसकी आँखें अश्रुपूर्ण हो रही थीं। इसके बाद वह जमीन पर गिर पड़ा और विलाप करने लगा।

23. तब शुद्धोदन उठा और अपने मंदिर में गया। उसने प्रार्थना की, मांगलिक क्रियाएँ कीं और अपने पुत्र की सकुशल वापसी के लिए कुछ खास मन्नतें मांगीं।

24. इस प्रकार शुद्धोदन, गौतमी और यशोधरा यह कहते हुए अपने दिन बताने लगे-''हे देव! कितने दिनों के बाद हम उसे फिर से देख सकेंगे?''

दूसरा-भाग

सदा के लिए अभिनिष्क्रमण

1. कपिलवस्तु के राजगृह तक
2. राजा बिम्बिसार और उनका परामर्श
3. बिम्बिसार को गौतम का उत्तर
4. गौतम का उत्तर (समाप्त)
5. शांति का समाचार
6. नए परिप्रेक्ष्य में समस्या

1. कपिलवस्तु से राजगृह तक

1. कपिलवस्तु छोड़ने के बाद सिद्धार्थ गौतम ने मगध साम्राज्य की राजधानी राजगृह जाने पर विचार किया।

2. वहाँ का राजा बिम्बिसार था। उस समय राजगृह बड़े-बड़े दार्शनिकों और पंडितों का मुख्य स्थान था।

3. इस विचार से उसने तेज धारा से न डरते हुए गंगा पार की।

4. रास्ते में वह सकी नाम की ब्राह्मण स्त्री के आश्रम में रुका, उसके बाद पद्मा नाम की दूसरी ब्राह्मण स्त्री के आश्रम में रुका, फिर वह ब्राह्मण ऋषि रैवत के आश्रम में रुका। सभी ने उसका स्वागत किया।

5. उसका व्यक्तित्व, उसका तेजस्वपूर्ण गौरव और उसका अनुपम सौन्दर्य देखकर उस प्रदेश के सभी लोगों को बहुत आश्चर्य हो रहा था कि ऐसा पुरुष संन्यासी के वस्त्र कैसे पहने है?

6. उसको देखकर, जो कहीं जा रहे थे खड़े हो गए, जो खड़े थे वे उसके साथ चलने लगे, जो धीरे-धीरे चल रहे थे, वे तेजी से दौड़ने लगे और जो बैठे थे तुरंत उठकर खड़े हो गए।

7. कुछ लोगों ने हाथ जोड़कर उसे नमस्कार किया, कुछ ने उसे सिर झुकाकर प्रणाम किया, कुछ ने प्रेम-वचनों से उसे सम्बोधित किया। कोई भी ऐसा नहीं था, जिसने उसको आदर-भाव न दिखाया हो।

8. जो चमकीले रंग-बिरंग वस्त्र पहने थे, वे उसे देखकर लज्जित हुए, जो इधर-उधर की बातें कर रहे थे, वे चुप हो गए। किसी के मन में कोई अनुचित विचार नहीं आया।

9. उसकी भौंहें, उसका ललाट, उसका मुँह, उसका शरीर, उसके हाथ, उसके पैर या उसकी चाल, जो कोई भी उसके शरीर का कोई भी भाग देखता, अचानक मंत्र-मुग्ध सा उसे देखता रह जाता।

10. बड़ी लम्बी और कठिन यात्रा के बाद गौतम राजगृह पहुँचा, जो पाँच पहाड़ियों से घिरा हुआ था, जो पहाड़ों से अलंकृत और सुरक्षित था जहाँ अनेक मंगलकारी एवं पवित्र स्थान थे।

11. राजगृह पहुंचकर उसने पांडव पहाड़ी के नीचे एक जगह चुनी और अपने निवास के लिये, वहाँ उसने पत्तियों की एक छोटी झोंपड़ी बना ली।

12. राजगृह से कपिलवस्तु पैदल रास्ते से 400 (लगभग 645 कि.मी.) मील की दूरी पर स्थित है।

13. इतनी लम्बी यात्रा सिद्धार्थ गौतम ने पैदल तय की।

2. राजा बिम्बिसार और उसका परामर्श

1. दूसरे दिन वह उठा, भिक्षापात्र लेकर भिक्षाटन हेतु नगर जाने की तैयारी की। उसके चारों ओर एक विशाल भीड़ जमा हो गयी।

2. मगध साम्राज्य के राजा श्रेणिय बिम्बिसार ने अपने राजमहल के बाहर लोगों की बड़ी भीड़ को देखा और उसका कारण जानना चाहा। उसे एक दरबारी ने इस प्रकार कारण बताया।

3. "जिसके बारे में ब्राह्मणों ने भविष्यवाणी की थी कि वह या तो बुद्ध होगा या चक्रवर्ती राजा-यह शाक्य-पुत्र है। वही शाक्य-राजा का यह पुत्र अब सन्यासी बन गया है। यह वही है, जिसे सभी लोग निहार रहे हैं।"

4. यह सुनकर राजा ने उसके अर्थ पर विचार किया और तुरंत दरबारी को कहा-"यह पता करो कि वह किधर जा रहा है?" दरबारी आज्ञा पाकर राजकुमार के पीछे-पीछे चल दिया।

5. स्थिर दृष्टि, केवल एक गज की दूरी आगे देखते हुए शांत स्वर, नपे-तुले कदम वाला, वह श्रेष्ठ परिव्राजक भिक्षाटन के लिये गया। उसकी इन्द्रियां और चित्त पूर्ण रूप से संयत थे।

6. भिक्षाटन में जो कुछ मिला, उसे पहाड़ के एक एकांत कोने में जाकर उसने खाया, फिर पांडव पहाड़ी पर वह चला गया।

7. लोध्र वृक्षों से भरे जंगल में जहाँ मयूरों के स्वर गूंज रहे थे, काषाय वस्त्र में मानवता का सूर्य ऐसे चमक रहा था, जैसे पूर्वी पहाड़ों पर प्रातःकालीन सूर्य।

8. उस राजकीय दरबारी ने ऐसा देखकर पूरी बातें राजा को बताई। और राजा ने ऐसा सुना, तो अपने कुछ थोड़े अनुयायियों के साथ भक्ति भाव से उस ओर प्रस्थान किया।

9. पर्वत के समान व्यक्तित्व वाला वह राजा उस पहाड़ी पर चढ़ा।

10. वहाँ उसने शांत इन्द्रिय वाले गौतम को आसन पर बैठा देखा। वह ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो चलायमान पर्वत पर शिखर हो।

11. अपने सुन्दर रूप और पूर्ण शांति से परिपूर्ण तथा आश्चर्य व प्रेम-भाव से भरा हुआ राजा वहाँ गया।

12. शालीनतापूर्वक उसके पास जाकर बिम्बिसार ने उससे कुशल-क्षेम पूछा और वैसी ही शालीनता से गौतम ने भी राजा को अपने कुशल होने की बात कही।

13. तब राजा साफ चट्टान पर बैठ गया और अपने मनोभाव व्यक्त करते हुए इस प्रकार कहा -

14. ''तुम्हारे परिवार से मेरी वंशानुगत प्रगाढ़ मैत्री है, इसलिए मेरे पुत्र तुमसे कुछ कहने की इच्छा उत्पन्न हुई और मेरी बात ध्यान से सुनो।''

15. ''जब मैं आरंभ से तुम्हारे सूर्य-वंश के बारे में सोचता हूँ, तुम्हारे नवीन यौवन और सौंदर्य के बारे में सोचता हूँ, तो मुझे आश्चर्य होता है कि तुमने राजकुमार का जीवन छोड़कर सर्वथा बेमेल संन्यासी जीवन व्यतीत करने का दृढ़ निश्चय कैसे कर लिया?''

16. ''तुम्हारा शरीर लाल-चन्दन से सुगंधित होने के योग्य है, काषाय वस्त्र के लिए नहीं, तुम्हारे हाथ साम्राज्य की रक्षा करने के योग्य है, भिक्षा के लिए नहीं हैं।''

17. ''इसलिए हे तरुण! यदि तुम अपना पैतृक राज्य नहीं चाहते हो, तो मेरा आधा राज्य स्वीकार करो।''

18. ''यदि तुम इसे स्वीकार करोगे, तो तुम्हारे अपने लोगों को कोई कष्ट नहीं होगा। समय बीतने पर शाही सत्ता अंत में शांत चित्तों की ही शरण में आती है। इसलिए कृपा कर तुम बात मान लो। सत्पुरुषों की सहायता पाकर सत्पुरुषों की सम्पन्नता बहुत बलवती हो जाती है।''

19. ''यदि अपने कुलाभिमान के कारण तुम्हें मेरी बात मानना उचित नहीं लगता हो, तो अनगिनत सेनाओं के साथ धनुष-बाण लेकर मेरी सहायता से अपने विरोधियों को जीतो।''

20. ''इसलिए इन पुरुषार्थों में से किसी एक को चुनो। धार्मिक नियम के अनुसार धन और सुख की प्राप्ति हेतु आचरण करो। पहले प्रेम की, फिर मोक्ष की उलटे क्रम से इच्छा करो। ये ही तीन जीवन के उद्देश्य हैं। जब मनुष्य मर जाता है, तो इस संसार के संदर्भ में सभी कुछ समाप्त हो जाता है।''

21. ''इसलिए जीवन के तीनों पुरुषार्थों से अपने व्यक्तित्व का विकास करो। जब धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति सही अर्थों में पूर्ण होगी, तभी मनुष्य का अंत पूर्ण माना जाएगा।''

22. ''धनुष-बाण धारण करने वाली इन बाहों को बेकार न होने दो। इनमें इस पृथ्वी का तो कहना ही क्या, बल्कि तीनों लोक को जीत लेने की सामर्थ्य है।''

23. ''स्नेहवश मैं तुमसे कहता हूँ-राज्य करने या संन्यासी वस्त्र में देखकर उत्पन्न हुई अहंकार-भावना के कारण नहीं। मैं दया की भावना से भर गया हूँ और मेरी आँखों में आँसू हैं।''

24. ''अपने कुल के उत्तम पुरुष और संन्यासी बनने के इच्छुक! अभी समय है सुख भोगों का आनन्द लो, फिर बुढ़ापा आ जाएगा और तुम्हारे सारे सौन्दर्य को नष्ट कर देगा।''

25. ''वृद्धावस्था में आदमी धर्म से पुण्य कमा सकता है। वृद्धावस्था सुख-भोग के योग्य नहीं होती है, इसलिए कहा भी गया है कि सुख-भोग नवयुवकों के लिए, संपत्ति अर्जन मध्य-वयस्कों के लिए और धर्म वृद्धों के लिए है।''

26. ''इस संसार में नवयुवक का धन और धर्म से विरोध है। चूंकि काम-सुखों को सुरक्षित रखना मुश्किल होता है, इसलिए जहाँ भी काम-सुख का अवसर मिले नवयुवक को उसका उपभोग कर लेना चाहिए।''

27. ''वृद्धावस्था का झुकाव चिन्तन-मनन की ओर होता है। यह गंभीर और शांत रहने की ओर प्रवृत्त होता है। थोड़े प्रयास से ही यह संयत हो जाता है।''

28. ''इसलिए भ्रामक, अस्थिर, वस्तुओं की ओर अनुरक्त, असावधान, अधैर्यवान और अदूरदर्शी नवयुवक की अवस्था पार कर जाने के बाद आदमी को लगता है कि मानो वह भयानक जंगल से बचकर निकल आया है।''

29. ''इसलिए, लापरवाह, चंचल और अस्थिर युवावस्था को गुजर जाने दो। हमारा आरंभिक जीवन इन सुख भोगों के लिए ही है। इस समय इन्द्रियों को वश में नहीं रखा जा सकता है।''

30. ''यदि, सचमुच धर्म में ही तुम्हारी रुचि है तो यज्ञ करो। सर्वोत्तम स्वर्ग पाने के लिए यज्ञ करना तुम्हारे परिवार की प्राचीन प्रथा है।''

31. ''अपनी बांहों में स्वर्ण-निर्मित बाजू-बंद पहने और अनेक प्रकार के आभूषणों से अलंकृत राजर्षि यज्ञ द्वारा भी वही लक्ष्य प्राप्त कर सकते हैं, जिसे अनेक महान् ऋषियों ने आत्म तपस्या द्वारा प्राप्त किया है।''

3. बिम्बिसार को गौतम का उत्तर

1. इस प्रकार मगध-नरेश ने इन्द्र की भांति सभ्य और ओजस्वी ढंग से अपनी बात रखी। लेकिन इसे सुनकर राजकुमार विचलित नहीं हुआ। वह पर्वत की भांति अटल था।

2. मगध-नरेश द्वारा सम्बोधित करने के पश्चात् गौतम ने आत्म-संयमित, स्थिर और मित्रवत, लेकिन मैत्रीपूर्ण आवाज में उत्तर दिया-

3. ''आपने जो कुछ कहा वह आपके योग्य है। हे राजन! आप एक महान कुल में पैदा हुए हैं, जिसका राज-चिह्न सिंह है, आप अपने मित्रों के हित-चिन्तक हैं और मेरी ओर आपका मित्रवत व्यवहार आपके लिए स्वाभाविक ही है।''

4. ''दुष्ट मानसिकता वाले लोगों की पारिवारिक मित्रता शीघ्र नष्ट हो जाती है, जो सुशील लोग हैं, जो नए-नए मैत्रीपूर्ण व्यावहारिक कार्यों से अपने पूर्वजों की पुरानी मित्रता को बढ़ाते हैं।''

5. ''जो व्यक्ति प्रतिकूल परिस्थितियों में नहीं बदलते, उन्हें मैं दिल से अच्छा मित्र मानता हूँ। सुख के दिनों में धनी व्यक्ति का मित्र कौन नहीं होता?''

6. ''इसलिए जिस व्यक्ति ने संसार में धन-सम्पदा अर्जित की है और उसने उसका उपयोग अपने मित्रों और धर्म के लिए किया है, तो उसी में उस धन की सार्थकता है।''

7. ''हे राजन्! मेरे बारे में आपका परामर्श आपके सौंदर्य और मित्रता के कारण है। मित्रवत् शालीनता के साथ ही मैं भी आपका समाधान करने हेतु उत्तर दूँगा।''

8. ''मुझे साँपों से, आकाश से गिरने वाले अस्त्र से, और हवा के झोंको द्वारा लहलहाती आग शोलों से उतना भय नहीं लगता, जितना भय मुझे इन इन्द्रियों की सांसारिक विषय-वस्तुओं से लगता है।''

9. ''ये नश्वर सुख हमारे धन और प्रसन्नता के लुटेरे हैं, जो खाली और भ्रम सदृश्य संसार में तैरते रहते हैं। इन सुखों की आशा ही व्यक्ति की चिन्ता को भ्रमित कर देती है और दिल में जगह बना लेने पर ये और हानिकारक होते हैं।''

10. ''इन सांसारिक विषय-वस्तुओं में लिप्त लोगों की तो क्या, देवताओं को भी स्वर्ग में प्रसन्नता नहीं मिलती, तो मर्त्य-लोक का क्या कहना है? जो प्यासा है, वह भौतिक सुखों से ठीक उसी प्रकार कभी भी तृप्त नहीं होता, जिस प्रकार हवा की मित्र आग जलावन से कभी संतुष्ट नहीं होती।''

11. ''सांसारिक विषयों से बढ़कर इस संसार में कोई विपत्ति नहीं है। अविद्या के कारण लोग इनमें लिप्त रहते हैं। एक बार विषयों से भयभीत हो जाने के बाद कौन बुद्धिमान होगा, जो इस बुराई की इच्छा रखेगा?''

12. ''समुद्र से घिरी सम्पूर्ण पृथ्वी को जीत लेने के बाद राजा लोग महासागर के दूसरी ओर जीतना चाहते हैं। जिस प्रकार महासागर में गिरने वाले पानी से सागर तृप्त नहीं होता। उसी प्रकार मानव-जाति की भी कभी विषयों से तृप्ति नहीं होती।''

13. ''स्वर्ग से स्वर्ण-वर्षा होने पर भी, महाद्वीपों को जीतने तथा शुक्र का आधा राज्य पाने के बाद भी राजा मान्धाता सांसारिक विषय-वस्तुओं के लिए अतृप्त ही रहा है।''

14. ''जब इन्द्र ने वृत्र के भय से अपने को छिपा लिया था, उस समय देवताओं के स्वर्ग के साम्राज्य का सुख भोगने और अपने घमंड में वशीभूत हो महान ऋषियों द्वारा आपकी पालकी उठवाने के बाद भी नहुष संतुष्ट नहीं हुआ था।''

15. ''इन भोग-विलास नामक शत्रुओं को कौन चाहेगा, जिन्होंने बड़े-बड़े ऋषियों पर काबू पा लिया, जो दूसरे ही पुरुषार्थ में लगे थे, फटे-पुराने चिथड़े साँप जैसी लम्बी-लम्बी जिनकी जटाएँ थीं।''

16. ''जिन्होंने भोग-विलास और सांसारिक चीजों में लिप्त लोगों के दुःख सुने हैं, अच्छी तरह आत्म-संयमित होकर इससे दूर रहने में ही उनकी भलाई है।''

17. ''विषयायुक्त मनुष्यों के लिए भोग-विलास में सफलता भी एक विपत्ति समझी जानी चाहिए, क्योंकि इच्छित भोग-विलास उसे मिल जाता है, तो वह मदहोश हो जाता है और वह वही करता है, जिसे उसे नहीं करना चाहिए और जो करना चाहिए, वह नहीं करता। फलतः वह आहत होकर एक भयानक अंत को प्राप्त होता है।''

18. ''ये भोग-विलास, जो परिश्रम से प्राप्त किए जाते हैं और सुरक्षित रखे जाते हैं, बाद में धोखा देकर वहीं चले जाते हैं, जहाँ से आए थे। ये भोग विलास जो कुछ समय के लिए ही उधार जैसे लिए जाते हैं, कोई आत्मसंयमी व्यक्ति, जो बुद्धिमान है, इनमें कैसे आनन्द पा सकता है?''

19. ''ये काम-विषय उल्का के समान हैं और जिन्हें पाने पर प्यास और बढ़ती है, वैसे भोग-विलास में कोई आत्मसंयमी व्यक्ति कैसे संतुष्टि पाएगा?''

20. ''ये भोग-विलास फेंके गए मांस के समान हैं, जो राजा और प्रजा दोनों में

विपत्ति लाते हैं, एक आत्मसंयमी बुद्धिमान् व्यक्ति उनमें संतुष्टि कैसे पा सकता है?''

21. ''ये भोग-विलास इंद्रियों की तरह नाशवान हैं। जो भी इनमें लिप्त होता है, उसके लिए ये विपत्ति ही लाते हैं। कौन आत्मसंयमी बुद्धिमान व्यक्ति इनमें संतुष्टि पाएगा?''

22. ''जो आत्मसंयमी व्यक्ति काम-विषयों की गोद में पड़कर डंसे जाते हैं और वे परमानन्द न पाकर विनाश को प्राप्त करते हैं, वे इन क्रुद्ध निर्दयी, सर्प सदृश्य भोग-विलास में संतुष्टि कैसे पा सकते हैं?''

23. ''जिस प्रकार भूखा कुत्ता हड्डी को चाटने से संतुष्ट नहीं होता, उसी प्रकार भोग-विलास में लिप्त व्यक्ति भी संतुष्ट नहीं होता। जो सूखी हड्डियों के कंकाल की तरह है, उनमें एक आत्मसंयमी बुद्धिमान व्यक्ति संतोष कैसे पाएगा?''

24. ''जिसकी बुद्धि भोग-विलास की ओर है, जो इन सुखों की आशा का दयनीय दास है, वह इसी संसार में मृत्यु-दुःख का अधिकारी है।''

25. ''संगीत के कारण हिरण विनाश को प्राप्त होते हैं, दीपक की चमक के कारण पतंगे आग में जल-भुन कर जान गंवाते हैं, लोभी मछली मांस के लिए लोहे का कांटा निकल जाती है इसलिए सांसारिक सुख उनके भयावह विनाश का ही कारण बनते हैं।''

26. ''यह जो साधारणतया धारणा है कि भोग-विलास भोगने के लिए हैं, लेकिन अच्छी तरह परीक्षण करने पर उनमें कोई भी योग्य पदार्थ कुछ नहीं है। अच्छी पोशाक और इन्हीं की तरह अन्य वस्तुएं भी केवल सहायक हैं। ये अधिक से अधिक दर्द के उपचार कैसे समझे जा सकते हैं।''

27. ''पानी प्यास बुझाने के लिए, भोजन भूख मिटाने के लिए, घर हवा, वर्षा और धूप से बचाने के लिए, कपड़ा सर्दी और नग्नता से बचाने के लिए होता है।''

28. ''इसी प्रकार शय्या नींद पूरी करने के लिए, वाहन यात्रा की थकान मिटाने के लिए, आसन खड़े रहने की थकावट मिटाने के लिए होता है। इसी प्रकार स्नान, सफाई, स्वास्थ्य और स्फूर्ति का साधन हैं।''

29. ''जितनी भी बाह्य-वस्तुएं हैं, वे मनुष्यों के लिए मात्र दुःख-उपचार के साधन हैं, उनमें सुख का कोई स्रोत नहीं है। बुद्धिमान आदमी केवल उपचार के लिए प्रयोग में आने वाले इन साधनों को योग्य वस्तुएँ मान कर कैसे भोगेगा?''

30. जो आदमी सन्निपात के ज्वर से तप रहा हो, उपचार के लिए ठण्डी पट्टी आदि को योग्य वस्तुएं माने, जबकि वे केवल दर्द को कम करने के लिए हैं, तो वही व्यक्ति भोग-विलास को सुख का नाम दे सकता है।''

31. ''क्योंकि सभी प्रकार के भोग-विलास अनित्य हैं, इसलिए मैं उन्हें भोग-विलास का नाम नहीं दे सकता यथार्थ में जो भोग-विलास की स्थितियां सुख-दायक प्रतीत होती हैं, वहीं दुःखकारक भी बन जाती हैं।''

32. ''गर्म ऊनी पोशाक और सुगंधित धूप सर्दी में प्रिय लगते हैं, लेकिन गर्मी के दिनों में वे ही अच्छे नहीं लगते और चन्द्रमा की चान्दजी और चन्दन की लकड़ी गर्मी में सुखकारक होते हैं, जबकि वही सर्दी में अप्रिय बन जाते हैं''

33. ''संसार में दो विरोधी वस्तुएं ठीक नहीं लगतीं, जैसे लाभ-हानि यश-अपयश, सुख-दुख आदि और इसी तरह की अन्य, इस संसार में एक दूसरे से द्वन्द्वों के रूप से जुड़े हुए हैं, इसलिए पृथ्वी का कोई मनुष्य सदा के लिए न तो सुखी रहता है, न दुःखी रहता है।''

34. ''जब मैं सुख और दुःख के स्वभाव के मिश्रण को देखता हूँ, तो मैं राजसत्ता और दासता को एक समान ही समझता हूँ। एक राजा न तो हमेशा हँसता रहता है और न ही एक दास हमेशा रोता रहता है।''

35. ''चूँकि राजा के उत्तरदायित्व अधिक होते हैं, इसलिए राजा की चिन्ताएँ भी अधिक होती हैं। राजा तो कपड़े टांगने की खूंटी के समान होता है, उसे संसार के दुःख झेलने पड़ते हैं।''

36. ''वह राजा अभागा ही है, यदि वह उस राजसत्ता में विश्वास करता है, जो नष्ट होने वाली है और दूसरी ओर यदि वह उसमें विश्वास नहीं करता, तो ऐसे कायर राजा को सुख ही क्या हो सकता है?''

37. ''और संपूर्ण पृथ्वी को जीतने के बाद भी राजा का निवास एक ही शहर में रह सकता है और उसमें भी केवल एक ही महल में सो सकता है। राज्य का बाहरी भाग क्या दूसरों के लिए ही नहीं है?''

38. ''और राजा को भी एक जोड़ा पोशाक, भूख मिटाने भर खाना, एक शय्या और आसन से अधिक राजा को कुछ नहीं चाहिए और सारी चीजें उसके घमण्ड के लिए हैं।''

39. ''और अगर इन सारी वस्तुओं का उपयोग संतोष के लिए ही है, तो मैं साम्राज्य के बिना भी संतुष्ट हो सकता हूँ। यदि संसार में कोई इनके बिना संतुष्ट है, तो क्या ये सारी वस्तुएँ अनावश्यक नहीं हैं?''

40. ''जो पथिक मंगलकारी मार्ग पर आरूढ़ हो गया है, वह भोग-विलास हेतु धोखा खाने के लिए नहीं है। आपके द्वारा कही गई मित्रता की याद करके मैं आपसे बार-बार पूछता हूँ कि क्या इन भोग-विलासों में कुछ सार है?''

41. ''क्रोध के कारण मैंने गृह-त्याग नहीं किया, न ही किसी शत्रु के वाण ने मेरे मुकुट को गिराया है, न ही भव्य वस्तुओं के लिए इच्छाएं की हैं, जिसके कारण मैं आपका इस प्रकार प्रस्ताव अस्वीकार कर रहा हूँ।''

42. ''जो एक बार क्रुद्ध सर्प से बच जाए या चलते हुए उल्का-पिण्ड की आग से बच जाए, तो वह उसे फिर पाने की इच्छा नहीं रखता, उसी प्रकार भोग-विलास को छोड़ देने के बाद व्यक्ति फिर उसे पाने की इच्छा नहीं रखेगा।''

43. ''जो आँख वाला है वह अंधे से ईर्श्या करे, जो मुक्त है वह बंधे हुए से ईर्ष्या करे, जो धनवान है वह गरीब से ईर्ष्या करे, जो स्वस्थ चित्त होकर वह पागल से ईर्ष्या, तो मैं कहता हूँ केवल वही व्यक्ति किसी विषयासक्त से ईर्ष्या कर सकता है।''

44. ''मेरे कल्याण मित्र! जो भिक्षाटन पर जीवन-यापन करता है, वह दया का पात्र नहीं है। उसे यहाँ परम सुख, पूर्ण शांन्ति प्राप्त है और यहाँ के बाद उसके सारे दु:खों का अन्त हो गया है।''

45. ''अपनी अथाह संपत्ति के बीच रहते हुए भी, जो तृष्णा से वशीभूत हैं, वही दया के पात्र हैं। उसने न तो यहां शांति व सुख पाया है और यहां के बाद भी वह दु:ख का अनुभव तो करेगा ही।''

46. ''जो कुछ आपने कहा वह आपके शील, आपकी जीवन-पद्धति और आपके कुल के अनुरूप है और अपनी दृढ़ प्रतिज्ञा का पालन करना मेरे चरित्र, मेरी जीवन-पद्धति और मेरे कुल के अनुरूप है।''

4. गौतम का उत्तर (समाप्त)

1. ''मैं संसार की कलह से आहत हूँ। मैं शांति की खोज के लिए बाहर आया हूँ। मैं इस दु:ख का अन्त करने के बदले में इस पृथ्वी का राज्य तो क्या दिव्य लोक के साम्राज्य को भी स्वीकार नहीं करूँगा।''

2. ''हे राजन्! जैसा कि आपने मुझसे कहा, तीन चीजों का अनुसरण करना ही मनुष्य का परम ध्येय है और आपने कहा कि मैं विपत्ति के रास्ते पर हूँ, तो आपकी वे तीनों वस्तुएं अनित्य और असंतुष्ट करने वाली हैं।''

3. "और आपका यह कहना कि 'वृद्धावस्था तक प्रतीक्षा करो, क्योंकि युवावस्था हमेशा परिवर्तित होती है, यह निर्णय भी अपने आप में अनिश्चित है, क्योंकि वृद्धावस्था में दृढ़ता नहीं हो सकती और युवावस्था में ही दृढ़ता हो सकती है।"
4. "और चूंकि कर्मों का विपाक इस संसार में सब कुछ अच्छी तरह से निश्चित कर देता है, तो एक बुद्धिमान व्यक्ति, जो शांति खोजना चाहता है, वह कैसे वृद्धावस्था तक प्रतीक्षा करेगा, जबकि यह नहीं जानता कि मृत्यु कब आ जाएगी?"
5. "जब मृत्यु एक शिकारी जैसी हो, वृद्धावस्था जिसके शस्त्र हों, बाणों के समान रोग फैले हों, जंगल में हिरनों को मारने के समान प्राणियों को मारता हो, तो कोई दीर्घायु होने की क्या कामना कर सकता है?"
6. "चाहे बच्चा हो, युवा हो या वृद्ध हो सबके लिए अनुकूल है कि वे लोग करुणामय धार्मिक मार्ग पर ही चलें।"
7. "और जैसा कि आपका कहना है कि धर्म के लिए यज्ञ करने में अप्रमादी बनूँ, क्योंकि यह मेरे कुल के अनुकूल है और ये महान् फलदायी हैं, तो मैं ऐसे यज्ञों के फल नहीं चाहता, जो दूसरों को पीड़ा पहुंचा कर प्राप्त किये जाते हैं।"
8. भावी फलों की इच्छा से निरीह प्राणियों का वध करना कारुणिक और दयालु व्यक्ति के योग्य नहीं है, चाहे यज्ञ के फल चिर-स्थायी ही क्यों न हों।"
9. "और यदि आत्मसंयम, सदाचार और काम-वासना से विरक्ति द्वारा भी सच्चे धर्म का अनुकरण न किया जाए, तो भी याज्ञिक होना ठीक नहीं क्योंकि यज्ञ-धर्म के अनुसार पशुओं की बलि के बिना यज्ञ का उच्चतम फल नहीं मिल सकता।"
10. "दूसरे को पीड़ा पहुँचा कर व्यक्ति को प्राप्त सुख इसी संसार में बुद्धिमान करुणाप्रिय हृदय द्वारा निन्दनीय है, तो फिर किसी अदृश्य लोक के बारे में सुख मिलने के बारे में कहना ही क्या?"
11. "हे राजन! भावी फल की इच्छा से मैं किसी कर्म में प्रेरित नहीं हो सकता, क्योंकि मेरे मन में भावी जन्मों के प्रति कर्म-फल उसी प्रकार अनिश्चित और दिशाहीन है, जिस प्रकार बादलों से गिरी वर्षा से पीड़ित पौधे।"
12. हाथ जोड़कर राजा ने उत्तर दिया "तुम्हारा उद्देश्य बिना किसी बाधा के पूर्ण हो। जब भी कभी तुम्हारे जीवन का उद्देश्य पूरा हो जाए, तो इधर पधारने की कृपा करना।"
13. गौतम ने फिर अपने यहाँ आने का वचन लेकर राजा अपने दरबारियों सहित राजमहल लौट आया।

5. शांति का समाचार

1. जब गौतम राजगृह में ठहरा हुआ था, तो पांच परिव्राजकों ने आकर उसकी कुटी के निकट ही अपनी एक कुटी बनाई।
2. उन पांचों परिव्राजकों के नाम थे–कौण्डिन्य, अश्वजित्, वप्प, महानाम और भद्रिक।
3. वे भी गौतम के व्यक्तित्व से प्रभावित हुए और आश्चर्य करने लगे कि इसकी प्रव्रज्या लेने का क्या कारण हो सकता है।
4. उन्होंने भी उससे ठीक उसी प्रकार प्रश्न किया, जिस प्रकार बिम्बिसार नरेश ने किया था।
5. जब उसने उन्हें प्रव्रज्या लेने की परिस्थितियाँ बताई, तो उन्होंने कहा "हाँ, हम लोगों ने सुना है। लेकिन तुम्हारे चले जाने के बाद वहाँ क्या हुआ क्या इसकी जानकारी तुम्हें है?"
6. सिद्धार्थ ने कहा–"नहीं।" तब उन्होंने उसे बताया कि उसके चले आने कि बाद कपिलवस्तु में कोलियों के विरुद्ध युद्ध के विरोध में शाक्यों में एक भारी आंदोलन छिड़ा।"
7. "पुरुष–महिलाओं, लड़के–लड़कियों द्वारा प्रदर्शन किए गए और जुलूस निकाले गए। उनके हाथों में झंडे थे और वे नारे लगा रहे थे–'कोलिय हमारे भाई हैं,' 'भाई–भाई के बीच लड़ाई लड़ना गलत है,' 'सिद्धार्थ गौतम के देश निकाले के बारे में सोचो' इत्यादि।"
8. "आंदोलन का परिणाम यह हुआ कि शाक्य–संघ को एक सभा बुलानी पड़ी और इस समस्या पर फिर से विचार किया गया। इस समय कोलिए के साथ समझौता कर लेने के पक्ष में बहुमत था।"
9. "संघ ने पाँच शाक्यों को दूत की तरह कार्य करने के लिए चुना और उन पर कोलियों के साथ शांति–समझौता का भार सौंपा गया।"
10. "जब कोलियों ने इसे सुना, तो वे बहुत खुश हुए। उन्होंने भी अपने में से पांच जनों को चुन कर कोलियों के दूतों से बातचीत करके संधि–वार्ता चलाने का निश्चय किया।"
11. "दोनों तरफ के दूत मिले और मध्यस्थता की। वे एक स्थायी परिषद बनाने पर सहमत हुए। रोहिणी नदी के जल विभाजन संबंधी सभी प्रकार के झगड़ों

का निपटारा करने का अधिकार इस परिषद को दिया गया। साथ ही कहा गया कि इसके निर्णय दोनों पक्षों को मान्य होंगे। इस प्रकार युद्ध का खतरा सदा के लिए शांत हो गया।''

12. जो कपिलवस्तु में हुआ था उसे गौतम को बताने के बाद परिव्राजकों ने कहा–''अब तुम्हें परिव्राजक के रूप में रहने की आवश्यकता नहीं है। अब क्यों नहीं अपने घर जाकर अपने परिवार में सम्मिलित हो जाते?''

13. सिद्धार्थ ने कहा–''इस समाचार से मुझे खुशी हुई। यह मेरी विजय है। लेकिन मैं अपने घर लौटकर नहीं जाऊँगा। मुझे जाना भी नहीं चाहिए। मुझे परिव्राजक ही बने रहना चाहिए।''

14. गौतम ने पांचों परिव्राजकों से पूछा–''आपका क्या अभिप्राय है?'' उन्होंने उत्तर दिया, ''हम लोगों ने तपस्या करने का निर्णय लिया है। तुम हम लोगों के साथ क्यों नहीं आ जाते हो।'' सिद्धार्थ ने उत्तर दिया ''धीरे-धीरे, मुझे पहले दूसरे पथों की परीक्षा करनी चाहिए।''

15. तब पाँचों परिव्राजक चले गए।

6. नए परिप्रेक्ष्य में समस्या

1. पाँचों परिव्राजकों द्वारा दिए गए समाचार से कि कोलियों और शाक्यों के बीच शांति स्थापित हो गई है, गौतम बहुत बेचैन हो उठा।

2. अकेले में वह अपनी स्थिति के बारे में सोचने लगा कि क्या अभी भी उसके परिव्राजक बने रहने का कोई ठोस कारण है।

3. उसने अपने आप से पूछा- ''वह अपने बन्धु-बान्धवों को किसलिए छोड़ कर आया था?''

4. उसने इसलिए अपना घर छोड़ा था, क्योंकि उसने युद्ध का विरोध किया था। ''अब जबकि युद्ध समाप्त हो गया है, तब भी क्या मेरे लिए कोई समस्या शेष बची है? क्या युद्ध की समाप्ति के साथ-साथ मेरी समस्या भी समाप्त हो गई है?''

5. गहन चिन्तन में उसे उत्तर नहीं मिला।

6. ''युद्ध की समस्या निश्चित रूप से विरोध की समस्या है। यह एक बड़ी समस्या का अंग मात्र है।''

7. ''यह विरोध केवल राजाओं और देशों के बीच नहीं है, बल्कि कुलीनों और ब्राह्मणों के बीच, गृहस्थों के बीच, मां और पुत्र के बीच, पिता और पुत्र के बीच, भाई और बहन के बीच और साथी-साथी के बीच है।''

8. ''देशों के बीच संघर्ष कभी-कभी होता है। लेकिन वर्गों के बीच संघर्ष हमेशा और लगातार होता है। यही संसार के सभी दुःखों और कष्टों का मूल कारण है।''

9. ''यह सही है कि मैंने युद्ध के कारण गृहत्याग किया था। फिर भी कोलियों और शाक्यों के बीच युद्ध समाप्त हो जाने पर भी मैं घर में वापस नहीं लौट सकता। मैं देखता हूँ कि मेरी समस्या ने व्यापक रूप धारण कर लिया है। मुझे सामाजिक संघर्ष की समस्या का समाधान खोजना है।''

10. ''पुराने परम्परागत दर्शनों के पास इस समस्या का समाधान किस प्रकार है?''

11. ''क्या वह किसी एक सामाजिक दर्शन को स्वीकार कर सकता है?''

12. उसने प्रत्येक परम्परा का और प्रेत्येक मत का स्वयं परीक्षण करने का निश्चय किया।

तीसरा-भाग

नए प्रकाश की खोज में

1. भृगु आश्रम पर पड़ाव
2. सांख्य का अध्ययन
3. समाधि-मार्ग का प्रशिक्षण
4. तपश्चर्या का परीक्षण
5. तपश्चर्या का त्याग

1. भृगु आश्रम पर पड़ाव

1. अन्य पंथों का परीक्षण करने के उद्देश्य से सिद्धार्थ गौतम ने आलार कालाम से भेंट करने के लिए राजगृह छोड़ दिया।

2. रास्ते में उसने भृगु ऋषि का आश्रम देखा और उत्सुकतावश उसमें प्रवेश किया।

3. आश्रम के ब्राह्मण सहवासी जो ईंधन लाने के लिए बाहर गए थे- जो अभी-अभी लौटे थे। तपस्या के लिए आवश्यक वस्तुएं समिधा, फूल और कुश घास उनके हाथ में थी। वे बुद्धिमान सहवासी अपनी-अपनी कुटिया में न जाकर गौतम की ओर मुड़कर देखने लगे।

4. तब आश्रमवासियों द्वारा स्वागत होने के बाद उसने भी आश्रम के वयोवृद्ध लोगों को आदर दिया।

5. उस मोक्ष-प्रेमी बुद्धिमान सिद्धार्थ ने उन स्वर्ग चाहने वालों को विचित्र-विचित्र प्रकार की तपस्याओं का निरीक्षण करते हुए आश्रम को देखा।

6. उस भद्र पुरुष ने पहली बार उस उपवन में सन्यासियों को विभिन्न प्रकार की तपस्या करते देखा।

7. तब तपस्या की तकनीक में दक्ष भृगु ब्राह्मण ने विभिन्न प्रकार की तपस्याएं और उनके फल के बारे में गौतम को बताया।

8. बिना पका भोजन, पानी से उत्पन्न मूल और फल-यही धर्मशास्त्रों के अनुसार तपस्वियों का भोजन है, लेकिन तपस्या के भिन्न-भिन्न अनेक रूप हैं।

9. कुछ पक्षियों की तरह दाने चुगते हैं, कुछ हिरणों की तरह घास खाते हैं, कुछ सांपों की तरह हवा पर जीते हैं, ऐसा लगता है कि वे पहाड़ी चींटी में परिवर्तित हो गए हों।

10. दूसरे बड़ी मुश्किल से पत्थर से अपना पोषण करते हैं, कुछ अपने दाँतों से ही पीसकर अन्न खाते हैं, कुछ दूसरों के लिए उबालते हैं और भाग्यवश कुछ बचे पर ही गुजारा करते हैं।

11. कुछ अपनी जटाओं को लगातार पानी में भिगोते रहते हैं, और मंत्रोच्चारण के साथ दो बार अग्नि देवता अर्ध्य अर्पण करते हैं; दूसरे मछली की तरह पानी में डूबे रहते हैं और उनके शरीर को कछुएं नोचते रहते हैं।

12. कुछ समय के लिए इस प्रकार की तपस्या करने, अधिक कष्ट सहने पर स्वर्ग और कम कष्ट सहने पर मानव-लोक प्राप्त होता है। कष्ट सहने के पथ पर चलकर अंत में वे सुख को प्राप्त करते हैं। उनका कहना है कि कष्ट-सहन ही पुण्य का मूल है।

13. यह सुनकर गौतम ने कहा-''आज पहली बार मैंने ऐसा आश्रम देखा है और तुम्हारा यह तपस्या क्रम समझ में नहीं आता।''

14. ''इस समय मैं केवल इतना कहूँगा कि आपकी यह लगन स्वर्ग प्राप्त करने के लिए है, जबकि मेरी इच्छा तो यही है कि संसार के दुःख के मूल कारण और उसे दूर करने का उपाय खोज निकाला जाए। क्या अब मैं यहाँ से विदा ले सकता हूँ? मैं सांख्य दर्शन सीखना चाहता हूँ और समाधि मार्ग में अपने को प्रशिक्षित करना चाहता हूँ और देखना चाहता हूँ कि ये पद्धतियाँ मेरी समस्या के समाधान में कितनी सिद्ध हो सकती हैं।''

15. ''आप लोग अपने मार्ग पर अग्रसर हैं, आप लोगों ने मुझे शरण दी और इतना प्यार दिया कि अब मैं सोचता हूँ कि मुझे आप लोगों को छोड़कर जाना पड़ेगा, तो मुझे ठीक वैसा ही दुःख हो रहा है, जैसा मुझे अपने सगे-संबंधियों को छोड़ने पर हुआ था।''

16. ''किसी नापसंदगी या किसी के गलत आचरण के कारण मैं इस वन को नहीं छोड़ रहा हूँ। आप लोग तो बड़े ऋषि हैं और पहले के ऋषियों के अनुसार अच्छी तरह अपना धार्मिक दायित्व निभा रहे हैं।''

17. ''अपने विषय में दक्ष मुनि आलार कालाम के पास मैं जाना चाहता हूँ।''

18. उसके निश्चय को देखकर आश्रम के प्रमुख भृगु ऋषि ने कहा ''राजकुमार! तुम अपने उद्देश्य में बहादुर हो, तुम नवयुवक हो। स्वर्ग और मोक्ष का अच्छी तरह मनन करने के बाद तुम मोक्ष का लाभ प्राप्त करना चाहते हो। तुम सचमुच बहादुर हो।''

19. ''यदि तुम्हारे कहने का यही दृढ़ निश्चय है तो तुम अतिशीघ्र ही विंध्य-प्रदेश जाओ, जहाँ मुनि आलार कालाम रहते हैं, जिन्होंने परम सुख की अन्तर्दृष्टि पाई है।''

20. ''तुम उनके मार्ग का ज्ञान प्राप्त करोगे, लेकिन जैसा कि मैं देख रहा हूँ तुम उनसे उनके सिद्धांत को सीखकर और आगे निकल जाओगे।''

21. गौतम ने उनको धन्यवाद दिया और ऋषिगण को नमस्कार करके चल दिया। संन्यासीगण भी उसके प्रति शिष्टाचार निभाने के बाद अपने तपस्वी उपवन में पुनः प्रस्थान कर गए।

2. सांख्य का अध्ययन

1. भृगु ऋषि का आश्रम छोड़कर गौतम ने आलार कालाम का निवास खोजना शुरू किया।

2. आलार कालाम वैशाली में रह रहे थे। गौतम वहाँ गया। वैशाली पहुँचकर, वह उनके आश्रम में पहुँचा।

3. आलार कालाम के पास पहुँचकर उसने कहा–''मैं आपके सिद्धान्त और अनुशासन में दीक्षित होना चाहता हूँ।''

4. उसके बाद आलार कालाम ने कहा, ''तुम्हारा स्वागत है। मेरा सिद्धान्त ऐसा है कि तुम्हारे जैसा तेज व्यक्ति बहुत जल्द ही उसे सीख सकता है और उसे अनुभव कर सकता है। फिर उसके अनुरूप आचरण कर सकता है।''

5. ''निश्चय ही तुम यह उच्चतम् प्रशिक्षण प्राप्त करने के योग्य हो।''

6. आलार कालाम के ये शब्द सुनकर राजकुमार को बहुत प्रसन्नता हुई। उसने उत्तर दिया–

7. ''आपकी अपार करुणा के कारण मुझे लगता है कि सदोष होते हुए भी निर्दोष हूँ।''

8. ''इसलिए क्या आप मुझे बताएंगे कि आपका सिद्धांत क्या है?''

9. आलार ने कहा–''तुम्हारा शील स्वभाव, तुम्हारे चरित्र की सच्चाई और तुम्हारे दृढ़ निश्चय से इतना प्रभावित हूँ कि मैं तुम्हारी योग्यता जाँच हेतु तुम्हारी कोई प्रारंभिक परीक्षा नहीं लेना चाहता।''

10. ''ध्यान से सुनने वालों में श्रेष्ठ हमारे सिद्धान्तों को सुनो।''

11. उसके बाद उन्होंने गौतम को अपना सिद्धान्त सुनाया, जिसे सांख्य-दर्शन के नाम से जाना जाता है।

12. अपने प्रवचन के समापन पर आलार कालाम ने कहा –

13. ''हमारी पद्धति के सिद्धांत यहीं हैं, गौतम! मैंने तुम्हें उन्हें सक्षिप्त रूप में बता दिया है।''

14. आलार कालाम की स्पष्ट व्याख्या से गौतम बहुत प्रसन्न हुआ। ध्यान मार्ग (चित्त की एकाग्रता) का ढंग भी क्यों न सीख लेना चाहिए।

3. समाधि-मार्ग का प्रशिक्षण

1. जिस समय गौतम अपनी समस्या के समाधान के लिए विभिन्न प्रकार के मार्गों का परीक्षण कर रहा था, उस समय उसने विचार किया कि मुझे ध्यान-मार्ग (चित्त की एकाग्रता) का ढंग भी क्यों न सीख लेना चाहिए।

2. ध्यान-मार्ग की तीन विधियाँ थीं।

3. तीनों में एक चीज समान थी कि साँस पर नियंत्रण पा लेने से चित्त की एकाग्रता सिद्ध हो जाती थी।

4. साँस को नियंत्रण में करने की एक विधि 'आनापानसति' कहलाती थी।

5. साँस को नियंत्रण में करने की दूसरी विधि प्राणायाम कहलाती थी। यह साँस लेने की प्रक्रिया को तीन भागों में बाँटती थी-1. साँस लेना (पूरक), 2. साँस रोके रखना (कुम्भक), 3. साँस बाहर निकालना (रेचक)। तीसरी विधि समाधि पद्धति कहलाती थी।

6. आलार कालाम ध्यान-मार्ग में दक्ष माना जाता था। गौतम ने अनुभव किया कि यह अच्छा होगा, यदि वह आलार कालाम के निरीक्षण में ध्यान-मार्ग का कुछ प्रशिक्षण ले।

7. इसलिए उसने आलार कालाम से कहा कि यदि आप मुझे ध्यान-मार्ग में प्रशिक्षण दिला दें तो अच्छा होगा।

8. आलार कालाम ने उत्तर दिया-"बड़ी खुशी से।"

9. आला कालाम ने उसे ध्यान-मार्ग की विधि बताई। इसके सात सोपान थे।

10. गौतम ने इस विधि का प्रतिदिन अभ्यास किया।

11. इसमें पूर्ण दक्षता प्राप्त करने के बाद गौतम ने आलार कालाम से पूछा कि "इसमें सीखने के लिए कुछ और शेष है?"

12. आलार कालाम ने उत्तर दिया-"नहीं मित्र! मुझे केवल इतना ही बताना था।" इसके साथ ही गौतम ने आलार कालाम से बिदा ली।

13. गौतम ने उद्दक रामपुत्त नामक एक दूसरे योगी के बारे में सुना था जिसने एक ऐसी विधि का आविष्कार किया है, जो ध्यानी को आलार कालाम की विधि से एक सोपान ऊपर ले जाती है।

14. गौतम ने इस विधि को सीखकर समाधि के उच्चतम सोपान पर अनुभव करने

की सोची। तदनुसार वह उद्दक रामपुत्त के आश्रम में गया और अपने को उनके अधीन प्रशिक्षण में लगा दिया।

15. कुछ ही समय में गौतम ने उद्दक के आठवें सोपान की विधि में दक्षता प्राप्त कर ली। उद्दक रामपुत्त की विधि में पूर्णता प्राप्त करने के बाद गौतम ने ठीक वही प्रश्न किया, जो उसने आलार कालाम से किया था–"इससे आगे भी कुछ सीखने के लिए शेष है?"

16. और उद्दक रामपुत्त ने भी वहीं उत्तर दिया–"नहीं मित्र! जो मैंने तुम्हें सिखाया उससे ज्यादा कुछ नहीं है।"

17. आलार कालाम और उद्दक रामपुत्त कोसल जनपद में ध्यान-मार्ग में दक्षता के लिए प्रसिद्ध थे। लेकिन गौतम ने मगध जनपद में भी ध्यान-मार्ग के वैसे ध्यानाचार्यों के बारे में सुना था। उसने सोचा कि उनकी पद्धति में भी प्रशिक्षण लेना चाहिए।

18. तदनुसार गौतम मगध गया।

19. उसने देखा कि सांस नियंत्रण से ध्यान-मार्ग की उनकी विधि कोसल जनपद में प्रचलित विधि से सर्वथा भिन्न थी।

20. इस ध्यान विधि की विशेषता यह थी कि यह साँस का सर्वथा निरोध करके चित्त की एकाग्रता का सम्पादन करती थी।

21. गौतम ने इस विधि को सीखा। साँस को रोक कर, जब उसने चित्त को एकाग्र करने की कोशिश की, तो उसे लगा कि उसके कानों से तीक्ष्ण आवाज रही है और अपना सिर उसे ऐसा अनुभव हो रहा था, जैसे तेज चाकू से कोई उसके सिर को चीर रहा हो।

22. यह बड़ी कष्टदायक विधि थी। लेकिन गौतम इसमें भी दक्षता प्राप्त कर सफलता प्राप्त कर ली।

23. इस प्रकार उसने समाधि-मार्ग का प्रशिक्षण लिया।

4. तपश्चर्या का परीक्षण

1. गौतम ने सांख्य और समाधि-मार्ग का परीक्षण कर लिया था। लेकिन तपश्चर्या के परीक्षण के बिना ही उसने भृगु ऋषि का आश्रम छोड़ दिया था।

2. उसे लगा कि उसका भी परीक्षण करना चाहिए और अपने लिए अनुभव प्राप्त करना चाहिए, ताकि उस बारे में वह अधिकार पूर्वक चर्चा कर सके।

3. तदनुसार गौतम गया नगर पहुंचा। वहां पहुंचकर उसने आसपास के क्षेत्र को ध्यानपूर्वक देखा और तपश्चर्या हेतु उरुबेला में गया के राजर्षि नेगरी के आश्रम में रहने का निश्चय किया। तपश्चर्या अभ्यास के लिए नेरंजना नदी के किनारे स्थित यह स्थान एकांत तथा शांत था।

4. उरुबेला में उसे वे पाँच परिव्राजक भी मिले, जो पहले राजगृह में मिले थे और जिन्होंने उसे शांति का समाचार लाकर सुनाया था। वे भी वहां तपश्चर्या का अभ्यास कर रहे थे।

5. उन तपस्वियों ने उसे वहाँ देखा, उसके पास वे गए और उन्हें भी अपने साथ रहने को कहा। गौतम तैयार हो गया।

6. उसके बाद उन्होंने आदरपूर्वक उसकी सेवा की और उसके शिष्यों की तरह उसकी आज्ञा मानने लगे और वे बहुत ही विनम्र और आज्ञाकारी थे।

7. गौतम की तपस्था और आत्म-संताप की विधि काफी कठिन थी।

8. प्रतिदिन वह सात घरों से ज्यादा भिक्षाटन के लिए नहीं जाता था और कभी-कभी तो सिर्फ दो घर तक ही। और प्रत्येक घर से वह सात कौर से ज्यादा भोजन नहीं लेता था और कभी-कभी तो केवल दो कौर ही।

9. प्रतिदिन वह एक कटोरी खाना खाकर रहता था, लेकिन सात कटोरी से ज्यादा किसी भी हालत में नहीं।

10. कभी-कभी वह एक दिन में एक बार भोजन करता था, कभी-कभी दो दिनों में एक बार और इसी क्रम से कभी-कभी वह सात दिनों में एक बार भोजन करता था या पन्द्रह दिनों में भी एक बार और बड़ी ही निश्चित मात्रा में।

11. जब वह तपश्चर्या के अभ्यास में और आगे बढ़ा, तो उसका आहार मात्र इकट्ठी हरी जड़े मात्र रह गया था, या जंगली जौ और धान के दाने या पेड़ों की छाल के टुकड़े या जल पौधा या चावल की भूसी के अन्दर का लाल कण या उबालने पर चावल के बचे भाग या सरसों आदि की खली।

12. वह जंगली जड़ें और फल या हवा से गिरे फल-फूल खाकर रहने लगा था।

13. उसके कपड़े या तो सन के बने थे या कूड़े के ढेरों पर पड़े सन मिश्रित चीथड़ों के या पेड़ की छाल के या आधे या पूरे काले मृग-छाल के या घास के या छाल के, लकड़ी की पट्टियों के या आदमियों और पशुओं के बालों से बने कम्बलों के या उल्लू के परों के बने होते थे।

14. वह अपने सिर और अपनी दाढ़ी के बाल नोच-नोच कर उखाड़ता था। वह हमेशा सीधा और पालथी मारकर बैठता था, वह खड़ा कभी नहीं होता था और सरक कर चलता था।

15. इस प्रकार से और अनेक तरह से वह अपने शरीर को कष्ट पहुँचाता था। उसकी तपश्चर्या इस सीमा तक आ गई थी।

16. अपने शरीर के प्रति उपेक्षा के भाव को वह इस सीमा तक ले गया कि वर्षों तक उसके शरीर पर मैल जमती रही और बाद में वह स्वयं गिरने लगी।

17. वह विस्मयकारी घनघोर जंगल में रहता था, ऐसा विस्मयकारी घनघोर जंगल कि पागल के सिवा उसमें कोई नहीं जा सकता था। यदि जाएगा तो भय के कारण रोंगटे खड़े हो जायेंगे।

18. जब शीत ऋतु की भयानक ठंडी रातें आती, तो महीनों के कृष्ण पक्ष में वह रात में खुले आसमान के नीचे और दिन के समय घुप्प अंधेरे में रहता था।

19. लेकिन जब वर्षा ऋतु से पहले भयानक गरमी पड़ने लगती, तो वह दिन की चिलचिलाती धूप में रहता और रात में गर्मी भरे घने जंगलों में रहता।

20. वह शमशान भूमि में मुर्दों की हड्डियों का तकिया बनाकर लेटता था।

21. उसके बाद गौतम प्रतिदिन एक ही फली खाकर रहने लगा-बाद में तिल का एक बीज प्रतिदिन खाकर या चावल का एक दाना प्रतिदिन खाकर।

22. जब प्रतिदिन वह एक ही फल खाकर रहता था, तो उसका शरीर एकदम कमजोर हो गया।

23. यदि वह अपने पेट का स्पर्श करना चाहता था, तो उसका हाथ उसकी पीठ को जा लगता और अगर वह पीठ को स्पर्श करना चाहता था, तो उसके हाथ में पेट आ जाता था, उसका पेट और पीठ दोनों एक दूसरे के निकट आ गए थे और ऐसा उसके कम खाने के कारण ही हुआ।

5. तपश्चर्या का त्याग

1. गौतम की तपश्चर्या और आत्म-पीड़न बड़े ही उग्र रूप का था, जो छह वर्ष के लम्बे समय तक जारी रहा।

2. छह वर्ष के बाद उसका शरीर इतना दुर्बल हो गया था कि वह चलने-फिरने में भी असमर्थ हो गया था।

3. फिर भी उसे कोई नया प्रकाश और संसार के दुःख की समस्या का समाधान दिखाई नहीं दे रहा था, जिस पर उसका मन केंद्रित था।

4. उसने अपने मन में विचार किया कि–''यह न कामवासना से छुटकारे का मार्ग है, न यह पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने का और न मोक्ष का मार्ग है।''

5. कुछ लोग इस संसार के सुख–भोग हेतु कष्ट झेलते हैं, कुछ स्वर्ग के लिए कष्ट सहन करते हैं। सभी प्राणी आशा के चक्कर में पड़कर अपने उद्देश्य को प्राप्त न हो, सुख को खोजते हैं और विपत्ति में फंस जाते हैं।

6. क्या मेरे साथ भी कुछ–कुछ ऐसा ही नहीं हुआ है?

7. मैंने जो प्रयास किया है, मैं उसे दोष नहीं दे रहा हूँ, लेकिन आधार छोड़कर वह आकाश में उड़ने का प्रयास है।

8. मैं पूछता हूँ–क्या शरीर के संताप का धर्म कहा जा सकता है?

9. चूँकि शरीर के काम करने या न करने पर मन का अधिकार होता है, इसलिए विचार पर नियंत्रण ही उचित है। बिना विचार के शरीर कर्त्ता के समान है।

10. यदि केवल शरीर पर विचार करें, तो भोजन की शुद्धि से ही पवित्रता आ सकती है, लेकिन जो कर्त्ता (मन) है, उसकी पवित्रता की भी तो बात है। लेकिन यह सब किस काम की?

11. जिसने अपनी शारीरिक शक्ति खोज ली है, जो भूख–प्यास और थकान से चूर है, थकान के कारण उसका मन एकाग्र और शान्त नहीं होता, ऐसे आदमी को नया प्रकाश भी प्राप्त नहीं हो सकता।

12. जो पूर्णतः शांत नहीं है, जो मन द्वारा प्राप्त होने योग्य है, वह ऐसे उद्देश्य को कैसे पा सकता है?

13. ''सच्ची शांति और मन की एकाग्रता को सही रूप में प्राप्त करने के लिए शारीरिक आवश्यकताओं की लगातार पूर्ति आवश्यक है।''

14. उस समय उरुबेला में सेनानी नामक गृहपति रहता था। सुजाता उसकी बेटी थी।

15. सुजाता ने न्यग्रोध वृक्ष से पुत्र पाने की इच्छा व्यक्त की थी और संकल्प लिया था कि यदि इच्छा पूरी हुई, तो वह हर वर्ष उसकी पूजा करेगी।

16. उसकी इच्छा पूरी हो गई, इसलिए उसने अपनी दासी पुण्णा को पूजा के लिए स्थान तैयार करने को भेजा।

17. न्यग्रोध वृक्ष के नीचे गौतम को बैठा देखकर पुण्णा ने सोचा कि आज वृक्ष देवता ही नीचे उतर आए हैं।

18. सुजाता स्वयं आई और अपने द्वारा तैयार की गई खीर स्वर्ण-पात्र में गौतम को अर्पित की।

19. वह पात्र को नदी तट पर ले गया और सुपतिट्ठ नामक घाट पर स्नान किया और फिर भोजन किया।

20. इस प्रकार उसकी तपश्चर्या का परीक्षण समाप्त हुआ।

21. तपस्या और आत्म-संताप का जीवन छोड़ने के कारण गौतम के साथ वाले पाँचों संन्यासी उससे रुष्ट हो गए और घृणावश उसे छोड़ गए।

चौथा भाग

ज्ञान-प्राप्ति और नए मार्ग का दर्शन

1. नए प्रकाश हेतु ध्यान
2. ज्ञान-प्राप्ति
3. नए धम्म का आविष्कार
4. बोधिसत्व गौतम सम्बोधि के पश्चात् बुद्ध हो गए

1. नए प्रकाश हेतु ध्यान

1. भोजन से अपने आपको तरोताजा करके गौतम बैठकर अपने पूर्व अनुभवों पर विचार करता रहा। उसे लगा कि अभी तक अपनाए सारे रास्ते असफल हो गए हैं।

2. असफलता इतनी अधिक थी कि वह किसी भी व्यक्ति को सम्पूर्ण रूप से निराशावस्था में ला सकती थी। निस्संदेह वह दुःखी था। लेकिन वैसी निराशा उसे छू तक नहीं पाई थी।

3. रास्ता खोजने के प्रति वह हमेशा आशावान् रहता था। इतना अधिक कि जिस दिन उसने सुजाता की खीर खाई थी, उस रात को उसने पाँच स्वप्न देखे और जब वह जागा और उसने उनकी व्याख्या की, तो पाया कि उसे बोधि प्राप्ति अवश्य होगी।

4. उसने अपने भविष्य की भविष्यवाणी करने की कोशिश की। उसने सुजाता की दासी द्वारा लाई गई खीर के पात्र को नेरंजरा नदी में फेंक दिया और कहा–''यदि मुझे बोधि प्राप्त होने वाली है, तो यह पात्र धारा की सतह पर ऊपर की ओर जाए और अगर नहीं तो नीचे की ओर जाए।'' सचमुच पात्र धारा के विपरीत तैरने लगा और नागराज काल के निवास के पास जाकर डूब गया।

5. आशा और दृढ़ता से भरकर उसने उरूबेला को छोड़ा और शाम तक राजमार्ग होते हुए गया जा पहुँचा। वहाँ उसने एक पीपल का वृक्ष देखा। उस नए प्रकाश की आशा में, जिसके द्वारा वह अपनी समस्या का समाधान निकाल सके उसने ध्यानावस्था में वृक्ष के नीचे बैठने के लिए सोचा।

6. चारों दिशाओं के निरीक्षण के बाद उसने पूर्व दिशा को चुना। क्लेश दूर करने के लिए महान ऋषि लोग हमेशा ही पूर्व दिशा को ही चुनते आए हैं।

7. पीपल के वृक्ष के नीचे गौतम पद्मासन में सीधा बैठा। ज्ञान प्राप्ति के लिए दृढ़संकल्प हो उसने अपने आप से कहा ''चाहे मेरी त्वचा, नसें और हड्डियाँ जितना सूख जाएँ, मेरा माँस और खून मेरे शरीर में चाहे सूख जाए, किन्तु बोधि प्राप्त किए बिना मैं इस आसन को नहीं छोड़ूँगा।''

8. नाग–राज के समान ऐश्वर्य वाला काल नामक नाग–राज और उसकी पत्नी सुवर्ण प्रभा पीपल वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ गौतम के दर्शन से जाग्रत हो उठे थे। उन्हें यह विश्वास था कि वह बोधि प्राप्त करेगा। उन्होंने इस प्रकार स्तुति की–

9. वह निश्चित रूप से बोधि प्राप्त करेगा-ऐसा विश्वास कर उसकी प्रशंसा में उन्होंने कहा-"हे मुनि, क्योंकि तुम्हारे पाँव से दबी यह पृथ्वी बार-बार गुंजायमान होती है, और सूर्य के समान तुम्हारा तेज है, इसलिए तुम इच्छित फल अवश्य पाओगे।"

10. "आकाश में फड़फड़ा कर उड़ते हुए पक्षियों के झुंड तुमको सादर नमस्कार करते हैं। हे कमल नयन! मंद पवन आकाश में बहता है, इसीलिए तुम बोधि अवश्य पाओगे।"

11. जब वह ध्यानस्थ अवस्था में बैठा था, तो बुरे विचारों और बुरी कुप्रवृत्तियों के झुंड ने, जिन्हें पौराणिक भाषा में मारपुत्र कहा गया है, उसने गौतम पर आक्रमण कर दिया।

12. गौतम काफी भयभीत हो गया और लगा कि कहीं वे उसको काबू में न कर लें और उसके उद्देश्य को विफल न कर दें।

13. वह जानता था कि इन बुरी कुप्रवृत्तियों के युद्ध में बहुत से ऋषि और ब्राह्मण पराजित हो चुके हैं।

14. इसलिए अपना सारा साहस बटोर कर उसने मार से कहा-"मुझमें श्रद्धा, वीरता और प्रज्ञा है। कुप्रवृत्तियाँ मुझे कैसे पराजित कर सकती हैं। वायु चाहे इस नदी के प्रवाह को सुखा दे, तो भी तुम मेरे निश्चय से मुझे नहीं डिगा सकते। जीवन में पराजय से अच्छा मेरे लिए मर जाना श्रेयस्कर है।"

15. गौतम के मन में कुप्रवृत्तियाँ उस कौवे की भाँति प्रवेश कर गई, जो पत्थर को मांस का ढेर समझकर उस पर चोंच मारता है कि "यहाँ कुछ मधुर-मीठा स्वादिष्ट कौर मुझे अवश्य मिलेगा।"

16. और वहाँ कुछ भी मिठास न पाकर कौवा वहाँ से भाग जाता है। इसलिए पत्थर पर चोंच मारने वाले कौवे की भाँति कुप्रवृत्तियाँ विवश होकर गौतम को छोड़कर चल दीं।

2. ज्ञान-प्राप्ति

1. ध्यान के दौरान खाने के उद्देश्य से गौतम ने इतना भोजन जमा करके रख लिया था कि वह चालीस दिनों तक चलता रहे।

2. मन को अशांत करने वाले बुरे विचारों को जड़ से समाप्त कर गौतम ने भोजन

कर अपने आपको तरोताजा कर लिया था और सशक्त हो गया था। बोधि प्राप्ति के उद्देश्य से ध्यान के लिए इस प्रकार उसने अपने आपको तैयार कर लिया था।

3. बोधि प्राप्ति के लिए गौतम को चार सप्ताह तक लगातार ध्यान-मग्न रहना पड़ा। अन्तिम अवस्था तक पहुँचने के लिए उसे चार अवस्थाएँ पार करनी पड़ीं।
4. प्रथम अवस्था वितर्क और विचार प्रधान थी। एकान्तवास के कारण उसने इसे बड़ी सरलता से प्राप्त कर लिया।
5. दूसरी अवस्था में उसने एकाग्रता को सम्मिलित कर लिया।
6. तीसरी अवस्था में उसने समचित्तता और जागरूकता का समावेश कर लिया।
7. चौथी और अंतिम अवस्था में उसने पवित्रता को समचित्तता में और समचित्तता को जागरूकता में शामिल किया।
8. इस बार जब उसका चित्त एकाग्र, पवित्र, क्लेशरहित ग्रहणशील, दक्ष, दृढ़, आवेगमुक्त हो गया, तब गौतम ने अपना सारा ध्यान उस समस्या के समाधान पर एकाग्र किया, जो उसे परेशान कर रही थी।
9. चौथे सप्ताह के अंतिम दिन की रात को उसे कुछ आशा की किरण दिखाई दी। उसे स्पष्ट दिखाई दिया कि उसके सामने दो समस्याएँ हैं; पहली समस्या है कि संसार में दु:ख है और दूसरी समस्या है कि दु:ख से छुटकारा कैसे पाया जाए, ताकि मानव-समुदाय सुखी हो सके।
10. इस प्रकार अंत में, चार सप्ताह के ध्यान के पश्चात्, अंधकार हट गया और प्रकाश प्रकट हुआ। अविद्या का नाश हुआ और ज्ञान प्रकट हुआ। उसने एक नया मार्ग देखा।

3. नए धम्म का आविष्कार

1. नया प्रकाश प्राप्त करने के लिए गौतम जब ध्यानस्थ हुआ, तो उस समय उस पर सांख्य-दर्शन का अत्यधिक प्रभाव था।
2. उसने सोचा कि संसार में दु:ख और कष्ट के अस्तित्व में कोई विवाद नहीं है।
3. फिर भी गौतम की रुचि यह पता लगाने में थी कि दु:ख से छुटकारा कैसे पाया जाए, सांख्य-दर्शन के पास इस समस्या का कोई उत्तर नहीं था।

4. इसलिए दु:ख और कष्ट से कैसे छुटकारा पाया जाए, इसी समस्या पर उसने सारा ध्यान लगाया।

5. स्वभावत: पहला प्रश्न उसने अपने आपसे किया–"किसी व्यक्ति के दु:ख और कष्ट के क्या कारण हैं?"

6. उसका दूसरा प्रश्न था–"कष्ट से छुटकारा कैसे पाया जाए?"

7. इन दोनों प्रश्नों का उसने एक सही उत्तर पा लिया, जिसे सम्यक सम्बोधि (सम्यक ज्ञान) कहा जाता है।

8. इसी प्रकार उस पीपल के वृक्ष, जिसके नीचे सिद्धार्थ गौतम को महाज्ञान की प्राप्ति हुई थी, उस को बोधि-वृक्ष के नाम से जाना जाता है।

4. बोधिसत्व गौतम सम्बोधि के पश्चात् सम्यक सम्बुद्ध बुद्ध हो गए

1. ज्ञान-प्राप्ति से पहले गौतम केवल एक बोधिसत्व थे। महाज्ञान ज्ञान-प्राप्ति के बाद वह बुद्ध हो गये।

2. बोधिसत्व कौन और क्या होता है?

3. बोधिसत्व वह प्राणी होता है, जो बुद्ध बनने के लिए प्रयत्नशील होता है।

4. एक बोधिसत्व बुद्ध कैसे बनता है?

5. बोघिसत्व को लगातार दस जन्मों तक बोधिसत्व रहना पड़ता है। बुद्ध बनने के लिए एक बोधिसत्व को क्या करना होता है?

6. अपने पहले जन्म में वह मुदिता (प्रसन्नता) प्राप्त करता है। जिस प्रकार सुनार चाँदी के मैल को दूर करता है, उसी प्रकार बोधिसत्व अपने चित्तमल को दूर कर प्रमादी से संयमी बनकर संसार को इस प्रकार प्रकाशित करता है, जैसे बादल रहित चन्द्रमा इस लोक को प्रकाशित करता है। उसके मन में मुदिता उत्पन्न होती है और इसे इस प्रकार का बोध होता है तथा सभी प्राणियों के कल्याण के लिए उसके मन में उत्कट इच्छा उत्पन्न होती है।

7. अपने दूसरे जन्म में वह विमला (विशुद्‌धि) प्राप्त करता है। इस समय तक बोधिसत्व काम-वासना के सभी विचार छोड़ चुका होता है। वह सबके प्रति कारुणिक होता है। वह आदमियों के अवगुणों को न बढ़ावा देता है न ही उनके गुणों को कम करता है।

8. तीसरे जन्म में प्रभावारी-भूमि में वह (दीप्ति) प्रादीप्ति करता है। बोधिसत्व की प्रज्ञा इस समय तक दर्पण की भाँति स्वच्छ हो जाती है। वह अनात्म और अनित्यता की सत्यता को अच्छी प्रकार जानता है और उसे हृदयंगम कर लेता है। उसकी एक मात्र आकांक्षा ऊँची से ऊँची प्रज्ञा प्राप्त करने की होती है। इसके लिए वह कुछ भी त्याग करने को तैयार रहता है।

9. अपने चौथे जन्म में वह अर्चिष्मती-भूमि (प्रभा की बुद्धिमत्ता) प्राप्त करता है। इस जन्म में बोधिसत्व अपना सम्पूर्ण ध्यान आष्टांगिक मार्ग पर केन्द्रित करता, और सम्भव व्यायामों पर केन्द्रित करता, चार प्रयत्नों पर केन्द्रित करता, चार ऋद्धि-बल पर केन्द्रित करता है और पांच प्रकार के शील पर केन्द्रित करता है।

10. पाँचवें जन्म में वह सुदुर्ज्या-भूमि (जीतने में दृढ़वतता) को प्राप्त करता है। वह सापेक्ष और निरपेक्ष के बीच सम्बंध को अच्छी प्रकार हृदयंगम कर लेता है।

11. अपने छठे जन्म में वह अभिमुखी-मुखी भूमि पाता है। बोधिसत्व इस अवस्था में अपने को वस्तुओं के विकास, उनके कारण, बारह निदान को अच्छी तरह ग्रहण करने के लिए तैयार होता है। अभिमुखी-ज्ञान उसके हृदय में अविद्या से ग्रसित समस्त मानवों के लिए महाकरुणा का संचार कर देता है।

12. अपने सातवें जन्म में बोधिसत्व दूरगमा-भूमि (एकाकारता) को प्राप्त करता है। अब बोधिसत्व देश और काल के संबंध से परे हो जाता है। वह अनंत के साथ एक हो जाता है, लेकिन सभी प्राणियों के लिए महाकरुणा के कारण वह नाम-रूप से युक्त है। वह दूसरों से इसी बात से अलग है, क्योंकि संसार की भव-तृष्णा उसे उसी प्रकार स्पर्श नहीं करती, जिस प्रकार पानी कमल की पत्तियों को। वह अपने व्यक्तियों की इच्छाओं को पूरा करता है, वह दान, क्षमा, कुशलता, वीर्य, शांति, बुद्धिमत्ता और सवोत्तम प्रज्ञा का अभ्यास करता है।

13. यद्यपि इस जीवन में वह धर्म को जानता है, फिर भी धर्म को लोगों की समझ के अनुकूल प्रस्तुत करता है। वह जानता है कि उसे कुशल और क्षमाशील होना चाहिए। दूसरे लोग उसके साथ कैसा भी व्यवहार करें, वह उद्विग्नता-रहित होकर धैर्य से सह लेता है, क्योंकि वह जानता है कि अविद्या के कारण लोग उसकी मंशा को ठीक से नहीं समझ रहे हैं। इसके साथ ही वह दूसरों की भलाई करने और अपने प्रयास में थोड़ी-सी भी शिथिलता नहीं आने देता है, और न वह अपने चित्त को प्रज्ञा से इधर-उधर भटकने देता है। इसलिए उस पर कितनी भी विपत्तियाँ आएँ, वे उसे सुपथ से कभी नहीं हटा सकतीं।

14. अपने आठवें जीवन में वह 'अचल-भूमि' प्राप्त हो जाता है। अचल अवस्था में बोधिसत्व को कुछ भी प्रयत्न नहीं करना पड़ता। कृत-कृत्य होने से अनायास ही उसके द्वारा कुशल कर्म होते हैं। जो कुछ भी वह करेगा उसमें वह सफल होगा।

15. अपने नौवें स्तर पर जीवन में वह 'साधुमती-भूमि' प्राप्त हो जाता है। वह वैसी अवस्था है, जिसमें व्यक्ति सभी धर्मों या पद्धतियों पर विजय पाकर, उनमें प्रवेश कर जाता है, सभी दिशाओं को जीत लेता है और समय की सीमाओं से परे हो जाता है।

16. अपने दसवीं अवस्था में वह 'धर्ममेघा-मेघा' बन जाता है। बोधिसत्व को बुद्ध की दिव्य-दृष्टि प्राप्त हो जाती है।

17. बुद्ध होने के लिए बोधिसत्व को इन दस बलों को प्राप्त करना आवश्यक होता है।

18. एक के बाद दूसरी अवस्था में पहुँचने के लिए बोधिसत्व को न केवल इन दस बलों को प्राप्त करना पड़ता है बल्कि उसे दस पारमिताओं की पूर्णता का अभ्यास करना पड़ता है।

19. एक जीवन में एक पारमिता की पूर्ति करनी होती है। पारमिताओं को क्रमशः करना पड़ता है। एक पारमिता की पूर्ति एक जीवन में करनी पड़ती है, ऐसा नहीं कि एक पारमिता का कुछ भाग और कुछ दूसरी का।

20. जब दोनों तरह से कोई बोधिसत्व निपुण हो जाता है, तब वह बुद्ध बनने के योग्य बन जाता है। बुद्ध बनना बोधिसत्व के जीवन की पराकाष्ठा है।

21. जातकों अथवा बोधिसत्व की जन्म-अवस्थाओं का सिद्धांत ब्राह्मणों के अवतारवाद के सिद्धान्त सर्वदा प्रतिकूल हैं। अवतारवाद का अर्थ ईश्वर के अवतार से है।

22. बुद्ध के व्यक्तित्व में पवित्रता की पराकाष्ठा ही जातकों के सिद्धांत का आधार है।

23. अवतारवाद के सिद्धांत के अनुसार भगवान को अपने अस्तित्व में निर्मल (पवित्र) होने की आवश्यकता नहीं। ब्राह्मणवादी अवतारवाद का सिद्धांत केवल इतना कहता है कि चाहे ईश्वरावतार अपने आचरण में अपवित्र और अनैतिक ही क्यों न हो, वे अपने अनुयायियों या भक्तों की रक्षा के लिए विभिन्न रूप धारण करते हैं।

24. बुद्ध बनने के लिए बोधिसत्व के दस जन्मों तक श्रेष्ठतम जीवन की शर्त किसी भी धर्म में नहीं मिलती, जो अनुपम है। कोई दूसरा धर्म अपने संस्थापक से इस प्रकार की परीक्षा में उत्तीर्ण होना आवश्यक नहीं ठहराता।

पांचवाँ भाग

बुद्ध और उनके पूर्ववर्ती

1. बुद्ध और वैदिक ऋषि
2. कपिल–दार्शनिक
3. ब्राह्मण–ग्रन्थ
4. उपनिषद् और उनकी शिक्षाएं

1. बुद्ध और वैदिक ऋषि

1. मंत्रों अर्थात् ऋचाओं और स्तुतियों के संग्रह वेद हैं। ऋचाओं के उच्चारण करने वालों को 'ऋषि' कहते हैं।

2. इन्द्र, वरुण, अग्नि, सोम, ईशान, प्रजापति, ब्रह्म, महषि, यम इत्यादि देवताओं के प्रति सम्बोधित करके की गई प्रार्थनाएँ मंत्र ही हैं।

3. शत्रुओं से रक्षा के लिए, धन प्राप्ति के लिए, भोजन, मांस व सुरा जैसे उपहार स्वीकार करने के लिए भक्तों की ओर से केवल प्रार्थनाएँ हैं।

4. वेदों में दर्शन कुछ अधिक नहीं है। लेकिन कुछ वैदिक ऋषियों के दार्शनिक स्वभाव के काल्पनिक चिन्तन मिलते हैं।

5. वे वैदिक ऋषि थे–1. अधमर्षण 2. प्रजापति परमेष्ठी 3. ब्रह्मणस्पति या बृहस्पति 4. अनिल 5. दीर्घतमा 6. नारायण 7. हिरण्यगर्भ तथा 8. विश्वकर्मा।

6. इन वैदिक दार्शनिकों की मुख्य समस्याएँ थीं; संसार की उत्पत्ति कैसे हुई? अलग-अलग वस्तुओं की उत्पत्ति किस प्रकार हुई? उनमें एकता एवं अस्तितव क्यों है? किसने बनाया और किसने विहित किया? यह संसार कहाँ से उत्पन्न हुआ और किसमें विलीन हो जाएगा?

7. अर्धमर्षण का मत था कि संसार की उत्पत्ति तपस (ताप) से हुई है। तपस रचनात्मक सिद्धांत था, जिससे शाश्वत नियम और सत्य की उत्पत्ति हुई। इनसे तमस (रात) की उत्पत्ति हुई। तमस से जल और जल से काल (समय) की उत्पत्ति हुई। काल से सूर्य, चन्द्रमा, स्वर्ग, पृथ्वी, आकाश और प्रकाश का जन्म हुआ और काल ने ही दिन और रात को संचालित किया।

8. ब्रह्मणस्पति की कल्पना थी कि सृष्टि असत् से सत् के रूप में हुई। असत् का अर्थ उन्होंने अनंत से लिया था। सत् मूल रूप से असत् से ही उत्पन्न हुआ। असत् ही सभी सत्, सभी संभव, और जो अभी असत् है का स्थायी आधार है।

9. प्रजापति परमेष्ठी ने इस समस्या से आरंभ किया–"क्या सत का आविर्भाव असत् से हुआ?" उनका मत था कि यह प्रश्न अप्रासंगिक है, उनके अनुसार सभी चीजों की उत्पत्ति का मूल पदार्थ जल है। उनके अनुसार यह मूल पदार्थ जल न तो सत् के अन्तर्गत आता है और न ही असत् के अन्तर्गत।

10. परमेष्ठी ने जड़ और चेतन के बीच कोई विभाजक रेखा नहीं खींची। उनके

अनुसार किसी निहित तत्व के कारण जल भिन्न-भिन्न वस्तुओं का आकार ग्रहण करता है, उन्होंने विश्वव्यापी इच्छा-शक्ति से काम नाम दिया।

11. अनिल एक अन्य वैदिक दार्शनिक था। उनके अनुसार मुख्य तत्व वायु था। गति के लिए इसमें निहित क्षमता थी। इसी में उत्पन्न करने का सिद्धांत निहित था।

12. दीर्धतमा ने कहा कि सभी सत्व अंतिम रूप से सूर्य पर निर्भर करते हैं। अपने में निहित बल के कारण ही सूर्य आगे-पीछे होता है।

13. सूर्य किसी भूरे रंग के पदार्थ से निर्मित है। इसी प्रकार विद्युत और आग भी निर्मित है।

14. सूर्य, विद्युत और अग्नि द्वारा ही जल के बीजांकुर पैदा होते हैं। जल के द्वारा पौधे के बीजांकुर पैदा होते हैं। दीर्धतमा का ऐसा ही मत था।

15. नारायण के अनुसार पुरुष ही जगत का आदि कारण है। पुरुष के द्वारा ही सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, अंतरिक्ष, आकाश, क्षेत्र, ऋतु, वायु प्राणी, सभी जीव, सभी वर्गों के मनुष्य तथा सभी माननीय संस्थाओं की उत्पत्ति हुई।

16. हिरण्यगर्भ का सिद्धांत परमेष्ठी और नारायण के मध्य का था। हिरण्यगर्भ का अर्थ है, स्वर्ग बीजांकुर। यही विश्व की वह महान शक्ति थी, जिससे सभी प्रकार की दिव्य और पार्थिव शक्तियों और अस्तित्व के मूल स्रोत की उत्पत्ति हुई।

17. हिरण्यगर्भ का अर्थ अग्नि भी है। अग्नि से ही सौर-मण्डल की उत्पत्ति हुई, जो विश्व उत्पत्ति का सिद्धांत है।

18. विश्वकर्मा के मत के अनुसार जल को सभी वस्तुओं का मूल पदार्थ मानना अपूर्ण और अनुचित है। साथ ही, इससे इस पूरे संसार की उत्पत्ति मानना और उसे गति की निहित शक्ति देना ठीक नहीं है। यदि हम जल को ही मूल उपादान मानें, जिसमें परिवर्तन का सिद्धांत निहित है, तो हमें पता लगाना पड़ेगा कि जल में अपना अस्तित्व कहाँ से प्राप्त किया। साथ ही, उसके उत्पादक शक्ति, उत्पत्ति सिद्धांत, तात्विक बल, नियम आदि कैसे अस्तित्व में आए?

19. विश्वकर्मा ने ईश्वर को उपादान कारक माना है। ईश्वर ही आदि में है और ईश्वर ही अंत में है। वह इस दृश्य विश्व से पहले से है, वह विश्वव्यापी शक्ति की उत्पत्ति से भी पहले का है, वह केवल ईश्वर ही है, जिसने विश्व का निर्माण किया और इसे संचालित किया। वह अजन्मा है, जिसमें अभी की सभी चीजें

निवास करती हैं। वह वही है, जो मन से महान है और जो सामर्थ्य में भी महान है। वही बनाने वाला है और वहीं मिटाने वाला है। पिता की भाँति उसने हमें बनाया और यमराज की तरह वह हम सब के भाग्य से परिचित है।

20. बुद्ध ने सभी वैदिक ऋषियों को आदर के योग्य नहीं समझा। उन्होंने केवल दस ऋषियों को सबसे प्राचीन और मंत्रों का मूल रचयिता माना।

21. लेकिन उन मंत्रों में उन्होंने ऐसा कुछ नहीं देखा, जिससे मानव के नैतिक उत्थान में सहायता मिलती हो।

22. बुद्ध की दृष्टि में वेद मरुभूमि के समान निष्प्रयोजन थे।

23. इसलिए बुद्ध ने मंत्रों को इस योग्य नहीं समझा कि इससे कुछ सीखा जा सकता है या ग्रहण किया जा सकता है।

24. इसी प्रकार बुद्ध को वैदिक ऋषियों के दर्शन में भी कुछ सार नहीं दिखाई देता था। निस्संदेह वे (ऋषि) सत्य को अंधेरे में टटोल रहे थे, लेकिन उन्होंने उसे पाया तक नहीं था।

25. उनके सिद्धांत सिर्फ मानसिक उड़ानें या अटकलबाजी थे। वे तर्क या तथ्य पर आधारित नहीं थे। दर्शन के क्षेत्र में उन्होंने किसी नए सामाजिक चिन्तन को जन्म नहीं दिया।

26. इसलिए उन्होंने वैदिक ऋषियों के दर्शन को बेकार समझकर अस्वीकार कर दिया।

2. कपिल-दार्शनिक

1. भारत के प्राचीन दार्शनिकों में सबसे प्रमुख कपिल थे।

2. उनका दार्शनिक दृष्टिकोण अद्वितीय था। दार्शनिक के रूप में वे अपने आप में एक दार्शनिक वर्ग ही थे। उनका दर्शन 'सांख्य-दर्शन' कहा जाता था।

3. उनके दर्शन के सिद्धांत चौंकाने वाले थे।

4. सत्य के लिए प्रमाण आवश्यक है। सांख्य परम्परा का यह पहला सिद्धांत है। प्रमाण के बिना सत्य का अस्तित्व नहीं।

5. सत्य को प्रमाणित करने हेतु कपिल ने केवल दो प्रमाण स्वीकार किए; (1) प्रत्यक्ष और (2) अनुमान।

6. प्रत्यक्ष का अर्थ (इन्द्रियों द्वारा) वर्तमान वस्तु के मानसिक बोध से है।

7. अनुमान तीन प्रकार का होता है-(1) कारण से कार्य का अनुमान, जैसे बादलों की उपस्थिति से वर्षा का अनुमान, (2) कार्य से कारण का अनुमान, जैसे घाटी की नदियों में जल प्रवाह बढ़ने से पहाड़ों पर वर्षा का अनुमान और, (3) सादृश्य के आधार पर अनुमान, जैसे एक आदमी एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाता है, तो वह स्थान परिवर्तन करता है या तारों को अनेक स्थानों पर देखकर यह अनुमान लगाते हैं कि वे भी एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते हैं।

8. उनका अन्य सिद्धांत-सृष्टि की उत्पत्ति और उसके कारण से संबंधित था।

9. कपिल ने इस सिद्धांत को नकार दिया कि किसी सृष्टि-कर्ता ने विश्व का निर्माण किया है। उनके अनुसार उत्पन्न वस्तु पहले से ही कारण में विद्यमान रहती है, जैसे मिट्टी से बरतन या धागों से कपड़ों के टुकड़े बनते हैं।

10. यह पहला आधार है, जिसके कारण कपिल ने इस सिद्धांत को अस्वीकार कर दिया कि विश्व का निर्माण किसी एक सत्ता द्वारा हुआ है।

11. लेकिन उन्होंने अपने मत के समर्थन में और भी आधार बताए हैं।

12. असत् किसी कार्य का कारण नहीं हो सकता, कोई नई उत्पत्ति नहीं है। उत्पाद, वस्तु उस सामग्री से अलग कुछ नया नहीं है, जिससे वह बना है। उत्पाद वस्तु के अस्तित्व में आने से पहले वह उस सामग्री के रूप में पहले से विद्यमान थी, जिससे उसका निर्माण हुआ है। किसी एक निश्चित सामग्री से किसी एक खास वस्तु का ही निर्माण हो सकता है, और कोई विशेष सामग्री ही कोई खास परिणाम दे सकती है।

13. तब वास्तविक विश्व का मूल स्रोत क्या है?

14. कपिल ने कहा कि वास्तविक विश्व के दो रूप हैं-व्यक्त (विकसित) और अव्यक्त (अविकसित)।

15. व्यक्त वस्तुएँ अव्यक्त वस्तुओं का स्रोत नहीं हो सकतीं।

16. व्यक्त वस्तुएँ ससीम होती हैं और यह सृष्टि के मूल स्रोत के स्वभाव से असंगत हैं।

17. सभी व्यक्त वस्तुएँ एक दूसरे के सदृश्य होती हैं, इसलिए कोई भी व्यक्त वस्तु दूसरी व्यक्त वस्तु का अंतिम स्रोत नहीं मानी जा सकती। साथ ही, चूँकि ये सभी एक ही स्रोत से अस्तित्व में आई हैं, इसलिए ये स्रोत नहीं हो सकतीं।

18. कपिल ने आगे तर्क दिया था कि कार्य को अपने कारण से भिन्न होना ही चाहिए, यद्यपि उस कार्य में कारण अवश्य ही निहित होता है। यदि ऐसा है तो विश्व स्वयं ही अंतिम कारण नहीं हो सकता। इसे किसी अंतिम कारण का उत्पाद (परिणाम) होना ही चाहिए।

19. जब पूछा गया कि अव्यक्त की अनुभूति क्यों नहीं होती, इसमें अनुभूति होने योग्य इन्द्रिय गोचर क्यों नहीं होती? कपिल ने उत्तर दिया–

20. ''यह अनेक कारणों से हो सकता है। सूक्ष्म रूप के कारण इसकी अनुभूति नहीं होती, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार अनेक वस्तुओं के अस्तित्व होते हुए भी उनकी अनुभूति नहीं होती है, अथवा अत्यधिक दूरी या अत्यधिक निकटता के कारण उसकी अनुभूति न होती हो, अथवा किसी तीसरी वस्तु के बीच में बाधक बन जाने के कारण अथवा कोई समान वस्तु के सम्मिश्रण के कारण अथवा किसी तीव्र वेदना की उपस्थिति के कारण अथवा अंधापन के कारण अथवा इन्द्रिय-दोष या मानसिक विकलांगता के कारण अनुभूति नहीं होती हो।''

21. जब पूछा गया–''तब विश्व का मूल स्रोत क्या हैं? विश्व के व्यक्त और अव्यक्त रूप में क्या अंतर है?''

22. कपिल का उत्तर था–''व्यक्त वस्तुओं का कारण होता है और अव्यक्त वस्तुओं का भी कारण होता है। लेकिन दोनों के स्रोत का कोई कारण नहीं है, वह स्वतंत्र है।''

23. ''व्यक्त वस्तुओं की संख्या अनेक है। वे क्षेत्र और नाम से सीमित हैं उनका स्रोत एक ही है-वह नित्य और सर्वव्यापी है। व्यक्त वस्तुएँ क्रियाशील होती हैं और उनके अंग होते हैं। सभी में स्रोत आसन्न होता है, लेकिन न तो वह क्रियाशील होता है और न ही उसके अंग होते हैं।''

24. कपिल ने तर्क दिया कि अव्यक्त के विकास की प्रक्रिया उन तीन मूल तत्वों की क्रियाओं द्वारा होती हैं, जिनसे वह निर्मित होती है। वे तत्व हैं–सत्व, रज और तम। ये तीन गुण कहे जाते हैं।

25. इनमें से पहला सत्व से हमारा तात्पर्य प्रकृति में प्रकाश से है, जो प्रकट करता है, जो मनुष्यों को सुख देता है। दूसरा जो प्रेरित करता है, संचालित करता है, क्रियाशीलता उत्पन्न करता है। तीसरा गुण जो भारी है, रोकता है, उपेक्षा या निष्क्रियता को उत्पन्न करता है।

26. तीनों गुण परस्पर सम्बद्ध होकर क्रियाशील होते हैं। वे एक–दूसरे पर हावी हो जाते हैं, वे एक–दूसरे के सहायक होते हैं और वे एक–दूसरे में मिल जाते हैं। वे परस्पर क्रियाशील होकर दीपक की लौ, तेल और बत्ती की तरह प्रकाशित होते हैं।

27. जब तीनों गुण पूर्ण संतुलन में होते हैं, एक दूसरे पर कोई हावी नहीं होता है, तो उस समय विश्व अचेतन प्रतीत होता है और विकास रुक जाता है।

28. जब तीनों गुण संतुलित मात्रा में नहीं होते हैं, तो वे एक दूसरे पर हावी हो जाते हैं और विश्व सचेतन हो जाता है एवं विकास आरंभ हो जाता है।

29. ये गुण असंतुलित क्यों हो जाते हैं? ऐसा पूछे जाने पर कपिल का उत्तर था कि तीनों गुणों के संतुलन में बाधा दुःख की उपस्थिति के कारण उत्पन्न होती है।

30. कपिल के दर्शन के सिद्धान्त कुछ–कुछ इसी प्रकार थे।

31. सभी दार्शनिकों की अपेक्षा बुद्ध कपिल के सिद्धान्तों से ही अधिक प्रभावित थे।

32. केवल उनके दर्शन की ही शिक्षाएँ बुद्ध को तर्कसंगत और कुछ–कुछ यथार्थता पर आधारित लगीं।

33. लेकिन बुद्ध ने कपिल की सभी शिक्षाओं को स्वीकार नहीं किया। कपिल की केवल तीन बातें ही बुद्ध को स्वीकार्य थीं।

34. उन्होंने स्वीकार किया कि सत्य प्रमाण पर आधारित होना चाहिए। यथार्थता बुद्धिवाद पर आधारित होना चाहिए।

35. उन्होंने स्वीकार किया था कि इस मान्यता के पीछे कोई तार्किक या तथ्यपरक आधार नहीं है कि ईश्वर का अस्तित्व है या ईश्वर ने ही विश्व की उत्पति की है।

36. उन्होंने स्वीकार किया कि संसार में दुःख है।

37. कपिल की अन्य शिक्षाओं को अपने उद्देश्य के लिए प्रासंगिक न समझकर, उन्होंने ग्रहण नहीं किया।

3. ब्राह्मण–ग्रन्थ

1. वेदों के बाद धार्मिक पुस्तकों में ब्राह्मण ग्रन्थ आते हैं। दोनों ही ग्रन्थ पवित्र माने जाते थे। वास्तव में ब्राह्मण–ग्रन्थ वेदों के ही भाग हैं। दोनों साथ–साथ हैं और उनका एक सम्मिलित नाम 'श्रुति' है।

2. चार अभिधारणाओं पर ब्राह्मण दर्शन आधारित था।

3. सबसे पहली अभिधारणा थी कि वेद न केवल पवित्र हैं, बल्कि अपौरुषेय हैं और उन पर प्रश्न चिह्न नहीं लगाया जा सकता।

4. ब्राह्मण दर्शन की दूसरी अभिधारणा 'आत्मा की मुक्ति' थी। इसका अर्थ पुनर्जन्म से छुटकारा है, जो केवल वैदिक यज्ञों, धार्मिक कर्मकांडों को पूरा करने और ब्राह्मणों को दान देने से ही मिल सकती है।

5. ब्राह्मणों के पास वेदों की तरह न केवल आदर्श धर्म के लिए एक सिद्धांत था, बल्कि एक आदर्श समाज के लिए भी सिद्धांत था।

6. आदर्श समाज के इस ढांचे का नामकरण उन्होंने चातुर्वर्ण्य रखा था। यह वेदों में निहित है और चूंकि वेद तर्कातीत हैं और उन पर प्रश्न चिन्ह नहीं लगाया जा सकता, इसलिए इस ढांचे के रूप में चातुर्वर्ण भी तर्कातीत हैं और प्रश्न चिन्ह से परे हैं।

7. समाज का ढांचा कुछ खास नियम पर आधारित था।

8. पहला नियम था कि समाज चार भागों (वर्णों) में विभक्त होना चाहिए-(1) ब्राह्मण, (2) क्षत्रिय, (3) वैश्य, और (4) शूद्र।

9. दूसरा नियम था कि इन चार वर्णों में सामाजिक समानता नहीं हो सकती। उन्हें आपस में क्रमिक असमानता के नियम से बंधा होना चाहिए।

10. सबसे ऊपर ब्राह्मण को रखा गया। ब्राह्मण के नीचे लेकिन वैश्यों के ऊपर क्षत्रियों को रखा गया। वैश्यों को क्षत्रियों के नीचे लेकिन शूद्रों से ऊपर रखा गया और शूद्रों को सबसे नीचे रखा गया।

11. ये चारों वर्ण अधिकार एवं विशेष सुविधाओं में एक-दूसरे के समान होने का दावा नहीं कर सकते। अधिकार एवं विशेष-सुविधाओं का मामला क्रमिक असमानता के नियम के अनुसार ही संचालित होता था।

12. ब्राह्मण को वे सभी अधिकार एवं विशेष सुविधाएं प्राप्त थीं, जिनकी वह इच्छा रखता था। लेकिन एक क्षत्रिय उतना अधिकार एवं विशेष सुविधाओं का दावा नहीं कर सकता था, जितना कि एक ब्राह्मण कर सकता था। एक वैश्य की अपेक्षा उसके पास अधिक अधिकार एवं विशेष सुविधाएं प्राप्त थीं। वैश्य के अधिकार एवं विशेष सुविधाएं शूद्रों की अपेक्षा अधिक थीं। लेकिन वह एक क्षत्रिय के बराबर दावा नहीं कर सकता था। शूद्र को कोई अधिकार प्राप्त नहीं

था, तो विशेष सुविधाओं की तो बात ही कहाँ उठती है। उसका विशेषाधिकार केवल यही था कि वह ऊपर के तीनों वर्णों को रुष्ट किए बिना, जीवित कर उनकी सेवा करता है।

13. चातुर्वर्ण्य का तीसरा नियम व्यवसाय के विभाजन से संबंधित था। ब्राह्मण का व्यवसाय पढ़ना, पढ़ाना और धार्मिक कृत्यों का संचालन कराना था। क्षत्रिय का व्यवसाय युद्ध करना था। व्यापार वैश्य के हिस्से में था। शूद्रों का व्यवसाय ऊपर के तीनों वर्णों की सेवा करना था। अलग-अलग वर्णों के व्यवसाय अनन्य रूप से अलग थे। एक वर्ण दूसरे के व्यवसाय को नहीं अपना सकता था।

14. चातुर्वर्ण्य का चौथा नियम शिक्षा के अधिकार से संबंधित था। चातुर्वर्ण्य के ढांचे के अनुसार शिक्षा का अधिकार ऊपर के तीन वर्ण, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को ही प्राप्त था। शूद्रों को शिक्षा के अधिकार से वंचित रखा गया। चातुर्वर्ण्य का यह नियम केवल शूद्रों को ही शिक्षा के अधिकार से वंचित नहीं रखता था, बल्कि ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों की स्त्रियों को भी शिक्षा के अधिकार से वंचित रखा गया था।

15. पाँचवा नियम था। इसके अनुसार मनुष्य के जीवन को चार भागों (स्तरों) में बाँटा गया था। पहली आश्रय ब्रह्मचर्य, दूसरी गृहस्थाश्रम, तीसरी वानप्रस्थ और चौथा आश्रय संन्यास की अवस्था कहलाती है।

16. प्रथम आश्रम का उद्देश्य अध्ययन और शिक्षा था। दूसरी आश्रम का उद्देश्य विवाहित जीवन बिताना था। तीसरी अवस्था का उद्देश्य आदमी को वन-वासी जीवन से परिचित कराना था अर्थात् घर को छोड़े बिना ही पारिवारिक बंधनों से मुक्त होना। चौथे आश्रम का उद्देश्य आदमी को संन्यासी बनकर इस योग्य बनाना था कि वह ईश्वर की खोज में और उससे मिलने का प्रयास करे।

17. इन आश्रमों के लाभ केवल ऊपर के तीन वर्णों को पुरुषों के लिए थे। पहला आश्रम शूद्रों और स्त्रियों के लिए खुला नहीं था। इसी प्रकार अंतिम आश्रम भी शूद्रों और स्त्रियों के लिए वर्जित था।

18. 'आदर्श-समाज' के लिए इस प्रकार का दिव्य ढांचा था, जिसे चातुर्वर्ण्य कहा गया था। ब्राह्मणों ने इस व्यवस्था को आदर्शवादी बनाया और आदर्श में किसी प्रकार की कमी नहीं छोड़ी।

19. ब्राह्मणी दर्शन की चौथी अभिधारणा कर्म के सिद्धांत की थी। यह आत्मा के पुनर्जन्म के सिद्धान्त का एक भाग था। ब्राह्मणों का 'कर्मवाद' के इस प्रश्न

का उत्तर था–"नए जन्म में आत्मा नया शरीर लेकर कहाँ जन्म लेती हैं?" ब्राह्मण–दर्शन का उत्तर था कि यह आदमी के पूर्व–जन्म के कर्मों पर निर्भर करता है। दूसरे शब्दों में, यह उसके कर्म पर निर्भर करता है।

20. ब्राह्मणवाद के प्रथम सिद्धांत का बुद्ध ने जोरदार शब्दों में विरोध किया। उन्होंने उनकी इस अभिधारणा को अस्वीकार कर दिया कि, वेद अपौरुषेय हैं और उन पर प्रश्न नहीं किए जा सकते।

21. बुद्ध की दृष्टि से तर्क से परे कुछ हो नहीं सकता और कुछ भी अंतिम नहीं हो सकता। जब भी जरूरत हो सभी कुछ पुनर्परीक्षण एवं पुनर्विचार के लिए हमेशा मस्तिष्क खुला रखना चाहिए।

22. आदमी को सत्य और यथार्थ सत्य अवश्य जानना चाहिए। बुद्ध के लिए विचार की स्वतंत्रता सबसे महत्वपूर्ण बात थी और उनको इस बात पर पक्का विश्वास था कि विचारों की स्वतंत्रता सत्य की खोज का एक मात्र साधन है।

23. वेदों के तर्क से परे (अपौरुषेय) मानने का अर्थ विचारों की स्वतंत्रता को अस्वीकार करना है।

24. इन्हीं कारणों के चलते ब्राह्मणी–दर्शन की यह अवधारणा उनको सबसे अधिक घृणित लगी थी।

25. ब्राह्मणी–दर्शन की द्वितीय अवधारणा के भी वे उतने ही सख्त विरोधी थे। बुद्ध ने यह तो स्वीकार किया कि यज्ञ में कुछ अच्छाई है, लेकिन उन्होंने सच्चे यज्ञ और झूठे यज्ञ में अंतर किया।

26. दूसरों के कल्याण (भलाई) के लिए आत्म–परित्याग की भावना में किए गए यज्ञ को उन्होंने सच्चा ज्ञान माना। व्यक्तिगत लाभ हेतु ईश्वर या देवता पर चढ़ावा के नाम पर जीव–हत्या की दृष्टि से किए गए यज्ञ को उन्होंने 'झूठा यज्ञ' कहा।

27. ब्राह्मणवादी–यज्ञ मुख्यतः अपने देवताओं को खुश करने के लिए पशुओं की बलि ही थी। 'झूठे यज्ञ' कहकर उन्होंने इसकी निन्दा की। आत्मा की मुक्ति 'मोक्ष' के उद्देश्य से किए गए ऐसे यज्ञ को बुद्ध ने स्वीकार नहीं किया।

28. जो यज्ञों के विरोधी थे, वे ब्राह्मणों का यह कहते हुए उपहास किया करते थे–"यदि एक पशु की बलि से कोई स्वर्ग जा सकता है, तो अपने माता–पिता की बलि देनी चाहिए, क्योंकि यह स्वर्ग जाने का सबसे आसान रास्ता है।'

29. बुद्ध पूर्णरूपेण इस विचार के समर्थक थे।

30. यज्ञ सिद्धांत की ही तरह बुद्ध को चातुर्वर्ण्य सिद्धांत भी घृणास्पद लगता था।

31. ब्राह्मणवाद द्वारा स्थापित चातुर्वर्ण्य के नाम पर समाज संगठन की कल्पना उनको सर्वथा अप्राकृतिक लगती थी। इसकी वर्णाश्रित संरचना अनिवार्य और मनमानी थी। यह एक आदेश देकर बनवाये समाज के समान था। वे एक खुले एवं स्वतंत्र समाज के पक्षपाती थे।

32. ब्राह्मणों की चातुर्वर्ण्य की एक जड़ सदृश्य समाज-व्यवस्था थी, जिसमें परिवर्तन संभव नहीं था। एक बार जो ब्राह्मण के घर पैदा हो गया, वह सदा के लिए ब्राह्मण हो गया। क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र भी एक बार जो जहाँ पैदा हो गया, वह सदा के लिए वही हो गया। समाज, रचना का आधार जन्म के आधार पर आधारित था। बड़े से बड़ा पाप करने से किसी व्यक्ति की प्रतिष्ठा और पद का दर्जा नीचे नहीं हो सकता था और न बड़े से बड़ा पुण्य कर्म किसी का दर्जा बढ़ा सकता था।

33. असमानता सभी समाजों में थी। लेकिन ब्राह्मणवाद में यह अलग किस्म की थी। ब्राह्मणों द्वारा उपदेशित असमानता आधिकारिक धार्मिक सिद्धांत थी। वह केवल विकसित ही नहीं थी। ब्राह्मणवाद समानता में विश्वास नहीं करता था। वास्तव में, उसने समानता का विरोध किया गया था।

34. ब्राह्मणवाद असमानता से ही संतुष्ट नहीं था, बल्कि ब्राह्मणवाद की आत्मा क्रमिक असमानता में ही बसी थी।

35. बुद्ध ने सोचा कि इस क्रमिक असमानता से समाज में सद्भाव न आकर ऊपर के वर्णों के प्रति घृणा और नीचे के वर्णों के प्रति अवमानना या जुगुप्सा की भावना बढ़ेगी, जो स्थायी संघर्ष का स्रोत बन सकती है।

36. ब्राह्मणवाद ने चारों वर्णों के लिए व्यवसाय भी निश्चित कर दिए थे। व्यक्ति को व्यवसाय के चयन की स्वतंत्रता नहीं थी। साथ ही, ये पेशे कमोवेश रुचि एवं दक्षता के आधार पर निश्चित न होकर जन्म के आधार पर निश्चित थे।

37. चातुर्वर्ण्य के नियमों का ध्यानपूर्वक सिंहावलोकन करने पर बुद्ध को इस निर्णय पर पहुँचने में कोई परेशानी नहीं हुई कि ब्राह्मणवाद द्वारा निर्मित सामाजिक व्यवस्था का दार्शनिक आधार अगर स्वार्थपरक नहीं था, तो गलत अवश्य था।

38. उन्हें साफ लग रहा था कि इस व्यवस्था से भी के कल्याण की आशा तो नहीं की जा सकती, बल्कि इससे सबका हितसाधन भी नहीं हो सकता। वास्तव में कुछ लोगों की स्वार्थपूर्ति के लिए ही जान-बूझकर इसका निर्माण इस प्रकार किया गया। इसमें अपनी ही तरह से बने अतिमानव (Super man) वर्ग की सेवा के लिए आदमी को तैयार किया गया था।

39. कमजोर को दबाकर और उनका शोषण कर उन्हें पूर्ण दासता में रखने के उद्देश्य से ही इसका निर्माण किया गया था।

40. बुद्ध ने सोचा कि ब्राह्मणों का कर्म-सिद्धांत विद्रोह की भावना को पूर्णतः समाप्त करने के लिए बनाया गया था। आदमी के दुःख का कारण स्वयं आदमी के अलावा कोई नहीं था। विद्रोह दुःख की अवस्था नहीं बदल सकता क्योंकि दुःख उसके पूर्व-जन्म के कर्मों द्वारा ही निर्धारित है।

41. दो वर्गों-शूद्र और स्त्रियाँ, जिनकी मानवता को ब्राह्मणवाद ने छिन्न-भिन्न कर दिया था, उनमें इस व्यवस्था का विरोध करने की कोई शक्ति नहीं थी।

42. वे ज्ञान प्राप्ति के अधिकार से वंचित कर दिए गए। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि जबरदस्ती अज्ञानता के कारण वे यह नहीं समझ पाए कि उनकी यह निम्न-स्तर की हालत कैसे पैदा हुई। वे जान नहीं पाए कि ब्राह्मणवाद ने उनके जीवन के महत्त्व को किस प्रकार पूर्णतः दलित बना डाला। ब्राह्मणवाद के खिलाफ विद्रोह करने की बजाय, वे उसके सेवक और समर्थक बन गए।

43. स्वतंत्रता प्राप्ति को निमित्त शस्त्र उठाने का अधिकार आदमी का अंतिम साधन है। लेकिन शूद्रों से हथियार उठाने का भी अधिकार छीन लिया गया था।

44. ब्राह्मणवाद के अन्तर्गत स्वार्थी ब्राह्मणों, शक्तिशाली व क्रूर व्यक्तियों और धनी वैश्यों के षडयन्त्र के शिकार होने के लिए बेचारे शूद्रों को निःसहाय छोड़ दिया गया।

45. क्या इसे सुधारा जा सकता था? बुद्ध जानते थे कि तथाकथित ईश्वर द्वारा बनाई गई सामाजिक व्यवस्था में सुधार नहीं हो सकता था और इसका अंत नहीं किया जा सकता था।

46. इन्हीं कारणों से बुद्ध ने ब्राह्मणवाद को जीवन के सच्चे मार्ग का विरोधी बताकर अस्वीकार कर दिया।

4. उपनिषद् और उनकी शिक्षाएँ

1. उपनिषद् भी वैदिक-वाङ्.मय का हिस्सा माने जाते हैं। ये वेदों के भाग नहीं हैं। यह धर्म-वैधानिक प्रमाण नहीं है।
2. इतना होने पर भी वे धार्मिक साहित्य के ही अंग हैं।
3. उपनिषदों की संख्या काफी अधिक है। कुछ महत्वपूर्ण और कुछ एकदम महत्त्वहीन हैं।
4. उनमें से कुछ वैदिक विचारकों एवं ब्राह्मण पुरोहितों के विरुद्ध थे।
5. वे सभी इस बात से सहमत थे कि वैदिक अध्ययन 'अविद्या' का ही अध्ययन है।
6. वे सभी सहमत थे कि वेदों और वैदिक विज्ञान का अध्ययन घटिया कोटि का है।
7. वे सभी वेदों की दिव्य उत्पत्ति पर प्रश्न-चिह्न लगाने के पक्ष में थे।
8. वे सभी यज्ञ, श्राद्ध और पुरोहितों के दान के प्रभाव को अस्वीकार करने के लिए सहमत थे, जो कि ब्राह्मण-दर्शन के मूल सिद्धांत हैं।
9. फिर भी यह उपनिषदों का मुख्य विषय नहीं था। उनके वाद-विवाद का मुख्य विषय है-ब्रह्म और आत्मा।
10. ब्रह्म एक सर्वव्यापी तत्व है, जो विश्व को एकत्व में बाँधे हुए है और आदमी की मुक्ति भी इसी में है कि उसकी आत्मा को इस बात का बोध हो जाए कि वह भी ब्रह्म है।
11. उपनिषदों की मुख्य अभिधारणा थी कि ब्रह्म ही सत्य है और आत्मा ब्रह्म का अंश होने के कारण उसके समान है। उपाधियों में जकड़े होने के कारण आत्मा को बोध नहीं होता कि वह ब्रह्म है।
12. प्रश्न था-क्या ब्रह्म सत्य है? उपनिषद् की अभिधारणा की स्वीकृति इसी प्रश्न के उत्तर पर निर्भर करती है।
13. 'ब्रह्म सत्य है' इस अभिधारणा के समर्थन में बुद्ध को कोई प्रमाण नहीं मिल सका। इसलिए, उन्होंने उपनिषदों की अभिधारणा को अस्वीकार कर दिया।
14. ऐसा नहीं है कि इस बारे में उपनिषदों के रचयिताओं से प्रश्न नहीं पूछे गए थे।

15. इस प्रकार के प्रश्न याज्ञवल्क्य जैसे महान् ऋषि से पूछे गए थे, जिसकी वृहदारण्यक उपनिषद् में महत्त्वपूर्ण भूमिका थी।

16. उनसे पूछा गया था–"ब्रह्म क्या है? आत्मा क्या है?" याज्ञवल्क्य केवल इतना उत्तर दे सका था–"नेति! नेति!" मैं कुछ नहीं जानता! मैं कुछ नहीं जानता।"

17. बुद्ध ने पूछा–"जिसके बारे में कोई कुछ नहीं जानता है, वह सत्य कैसे हो सकता है?" इसलिए कल्पना पर आधारित उपनिषद् की अभिधारणा को अस्वीकार करने में उन्हें कोई परेशानी नहीं हुई।

छठा-भाग

बुद्ध और उनके समकालीन

1. उनके समकालीन
2. अपने समकालीनों के प्रति व्यवहार

1. उनके समकालीन

1. गौतम की प्रव्रज्या के समय देश में अत्यधिक बौद्धिक उत्तेजना की उथल-पुथल मची हुई थी। ब्राह्मणी दर्शन के अलावा अलग-अलग दर्शन की बासठ परम्पराएँ थीं। ये सभी ब्राह्मणी दर्शन की विरोधी थीं। उनमें से कम से कम छह ध्यान देने योग्य थीं।

2. इन दार्शनिक परम्पराओं में से एक के प्रमुख थे पूर्ण, काश्यप। उनका विचार 'अक्रियावाद' कहलाता था। उनका कहना था कि आत्मा किसी भी तरह कर्म द्वारा प्रभावित नहीं होती। चाहे कोई काम करे या कराए, चाहे कोई किसी को चोट पहुँचाए या कोई किसी की हत्या कर दे, चाहे कोई चोरी करे या करवाए या डकैती डाले या डलवाए, चाहे कोई व्यभिचार करे या करवाए, चाहे कोई झूठ बोले या बुलवाए, आत्मा पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता है। कोई गंदे से गंदा कार्य भी आत्मा को पाप से लिप्त नहीं करता है। कोई कार्य कितना ही अच्छा हो आत्मा को पुण्य से युक्त नहीं करता। आत्मा पर कोई प्रतिक्रिया (फल) नहीं होती। जब कोई व्यक्ति मरता है तो उसके सारे तत्व उन मूल तत्वों में मिल जाते हैं, जिनसे उसका शरीर बना है। मरने के बाद कुछ नहीं बचता, न शरीर न आत्मा।

3. दूसरी परम्परा (विचारधारा) नियतिवाद के नाम से जानी जाती थी। इसके मुख्य प्रस्तुतकर्ता मक्खली गोसाल थे। उनका विचार एक प्रकार का भाग्यवादी या निश्चयवादी था। उनका विचार था कि कोई कुछ नहीं कर सकता और न कोई कुछ रोक सकता है। घटनाएँ होती हैं। कोई होने के लिए मजबूर नहीं कर सकता। दु:ख को कोई नहीं टाल सकता, न कोई उसे बढ़ा सकता है और न कोई उसे कम कर सकता है। प्रत्येक व्यक्ति को सांसारिक अनुभवों से गुजरना ही चाहिए।

4. तीसरी परम्परा (विचारधारा) 'उच्छेदवाद' के नाम से जानी जाती थी। इसके प्रमुख प्रस्तुतकर्ता अजित केसकम्बल थे। इनका विचार एक प्रकार का सर्वनाशवाद था। उन्होंने बताया कि यज्ञ, होम में कुछ नहीं है; कर्मों के फल जैसी कोई चीज नहीं है जिसे आत्मा उपयोग कर सके या उसे भुगत सके। न तो कोई स्वर्ग है और न ही नरक। आदमी सांसारिक दु:खों के कुछ तत्वों द्वारा निर्मित है। आत्मा इससे बच नहीं सकती। संसार में जो दु:ख और कष्ट हैं, उनसे आत्मा नहीं बच सकती। ये दु:ख और कष्ट स्वत: मिट जाएँगे। आत्मा को महाकल्प के चौरासी लाख जन्मों से होकर गुजरना ही पड़ेगा, तभी आत्मा के कष्ट और

दु:ख मिट सकते हैं, इसके न तो पहले और न ही किसी दूसरे साधन से।

5. चौथी परम्परा 'अन्योन्यवाद' कहलाती थी। इसके प्रधान पकुध कच्चायन थे। उन्होंने उपदेश दिया कि प्राणी सात तत्वों से बना है-पृथ्वी, जल, तेज, वायु, सुख, दु:ख और आत्मा। वे एक दूसरे से स्वतंत्र हैं, उनका एक-दूसरे पर प्रभाव नहीं पड़ता। वे स्वत: निर्मित हैं और नित्य हैं। कोई उनका नाश नहीं कर सकता। यदि कोई किसी आदमी का सिर भी काट दे, तो भी वह उसे मारना नहीं होता, यह तो केवल इतना ही है कि अस्त्र सात तत्वों में प्रवेश कर गया है।

6. संजय बेलपुत्त के दर्शन की अपनी ही परम्परा थी। यह 'विक्षेप-वाद' के नाम से जानी जाती थी। यह एक प्रकार का संदेहवाद था। उन्होंने तर्क दिया-"यदि मुझसे कोई पूछे कि स्वर्ग है?, यदि मैं महसूस करूँ कि स्वर्ग है तो मैं हाँ कहूँगा। यदि महसूस करूँ कि स्वर्ग नहीं है, तो मैं नहीं कहूँगा। यदि मुझसे पूछा जाए कि क्या मानवों का निर्माण होता है, अपने अच्छे या बुरे कर्मों का फल आदमी को भोगना पड़ता है, मृत्यु के पश्चात् क्या आत्मा रहती है तो मैं 'नहीं' कहूँगा क्योंकि मुझे नहीं लगता है कि इन सबका कोई अस्तित्व है। संक्षेप में संजय बेलपुत्त का यही मत था।"

7. दर्शन की छठी परम्परा 'चतुर्यामसंवरवाद' के नाम से जानी जाती है। इसके प्रमुख महावीर थे, जो उस समय जीवित थे, तब गौतम प्रकाश की खोज में थे। महावीर निगण्ठनाथ पुत्र भी कहे जाते थे। महावीर का कहना था कि अपने पूर्व और वर्तमान जीवन के बुरे कर्मों के कारण आत्मा को पुनर्जन्म ग्रहण करना पड़ता है। इसलिए उन्होंने सलाह दी कि बुरे कर्मों को तपश्चर्या द्वारा समाप्त करना चाहिए। वर्तमान जीवन में बुरे कर्मों से रोकने के लिए महावीर ने चातुर्याम धर्म अर्थात् चार नियमों का पालन करने का उपदेश दिया-(1) हिंसा न करना, (2) चोरी न करना, (3) झूठ न बोलना और (4) धन संग्रह न करना और ब्रह्मचर्य का पालन करना।

2. अपने समकालीनों के प्रति व्यवहार

1. बुद्ध ने इन नए दार्शनिकों के विचार को स्वीकार नहीं किया।

2. उनके विचारों को अस्वीकार करना अकारण नहीं था। उन्होंने कहा-

3. यदि पूर्ण काश्यप या प्रकुध कच्चायन के विचार सही हैं, तब तो कोई कुछ भी बुरा कर सकता है, किसी को कुछ भी हानि पहुँचा सकता है, एक दूसरे की

हत्या भी कर सकता है और उस पर किसी प्रकार का सामाजिक उत्तरदायित्व या परिणाम भी नहीं होगा।

4. यदि मक्खली गोसाल का मत सही है, तब तो आदमी भाग्य का गुलाम हो जाता है। वह अपने को मुक्त नहीं कर सकता।

5. यदि अजित केसकम्बल का मत सही है, तो आदमी के पास खाने, पीने और मौज करने के अलावा करने को कुछ नहीं बच जाता है।

6. यदि संजय बेलट्ठिपुत्र का मत सही है तो आदमी केवल पानी की तरह यों ही बहता रहेगा, एक सही जीवन–दर्शन के बिना वह जीता रहेगा।

7. यदि निगण्ठनाथ पुत्र का मत सही है, तो आदमी का जीवन कायक्लेश और तपश्चर्या के अधीन हो जाएगा, जिससे आदमी की इच्छाओं और मूल भावनाओं का पूर्ण विच्छेद हो जाएगा।

8. इस प्रकार इन दार्शनिकों द्वारा बताए गए जीवन मार्गों में कोई भी बुद्ध को अच्छा नहीं लगा। उन्होंने सोचा कि ये सब विचार उन व्यक्तियों के थे जो आशाहीन, निस्सहाय एवं असावधान थे। इसलिए उन्होंने कहीं दूसरी जगह से ही प्रकाश खोजने का निर्णय लिया।

सातवाँ-भाग

समानता और विषमता

1. जिन्हें उन्होंने अस्वीकार किया
2. जिन्हें उन्होंने परिवर्तित किया
3. जिन्हें उन्होंने स्वीकार किया

1. वे सिद्धान्त जिन्हें उन्होंने अस्वीकार किए

1. इस प्रकार का दार्शनिक और धार्मिक पर्यवेक्षण यह दिखाता है कि बुद्ध के शासन (सासन) स्थापना के समय कुछ खास विचार लोगों के दिमाग में घर कर गए थे। वे इस प्रकार थे –

    (1) वेदों में अनन्य (अचूक) विश्वास;

    (2) मोक्ष या आत्मा की मुक्ति अर्थात् पुनर्जन्म पर रोकने में विश्वास; अर्थात् वेदों को स्वतः प्रमाण मानना;

    (3) धार्मिक संस्कारों एवं यज्ञों को मोक्ष के साधन मानने में विश्वास;

    (4) चातुर्वर्ण्य को सामाजिक संगठन का आदर्श मानने में विश्वास;

    (5) ईश्वर को सृष्टिकर्ता और ब्रह्म को विश्व का मूल स्रोत मानने का विश्वास;

    (6) आत्मा में विश्वास;

    (7) संसार चक्र के साथ-साथ अर्थात् आत्मा के पुनर्जन्म में विश्वास;

    (8) कर्मवाद में विश्वास अर्थात् अपने पूर्व-जन्म में किए कर्मों के आधार पर वर्तमान जीवन में आदमी की स्थिति में विश्वास करना।

2. अपने शासन के सिद्धांतों को स्थापित करते समय बुद्ध ने इन पुराने विचारों को अपने ही ढंग से लिया।

3. निम्नलिखित विचारों को उन्होंने अस्वीकार कर दिया :

    (1) इस प्रकार के व्यर्थ के मानसिक संकल्प-विकल्प में डूबने की उन्होंने निंदा की कि मैं कब, कहाँ से आया हूँ और मैं क्या कहूँ?

    (2) उन्होंने आत्मा के बारे में सभी मान्यताओं को अस्वीकार कर दिया। उन्होंने आत्मा को न शरीर, न वेदना, न संज्ञा, न संस्कार और न विज्ञान ही माना।

    (3) उन्होंने कुछ धार्मिक गुरुओं के उच्छेदवादी मतों को नहीं माना।

    (4) उन्होंने नास्तिकों के मतों की भी निन्दा की।

    (5) उन्होंने इस सिद्धांत को नहीं माना कि विश्व-विकास का आरम्भ किसी के ज्ञान से बंधा है।

(6) उन्होंने इस सिद्धांत का खंडन किया कि आदमी ईश्वर द्वारा निर्मित है या वह किसी ब्रह्म के शरीर का अंश है।

(7) उन्होंने आत्मा के अस्तित्व की या तो उपेक्षा की या अस्वीकार किया।

2. वे बातें जिनमें उन्होंने परिवर्तन किया

1. उन्होंने कार्य-कारण के महान नियम को उसके उप-सिद्धांतों सहित प्रतीत्य समुत्पाद के रूप में मान्य ठहराया।
2. उन्होंने भाग्यवादी मत एवं इसी तरह के मूर्खतापूर्ण मतों का खण्डन किया कि किसी ईश्वर ने आदमी और विश्व के भविष्य को पहले से ही तय कर रखा है।
3. उन्होंने इस सिद्धांत को अस्वीकार कर दिया कि किसी पिछले जन्म में किए गए कर्मों में इतनी सामर्थ्य है कि वे इस जन्म के कर्मों को निष्क्रिम करके दुख का कारण बनें। उन्होंने कर्म के भाग्यवादी सिद्धांत को अस्वीकार कर दिया। उन्होंने पुराने कर्मवाद सिद्धांत की जगह एक बहुत ही अधिक वैज्ञानिक 'कर्मवाद' की स्थापना की। उन्होंने पुरानी बोतल में नई सुरा भरने जैसा काम किया।
4. आवागमन आत्मा के संसरण के सिद्धांत की जगह असंसरित सिद्धांत स्थापित किया।
5. उन्होंने मोक्ष या आत्मा की मुक्ति के सिद्धांत की जगह निर्वाण के सिद्धांत को स्थापित किया।
6. इस प्रकार बुद्ध-शासन मौलिक है, जो कुछ इसमें पुराना है उसे या तो परिवर्तित कर दिया गया या उसकी नई व्याख्या कर दी गई।

3. वे बातें जिन्हें उन्होंने स्वीकार किया

1. उनकी शिक्षा की पहली विशेषता इस बात में हैं कि मन को सभी छह चीजों का केन्द्र-बिन्दु माना गया।
2. मन सभी चीजों का पूर्वगामी है, वह उस पर प्रभाव डालता है, उनका निर्माण करता है। यदि मन में समझ है, तो सभी चीजें समझ में आ जाती हैं।

3. मन सभी मानसिक प्रवृत्तियों में प्रधान है। यह सभी मानसिक-प्रवृत्तियों का मुखिया है। उन्हीं मानसिक-प्रवृत्तियों से यह मन बना हुआ है।

4. इसलिए सबसे पहले मन का विकास करना है।

5. उनकी शिक्षा की दूसरी विशेषता यह है कि हमारे भीतर उत्पन्न होने वाली सभी अच्छी या बुरी प्रवृत्तियों का मूल स्रोत मन ही है, जिनका हमें बाहर से शिकार होना पड़ता है।

6. जो कुछ भी बुराई है, जो बुराई से संबंधित है, बुराई के साथ है-सभी मन की उपज है, जो कुछ भी अच्छाई की है, अच्छाई से संबंधित है, अच्छाई के साथ हैं-वह सब मन की उपज है।

7. यदि कोई बुरे मन से बोलता या करता है तो दुःख उसके पीछे-पीछे ऐसे ही हो लेता है जैसे गाड़ी के पहिए गाड़ी को खींचने वाले बैलों के पीछे-पीछे।

8. उनकी शिक्षाओं की तीसरी विशेषता है कि पापपूर्ण कार्यों से दूर रहो।

9. उनकी शिक्षा की चौथी विशेषता है कि असली धर्म धार्मिक पुस्तकों में नहीं है, अपितु धार्मिक सिद्धांतों के विश्लेषण करना है।

10. क्या कोई कह सकता है कि बुद्ध का धर्म उनके द्वारा बनाया गया नहीं हैं?

अध्याय-दो

धर्मांतरण अभियान

पहला भाग	-	बुद्ध और उनका विशद योग
दूसरा भाग	-	परिव्राजकों का धर्मांतरण
तीसरा भाग	-	कुलीनों और धार्मिकों का धर्मांतरण
चौथा भाग	-	जन्म-भूमि का आह्वान
पाँचवाँ भाग	-	धर्मांतरण अभियान का पुनरारम्भ
छठा भाग	-	निम्न और निम्नतम लोगों का धर्मांतरण
सातवाँ भाग	-	स्त्रियों को धर्म-दीक्षा
आठवाँ भाग	-	पतितों तथा अपराधियों को धर्म-दीक्षा

पहला – भाग

बुद्ध और उनका विशद योग

1. उपदेश देना या नहीं देना
2. ब्रह्म सहपति द्वारा शुभ समाचार की घोषणा
3. दो प्रकार के धर्मांतरण

1. उपदेश देना या नहीं देना

1. बोधि प्राप्त कर लेने और अपने मार्ग (सद्धर्म) को सूत्रबद्ध करने के उपरान्त, बुद्ध के मन में शंका उत्पन्न हुई। क्या उन्हें आगे बढ़ना चाहिये और अपने मत (धर्म) का उपदेश देना चाहिये या क्या उन्हें अपनी ही पूर्णता में स्वयं को समर्पित करते रहना चाहिए?

2. उन्होंने स्वयं से कहा, "सत्य ही मैंने एक नया मत उपार्जित कर लिया है। किन्तु मानव-जाति के लिये इसको स्वीकार करना और इसका अनुसरण करना अत्यन्त कठिन है। यहाँ तक कि बुद्धिमानों के लिए भी यह अत्यंत गूढ़ (जटिल) है।

3. मनुष्य मात्र के लिए स्वयं को ईश्वर और आत्मा के जंजाल से मुक्त करना कठिन है। मनुष्यों के लिये धार्मिक संस्कारों और अनुष्ठानों के प्रति अपने विश्वास का त्याग करना कठिन है। मनुष्यों के लिये कर्म में अपने विश्वास का त्याग करना कठिन है।

4. "मनुष्यों के लिये आत्मा की अनश्वरता के प्रति अपने विश्वास का त्याग करना और मेरे मत को स्वीकार करना कि आत्मा का एक स्वतंत्र सत्ता के रूप में कोई अस्तित्व नहीं है और वह मृत्यु के उपरान्त विद्यमान नहीं रहती है, कठिन है।"

5. मनुष्य अपनी स्वार्थपरता में दत्त चित्त है और इसी में हर्ष और आनन्द प्राप्त करता है। मनुष्यों के लिये स्वार्थपरता का दमन करते हुए सद्धर्भ के मेरे मत को स्वीकार करना कठिन है।

6. "यदि मैं अपने मत का उपदेश दूँ और दूसरे इसको न समझें, या इसको समझते हुए स्वीकार न करें या इसको स्वीकार करते हुए इसका अनुसरण न करें, तो यह दूसरों के लिए थकावट और मेरे लिए एक उत्पीड़न होगा।"

7. "क्यों नहीं संसार से दूर एक संन्यासी ही रहूँ और अपने सिद्धांत का स्वयं अपनी पूर्णता में उपयोग करूँ?" उन्होंने स्वयं से पूछा। "कम से कम मैं स्वयं का कल्याण तो कर सकता हूँ।"

10. इस प्रकार चिन्तन करने पर, उनका मन निष्क्रियता, सिद्धान्त की शिक्षा न देने की ओर मुड़ गया।

9. तब ब्रह्मा सहम्पति ने यह जानते हुए कि बुद्ध के मन में क्या विचार चल रहा है सोचा, "वस्तुतः संसार नष्ट होने जा रहा है, वस्तुतः संसार विनाश की ओर जा रहा है, यदि सम्यक् सम्बुद्ध तथागत अपने मत की शिक्षा देने के स्थान पर निष्क्रियता की ओर मुड़ते हैं।"

10. चिन्ता से ग्रसित हो ब्रह्मा सहम्पति ने ब्रह्म लोक को छोड़ा और बुद्ध के समक्ष

प्रकट हुए। अपने ऊपरी वस्त्र को एक कंधे पर व्यवस्थित करते हुए वे नीचे झुके और हाथ जोड़कर बोले, ''आप अब सिद्धार्थ गौतम नहीं हैं, आप बुद्ध हैं। आप सम्यक् सम्बुद्ध हैं। आप तथागत हैं। आप संसार को प्रबुद्ध करने से कैसे इन्कार कर सकते हैं? आप भ्रमित मानवता को बचाने से कैसे इन्कार कर सकते हैं?''

11. ''यहाँ अशुद्धता से परिपूर्ण प्राणी हैं, जो धम्योपदेश को न सुनने के कारण पतन को प्राप्त हो रहे हैं।''

12. ब्रह्मा सहम्पति ने आगे कहा, ''भगवान! जैसा कि आप जानते है प्राचीन काल में मगध के लोगों के बीच अनेक दोषों से युक्त, अशुद्ध मत उत्पन्न हुआ था।''

13. ''क्या भगवान! उनके लिये अपने अमृत मत के द्वार नहीं खोलेंगे?''

14. ''जिस प्रकार एक पथरीले पहाड़ पर खड़ा कोई व्यक्ति, अपने चारों ओर आस-पास खड़े लोगों का अवलोकन करता है, उसी प्रकार आप जो प्रज्ञा के शिखर पर पहुंचे हुए हैं, सभी अन्य लोगों से ऊपर हैं, दुःख से रहित आप, उन लोगों को जो अपने दुःखों के सागर में गोते खा रहे है, अवलोकन करें, नीचें देखें।''

15. हे वीर! युद्ध में विजेता! हे सार्थवाह! जन्म के ऋण से मुक्त, संसार में जायें और उससे विमुख न हों।

16. ''भगवान! अपनी करुणा से मनुष्यों और देवताओं को अपने सद्धर्म का उपदेश करें।''

17. बुद्ध ने उत्तर दिया, ''हे ब्रह्मा, मनुष्यों ने उत्कृष्ट एवं श्रेष्ठ, यदि मैं अपने सद्धर्म की सार्वजनिक अभिव्यक्ति नहीं करता हूँ, तो यह इसलिये कि मैंने उत्पीड़न अनुभव किया था।'' किन्तु मेरे धम्म को लोग समझ नहीं पाएंगे)।

18. यह जानते हुए कि संसार में इतना अधिक दुख है बुद्ध ने स्पष्ट अनुभव किया था कि उनके लिये हाथ पर हाथ धरे एक संन्यासी की तरह बैठना और वस्तुओं को यथास्थिति बने रहने देने की अनुमति देना ठीक न होगा।

19. उन्होंने तपश्चर्या को व्यर्थ पाया। संसार से बचने का प्रयास बेकार था। यहाँ तक कि एक संन्यासी के लिये भी संसार से कोई मुक्ति नहीं है। उन्होंने एक अनुभूति की कि जो आवश्यक है वह संसार से मुक्ति नहीं है। जो आवश्यक है वह है संसार को परिवर्तित करना और उसे श्रेष्ठतर बनाना।

20. बुद्ध ने स्पष्ट अनुभव किया कि उन्होंने संसार का त्याग इसलिए किया था कि वहाँ इतना अधिक संघर्ष है, जो दुख और कष्ट का कारण है और जिसका कोई इलाज वे नहीं जानते थे। यदि वे अपने धम्म का प्रचार द्वारा संसार से दुख और कष्ट को निर्वासित कर सकते हैं, तो यह उनका कर्तव्य होगा कि वे संसार की ओर लौटें और उसकी सेवा करें। निष्क्रिय भावशून्यता के मूर्तिमान की तरह शाँत न बैठें।

21. अतः बुद्ध ब्रह्मा सहम्पति के निवेदन से सहमत हो गये और संसार को अपने मत का उपदेश देने का निश्चय किया।

2. ब्रह्म सहम्पति द्वारा शुभ समाचार की घोषणा

1. तब, ब्रह्मा सहम्पति ने यह सोचते हुए कि, "मैं बुद्ध को जन-समुदाय को अपने धम्म का उपदेश देने को सहमत कराने के लिये प्रेरित करने का माध्यम रहा हूँ," अत्यन्त प्रसन्नता अनुभव की। उन्होंने बुद्ध को प्रणाम किया, उनकी प्रदक्षिणा की, उनका अवलोकन किया और विदा हो गये।

2. वापस लौटते समय वह संसार के समक्ष यह घोषणा करते रहे "शुभ समाचार को सुन आनन्दित होओ। बुद्ध हमारे भगवान ने, संसार की सभी बुराइयों और दुःखों का मूल कारण जान लिया है। वे मुक्ति का मार्ग भी जानते हैं।"

3. "बुद्ध क्लान्त और शोक-संतप्त के लिये सान्त्वना लायेंगे। वे युद्धों से त्रस्त लोगों को शान्ति प्रदान करेंगे। वे हिम्मत हारे हुए लोगों को हिम्मत प्रदान करेंगे। वे दलित और उत्पीड़ित लोगों को विश्वास और आशा प्रदान करेंगे।"

4. आज जो जीवन की मुसीबतें झेलते हैं, आप जिन्हें संघर्ष करना और झेलना पड़ता है, आप जिन्हें न्याय की लालसा रहती है, शुभ समाचार को सुनकर आनंदित होओ।

5. "आप जो घायल हैं अपने घावों को भरें। आप जो भूखे हैं अपनी भूख को तृप्त करें। आप जो क्लान्त हैं, विश्राम करें और आप जो प्यासे हैं, अपनी प्यास को बुझायें। आप जो अन्धकार में हैं, प्रकाश को तलाश करें। आप जो परित्यक्त हैं, वे अब प्रसन्न हो जायें।"

6. "उनके मत में जो परित्यक्त या लावारिस हैं, उन्हें अपना बना लेने की उत्कंठा को उत्पन्न करने के लिये प्रेम (मेत्ता) है। पतितों को ऊपर उठाने के लिए उदात्तता सदैव विद्यमान है। और पददलितों को उनके प्रगति के मार्ग पर आगे बढ़ाने के लिये समानता है।"

7. "उनका मत सद्धर्म का मत है और उनका उद्देश्य पृथ्वी पर सद्धर्म के राज्य की स्थापना करना है।"

8. "उनका मत सत्य है, सम्पूर्ण सत्य, और सत्य के अतिरिक्त कुछ नहीं है।"

9. "धन्य हैं, बुद्ध क्योंकि उनका मार्ग प्रज्ञा का मार्ग है और उनका पथ अन्धविश्वासों से मुक्ति का पथ है। धन्य हैं, बुद्ध जो माध्यम-मार्ग की शिक्षा देते हैं। धन्य हैं, बुद्ध जो सद्धर्म के धर्म की शिक्षा देते हैं। धन्य है, बुद्ध जो निब्बाण की शान्ति की शिक्षा देते हैं। धन्य है, बुद्ध जो मुक्ति पाने निर्वाण के लिए अपने सह-प्राणियों की सहायता करने के लिए मैत्री, करुणा और भ्रातृभाव का उपदेश देते हैं।"

3. दो प्रकार के धर्मांतरण

1. बुद्ध की वस्तुओं की व्यवस्था में धर्मांतरण के दो अर्थ हैं।
2. भिक्षुओं के गण, जिसे 'संघ' कहा जाता है, में धर्मान्तरण।
3. दूसरा, इसका अर्थ एक गृहस्थ का एक उपासक या बुद्ध के धर्म के गृहस्थ अनुयायी का धर्मांतरण है।
4. चार बातों के अतिरिक्त भिक्षु और उपासक की जीवन–पद्धति में कोई अन्तर नहीं है।
5. उपासक एक गृहस्थ बना रहता है। भिक्षु एक गृह–रहित घुमक्कड़ बन जाता है।
6. उपासकों और भिक्षुओं दोनों को ही अपने जीवन में कुछ निश्चित नियमों का अवश्य पालन करना होता है।
7. यहाँ पुनः भिक्षु के लिये वे व्रत हैं, जिनके अतिक्रमण की परिणति दण्ड में होती है। उपासक के लिये वे शिक्षाप्रद है। उन्हें अपनी सामर्थ्य के अनुसार पालन करने का अधिक से अधिक प्रयास करना चाहिये।
8. उपासक के पास सम्पत्ति हो सकती है, भिक्षु के पास नहीं।
9. उपासक बनने के लिये कोई धर्मानुष्ठान नहीं है।
10. भिक्षु बनने के लिये उसे अवश्य ही एक धर्मानुष्ठान से गुजरना पड़ता है जिसे उपसम्पदा कहा जाता है।
11. बुद्ध ने उन सभी को जो उनके पास आये, उनकी इच्छा के अनुसार या तो भिक्षु के रूप में या उपासक के रूप में धर्मान्तरित किया।
12. एक उपासक एक भिक्षु बन सकता है, जब कभी भी वह ऐसा अनुभव करता है।
13. और भिक्षु तब भिक्षु नहीं रह जाता, जब वह मुख्य–व्रतों का अतिक्रमण करता है या जब कभी भी वह संघ की सदस्यता को छोड़ देने की इच्छा करता है।
14. ऐसा अवश्य ही नहीं समझा जाना चाहिये कि बुद्ध ने केवल उन्हीं लोगों को धर्मान्तरित किया, जिनके नाम आगामी पृष्ठों में आये हैं।
15. उदाहरण केवल यह दर्शाने के लिये चुने गये हैं कि अपने संघ में व्यक्तियों को सम्मिलित करने या अपने धर्म का उपदेश देने में वे जाति या लिंग के किसी विभेद का पालन नहीं करते थे।

भाग-दूसरा

परिव्राजकों का धर्मांतरण

1. सारनाथ आगमन
2. बुद्ध का पहला प्रवचन
3. बुद्ध का पहला प्रवचन (जारी)
4. बुद्ध का पहला प्रवचन (जारी)
5. बुद्ध का पहला प्रवचन (जारी)
6. बुद्ध का पहला प्रवचन (जारी)
7. परिव्राजकों की प्रतिक्रिया

1. सारनाथ आगमन

1. अपने धर्म का उपदेश देने का निश्चय कर लेने के पश्चात् बुद्ध ने स्वयं से यह पूछा, "किसको मैं सर्वप्रथम धम्म की शिक्षा दूँ?" उन्होंने आलार-कालाम के विषय में सोचा जिन्हें, बुद्ध विद्वान, बुद्धिमान, मेधावी के रूप में और अल्प अशुद्धता वाले मानते हुए सम्मान करते थे, "कैसा हो यदि मैं सर्वप्रथम उन्हें धम्म की शिक्षा दूँ?" लेकिन उन्हें बताया गया कि आलार-कालाम की मृत्यु हो चुकी है।

2. तब उन्होंने उद्दक रामपुत्र को इसका उपदेश देने का विचार किया, लेकिन उनकी भी मृत्यु हो चुकी थी।

3. तब उन्होंने अपने पाँच पुराने साथियों के विषय में सोचा, जो उनके साथ निरंजना नदी के तट पर थे, जब वे तपस्या का अभ्यास कर रहे थे और जो तपस्या के परित्याग के कारण क्रोध में उनको छोड़कर चले गये थे।

4. "उन्होंने मेरे लिए बहुत कुछ किया, मेरी सेवा की और मेरा ध्यान रखा, कैसा हो यदि मैं सर्वप्रथम उनको धम्म की शिक्षा दूँ?" उन्होंने स्वयं से कहा।

5. उन्होंने उनके पते-ठिकाने के विषय में ज्ञात किया। यह जान कर कि वे सारनाथ में इसिपतन के मृगदाय में निवास कर रहे हैं, वे उनकी खोज में चल पड़े।

6. उन पाँचों ने, बुद्ध आते हुए देख कर, स्वयं आपस में उनका स्वागत न करने का निर्णय किया। उनमें से एक बोला, "मित्रों! यह तपस्वी गौतम आ रहा है, जिसने तपस्या का परित्याग कर दिया है और समृद्धि एवं विलासिता के जीवन की ओर मुड़ गया है। उसने पाप किया है। अतः हम अवश्य ही न तो उनका स्वागत करेंगे, न सम्मान में उठ कर खड़े होंगे, और न ही उनका भिक्षा-पात्र और चीवर ग्रहण करेंगे। हम केवल उनके लिये एक आसन अलग रख देंगे। यदि उनकी इच्छा होगी, वे बैठ जायेंगे।" और वे सभी सहमत हो गये।

7. लेकिन जब बुद्ध निकट आये, पाँचों परिव्राजक अपने निर्णय पर अटल रहने में सक्षम न रह सके थे, वे उनके व्यक्तित्व से इतना अधिक प्रभावित हुए कि वे सभी अपने आसनों पर उठ खड़े हुए थे। एक ने उनका पात्र पकड़ा, एक ने उनका चीवर पकड़ा, एक ने एक आसन तैयार किया, और एक उनके चरण धोने के लिए पानी ले आया।

8. यह वास्तव में अप्रिय-अतिथि का एक महान स्वागत था।

9. इस प्रकार वे जो उपहास करने को अभिप्रेत थे, श्रद्धाबद्ध बने रह गये।

2. बुद्ध का पहला प्रवचन (धम्मचक्र प्रवर्तन)

1. अभिवादन और कुशल-क्षेम के आदान-प्रदान के उपरान्त पाँचों परिव्राजकों ने बुद्ध से पूछा कि- "क्या वे अभी भी तपश्चर्या में विश्वास रखते हैं?" बुद्ध ने नकारात्मक उत्तर दिया।

2. बुद्ध ने कहा, "एक भोग-विलास का जीवन और दूसरा काय-क्लेष का जीवन दो अतियां होती हैं।"

3. एक कहता है, आओ हम खाओ-पीओ, मौज करो, क्योंकि कल हम मर जायेंगे। दूसरा कहता है, सभी वासनाओं का दमन करो, क्योंकि वे पुनर्जन्म का कारण हैं। उन्होंने दोनों को अस्वीकार किया था, क्योंकि वे मनुष्य के लिये अनुपयुक्त थीं।

4. क्योंकि वे मध्य मार्ग (मज्झिम पटिपदा) को मानने वाले थे, जो न तो भोग-विलास का मार्ग है और न ही काय-क्लेष का मार्ग है।

5. "मुझे इसका उत्तर दो," बुद्ध ने परिव्राजकों से पूछा, जब तक तुम्हारा मन सक्रिय रहता है और भले ही सांसारिक या दिव्य भोग-विलासों के पीछे लालायित बना रहता है, क्या सभी काय-क्लेष व्यर्थ नहीं हैं? और उन्होंने उत्तर दिया, "यह वैसा ही है जैसा आप कहते हैं।"

6. "तुम किस प्रकार काय-क्लेष का एक तुच्छ जीवन बिताकर अपने आप को मुक्त कर सकते हो, यदि तुम उसके द्वारा कामुकता की अग्नि को बुझाने में असफल नहीं हो सकते?" और उन्होंने उत्तर दिया, यह वैसा ही है जैसा आप कहते हैं।

7. जब आप अपने आप पर विजय पा लेंगे, तभी आप काय-तृष्णा से मुक्त होंगे, तब तुम सांसारिक भोग-विलासों की इच्छा नहीं करोगे, और तुम्हारी प्राकृतिक इच्छाओं की सन्तुष्टि तुम्हें दूषित नहीं करेगी। तुम अपने शरीर की आवश्यकताओं के अनुसार खाना और पीना करो।

8. "सभी प्रकार की काम-वासना उत्तेजक होती है और शक्ति का ह्रास करने वाली होती है। विषयासक्त मनुष्य अपनी काम-वासना का दास होता है। सभी भोग-विलासों की चाह करना स्वयं को गिराना है और अभद्र एवं नीच कर्म है। लेकिन मैं तुम से कहता हूँ कि जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति करना कोई बुराई नहीं है। शरीर को स्वस्थ्य बनाये रखना एक कर्त्तव्य है, अन्यथा तुम मन को दृढ़ और स्पष्ट बनाये रखने और प्रज्ञा-दीप को प्रज्ज्वलित रखने में सक्षम न हो सकोगे।"

9. ''हे परिव्राजको, इस बात को जानिए, कि ये दो अतियाँ हैं, जिनका मनुष्य को पालन नहीं करना चाहिए-एक ओर उन वस्तुओं की स्थायी आसक्ति, जिनका आकर्षण काम-वासनाओं और विशेषकर विषयासक्ति पर निर्भर करता है-यह सन्तुष्टि प्राप्त करने का एक निम्न और विधर्मी मार्ग है, जो अयोग्य है, अलाभदायक है, अतः स्थायी आदत बुरी है, और दूसरी ओर तपश्चर्या एवं काय-क्लेष है जो कष्टदायक, अयोग्य और अलाभदायक है।''

10. ''एक मध्यम-मार्ग है, जो दोनों अतियों से बचता है। आप जानिए, कि यही वह मार्ग है, जिसका मैं उपदेश देता हूँ।''

11. पाँचों परिव्राजकों ने उनको ध्यान से सुना। यह न समझते हुए कि बुद्ध के मध्यम-मार्ग के उत्तर में क्या कहा जाये, उन्होंने उनसे पूछा कि उनके द्वारा उन्हें त्याग दिये जाने के उपरान्त वे क्या कर रहे थे। तब बुद्ध ने उन्हें बतलाया कैसे वे गया के लिये चले, कैसे वे पीपल-वृक्ष के नीचे ध्यान में बैठे और कैसे चार सप्ताहों के ध्यान के पश्चात् बोधि को प्राप्त किया, जिसके परिणामस्वरूप वे जीवन के एक नये मार्ग को खोजने में सक्षम हुए थे।

12. यह सुनकर, परिव्राजक यह जानने को कि वह मार्ग क्या था, अत्यन्त व्याकुल हो गये और बुद्ध से उनके समक्ष उसकी व्याख्या करने की प्रार्थना की।

13. बुद्ध सहमत हो गये।

14. उन्होंने यह कहते हुए प्रारम्भ किया कि उनके मार्ग को, जो उनका धम्म है, परमात्मा और आत्मा से कुछ लेना-देना नहीं, उनके धम्म का मृत्यु के उपरान्त के जीवन से कोई सरोकार नहीं है। और न ही उनके धम्म का कर्म-काण्डों और धर्मानुष्ठानों से कोई सम्बन्ध है।

15. उनके धम्म का केन्द्र मनुष्य और पृथ्वी पर अपने जीवन में मनुष्य का मनुष्य से सम्बन्ध है।

16. उन्होंने कहा कि यह उनकी पहली अभिधारणा है।

17. उनकी दूसरी अभिधारणा है कि मनुष्य दुःख से, कष्ट और दरिद्रता में जीवन व्यतीत कर रहे हैं। संसार दुख से भरा हुआ है और कैसे संसार में इस दुःख को हटाया जाये यही धम्म का एकमात्र उद्देश्य है। धम्म इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

18. दुख के अस्तित्व की स्वीकृति और दुख को हटाने का मार्ग दर्शाना ही उनके धम्म का आधार एवं मूल है।

19. यह ही धम्म का एकमात्र आधार एवं औचित्य हो सकता है। एक धम्म जो इस बात को स्वीकार करने में असफल होता है किंचित धम्म ही नहीं है।

20. ''वस्तुतः परिव्राजको! जो कुछ भी श्रमण या ब्राह्मण (अर्थात् धर्म के प्रचारक) नहीं समझ पाते, जैसा वह वास्तव में है कि संसार में दु:ख और उससे छुटकारा, ही धम्म की मुख्य समस्या है, ऐसे श्रमण और ब्राह्मण मेरे विचार में श्रमण या ब्राह्मण के रूप में स्वीकारे जाने चाहिये, और न ही वे मानवीय लोग स्वयं ही पूर्णतया यह जान पाये हैं कि जो कुछ भी यह जीवन है धम्म का वास्तविक धम्म है।''

21. तब परिव्राजकों ने उनसे पूछा, ''यदि आपके धम्म का आधार दु:ख के अस्तित्व की स्वीकृति और दु:ख को हटाना ही है, तो हमें बतायें आपका धम्म कैसे दु:ख को हटा सकता है।''

22. तब बुद्ध ने उनसे कहा कि उनके धम्म के अनुसार यदि प्रत्येक व्यक्ति (1) पवित्रता के पथ, (2) धम्मपरायणता के पथ, और (3) नैतिकता के पथ का पालन करे, तो यह सभी दुखों के अन्त कर पाएंगे।

23. और उन्होंने आगे कहा कि उन्होंने ऐसे धर्म को खोज लिया है।

3. बुद्ध का पहला प्रवचन (जारी)

शुद्धता का मार्ग

1. तब परिव्राजकों ने बुद्ध से उन्हें अपने धम्म की व्याख्या करने का निवेदन किया।

2. और बुद्ध ऐसा करने के लिये प्रसन्न हुए।

3. उन्होंने सर्वप्रथम उन्हें शुद्धता का मार्ग ही समझाया।

4. उन्होंने परिव्राजकों से कहा, ''शुद्धता का मार्ग सिखलाता है कि एक व्यक्ति जो भला बनना चाहता है, अवश्य ही कुछ सिद्धान्तों को जीवन के सिद्धान्तों के रूप में स्वीकार करे।

5. ''मेरे शुद्धता के मार्ग के अनुसार इसके द्वारा स्वीकृत जीवन के सिद्धान्त हैं। किसी प्राणी को घायल या उसकी हत्या न करना; चोरी न करना या किसी भी ऐसी वस्तु को अपनी न बना लेना, जो दूसरे की हो; असत्य न बोलना; कामुकता में आसक्त न होना; नशीले पेय पदार्थों का सेवन न करना।''

6. ''मैं कहता हूँ, इन सिद्धान्तों को स्वीकार करना, प्रत्येक व्यक्ति के लिये अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति के लिये एक मानदण्ड अवश्य होना चाहिये, जिससे वह जो कुछ भी करता है उसे माप सके और मेरी शिक्षाओं के अनुसार ये सिद्धान्त मापदण्ड का निर्धारण करते हैं।''

7. ''प्रत्येक स्थल पर ऐसे व्यक्ति हैं, जो पतित (गिरे हुए) हैं। किन्तु पतितों की दो श्रेणियाँ हैं : ऐसा पतित जिसके पास एक मानदण्ड है और दूसरा पतित जिसके पास कोई मापदण्ड नहीं है।''

8. ''ऐसा पतित जिसके पास कोई मानदण्ड नहीं है, यह नहीं जानता कि वह गिरा हुआ है। परिणामस्वरूप वह सदैव पतित ही रहता है। दूसरी ओर एक पतित जिसके पास एक मानदण्ड है, वह अपनी पतित अवस्था से ऊपर उठने का प्रयास करता है। क्यों? उत्तर यह है, क्योंकि वह जानता है कि वह पतित है।''

9. ''मनुष्य के जीवन को नियन्त्रित करने के लिये एक मानदण्ड होने और कोई मापदण्ड न होने के मध्य यही भेद है। जिस बात से फर्क पड़ता है, वह यह नहीं है कि व्यक्ति का पतन कितना अधिक हुआ है, बल्कि किसी मापदण्ड की अनुपस्थिति है।''

10. ''हे परिव्राजको! तुम पूछ सकते हो कि क्यों वे सिद्धान्त जीवन के एक मापदण्ड के रूप में स्वीकार करने के योग्य हैं।''

11. ''इस प्रश्न का उत्तर तुम स्वयं ही पा जाओगे, यदि तुम स्वयं से ही यह पूछो : क्या वे सामाजिक हित को प्रोत्साहित करते हैं?''

12. ''यदि इन प्रश्नों के तुम्हारे उत्तर सकारात्मक हैं, तो इसका अर्थ है कि मेरे शुद्धता के मार्ग के सिद्धान्त जीवन के एक सच्चे मापदण्ड को निर्धारित करने के लिये स्वीकार करने के योग्य हैं।''

4. बुद्ध का पहला प्रवचन (जारी)

आष्टांगिक मार्ग या सम्यक् मार्ग

1. बुद्ध ने उसके पश्चात् परिव्राजकों को आष्टांगिक मार्ग का उपदेश दिया। उन्होंने कहा कि आष्टांगिक मार्ग के आठ भाग हैं।

2. उन्होंने अपना उपदेश सम्मा दिट्ठी (सम्यक् दृष्टि) की व्याख्या से प्रारम्भ किया, जो आष्टांगिक मार्ग का प्रथम और प्रमुख अंग है।

3. "सम्मा दिट्ठी (सम्यक-दृष्टि) के महत्त्व को समझने के लिये," बुद्ध ने परिव्राजकों से कहाः-

4. "हे परिव्राजको! तुम्हें अवश्य समझ लेना चाहिये कि संसार एक कारागार (जेल) है और व्यक्ति कारागार का एक बन्दी है।"

5. "यह कारागार अन्धकार से परिपूर्ण है। यह इतना अन्धकारमय है कि कठिनाई से ही कोई वस्तु बन्दियों द्वारा ठीक से देखी जा सकती है। बन्दी यह भी नहीं देख सकता है कि वह बन्दी है।"

6. "निस्सन्देह, व्यक्ति अन्धकार में अत्यधिक लम्बे समय तक रहने के कारण न केवल अन्धा हो गया है, बल्कि उसे इसमें अत्यन्त सन्देह है कि प्रकाश जैसी किसी आश्चर्यजनक वस्तु का कभी भी अस्तित्व भी हो सकता है।"

7. "मन ही केवल ऐसा साधन है, जिसके द्वारा प्रकाश व्यक्ति के पास आ सकता है।"

8. "किन्तु इन कारागा-वासियों का मन किसी भी तरह इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये एक सही साधन नहीं है।"

9. "यह केवल एक अल्प मात्रा में प्रकाश को आने देता है, केवल इतना ही जिससे कि जिनके पास दृष्टि है वे यह देख सकें कि अन्धकार जैसी एक वस्तु वहाँ है।"

10. "अतः इस प्रकार की समझ अपनी प्रकृति में दोषपूर्ण है।"

11. "किन्तु जानो, हे परिव्राजकों! बन्दियों की स्थिति इतनी निराशाजनक नहीं है, जितनी प्रतीत होती है।"

12. "क्योंकि व्यक्ति में ऐसी वस्तु है, जिसे इच्छा-शक्ति कहते हैं। जब उपयुक्त उद्देश्य उत्पन्न होते हैं, तब इच्छा-शक्ति को जागृत किया जा सकता है और क्रियाशील बनाया जा सकता है।"

13. "केवल इतना प्रकाश आने से, जिससे यह देखा जा सके कि इच्छा-शक्तियों को किस दिशा में अग्रसर करने की आवश्यकता है, व्यक्ति उसे इस प्रकार निर्देशित कर सकता है, जिससे कि वे मुक्ति की ओर ले जा सके।"

14. "अतः यद्यपि व्यक्ति बँधा हुआ है, तब भी वह मुक्त हो सकता है, वह किसी भी समय कदम उठाना प्रारम्भ कर सकता है जो अन्ततोगत्वा उसे मुक्ति तक ला सकेंगे।"

15. ''ऐसा इसलिये है, क्योंकि जिस किसी भी दिशा में जिसे कोई चुनता है, मस्तिष्क को प्रशिक्षित करना सम्भव है। यह मस्तिष्क ही है, जो जीवन के गृह में हमें बन्दी बनाता है, और यह मस्तिष्क है, जो हमें उसी स्थिति में बनाये रखता है।''

16. ''किन्तु मन ने जिसे बनाया है, वहीं मन उसे समाप्त भी कर सकता है। यदि इसने व्यक्ति को बन्धन तक पहुँचाया है, तो यही जब ठीक प्रकार से निर्देशित किया जायेगा, तो उसे मुक्ति तक भी ला सकता है।''

17. ''यही है, जिसे सम्मा दिट्ठी कर सकती है।''

18. ''सम्मा दिट्ठी का लक्ष्य क्या है?'' परिव्राजकों ने पूछा बुद्ध ने उत्तर दिया, ''अविज्जा (अविद्या) का विनाश है। यह मिच्छा दिट्ठी (मिथ्या दृष्टि) की विरोधी है।''

19. ''और अविद्या का अर्थ आर्य सत्यों, दुख के अस्तित्व और दुख के निवारण को जानने की असफलता है।''

20. ''सम्मा दिट्ठी को कर्म-काण्डों और रीति-रिवाजों के महत्त्व पर विश्वास को त्यागने और शास्त्रों की पवित्रता पर अविश्वास करने की आवश्यकता होती है।''

21. ''सम्मा दिट्ठी को अन्धविश्वास और अलौकिकता के परित्याग की आवश्यकता होती है।''

22. ''सम्मा दिट्ठी को ऐसी सभी धारणाओं के परित्याग की आवश्यकता होती है, जो बिना किसी तथ्य या अनुभव के आधार पर निराधार कल्पनायें मात्र हैं।''

23. ''सम्मा दिट्ठी को स्वतंत्र मन और स्वतंत्र विचार की आवश्यकता होती है।''

24. ''प्रत्येक व्यक्ति के कुछ लक्ष्य, आकांक्षाएँ और महत्वाकांक्षायें होती हैं। सम्मा संकप्पो (सम्यक-संकल्प) यह शिक्षा देता है कि ऐसे लक्ष्य, आकांक्षायें और महत्वाकांक्षायें उच्च और प्रशंसनीय होनी चाहिए न कि हेय और अयोग्य।''

25. ''सम्मा वाचा (सम्यक् वाचा) शिक्षा देता है : (1) कि मनुष्य को केवल वहीं बोलना चाहिये, जो सत्य है, (2) कि मनुष्य को वह नहीं बोलना चाहिये, जो असत्य है, (3) कि मनुष्य को दूसरों के विषय में बुरी बातें नहीं बोलनी चाहिये, (4) कि मनुष्य को झूठी निन्दा से बचना चाहिये, (5) कि मनुष्य को अन्य साथी मनुष्यों के प्रति क्रोधी और अपमानजनक भाषा का प्रयोग नहीं

करना चाहिये, (6) कि मनुष्य को सभी के साथ विनम्रतापूर्वक और शिष्टता के साथ बोलना चाहिये, (7) कि मनुष्य को निरर्थक, मूर्खतापूर्ण बातों में मग्न नहीं होना चाहिये, बल्कि अपनी वाणी को तर्कसंगत और उद्देश्यपूर्ण बनाना चाहिये।''

26. ''सम्यक् वाणी (सम्मा वाचा) वह व्यवहार, जैसा कि मैंने समझाया है, भय या पक्षपात का परिणाम नहीं होना चाहिये। इसका इस बात से नगण्यतम सम्बन्ध भी नहीं होना चाहिये कि उसके कार्यों के विषय में कोई श्रेष्ठ व्यक्ति क्या सोचेगा या सम्यक् वाणी के व्यवहार से उसकी क्या हानि हो सकती है।''

27. ''सम्यक् वाणी का माप-दण्ड न तो किसी श्रेष्ठ व्यक्ति की आज्ञा है, न ही किसी व्यक्ति को हो सकने वाला व्यक्तिगत लाभ है।''

28. ''सम्मा कमन्तो (सम्यक-कमन्ति) समुचित व्यवहार की शिक्षा देता है। वह शिक्षा देता है कि प्रत्येक कर्म भावना और दूसरों के अधिकारों के सम्मान पर आधारित होना चाहिए।''

29. ''सम्मा कमन्तो के लिये माप-दण्ड क्या है? माप-दण्ड वह आचार मार्ग है, जो जीवन के मूलभूत नियमों के साथ सर्वाधिक समन्वय रखता है।''

30. ''जब किसी व्यक्ति के कार्य इन नियमों के साथ समन्वय रखते हैं, तो सम्मा कमन्तो के अनुसार माने जा सकते हैं।''

31. ''प्रत्येक व्यक्ति को अपनी जीविका कमानी ही होती है। किन्तु अपनी जीविका कमाने के लिये अनेक रास्ते ही रास्ते हैं। कुछ बुरे हैं, कुछ अच्छे हैं। बुरे रास्ते वह हैं जो दूसरों को हानि या अन्याय पहुँचाते हैं। अच्छे रास्ते वे हैं जिनके द्वारा कोई व्यक्ति दूसरों को हानि या अन्याय पहुँचाये बिना अपना जीविकोपार्जन करता है। यह सम्मा अजीवो (सम्यक-आजीविका) है।''

32. ''सम्मा व्यायामो (सम्यक्-व्यायाम) अविज्जा को हटाने का प्राथमिक प्रयाय है, उस द्वार तक पहुँचाने और उसे खोलने का प्राथमिक प्रयास है, जो इस दुखद कारागार से बाहर ले जाता है।''

33. सम्यक् व्यायाम के चार उद्देश्य होते हैं-

34. ''पहला उन चित्त-प्रवृत्तियों को रोकना जो अष्टांग-मार्ग के प्रतिकूल हैं।

35. ''दूसरा ऐसी दूषित चित्त-वृत्तियों का दमन करना, जो पहले ही उत्पन्न हो गयी हों।''

36. ''तीसरा ऐसी चित्त-प्रवृत्तियों को उत्पन्न करना, जो एक व्यक्ति को अष्टांग मार्ग की आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक हो।''

37. ''चौथा ऐसी शुभ एवं मानवीय चित्त-वृत्तियों का, जो पहले ही उत्पन्न हो गयी हों और अधिक विकास एवं वृद्धि करना है।''

38. ''सम्मा सति (सम्यक-स्मृति) सतर्कता और विचारशीलता को नियंत्रित करती है। इसका अभिप्राय मन की सतत जागरूकता है। कुप्रवृत्तियों पर मन के द्वारा निगरानी करना और रक्षा करना सम्मा सति का दूसरा नाम है।

39. ''हे परिव्राजको! ऐसे पाँच बन्धन या बाधायें हैं, जो सम्मा दिट्ठी व्यायामों और 'सम्मा सति' को प्राप्त करने का प्रयास करने वाले एक व्यक्ति के मार्ग में आते हैं।

40. ''ये पांच बाधायें हैं:- लोभ, द्वेष, आलस्य एवं निष्क्रियता, सन्देह (विचिकित्सा) और अनिश्चय। अतः इन बाधाओं पर नियन्त्रण करना आवश्यक है, जो वास्तव में बाधायें हैं और इनको नियन्त्रित करने का तरीका समाधि है। किन्तु हे परिव्राजको! यह जानों कि 'सम्मा समाधि' (सम्यक समाधि) समाधि के समान नहीं है। यह पर्याप्त भिन्न है।''

41. ''समाधि एकाग्रता मात्र है। निस्सन्देह यह उन ध्यान की अवस्थाओं की ओर ले जाती है जो स्वप्रेरित हैं और पांचों बाधाओं को स्थगित रखती हैं।''

42. ''किन्तु ध्यान की ये अवस्थायें अस्थायी हैं। अतः बाधाओं का स्थगन भी अस्थायी है। जो आवश्यक है वह है चित्त का एक स्थायी परिवर्तन-ऐसा स्थायी परिवर्तन सम्मा समाधि के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।''

43. ''समाधि मात्र नकारात्मक है, क्योंकि इससे बाधाओं का अस्थायी स्थगन मात्र होता है। इसमें चित्त का प्रशिक्षण सम्मिलित नहीं है। 'सम्मा समाधि' सकारात्मक है। यह चित्त को एकाग्र करने और एकाग्रता के समय कुछ कुशल 'कर्मों' का चिन्तन करने की शिक्षा देती है और इस प्रकार बाधाओं द्वारा उत्पन्न होने वाले अकुशल 'कर्मों' की ओर चित्त को आकर्षित करने की प्रवृत्ति को दूर करती है।''

44. 'सम्मा समाधि' चित्त को कुशल सोचने और सदैव कुशल ही कुशल सोचने की एक आदत डाल देती है। 'सम्मा समाधि' चित्त को कुशल करने की आवश्यक प्रेरक शक्ति प्रदान करती है।'

5. बुद्ध का पहला प्रवचन (जारी)

शील का मार्ग

1. तत्पश्चात् बुद्ध ने परिव्राजकों को शील (सद्‌गुणों) का मार्ग समझाया।

2. उन्होंने उन्हें कहा कि शील के मार्ग का अभिप्राय इन सद्‌गुणों का पालन करना है: (1) शील, (2) दान, (3) उपेक्षा, (4) नैष्कम्य, (5) वीर्य, (6) क्षान्ति, (7) सत्य, (8) अधिष्ठान, (9) करुणा, और (10) मैत्री।

3. परिव्राजकों ने बुद्ध से उन्हें यह बताने को कहा कि इन सद्‌गुणों का अभिप्राय क्या है।

4. तब बुद्ध उनकी इच्छा को सन्तुष्ट करने के लिये अग्रसर हुये।

5. ''शील है, नैतिक स्वभाव, अकुशल न करने के प्रवृत्ति और कुशल करने की प्रवृत्ति, अकुशल करने में अपमानित अनुभव करना। दण्ड के भय से अकुशल करने से बचना शील है। शील का अभिप्राय अकुशल करने से भय है।''

6. 'नैष्क्रम्य' का तात्पर्य संसार के भोग-विलासों का परित्याग है।''

7. ''दान' का अभिप्राय बदले में बिना कुछ पाने की आशा रखते हुए दूसरों के भले के लिये अपनी सम्पत्ति, खून और शरीर के अंग और यहाँ तक कि अपने प्राणों तक को दे देना है।''

8. ''वीर्य' सम्यक् प्रयास है। यह जो कुछ भी करने का तुमने दृढ़ निश्चय कर लिया है, उसे अपनी पूरी सामर्थ्य से करना और जो कुछ भी करने का तुमने दृढ़ निश्चय कर लिया है उससे पीछे हटने का एक भी विचार नहीं लाना है।''

9. ''क्षान्ति' सहिष्णुता होता है। घृणा का उत्तर घृणा से न देना ही इसका सार है, क्योंकि घृणा के द्वारा घृणा शान्त नहीं होती है। यह केवल सहिष्णुता द्वारा ही शान्त हो सकती है।''

10. ''सत्य' सत्य का तात्पर्य झूठ न बोलना है। व्यक्ति को कभी झूठ नहीं बोलना चाहिये। उसका कथन सदैव सत्य और सत्य के सिवा कुछ और नहीं होना चाहिये।''

11. ''अधिठान' अपने लक्ष्य तक पहुंचाने का दृढ़ संकल्प होता है।''

12. ''करुणा' सभी मनुष्यों के प्रति दयाशीलता होती है।''

13. ''मैत्री' सभी प्राणियों के प्रति, न केवल उसके प्रति जो एक मित्र है, बल्कि उसके प्रति भी जो एक शत्रु है, अर्थात् न केवल मनुष्यों के प्रति, बल्कि सभी सजीव प्राणियों के प्रति मैत्री भावना व सहानुभूति रखना है।''

14. ''उपेक्षा' अनासक्ति की भावना होती है और यह उदासीनता से होती भिन्न है। यह चित्त की एक अवस्था है जहाँ न तो प्रिय है और न ही अप्रिय है। परिणाम से अप्रभावित रहना और फिर भी उसके प्रयास में संलग्न रहना।''

15. ''इन सद्गुणों का किसी भी व्यक्ति को अपने सम्पूर्ण सामर्थ्य से अभ्यास करना चाहिये। इसीलिये इन्हें पारमिता (पराकाष्ठा की अवस्थाएं) कहा जाता है।''

6. बुद्ध का पहला प्रवचन (जारी)

1. अपने धर्म का उपदेश देकर और उसकी व्याख्या करने के पश्चात् बुद्ध ने परिव्राजकों से पूछा–

2. ''क्या व्यक्तिगत पवित्रता संसार में भलाई का आधार नहीं है?'' और उन्होंने उत्तर दिया, ''जैसा आपने कहा यह ऐसा ही है।''

3. और बुद्ध ने आगे कहा ''क्या व्यक्तिगत पवित्रता को द्वेष, रोग, अज्ञान, जीवन का विनाश, चोरी, व्यभिचार और असत्य से क्षति नहीं पहुँचती है? क्या व्यक्तिगत पवित्रता के लिये यह आवश्यक नहीं है कि चरित्र की पर्याप्त शक्ति अर्जित कर ली जाये, जिससे कि इन बुराइयों को नियन्त्रण में रखा जा सके? किस प्रकार एक व्यक्ति भलाई का साधन बन सकता है, यदि उसमें व्यक्तिगत पवित्रता नहीं है?'' और उन्होंने उत्तर दिया, ''जैसा आपने कहा यह ऐसा ही है।''

4. ''क्यों व्यक्ति दूसरों को दास बनाना या उन पर शासन करना बुरा नहीं मानते हैं? क्योंकि व्यक्ति दूसरों के जीवन को दुखी बनाना बुरा नहीं मानते हैं? क्या यह इसलिये नहीं है क्योंकि व्यक्ति एक दूसरे के प्रति अपने आचरण में सदाचारी नहीं है?'' और उन्होंने 'हाँ' कहा।

5. ''तो क्या अष्टांग मार्ग, सम्यक्-दृष्टि, सम्यक्-संकल्प, सम्यक्-वाचा, सम्यक्-आजीविका, सम्यक्-कर्मान्त, सम्यक्-व्यायाम, सम्यक्-स्मृति और सम्यक्-समाधि के मार्ग का, संक्षेप में, सद्धर्म के मार्ग पर अनुसरण यदि प्रत्येक व्यक्ति द्वारा किया जाये, तो सभी अन्याय और अमानवता का अन्त कर देगा, जो एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के साथ करता है?'' और उन्होंने कहा, ''हाँ।''

6. ''शील के मार्ग का विचार करते हुए, उन्होंने पूछा, ''क्या दान दरिद्रों और गरीबों के कष्टों के निवारण और सामान्य भलाई को प्रोत्साहित करने के लिये आवश्यक नहीं है? क्या करुणा को दरिद्रता और दु:खों से राहत पहुँचाने के लिये, जहाँ कहीं भी ये विद्यमान हैं, उत्पन्न करने की आवश्यकता नहीं है? क्या 'नैष्क्रम्य' निस्वार्थ कार्य के लिये आवश्यक नहीं है? क्या 'उपेक्षा' सतत् प्रयास के लिये भले ही कोई व्यक्तिगत लाभ न हो आवश्यक नहीं है?''

7. ''क्या प्रेम मनुष्य के लिए आवश्यक नहीं है?'' और उन्होंने कहा, ''हाँ।''

8. ''मैं एक कदम और आगे बढ़ कर कहता हूँ, ''प्रेम पर्याप्त नहीं है, जिसकी आवश्यकता है वह है मैत्री।' यह प्रेम की अपेक्षा व्यापक है। इसका अर्थ न केवल मनुष्यों के साथ, बल्कि सभी सजीव प्राणियों के साथ मैत्री-भाव है। यह मनुष्यों तक ही सीमित नहीं है। क्या ऐसी मैत्री आवश्यक नहीं है? इसके अतिरिक्त ऐसा क्या है, जो सभी सजीव प्राणियों को वही सुख दे सकता है, जो कोई व्यक्ति स्वयं अपने लिये पाने का प्रयास करता है, चित्त को पक्षपात रहित रखने के लिये, सभी के लिये खुला, सभी के प्रति स्नेह और किसी के भी प्रति घृणा से रहित।''

9. उन सभी ने कहा, ''हाँ।''

10. ''इन सद्गुणों के आचरण के साथ, किसी भी प्रकार से प्रज्ञा, अर्थात् निर्मल बुद्धि अवश्य जुड़ी रहनी चाहिये।''

11. ''क्या प्रज्ञा आवश्यक नहीं है?'' परिव्राजकों ने कोई उत्तर नहीं दिया। उन्हें अपने प्रश्न का उत्तर देने के लिये बाध्य करने के लिये बुद्ध ने अपना कथन जारी रखा कि ''एक भले मनुष्य के गुण हैं 'कोई बुरा कार्य न करें, ऐसा कुछ न सोचे जो बुरा है, अपना जीविकोपार्जन किसी बुरे तरीके से न करे और ऐसा कुछ न बोले जो बुरा है या जिससे किसी अन्य को कष्ट पहुँचे।'' और उन्होंने कहा, ''हाँ, यह ऐसा ही है।''

12. ''किन्तु क्या आँख बन्द किये हुए सत्कर्म किये जाने का स्वागत किया जाना चाहिये?'' बुद्ध ने पूछा, ''मैं कहता हूँ, 'नहीं।' यह पर्याप्त नहीं है', बुद्ध ने परिव्राजकों से कहा, ''यदि यह पर्याप्त होता, ''तो एक छोटे बच्चे के लिये घोषित किया जा सकता कि वह सदैव भलाई कर रहा है। क्यों अभी तक, बच्चा यह नहीं जानता कि एक शरीर का अर्थ क्या है, वह अपने शरीर के द्वारा लात चलाने से अधिक क्या बुरा कार्य कर सकता है, वह नहीं जानता कि

वाणी क्या है? वे रोने से अधिक क्या बुरी बात कह सकता है, वह नहीं जानता है कि विचार क्या है? प्रसन्नता के साथ रोने से अधिक, वह नहीं जानता कि जीविकोपार्जन क्या है? वह अपनी माँ का दूध पीने से अधिक एक बुरे तरीके से अपनी जीविका क्या कमा सकता है।''

13. ''अत: शील के मार्ग का अवश्य ही प्रज्ञा के द्वारा परीक्षण किया जाना चाहिये, जो विवेक और बुद्धि का दूसरा नाम है।''

14. ''एक और भी कारण है कि क्यों प्रज्ञा पारमिता इतनी महत्वपूर्ण और इतनी आवश्यक है। दान अवश्य होना चाहिये, किन्तु प्रज्ञा के बिना, दान का उत्साहभंग करने वाला प्रभाव हो सकता है। करुणा अवश्य होनी चाहिये। किन्तु प्रज्ञा के बिना, करुणा का अंत बुराई के समर्थन में हो सकता है। पारमिता के प्रत्येक कार्य प्रज्ञा पारमिता जो विवेक का दूसरा नाम है की कसौटी पर खरे उतरने चाहिएं।''

15. ''मैं आधार-वाक्य के रूप में कहता हूँ कि ज्ञान और चेतना अवश्य होनी चाहिये कि अकुशल कर्म क्या है, यह कैसे उत्पन्न होता है, इसी प्रकार ज्ञान और चेतना भी अवश्य होनी चाहिये कि कुशल कर्म और अकुशल कर्म क्या है। ऐसे ज्ञान के बिना यथार्थ भलाई नहीं हो सकती भले ही कर्म अच्छे रहे हों। इसीलिये मैं कहता हूँ कि प्रज्ञा एक आवश्यक सद्गुण है।''

16. तब बुद्ध ने परिव्राजकों को निम्नलिखित प्रेरणा देते हुए अपना उपदेश समाप्त किया-

17. ''बहुत संभव है कि तुम लोग मेरे धर्म को निराशावादी कहो, क्योंकि यह मानव-जाति का ध्यान दुख के अस्तित्व की ओर आकर्षित करता है। मैं तुम लोगों को कहता हूँ मेरे धर्म के प्रति ऐसा धारणा गलत होगी।''

18. ''निस्सन्देह, मेरा धर्म दुख के अस्तित्व को स्वीकार करता है, किन्तु यह मत भूलो कि यह उतना ही बल दुख के निवारण पर भी देता है।''

19. ''मेरे धर्म के भीतर आशा और उद्देश्य दोनों समाहित हैं।''

20. ''इसका उद्देश्य 'अविद्या' का नाश करना है, को हटाना है, जिससे मेरा अभिप्राय दुख के अस्तित्व को अज्ञान से है।''

21. ''इसमें आशा भी है, क्योंकि यह मनुष्य के दु:खों का अन्त करने का मार्ग दर्शाता है।''

22. ''क्या तुम लोग इससे सहमत हो या नहीं?'' और परिव्राजकों ने कहा, ''हाँ, हम सहमत हैं।''

7. परिव्राजकों की प्रतिक्रिया

1. पाँचों परिव्राजकों ने तुरन्त अनुभव किया कि यह यथार्थ में एक नया धर्म है। वे जीवन की समस्याओं के प्रति इस नये दृष्टिकोण से इतने अधिक प्रभावित हुए कि वे यह कहने में एकमत थे कि ''संसार के इतिहास में कभी भी धर्म के किसी संस्थापक ने यह शिक्षा नहीं दी कि मानव दुःखों की मान्यता ही धर्म का वास्तविक आधार है।''

2. ''संसार के इतिहास में कभी भी धर्म के संस्थापक ने यह शिक्षा नहीं दी कि इस कष्ट का निवारण ही इसका वास्तविक उद्देश्य है।''

3. ''संसार के इतिहास में कभी भी मुक्ति का एक ऐसा मार्ग नहीं सुझाया गया, जो अपनी प्रकृति में इतना सरल हो, जो अलौकिक और अति मानवीय शक्तियों से इतना मुक्त हो, जो आत्मा में विश्वास से, ईश्वर में विश्वास से और मृत्यु के पश्चात् जीवन में विश्वास से इतनी स्वतंत्रता और यहाँ तक कि इतना प्रतिकूल हो।''

4. ''संसार के इतिहास में पहले कभी भी ऐसे धर्म की स्थापना नहीं की गयी, जिसका रहस्योद्घाटन ईश्वर-वचन से कुछ भी लेना-देना न था और जिसकी आज्ञायें मनुष्य की सामाजिक आवश्यकताओं के परीक्षण से उत्पन्न हुई हैं और जो ईश्वर की आज्ञायें नहीं हैं।''

5. ''संसार के इतिहास में कभी भी मुक्ति को सुख के वरदान के रूप में नहीं समझा गया है, जिसे मनुष्य द्वारा इस जीवन में और इसी पृथ्वी पर स्वयं अपने प्रयासों द्वारा उत्पन्न सद्‌गुणों से प्राप्त किया जा सकता है।''

6. ये वे भावनायें थी, जिन्हें परिव्राजकों ने अपने नये धर्म पर बुद्ध के उपदेश सुनने के बाद व्यक्त किया था।

7. उन्होंने अनुभव किया कि बुद्ध में उन्होंने ऐसे सुधारक को पा लिया था, जो सबसे गम्भीर नैतिक उद्देश्य से परिपूर्ण और अपने समय की सभी बौद्धिक संस्कृतियों में प्रशिक्षित था, जिसमें मौलिकता और विरोधी विचारों के ज्ञान के साथ जानबूझकर एक ऐसी मुक्ति के सिद्धान्त को सुझाने का साहस था, जिसे इसी जीवन में मनो-साधना और मन का-संयम के अभ्यास द्वारा प्राप्त अन्तर्मुखी हृदय के परिवर्तन द्वारा पाया जा सकता है।

8. बुद्ध के प्रति उनकी श्रद्धा इतनी असीम हो गयी कि उन्होंने तुरन्त उसके समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया और उनसे उन्हें अपने शिष्यों के रूप में स्वीकार करने का आग्रह किया।

9. बुद्ध ने उन्हें 'एहि भिक्कवे' (भुक्षुओं! आओ) कह कर अपने भिक्षु-संघ में सम्मिलित कर लिया। वे पंचवर्गीय भिक्षुओं के नाम से जाने जाते थे।

तीसरा-भाग

कुलीनों और धार्मिकों का धर्मांतरण

1. यश का धर्मांतरण
2. काश्यपों का धर्मांतरण
3. सारिपुत्र और मौग्गल्लान का धर्मांतरण
4. राजा बिम्बिसार का धर्मांतरण
5. अनाथ पिण्डिक का धर्मांतरण
6. राजा प्रसेनजित का धर्मांतरण
7. जीवक का धर्मांतरण
8. रट्ठपाल का धर्मांतरण

1. यश का धर्मांतरण

1. उस समय वाराणसी में एक कुलीन व्यक्ति का पुत्र रहता था, उसका नामा यश वह उम्र से युवा और रूप-रंग में अत्यधिक आकर्षक था। वह अपने माता-पिता का परमप्रिय था। वह प्रचुर धन-सम्पदा में रहता था। उसके पास अनेक नौकर-चाकर और एक विशाल अन्तःपुर में अनेक स्त्रियां थीं तथा वह अपना समय केवल नृत्य, शराब पीने एवं भौतिक आनन्दों में व्यतीत करता था।

2. समय बीतने पर, विरक्ति की एक भावना उस पर छा गई। किस प्रकार वह इस काम-वासना के जीवन से बच सकता है? जो जीवन वह व्यतीत कर रहा है क्या उससे उत्तम जीवन जीने का कोई मार्ग था? क्या करूँ यह न जानते हुए, उसने पिता का घर छोड़ने का निश्चय किया।

3. एक रात उसने अपने पिता का घर छोड़ दिया और इधर-उधर भटक रहा था; वह संयोग से ऋषिपतन की ओर चला गया।

4. थकान अनुभव करते हुए वह एक जगह बैठ गया और जैसे ही वह बैठा उसने ऊँची आवाज में स्वयं से कहा : "मैं कहाँ हूँ? यह मार्ग क्या है? ओह! क्या परेशानी है? ओह! कितना संकट है!"

5. यह घटना उसी रात है जिस दिन तथागत ने ऋषिपतन में पंचवर्गीय भिक्षुओं को अपने पहले उपदेश का प्रवचन किया था। ठीक उसी समय जब यश ऋषिपतन की ओर बढ़ रहा था, तथागत जो ऋषिपतन में ठहरे हुए थे, प्रातः उठ कर, खुली हवा में चहलकदमी कर रहे थे और तथागत ने यश नामक कुलीन युवक को अपनी दुःखत अनुभूतियों को अभिव्यक्ति देते हुए आते देखा!

6. और तथागत ने उसका दुख भरा रोना सुन कर कहा-"कोई दुख नहीं है, कोई संकट नहीं है। आओ, मैं तुम्हें मार्ग दिखलाऊँगा", और तथागत ने यश को अपने धर्म का उपदेश दिया।

7. और यश ने जब उसने यह उपदेश सुना, प्रसन्न और हर्षित हो गया उसने अपने सुनहरे जूते उतारे और जाकर तथागत के पास बैठ गया एवं उन्हें सम्मानपूर्वक प्रमाण किया।

8. यश ने बुद्ध के वचन हृयंगम कर, उनसे उसे अपना शिष्य बना लेने की प्रार्थना की - उस समय यश के चार मित्र थे, जो वाराणसी के धनी परिवारों के पुत्र थे। उनके नाम थे विमल, सुबाहु, पुण्यजित और गवाम्पति।

10. जब यश के मित्रों को ज्ञात हुआ कि यश ने बुद्ध और उनके धम्म की शरण ले ली है, तो उन्होंने सोचा कि जो यश के लिये अच्छा है, अवश्य ही उनके लिये भी अच्छा होगा।

11. अतः वे यश के पास गए और उससे कहा कि वह उनकी ओर से बुद्ध से निवेदन करे कि वे उन्हें अपने शिष्यों के रूप में स्वीकार कर लें।

12. यश सहमत हो गया और वह भगवान बुद्ध के पास गया और कहा : "कृपया तथागत! मेरे इन चार मित्रों को धर्म का उपदेश देकर कृतार्थ करें।" भगवान सहमत हो गये और यश के मित्रों ने धर्म की शरण ली।

2. काश्यपों का धर्मांतरण

1. वाराणसी में काश्यप परिवार नामक एक परिवार रहा करता था। परिवार में तीन पुत्र थे। वे अत्यन्त उच्च शिक्षित थे और कठोर धार्मिक जीवन व्यतीत करते थे।

2. कुछ समय पश्चात् ज्येष्ठ पुत्र ने संन्यास ग्रहण करने की सोची। तदनुसार उसने अपना घर त्याग दिया, संन्यास ग्रहण किया और उरुवेल की दिशा में चला गया, जहाँ उसने अपना आश्रम स्थापित किया।

3. उसके दो छोटे भाइयों ने उसका अनुसरण किया और वे भी संन्यासी बन गये।

4. वे सभी अग्निहोत्री या अग्नि के उपासक थे। वे जटिल कहलाते थे, क्योंकि वे लम्बी जटायें रखते थे।

5. तीनों भाइयों में से एक काश्यप कहलाता था उरुवेल काश्यप, दूसरा नदी काश्यप (नदी अर्थात् निरंजना का काश्यप), और गया काश्यप (गया गाँव का नाम) के नाम से जाने जाते थे।

6. इसमें से उरुवेल काश्यप पांच सौ जटिल थे नदी कश्यप के तीन सौ और गया काश्यप के पास दो सौ जटिल थे।

7. इनमें से उरुवेल काश्यप की ख्याति दूर-दराज तक फैली हुई थी। उसके विषय में जाना जाता था कि उसने जीते जी मुक्ति प्राप्त कर ली है। दूर-दूर स्थानों से लोग उसके आश्रम में आते थे जो फल्गु नदी के तट पर स्थित था।

8. भगवान बुद्ध ने उरुवेल काश्यप के नाम और ख्याति के विषय में ज्ञात होने पर, अपने धर्म का उपदेश उसको देने और यदि सम्भव हुआ तो उसको अपने धर्म में धर्मान्तरित करने की सोची।

9. उसका पता-ठिकाना जानने के पश्चात् भगवान बुद्ध उरुवेल के पास गये।

10. तथागत उससे मिले और उसे शिक्षित करने एवं दीक्षित करने का एक योग्य अवसर चाहते हुए बोले, "यदि यह तुम्हें अरुचिकर न हो तो, काश्यप! मुझे एक रात अपने आश्रम में रहने दो।"

11. "मैं इससे सहमत नहीं हूँ", काश्यप ने कहा। "मुचलिन्द नामक एक जंगली नागराज है, जो इस स्थान पर शासन करता है। वह भयानक शक्तियों का स्वामी है। वह अग्नि-पूजा अनुष्ठान करने वाले सभी तपस्वियों का भयंकर शत्रु है। वह रात में उनके आश्रमों में आता है और उन्हें बड़ी हानि पहुँचाता है। मुझे भय है कि वह तुम्हें भी वही हानि पहुँचायेगा, जैसी वह मुझे पहुँचाता है।"

12. काश्यप नहीं जानता था कि नाग लोग तथागत के मित्र और अनुयायी बन चुके थे। किन्तु तथागत यह जानते थे।

13. अतः तथागत ने अपने आग्रह पर जोर देते हुए कहा, "बहुत सम्भव है कि वह मुझे कोई हानि नहीं पहुँचायेगा। कृपया, काश्यप! मुझे एक रात के लिये अपनी अग्निशाला में एक स्थल की अनुमति दे दो।"

14. काश्यप अनेक कठिनाइयों का वर्णन करता रहा और तथागत अपने आग्रह पर जोर देते रहे।

15. तब काश्यप ने कहा, "मेरा चित्त कोई विवाद नहीं चाहता। केवल मेरे पास मेरे भय और आशंकायें हैं, किंतु जैसा आपको अच्छा लगे वैसा करें।"

16. तथागत ने तत्काल अग्निशाला में प्रवेश किया और अपना आसन ग्रहण किया।

17. नागराजा मुचलिन्द अपने सामान्य समय पर कक्ष में आया, किन्तु काश्यप को पाने के बदले उसने तथागत को उसके स्थान पर बैठे पाया।

18. मुचलिन्द ने भगवान को बैठे देखा, उनके मुख को शान्ति और गम्भीरता से देदीप्यमान होता पा, ऐसा अनुभव किया जैसे वह एक महान दिव्य पुरुष के समक्ष है, और अपने सिर को झुकाते हुए तथागत की पूजा करनी प्रारम्भ कर दी।

19. उस रात काश्यप की नींद इस विचार से कि उसके अतिथि के साथ क्या घटित हुआ होगा, अत्यधिक बाधित रही थी। अतः वह अनेक आशंकाओं के साथ सुबह उठा इस बात से डरते हुए कि उसका अतिथि सम्भवतः जला ही दिया गया हो।

20. तब काश्यप और उसके अनुयायी सुबह की रोशनी में एक साथ देखने के लिये गये। भगवान को मुचलिन्द द्वारा हानि पहुँचाते हुए देखने की बात तो दूर, उन्होंने मुचलिन्द को भगवान की पूजा करते हुए पाया।

21. यह दृश्य देखते हुए, काश्यप ने महसूस किया कि वह एक महान चमत्कार (प्रातिहार्य) देख रहा है।

22. इस चमत्कार से प्रभावित काश्यप ने तथागत से उसके समीप ही ठहरने का आग्रह किया और उनकी देखभाल करने का वचन दिया।

23. तथागत ठहरने को सहमत हो गये।

24. दोनों के भिन्न उद्देश्य थे। काश्यप का उद्देश्य मुचलिन्द नाग के विरुद्ध संरक्षण प्राप्त करना था। भगवान बुद्ध ने सोचा कि एक दिन काश्यप उन्हें अपने धर्म को प्रस्तुत करने का अवसर देगा।

25. किन्तु काश्यप ने ऐसी कोई रुचि नहीं दिखलायी। उसने सोचा कि भगवान बुद्ध केवल एक चमत्कार करने वाले है और उससे ज्यादा और कुछ नहीं।

26. एक दिन भगवान बुद्ध ने स्वयं ही पहल करने की सोची और 'काश्यप से पूछा, "क्या तुम एक अर्हत हो?"

27. "यदि तुम एक अर्हत नहीं हो, तो यह अग्नि-होत्र तुम्हारा क्या कल्याण करने वाला है?"

28. काश्यप ने कहा : "मैं नहीं जानता हूँ कि एक अर्हत होना क्या होता है? क्या आप स्पष्ट करेंगे?"

29. तब भगवान ने काश्यप से कहा, "एक अर्हत वह व्यक्ति है, जिसने उन सभी मनोविकारों को विजित कर लिया है वह अर्हत है। अग्निहोत्र एक व्यक्ति का उसके पापों से परिमार्जन नहीं कर सकता।"

30. काश्यप अभिमानी व्यक्ति था। किन्तु उसने भगवान बुद्ध के तर्क की शक्ति को अनुभव किया। अपने चित्त को नमनशील और सुनम्य बना कर यहाँ तक कि अन्ततोगत्वा उसे सद्धर्म का वाहक बनने योग्य तैयार कर, उसने स्वीकार किया कि उसकी दरिद्र बुद्धि की तुलना विश्व-सम्मानित बुद्ध की बुद्धि से नहीं की जा सकती।

31. और इस प्रकार, आखिरकार कायल होकर, विनम्रतापूर्वक निवेदन करते हुए, उरुवेल काश्यप ने भगवान के धर्म को स्वीकार कर लिया उनका शिष्य बन गया।

32. अपने गुरु का अनुसरण करते हुए, काश्यप के अनुयायियों ने ईमानदारी से विनम्र क्रमशः सद्धर्म की शिक्षा ग्रहण की। इस प्रकार काश्यप और उसके सभी अनुयायी पूर्णतया धर्मांतरित हो गये थे।

33. तब, उरुवेल काश्यप ने अपनी सभी वस्तुओं और अपने सभी अग्निहोत्र करने के बरतन उठाकर एक साथ नदी में फेंक दिये, जो धारा की सतह पर तैरते हुए बह गये।

34. जो नदी और गया के आगे की ओर रहते थे, वस्त्रों (और शेष सामानों) को बेतरतीब बहते हुए देख कर बोले, "यह हमारे भाई का सामान है, क्यों उसने उन्हें फेंक दिया है? कोई महान परिवर्तन हुआ है।" और वे अत्यंत दुःखी और बेचैन हो गये थे। दोनों प्रत्येक पाँच सौ अनुयायियों सहित, अपने भाई को खोजने के लिये नदी के ऊपर की ओर बढ़े।

35. अपने भाई और उसके सभी अनुयायियों को अब श्रमणों के समान वस्त्र धारण किये हुए देखकर उनके मन में अपरिचित विचार आये और उन्होंने कारण जानने का प्रयास किया। उरुवेल काश्यप ने बुद्ध के धर्म में अपने धर्मांतरण की कहानी उन्हें बतायी।

36. "हमारे भाई ने इस प्रकार आत्मसमर्पण कर लिया है, हमें भी उसका अनुसरण करना चाहिये।" उन्होंने कहा।

37. उन्होंने अपनी इच्छायें अपने ज्येष्ठ भाई के समक्ष व्यक्त कीं। तब दोनों भाई, उनके सभी अनुयायियों के समूह के साथ, एक अग्निहोत्र धर्म की तुलना स्वयं अपने धर्म के साथ करने के उद्देश्य से भगवान के उपदेश को सुनने के लिये उनके समक्ष लाये गये।

38. दोनों भाइयों को अपने उपदेश में भगवान बुद्ध ने कहा, "जब तक भ्रमित विचार होते हैं, अविद्या का काला धुआँ उत्पन्न होता है, जिस प्रकार लकड़ी द्वारा लकड़ी रगड़े जाने पर अग्नि उत्पन्न होती है।"

39. "काम, क्रोध और भ्रान्ति ये अग्नि के समान हैं, और ये अन्य सभी वस्तुओं को भस्म कर डालती हैं जो संसार में दुख और शोक का कारण बनती है।"

40. "यदि एक बार इस मार्ग को पा लिया जाये और काम, क्रोध एवं भ्रान्ति समाप्त हो जायें, तब इसके साथ दृष्टि, ज्ञान और पवित्र आचरण का जन्म होता हैं।"

41. "अतः जब व्यक्ति को अकुशल कर्मों के प्रति घृणा उत्पन्न हो जाती है, तो

उससे तृष्णा का क्षय हो जाता है, तृष्णा के समाप्त होते ही व्यक्ति श्रमण बन जाता है।''

42. उन महान ऋषियों ने उनको सुन कर, अग्नि-पूजा के प्रति उन्हें सर्वदा के लिए उपेक्षा हो गई और बुद्ध के शिष्य बनने की इच्छा व्यक्त की।

43. काश्यपों का धर्मांतरण भगवान बुद्ध के लिये एक महान् विजय थी, क्योंकि लोगों के मन पर उनका अत्यधिक प्रभाव था।

3. सारिपुत्र और मौद्गल्यापन की धर्म-दीक्षा

1. जब भगवान बुद्ध राजगृह में थे, तो वहाँ संजय नामक एक प्रसिद्ध व्यक्ति परिव्राजकों के एक विशाल समूह के साथ रहता था, जिनकी संख्या दो सौ पचास थी। वे उसके शिष्यों के रूप में रहते थे।

2. उसके शिष्यों में दो ब्राह्मण युवक-सारिपुत्र और मौद्गल्यापन थे।

3. सारिपुत्र और मौद्गल्यापन संजय की शिक्षाओं से संतुष्ट नहीं थे और किसी बेहतर (धर्म) की तलाश में थे।

4. एक दिन की बात है कि पंचवर्गीय भिक्षुओं में से अश्वजित् नामक एक भिक्षु पूर्वाह्न की बात है अपने भिक्षापात्र लेकर और चीवर पहन भिक्षा के लिये राजगृह के नगर में प्रवेश किया।

5. सारिपुत्र अश्वजीत् के ओजस्वी आचरण का अवलोकन कर रहे थे और उससे प्रभावित हुए थे। भिक्षु अश्वजीत् को देखकर, सारिपुत्र ने सोचा, ''निःसंदेह यह व्यक्ति उन भिक्षुओं में से एक है, जो संसार में यशस्वी व्यक्ति हैं। यह कैसा हो, यदि मैं इस भिक्षु के समीप जाऊँ और उनसे पूछूँ ''किसके नाम से, मित्र! तुम ने संसार का त्याग किया है? तुम्हारा गुरु कौन है? तुम किसके धर्म को मानते हो?''

6. इस समय सारिपुत्र ने सोचा, ''इस भिक्षु से कुछ पूछने का यह उचित समय नहीं है, वे भिक्षा के लिये एक घर के भीतरी आँगन में प्रवेश कर चुके हैं। यह कैसा हो, यदि मैं इस भिक्षु का उस मार्ग के अनुसार धीरे-धीरे पीछा करूँ, जिसे उन लोगों ने मान्यता प्रदान की है, जो कुछ पाना चाहते हैं?''

7. भिक्षु अश्वजीत्, राजगृह में अपना भिक्षाटन समाप्त कर चुकने के पश्चात् प्राप्त भोजन सहित वापस लौट गये। तब सारिपुत्र उस स्थल पर गये, जहाँ भिक्षु अश्वजीत् थे, उनके समीप जाकर, उन्होंने अभिवादन किया और कुशल-क्षेम पूछकर वे उनकी बगल में खड़े हो गये।

8. उनकी बगल में खड़े हुए परिव्राजक सारिपुत्र ने भिक्षु अश्वजीत् से कहा, ''मित्र! आपका मुख-मण्डल, शान्त है; आपका स्वरूप पवित्र एवं उज्ज्वल है। किसके नाम पर, मित्र! तुमने संसार का त्याग किया है? तुम्हारा गुरु कौन है? तुम किसके धर्म को मानते हो?''

9. अश्वजीत् ने उत्तर दिया, ''मित्र! शाक्य-कुल के एक महान् श्रमण है, इन तथागत के नाम पर, मैंने संसार का त्याग किया है, यही तथागत मेरे गुरु हैं और इन्हीं तथागत का यहा धर्म है, जिसका मैं अनुसरण करता हूँ।''

10. ''और आदरणीय भिक्षु! धर्म क्या है जिसे आपके गुरु मानते हैं? और वह तुम्हें क्या उपदेश देते हैं?''

11. ''मित्र!' मैं एक नया शिष्य हूँ, मित्र! मैंने अभी कुछ ही समय पहले प्रव्रज्या ग्रहण की है और मैंने हाल में इस धर्म और विनय को अपनाया है। मैं विस्तारपूर्वक आपको धर्म की व्याख्या नहीं कर सकता हूँ, किन्तु मैं संक्षेप में आपको बताऊँगा कि इसका अभिप्राय क्या है?''

12. तब परिव्राजक सारिपुत्र ने भिक्षु अश्वजीत् से कहा, ''मित्र! ऐसा ही सही, जैसा आप चाहें कितना भी अधिक या कितना भी कम मुझे बतायें, किन्तु मुझे उसका सार बतायें, मैं केवल सार जानना चाहता हूँ। बहुत ही अधिक शब्दों की क्या आवश्यकता है?''

13. तब भिक्षु अश्वजीत् ने बुद्ध की शिक्षाओं का सार सारिपुत्र को स्पष्ट किया और सारिपुत्र पूर्णतया संतुष्ट हो गया था।

14. सारिपुत्र और मौद्गल्यापन, यद्यपि भाई-भाई नहीं थे, लेकिन वे दोनों भाइयों के समान रहते थे इस प्रकार परस्पर, उन्होंने एक-दूसरे को वचन दे रखा था कि जो पहले सत्य को प्राप्त करता है, वह दूसरे को भी उसके विषय में बतालाएगा। यह उनकी परस्पर वचनबद्धता थी।

15. तदनुसार सारिपुत्र उस स्थान पर गये, जहाँ मौद्गल्यापन थे। उन्हें देखकर, मौद्गल्यापन ने सारिपुत्र से कहा, ''मित्र! तुम्हारी मुखाकृति, शान्त है; तुम्हारी छवि पवित्र और उज्ज्वल है। तब क्या तुम वास्तव में सत्य तक पहुँच चुके हो?''

16. ''हाँ, मित्र! मैंने सत्य को जान लिया है।'' और ''कैसे मित्र! तुमने ऐसा क्या किया है?'' तब सारिपुत्र ने उनको वह सब बताया, जो उनके और अश्वजीत् के मध्य घटित हुआ था।

17. तब मौद्गल्यापन ने सारिपुत्र से कहा, "आओ मित्र! हम चलें, मित्र, और तथागत से मिलें; जिससे कि वे, तथागत, हमारे रास्ता बनें।"

18. सारिपुत्र ने उत्तर दिया, "मित्र! हम लोगों के कारण ही, ये दो सौ पचास परिव्राजक यहाँ रहते हैं, और वे हम लोगों का ही सम्मान करते हैं, आओ हम छोड़ कर जाने से पहले उन्हें सूचित कर दें, वे जैसा उचित समझेंगे वैसा करेंगे।"

19. तब सारिपुत्र और मौद्ल्यापन उस स्थान पर गये जहाँ वे लोग थे, उनके निकट जाकर उन्होंने उनसे कहा, "मित्रों! हम तथागत की शरण ग्रहण करने जा रहे हैं, वे तथागत, हमारे शास्ता (गुरु) हैं।"

20. उन लोगों ने उत्तर दिया, "आप लोगों के कारण ही, हम यहाँ रहते हैं, और हम आपको ही मानते रहे हैं, यदि आप लोग, महाश्रमण के अधीन पवित्र जीवन व्यतीत करेंगे, तो हम सब भी यही करेंगे।"

21. तब सारिपुत्र और मौद्ग्ल्यापन उस जगह पर गये जहाँ संजय थे, उनके निकट जा कर, उन्होंने कहा, "मित्र! हम तथागत की शरण ग्रहण करने जा रहे हैं, वह हमारे शास्ता हैं।"

22. संजय ने उत्तर दिया, "नहीं, मित्रो! मत जाइये, हम तीनों मिल कर इन सबकी देखभाल करेंगे।"

23. और दूसरी तथा तीसरी बार भी सारिपुत्र और मौद्गल्यापन ने यही बात कही और संजय ने पहले के समान उत्तर दिया।

24. तब सरिपुत्र और मौद्गल्यापन ने अपने साथ दो सौ पचास परिव्राजकों को लेकर राजगृह में वेलुवन को गये, जहाँ तथागत विराजवान थे।

25. तथागत ने उन्हें देखा, सारिपुत्र और मौद्गल्यापन, दूर से आ रहे थे, उन लोगों को देखकर उन्होंने भिक्षुओं को इस प्रकार सम्बोधित किया, "भिक्षुओं! ये दो साथी आ रहे हैं," सारिपुत्र और मौद्गल्यापन की ओर इशारा करते हुए, "ये मेरे प्रमुख श्रावक-युगल, और शुभ-युगल होंगे।"

26. जब वे वेलुवन में आ चुके थे, तब उस स्थान पर गये जहाँ तथागत थे, उनके निकट आकर, उन्होंने तथागत के चरणों में अपने शीश नवाकर साष्टांग प्रणाम किया और तथागत से बोले, "हमें तथागत द्वारा प्रव्रज्या और उपसम्पदा मिले।"

27. तब तथागत ने प्रव्रज्या को निर्दिष्ट करने वाले समान्य सूत्र का उच्चारण किया, "ऐहि भिक्खु" (आओ भिक्षुओ!) और फिर सारिपुत्र तथा मौद्गल्यापन और दो सौ पचास अन्य जटिल बुद्ध के शिष्य बन गये।

4. राजा बिम्बिसार की धम्म-दीक्षा

1. राजगृह मगध-नरेश श्रेणिक बिम्बिसार की राजधानी थी।
2. जटिलों की इतनी बड़ी संख्या का बुद्ध की शरण में चले जाने की चर्चा पूरे नगर में थी।
3. इस प्रकार राजा बिम्बिसार को तथागत के नगर में आगमन के विषय में ज्ञात हो गया था।
4. राजा ने सोचा, ''सबसे अधिक रूढ़िवादी और कट्टर जटिलों का धर्मांतरण कराना कोई मामूली बात नहीं है। ''वास्तव में ऐसा ही है,'' राजा बिम्बिसार ने स्वयं से कहा, ''वह अवश्य ही भगवान अर्हत होंगे, सम्यक् सम्बुद्ध, ज्ञान और आचरण में निपुण, पथ-प्रदर्शक, लोक के जानकर, सर्वश्रेष्ठ होंगे, मनुष्यों के मार्ग-दर्शक और देवताओं तथा मनुष्यों के शास्ता होंगे। वह अवश्य ही सत्य की शिक्षा दे रहे होंगे, जिसे उन्होंने स्वयं समझ लिया है।''
5. ''वह अवश्य ही ऐसे धर्म का उपदेश दे रहे होंगे, जो आदि में कल्याण कारक, मध्य में कल्याणकारक और अन्त में कल्याणकारक है तथा अर्थ एवं शब्द सहित उसका ज्ञान करा रहे होंगे, वह अवश्य ही परिपूर्ण, शुद्ध एवं पवित्र जीवन की उद्घोषणा कर रहे होंगे। उनके जैसे दिव्य पुरुष का दर्शन प्राप्त करना उत्तम है।''
6. अतः राजा बिम्बिसार, मगध के बारह लाख ब्राह्मणों और गृहस्थों से घिरे उस स्थल पर गये जहाँ तथागत विराजवान थे। उनके समीप पहुँचकर और विनम्रतापूर्वक अभिवादन करके, वह उनके समीप बैठ गए और उन बारह लाख मगध के ब्राह्मणों और गृहस्थों में से, कुछ ने भी विनम्रतापूर्वक अभिवादन किया और उनके समीप बैठ गये, कुछ ने तथागत का कुशल-क्षेम पूछा, और इसके उपरान्त सुनम्य शब्दों के साथ वे उनके समीप बैठ गये, कुछ ने तथागत को कर-कमलों से प्रणाम किया और उनके समीप बैठ गये, कुछ ने तथागत के समक्ष अपना नाम और गोत्र बताया और उनके समीप बैठ गये, कुछ निःशब्द उनके समीप बैठ गये।
7. अब उन बारह लाख मगध के ब्राह्मणों और गृहस्थों ने भगवान बुद्ध के साथ आये भिक्षुओं के मध्य उरुवेल काश्यप को देखा। उन्होंने सोचा ''अब यह क्या हैं? क्या उरुवेल काश्यप महाश्रमण की अधीनता में श्रेष्ठ जीवन व्यतीत कर रहा है अथवा महाश्रमण ही उरुवेल काश्यप की अधीनता में श्रेष्ठ जीवन व्यतीत कर रहा है, के अधीन पवित्र जीवन व्यतीत कर रहे हैं?''

8. और तथागत, अपने मन में उस विचार को जान चुके थे, जो उन बारह लाख मगध के ब्राह्मणों और गृहस्थों के मन में उठ रहा था, तब भगवान ने भिक्षु उरुवेल काश्यप से कहा, "तुमने क्या देखा, ओ उरुवेलवासी! कि तुम जो महान् कहे जाते थे, ने अग्नि-पूजा का परित्याग कर दिया? यह कैसे हुआ कि तुमने अग्निहोत्र का परित्याग कर दिया?"

9. काश्यप ने उत्तर दिया, "यज्ञों से रूप, शब्द, रस तथा स्त्री-स्पर्श की ही आशा की जा सकती है। क्योंकि मैंने जान लिया है कि मैं वासनामय रूप, रस, शब्द, गंध और स्पर्श अपवित्र है अतः मुझे यज्ञों और आहूतियों में अब आनन्द की प्राप्ति नहीं होती।"

10. "किन्तु यदि आपको बुरा न लगे, तो हमें बतायें कि किसने तुम्हें ऐसा सोचने को प्रेरित किया?"

11. तब भिक्षु उरुवेल काश्यप अपने आसन से उठे, अपने चीवर को ठीक किया, जिससे एक कंधा ढँक जाये, तथागत के चरणों पर अपने सिर को झुकाते हुए साष्टांग प्रणाम किया, और तथागत से बोले, 'मेरे गुरु तथागत हैं, मैं उनका शिष्य हूँ। तब वे बारह लाख मगध के ब्राह्मण और गृहस्थ समझ गये, "उरुवेल काश्यप महाश्रमण के अधीन पवित्र जीवन का पालन कर रहे हैं।"

12. जब तथागत ने, जो अपने मन में उस विचार को जान चुके थे, जो उन बारह लाख मगध के ब्राह्मणों और गृहस्थों के मन में उठ रहा था, उन्हें अपने धम्म का उपदेश दिया। जिस प्रकार काले धब्बों से रहित एक स्वच्छ कपड़ा अच्छी तरह रंग पकड़ लेता है, उसी प्रकार बिम्बिसार ने उन ग्यारह लाख मगध के ब्राह्मणों और गृहस्थों के उनके प्रमुख के रूप में वहीं बैठे हुए ही, धम्म के पवित्र और दागरहित रंग को प्राप्त कर लिया। शेष एक लाख से अपने उपासकत्व की घोषणा कर दी।

13. अब मगध के राजा, सेणिय बिम्बिसार ने, इस दृश्य का साक्षी होकर धम्म को समझ कर, धम्म में प्रवेश कर, अनिश्चय को विजित कर सभी सन्देहों को दूर कर, सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर, तथागत से कहाः भगवन! पूर्व दिनों में, जब मैं एक राजकुमार था, पाँच आकांक्षायें मेरे मन में थीं, वे अब पूर्ण हो गई हैं।"

14. "भगवन्! पिछले दिनों में, जब मैं एक राजकुमार था, मेरे मन में यह विचार आया काश! मैं एक राज्याभिषेकित राजा बन जाऊँ!" वह मेरी पहली आकांक्षा थी, जो अब पूर्ण हो गयी है। तब एक दिव्यात्मा, एक सम्यक्, मेरे राज्य में पधारें! यह मेरी दूसरी आकांक्षा थी, भगवन् जो अब पूर्ण हो गयी है। और मैं

उन तथागत की सेवा में उपस्थित होऊँ!' वह मेरी तीसरी आकांक्षा थी, जो अब पूर्ण हो गयी है। 'और वह, तथागत, मुझे धम्म का उपदेश दे!' यह मेरी चौथी आकांक्षा थी, भगवन्! और वह अब पूर्ण हो गयी है। 'और मैं उन तथागत के धम्म को समझ सकूँ!' यह मेरी पाँचवीं आकांक्षा थी, भगवन्! यह अब पूर्ण हो गयी है। भगवन्! ये मेरी पाँच आकाँक्षायें थीं, जिन्हें मैं पूर्व दिनों में जब मैं एक राजकुमार था। अपने मन में लाया था।''

15. ''अद्भुत, भगवन्! अद्भुत, जिस प्रकार कोई उसे सीधा कर दे, जो औंधा किया हुआ था, या उसे प्रकट कर दे, जो छुपा हुआ था या उसको मार्ग दिखला दे, जो अपने मार्ग से भटका हुआ था, या अन्धकार में एक दीपक जला दे, इसलिए कि जिनके आँखें हैं वे वस्तुओं को देख सकें, उसी प्रकार तथागत ने विभिन्न प्रकार से धम्म का उपदेश दिया। भगवन्! मैं तथागत की, धम्म की, और भिक्षुओं के संघ की शरण ग्रहण करता हूँ। आज के दिन से आगे तक, जब तक मेरा जीवन है भगवन्! मुझे एक उपासक मानें, जिसने उनकी शरण ग्रहण की है।''

5. अनाथपिण्डिक की धम्म-दीक्षा

1. सुदत्त कोशल राज्य की राजधानी श्रावस्ती का एक नागरिक था। कोसल जनपद इस पर प्रसेनजित शासन करता था। सुदत्त राजा का खजान्ची (श्रेष्ठी) था। गरीबों को बहुत दान देने के कारण, सुदत्त अनाथपिण्डिक के नाम से जाना जाता था।

2. जब भगवान राजगृह में थे, अनाथपिण्डिक अपने किसी निजी कार्य से राजगृह आया हुआ था। वह अपनी बहन के यहाँ ठहरा हुआ था, जिसका विवाह राजगृह के श्रेष्ठी-प्रमुख के साथ हुआ था।

3. जब वह वहाँ पहुँचा, तो उसने पाया कि श्रेष्ठी प्रमुख भगवान और उनके भिक्षुओं के लिये भोजन इतने बड़े पैमाने पर तैयार करा रहा था कि उसने सोचा कोई विवाह हो रहा है या राजा को निमन्त्रण दिया गया है।

4. जब उसे सत्य बात की जानकारी प्राप्त हुई, तो वह भगवान के पास जाने को अत्यन्त उत्सुक हो गया और वह उसी रात तथागत से मिलने के लिये चल पड़ा।

5. और तथागत ने अनाथपिण्डिक के हृदय के उत्कृष्ट गुण को तुरंत देख लिया और सान्त्वना के शब्दों द्वारा उसका स्वागत किया। अपना आसन ग्रहण करने

के बाद अनाथपिण्डिक ने किसी धार्मिक विषय पर उपदेश सुनने की इच्छा व्यक्त की।

6. तथागत ने उसकी इच्छा के प्रत्युत्तर में एक प्रश्न पूछा, ''वह कौन है जो हमारे जीवन को आकार देता है? क्या वह ईश्वर, एक व्यक्तिगत निर्माता है? यदि ईश्वर सृष्टिकर्ता है, सभी सजीव प्राणियों को चुपचाप उनके सृष्टिकर्ता की शक्ति के अधीन ही होना चाहिये। वे कुम्हार के हाथों बनाये हुए बर्तनों की तरह होंगे। यदि विश्व ईश्वर द्वारा निर्मित होता तो दुख, या आपत्ति, या पाप जैसी कोई वस्तु नहीं होनी चाहिये, और वह स्वयंभू भी नहीं होगा। अतः आप देख सकते हैं, ईश्वर का विचार पराजित हो जाता है।''

7. ''पुनः यह कहा जाता है कि स्वयंभू एक कारण नहीं हो सकता है। हमारे चारों ओर की वस्तुएँ एक कारण से आती हैं, जैसे पौधा बीज से उत्पन्न होता है, तो कैसे स्वयंभू सभी वस्तुओं का एक समान कारण हो सकता है? यदि वह उन सब में व्याप्त है, तब निश्चित ही वह उनका निर्माण नहीं करता है।''

8. ''पुनः यह कहा जाता है कि आत्मा ही निर्माता है। किन्तु यदि आत्मा ही निर्माता है, तो क्यों वह वस्तुओं को सुखद नहीं बनाता है? दुख और सुख की घटनायें वास्तविक और यथार्थ है। वे कैसे आत्मा द्वारा निर्मित हो सकती हैं?''

9. ''पुनः यदि तुम यह तर्क अपना लो, कि कोई निर्माता नहीं है, या यह भाग्य ही है जैसा वह है, और कोई हेतु प्रत्यय नहीं है, जो हमारे जीवन को आकाश देने और साधनों तथा साध्यों का मेल बिठाने का क्या लाभ होगा?''

10. ''अतः हमारा कहना है कि सभी वस्तुयें जिनका अस्तित्व है, बिना कारण नहीं है। हालाँकि, न तो ईश्वर, न ही स्वयंभू, न आत्मा, न कारणरहित संयोग, निर्माता है, बल्कि हमारे कर्म अच्छे और बुरे परिणामों को उत्पन्न करते हैं।''

11. ''सम्पूर्ण संसार प्रतीत्य-समुत्पाद के नियम के अधीन है, और कारण जो कार्य करते हैं अमानसिक (अचैतसिक) नहीं है, क्योंकि जिस सोने से प्याला निर्मित है, वह शुरु से अन्त तक सोना ही है।''

12. ''आइए हम, इसलिये, ईश्वर की पूजा करना और उससे प्रार्थना करने की मिथ्या-धारणाओं का परित्याग करें, आइये हम निरर्थक सूक्ष्मता की व्यर्थ निराधार कल्पनाओं में स्वयं को नष्ट न करें, आइए हम आत्मा और सभी स्वार्थों का परित्याग करें, और जैसे सभी वस्तुयें प्रतीत्य समुत्पाद द्वारा निर्धारित हैं, आइये हम अच्छे कर्म का पालन करें, जिससे कि हमारे कार्यों के अच्छे परिणाम निकलें।''

13. और अनाथपिण्डिक ने कहा, ''तथागत ने जो कुछ कहा मैं उसका सत्य देख रहा हूँ और मैं अपने सम्पूर्ण मन को खोलना चाहता हूँ। मेरे शब्दों को सुनने के उपरान्त भगवान मुझे सलाह दें कि मैं क्या करूँ।''

14. ''मेरा जीवन कार्य से परिपूर्ण है, और अत्यन्त सम्पदा 'अर्जित करने के कारण, मैं चिन्ताओं से घिरा हुआ हूँ। तथापि मैं अपने कार्य में आनन्द पाता हूँ, और मैं सम्पूर्ण परिश्रम से स्वयं को इसमें लगाये रखता हूँ। अनेक लोग मेरी नौकरी में हैं और मेरे उद्यमों की सफलता पर निर्भर करते हैं।''

15. ''अब, मैंने सुना है आपके शिष्य प्रव्रज्ज्या के सुखों की प्रशंसा करते हैं और विश्व की अशान्ति की भर्त्सना करते हैं। वे कहते हैं, 'तथागत', ने अपना राज्य और अपनी विरासत त्याग दी है, और सधर्म का मार्ग अपना लिया है, इस प्रकार सम्पूर्ण विश्व के समक्ष एक उदाहरण रखा है कि निर्वाण कैसे प्राप्त किया जाये।''

16. ''मेरा हृदय वह करने के लिये जो सही है और अपने साथी–प्राणियों के लिये एक वरदान साबित होने के लिये लालायित है। मैं तब आप से पूछ सकता हूँ, क्या मैं अपनी सम्पदा, अपना घर और अपना व्यापार–उद्यम त्याग दूँ, और आपके समान, गृहत्याग की स्थिति में चला जाऊँ जिससे कि एक धार्मिक जीवन के सुखों को प्राप्त कर सकूँ।''

17. और तथागत ने उत्तर दिया: ''एक धार्मिक जीवन का सुख उन सभी को प्राप्य है, जो आर्य आष्टांगिक मार्ग पर चलता है। वह जो सम्पदा से चिपटा रहता है, बेहतर होगा कि उससे दूर हो जाये, उसके द्वारा अपने हृदय को विषाक्त होने की अनुमति देने के स्थान पर, किन्तु वह जो सम्पदा से चिपटा नहीं रहता है, और धन होने पर भी, उसे उचित तरीके से प्रयोग करता है, अपने साथी–प्राणियों के लिये एक वरदान सिद्ध होगा।''

18. ''मैं तुम्हें यह कहता हूँ कि जीवन में अपने स्थान पर बने रहो और स्वयं को परिश्रम के साथ अपने उद्यमों में लगाओ। यह न तो जीवन, न सम्पदा और शक्ति है, जो मनुष्य को दास बनाती है, बल्कि जीवन, सम्पदा और शक्ति के प्रति लगाव उसे दास बनाता है।''

19. ''भिक्षु जो सुख का जीवन व्यतीत करने के लिये संसार का त्याग करता है कुछ भी लाभ प्राप्त नहीं कर पायेगा। क्योंकि आलस्य का जीवन एक घृणित वस्तु है और शक्ति के अभाव की उपेक्षा करनी चाहिये।''

20. "तथागत का धम्म एक मनुष्य से गृहत्याग की अवस्था में जाने या संसार का त्याग करने की अपेक्षा नहीं करता, जब तक कि वह ऐसा करने का अनुभव नहीं करता है, तथागत का धम्म प्रत्येक मनुष्य से कहता है कि हृदय को निर्मल करें, काम-भोग की चाह का त्याग करे, और एक सदाचारी जीवन व्यतीत करें।"

21. "और मनुष्य जो कुछ भी करे, भले ही वह संसार में एक कलाकार, व्यापारी या राजा के अधिकारी के रूप में संसार में रहे, या संसार का त्याग कर दे और स्वयं को धार्मिक ध्यान-भावना के एक जीवन को समर्पित कर दे, उन्हें अपना सम्पूर्ण हृदय उनके अपने कार्य में लगा देना चाहिये। उन्हें परिश्रमी और स्फूर्तिवान होना चाहिये, और यदि वे कमल के फूल के समान हैं, जो हालांकि वह जल में उत्पन्न होता है, तथापि जल द्वारा अछूता रहता है, यदि वे ईर्ष्या या घृणा को संजोए बिना जीवन में संघर्ष करते हैं, यदि वे संसार में स्वार्थ का जीवन नहीं, बल्कि सत्य का जीवन व्यतीत करते हैं, तब निश्चय ही हर्ष, शान्ति और सुख उनके मन में निवास करेंगे।"

22. अनाथपिण्डिक ने समझ लिया कि यह सत्य की, सरल और प्रज्ञा से उत्पन्न सबसे उत्तम व्यवस्था थी।

23. इस प्रकार सद्धर्म पर प्रगाढ़ आस्था होने के उपरान्त वह धीरे-धीरे तथागत के चरणों पर नतमस्तक हुआ और हाथ जोड़कर निवेदन किया।

6. राजा प्रसेनजित की धम्म-दीक्षा

1. यह सुनकर कि भगवान आये हुए हैं, तब राजा प्रसेनजित अपने राजसी रथ पर जेतवन विहार गये। उन्हें हाथ जोड़कर प्रमाण करके, उन्होंने कहा:

2. "मेरा अयोग्य और अन्धकारमय राज्य धन्य हुआ कि इसकी भेंट इतने महान सौभाग्य से हुई है, क्योंकि संसार के स्वामी, धम्म-राजा, सत्य के अधिपति की उपस्थिति में कोई विपत्ति या खतरा इस पर कैसे आ सकता है।"

3. "अब जबकि मैंने आपके पवित्र स्वरूप के दर्शन कर लिये हैं, मुझे अपनी शिक्षाओं के अभिनव जल में भागीदार बनने दें।"

4. "सांसारिक लाभ क्षणिक और नाशवान है, किन्तु धार्मिक लाभ शाश्वत और अनन्त है। एक सांसारिक मनुष्य, भले ही वह राजा हो, कष्टों से भरा रहता है, किन्तु यहाँ तक कि एक साधारण मनुष्य जो धर्मपरायण है, के पास मन की शान्ति है।"

5. राजा के मन की अवस्था को जानते हुए कि वह धनलोलुपता और सुखों के प्रति प्रेम से उदास है, तथागत ने अवसर का लाभ उठाया और कहा:

6. ''वे लोग भी जिनका जन्म सामान्य-स्थिति में हुआ है, जब किसी धर्मपरायण मनुष्य को देखते हैं, तो उस मनुष्य के प्रति आदर का अनुभव करते हैं, फिर एक स्वतन्त्र राजा, जिसने अपने जीवन की पूर्व अवस्थाओं द्वारा बहुत पुण्य अर्जित किये हुए हैं, कितना अधिक आदर का अनुभव करेगा?''

7. ''और अब वैसा कि मैं संक्षेप में धर्म की व्याख्या करूँगा, महाराज आप मेरे शब्दों को सुनें और मनन करें, और जो कुछ मैं कहूँ उसे शीघ्रता से हृदयंगम करें।''

8. ''हमारे अच्छे या बुरे कर्म परछाई के समान लगातार हमारा पीछा करते रहते हैं।''

9. ''तो जिस चीज की सर्वाधिक आवश्यकता है वह है मैत्रीपूर्ण-हृदय।''

10. ''अपनी प्रजा को ऐसे मानें जैसे हम एक इकलौते पुत्र को मानते हैं। उनका दमन न करें, उन्हें नष्ट न करें, अपने शरीर के सभी अंगों को पूर्ण नियन्त्रण में रखें, कुमार्ग का परित्याग करें और सीधे मार्ग पर चलें, दूसरों का दमन करके स्वयं को ऊँचा न उठायें। पीड़ित को सुख पहुँचायें और उसकी सहायता करें।''

11. ''न तो राजकीय गौरव पर अधिक विचार करें, और न ही चाटुकारों की चिकनी-चुपड़ी बातों को सुनें।''

12. ''स्वयं को तपश्चर्याओं द्वारा कष्ट देने का कोई लाभ नहीं है, बल्कि धर्म का ध्यान करें और धर्मपरायण नियमों का मनन करें।''

13. ''हम सभी दिशाओं से शोक और दुःखों की चट्टानों से घिरे हुए हैं और केवल सद्धर्म का विचार करने से हम इस दुख से परिपूर्ण पर्वत से बचकर निकल सकते हैं।''

14. ''तो फिर अन्याय का पालन करने से क्या लाभ है?''

15. ''वे सभी जो बुद्धिमान हैं शारीरिक सुखों को उपेक्षा करते हैं। वे कामनाओं से दूर रहते हैं और अपने आध्यात्मिक अस्तित्व के विकास के लिये प्रयत्नशील रहते हैं।''

16. ''जब एक वृक्ष भीषण लपटों से जल रहा हो, तो कैसे पक्षी उस पर अपने

घौसले बना सकते हैं? सत्य वहाँ कैसे टिक सकता है जहाँ राग का निवास है? इसके ज्ञान के बिना, विद्वान मनुष्य, भले ही, वह ऋषि के रूप में उसकी प्रशंसा होती है, अज्ञानी है।''

17. ''उसी पर जिसके पास यह ज्ञान है प्रज्ञा प्रकट होती है। इस प्रज्ञा की प्राप्ति ही एक मात्र लक्ष्य है, जिसकी आवश्यकता है। इसकी उपेक्षा करने का अर्थ जीवन की असफलता है।''

18. ''सभी धार्मिक सम्प्रदायों की शिक्षाओं का यही केन्द्र-बिन्दु होना चाहिये, क्योंकि इसके बिना सब निरर्थक है।''

19. ''यह सत्य केवल प्रव्रजितों के लिये ही नहीं है, इसका संबंध सभी मनुष्यों से है, साधु और गृहस्थ दोनों के समान रूप से। भिक्षु जिसने व्रत लिये हैं और सांसारिक गृहस्थ को अपने परिवार के साथ रहता है, दोनों के मध्य कोई अन्तर नहीं है। ऐसे भी प्रव्रजित हैं, जो पारीत होकर सर्वनाश को प्राप्त करते हैं और ऐसे भी विनम्र गृहस्थ है, जो ऋषियों के पद तक उठ जाते हैं।''

20. ''कामाग्नि का ज्वार-भाटा ऐसा खतरा है, जो सभी के लिये समान है; यह संसार को बहा ले जाता है। वह जो इसके भंवर में फँस जाता है, वह बच निकलने का कोई रास्ता नहीं पाता है। लेकिन प्रज्ञा सुलभव नाव है, चिन्तन पतवार है। धर्म की मांग है, मार-रूपी शत्रु के आक्रमणों से स्वयं को सुरक्षित रखने का आह्वान करता है।''

21. ''क्योंकि अपने कर्मों के परिणाम से बच निकलना असम्भव है, आइये हम अच्छे कार्य करें।''

22. ''आइये, हम अपने विचारों का निरीक्षण करें, जिससे कि हम कोई बुरा कार्य न करें, क्योंकि जैसा हम बोयेंगे, वैसा ही हम काटेंगे।''

23. ''प्रकाश के अन्धकार में और अन्धकार से प्रकाश में जाने के मार्ग हैं। इसी प्रकार अंधेरे से गहरे अन्धकार में, और भोर के उजाले में चमकते प्रकाश में जाने के भी तरीके हैं। बुद्धिमान मनुष्य प्रकाश का प्रयोग करेगा, क्योंकि उसे और अधिक प्रकाश प्राप्त करना है, वह निरंतर सत्य के ज्ञान की ओर अग्रसर होता रहेगा।''

24. ''बुद्धिसंगत-व्यवहार सदाचारी आचरण और तर्क के प्रयोग द्वारा सच्ची श्रेष्ठता का प्रदर्शन करो, भौतिक वस्तुओं की तुच्छता पर गम्भीरता से ध्यान करो, और जीवन की अस्थिरता को समझो।''

25. "चित्त को ऊँचा उठाओ, और दृढ़ उद्देश्य द्वारा वास्तविक श्रद्धा को प्राप्त करो, राजकीय आचरण के नियमों का उल्लंघन न करो, और अपनी प्रसन्नता को बाह्य वस्तुओं पर नहीं, बल्कि स्वयं अपने चित्त पर आधारित होने दो। इस प्रकार तुम अपना यश दूरस्थ कालों तक ले जाओगे।"

26. राजा ने ध्यान और आदर के साथ तथागत के सभी वचनों को सुना और उन्हें हृदयंगम किया और उनका उपासक बनने का वचन दिया।

7. जीवक की धर्म-दीक्षा

1. जीवक राजगृह की एक गणिका शालवती का पुत्र था।

2. जन्म के तुरंत बाद बच्चा, अवैध होने के कारण, एक टोकरी में रखकर कूढ़े के ढेर पर फेंक दिया गया था।

3. बहुत बड़ी संख्या में लोग कूढ़े के ढेर के पास खड़े होकर बच्चे को देख रहे थे। राजकुमार अभय उस स्थल से गुजर रहे थे। उन्होंने लोगों से पूछा, जिन्होंने बताया, "यह जीवित है।"

4. इस कारण से बच्चे को जीवक कहा जाने लगा था। अभय ने उसे अपना लिया और पाल-पोसकर बड़ा किया।

5. जब जीवक बड़ा हुआ, तो उसे पता चला कि किस प्रकार वह बचाया गया था और उसमें दूसरों को बचाने के लिए स्वयं को योग्य बनाने की उत्कृष्ट अभिलाषा उत्पन्न हुई।

6. अतः वह अभय की जानकारी और आज्ञा बिना सात वर्ष तक के लिये चिकित्सा-शास्त्र पढ़ने के लिये तक्षशिला विश्वविद्यालय चला गया।

7. राजगृह लौटने पर उसने एक चिकित्सक के रूप में अपना व्यवसाय स्थापित किया और बहुत ही कम समय में व्यवसाय में अच्छा नाम और प्रसिद्धि प्राप्त कर ली।

8. उसका पहला रोगी साकेत के एक श्रेष्ठि की पत्नी थी और उसको अच्छा कर देने के लिये उन्होंने सोलह हजार कार्षापण, एक पुरुष-नौकर एक स्त्री नौकर तथा एक घोड़े सहित एक रथ पाया।

9. जीवका योग्यता जान, अभय ने उन्हें अपने घर में निवास स्थान दे दिया।

10. राजगृह में उन्होंने बिम्बिसार के एक कष्टदायी भगन्दर रोग का इलाज किया

और कहा जाता है कि पुरस्कारस्वरूप बिम्बिसार की पाँच सौ रानियों ने अपने सभी आभूषण जीवक को दे दिए थे।

11. जीवक के अन्य उल्लेखनीय इलाजों में सम्मिलित हैं, राजगृह का वह श्रेष्ठि जिसकी उन्होंने कपाल-छेदन की शल्य-क्रिया की थी, तथा बनारस के श्रेष्ठि का पुत्र, जो अंतड़ियों के खिसक जाने के कारण चिरकालिक आन्त्र रोग से पीड़ित था।

12. जीवक को राजा ने अपना और रनिवास का चिकित्सक नियुक्त कर दिया था।

13. किन्तु जीवक की तथागत के प्रति अपार श्रद्धा थी। अतः वह उनके और संघ के लिये भी चिकित्सक के रूप में कार्य करते थे।

14. वह तथागत के शिष्य बन गये। तथागत ने उन्हें भिक्षु नहीं बनाया, क्योंकि वे चाहते थे कि वह रोगियों और घायलों की सेवा करने के लिये मुक्त रहें।

15. जब बिम्बिसार की मृत्यु हो गई, तो भी जीवक उनके पुत्र अजातशत्रु के भी चिकित्सक बने रहे और पितृ-हत्या के अपराध के बाद उसको तथागत के समीप लाने में मुख्य रूप से सहायक थे।

8. रट्ठपाल की धर्म-दीक्षा

1. एक बार जब भगवान एक बहुत बड़े भिक्षुसंघ के साथ कुरु राष्ट्र में भिक्षाटन चारिका कर रहे थे, वे थूल्लकोट्ठित में ठहरे थे, जो कुरुओं का एक नगर-क्षेत्र कस्बा था।

2. जब वहां के लोगों को इस बात का पता चला और वे भगवान बुद्ध के दर्शनार्थ अपनी श्रद्धा प्रकट करने के लिये उनके पास गये।

3. जब वे वहाँ बैठ गये, तब तथागत ने उन्हें एक धर्मोपदेश दिया। उनके उपदेश को सुनने के उपरांत थूल्लकोट्ठित के गृहों के ब्राह्मण प्रमुखों ने सम्मानपूर्वक उनको धन्यवाद दिया, उठे और गहरी श्रद्धा सहित प्रस्थान कर गये।

4. उनके मध्य रट्ठपाल नामक एक युवक बैठा था, जो उस स्थल के एक प्रमुख परिवार का एक वंशज था, जिसके मन में एक विचार आया "जहाँ तक मैंने समझा है, जिस धर्म का उपदेश भगवान ने दिया है, यह उसके लिये आसान बात नहीं है जो गृहस्थी में रहते हुए वह उसे उतनी पवित्रता, उतनी सम्पूर्णता, शुद्धता और पूर्णता के साथ उच्च जीवन व्यतीत करे।"

5. ''कैसा हो यदि मैं दाढ़ी और बाल कटवा लूँ, काषाय वस्त्र धारण करके गृह का परित्याग करके प्रवजित हो जाऊँ और घर-बारी से वे घर-बस्ति।''

6. जब ब्राह्मण गृहपति अधिक दूर नहीं जा पाए होंगे, तब रट्ठपाल आया और अभिवादन के उपरांन्त, भगवान को अपना विचार प्रकट किया, जो उसके मन में आया था और उनके अंतर्गत संघ में प्रव्रज्या और उपसम्पदा देने का निवेदन किया।

7. तथागत ने पूछा, ''रट्ठपाल, क्या तुम्हारे पास इस कार्यवाही के लिये तुम्हारे माता-पिता की अनुमति है?''

8. ''नहीं, भगवान।''

9. ''जिनके पास उनके माता-पिता की अनुमति नहीं होती। मैं उन्हें प्रवज्जित नहीं करता ।''

10. युवक ने कहा, ''भगवान! मैं उस अनुमति को प्राप्त करने का प्रयास करूँगा'' और उठ कर भगवान से श्रद्धापूर्वक आज्ञा लेते हुए अपने माता-पिता के पास गया, उन्हें अपने विचारों को बताया और उनसे अपने भिक्षु बनने की अनुमति मांगी।

11. माता-पिता ने इस प्रकार उत्तर दिया, ''प्रिय रट्ठपाल, तुम हमारे इकलौते पुत्र हो, हमें बहुत प्यारे और दुलारे हो, तुम आराम में रहते हो और आराम से पले-बढ़े हो, तुम्हें कष्ट का कोई अनुभव नहीं है। जाओ! खाओ, पियो, मौज करो, और पूर्ण सुख के साथ अच्छे कार्य करो। हम अपनी अनुमति देना अस्वीकृत करते हैं।

12. ''तुंम नहीं रहोगे तो हमारा जीना दूभर हो जाएगा, हमारे लिये जीवन में कोई आनन्द नहीं रह जायेगा, हम तुम्हें जीते-जी एक भिक्षु के रूप में गृह का परित्याग कर प्रव्रजित होने की अनुमति क्यों दें?''

13. दूसरी और तीसरी बार भी रट्ठपाल ने अपना निवेदन दोहराया, परंतु उसे अपने माता-पिता से वही अस्वीकृति मिली।

14. इस प्रकार अपने माता-पिता की अनुमति प्राप्त करने में असफल हो कर, युवक स्वयं नंगी-जमीन पर लेट गया यह घोषणा करते हुए कि ''या तो वह वहीं मर जायेगा या भिक्षु बनेगा।''

15. उसके माता-पिता ने उसके भिक्षु बनने के प्रति अपने विरोधों को दोहराते हुए उससे उठ-बैठने का अनुनय-विनय किया, किन्तु नवयुवक एक भी शब्द नहीं

बोला। दूसरी और तीसरी बार भी उन्होंने उससे अनुनय-विनय किया, परंतु फिर भी वह एक भी शब्द नहीं बोला।

16. अत: माता-पिता ने रट्ठपाल के साथियों को बुलवाया, जिन्हें उन्होंने यह सब बताया और उनसे अपनी ओर से आग्रह करने को कहा जो कुछ उसके माता-पिता ने उससे कहा था।

17. तीन बार उसके साथियों ने उससे निवेदन किया, परंतु फिर भी वह एक भी शब्द नहीं बोला। अत: उसके साथी माता-पिता के पास इस सूचना के साथ आये : "वह वहाँ नंगी जमीन पर लेटा है, यह घोषणा करते हुए कि या तो वह वहीं मर जायेगा या एक भिक्षु बनेगा। यदि आप अपनी अनुमति नहीं देंगे, वह कभी जीवित नहीं उठेगा। किन्तु, यदि आप अपनी अनुमति दे देंगे, तो आप उसको जीवित देख सकेंगे। यदि एक भिक्षु बना रहना उसे अच्छा नहीं लगेगा, तो उसके पास वापस लौटने के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं होगा। केवल यहां वापस आना ही बचेगा। कृपया अपनी अनुमति दे दें। " उन्होंने आग्रह किया।

18. "हाँ हम अनुमति देते हैं, किन्तु जब तक वह एक भिक्षु रहेगा, तो वह अवश्य हमसे मिलने के लिए आया करेगा।"

19. अब उनके साथी रट्ठपाल के पास गये और उन्होंने उससे कहा कि उसके माता-पिता ने अपनी अनुमति दे दी है, किन्तु जब तक वह एक भिक्षु रहेंगे, तब तक अवश्य आना और उनसे मिलना होगा।

20. तत्पश्चात् रट्ठपाल उठा और, जब उसने अपनी शक्ति पुन: प्राप्त कर ली, स्वयं को तथागत के पास ले गया, और अभिवादन के पश्चात् एक ओर बैठ गया, और बोला, "मैंने अपने भिक्षु बनने के लिये अपने माता-पिता की अनुमति प्राप्त कर ली है। मैं तथागत से संघ में सम्मिलित कर लेने का निवेदन करता हूँ।"

21. तथागत के अधीन उन्हें प्रव्रज्या और उपसम्पदा प्रदान कर दी गयी, और दो सप्ताह के बाद तथागत, थूल्लकोट्ठित में जितना वे रुकना चाहते थे उतना ठहरने के बाद, अपनी भिक्षाटन चारिका में श्रावस्ती की ओर बढ़ गये, जहाँ उन्होंने अनाथपिण्डिक के विहार में जेतवन में अपना निवास बनाया।

22. अकेले और अलग निवास करते हुए उद्यम, उत्साह एवं स्वयं के शुद्धिकरण द्वारा, भिक्षु रट्ठपाल ने शीघ्र ही उस उद्देश्य को अर्जित कर लिया, जिसकी खोज में नवयुवक गृह का परित्याग कर एक भिक्षु के रूप में प्रव्रजित होते हैं- वह है मानव-जीवन का श्रेष्ठतम आदर्श।

23. तब, वे भगवान के पास गये और, अभिवादन के पश्चात् एक ओर बैठने के बाद कहा कि भगवान की अनुमति से, वे अपने माता-पिता से मिलने के लिए जाना चाहते हैं।

24. स्वयं भगवान बुद्ध ने अपने चित्त से रट्ठपाल के चित्त के विचारों का अवलोकन कर के, और उनके संबंध में यह स्वीकार करते हुए कि वे अपने प्रशिक्षण का परित्याग करने और एक गृहस्थ के निम्न जीवन में पुनः लौट जाने में असमर्थ हैं। भगवान ने उन्हें जब वे चाहें जाने की अनुमति दे दी।

25. इसके तुरंत बाद उठकर और भगवान से गंभीर श्रद्धापूर्वक आज्ञा लेकर, रट्ठपाल अपना बिस्तर ठीक से रख कर, अपने चीवर और पात्र के साथ थूल्लेकोट्ठित की एक भिक्षाटन चारिका के लिये निकल पड़े जहाँ उन्होंने अपना निवास कुरु राजा के मृग-उद्यान में बनाया।

26. अगली सुबह प्रातःकाल, भली-भांति चीवर पहन और हाथ में भिक्षा पात्र लेकर, वे भिक्षा के लिए निगम में गये, और वहाँ अपनी बिना भेद-भाव की परिक्रमा में एक घर से दूसरे घर होते हुए, वे अपने पिता के घर पहुँचे।

27. घर के अन्दर कक्ष के मध्य दरवाजे के भीतर, उनके पिता अपने बालों को कंघी से सँवार रहे थे और रट्ठपाल को, कुछ दूरी से आते हुए देख, उन्होंने कहा, "ऐसे ही सरमुँडे प्रव्रजितों ने मेरे प्रिय इकलौते एवं दुलारे पुत्र को भिक्षु बनाया था।"

28. अतः स्वयं अपने पिता के घर में रट्ठपाल को कुछ नहीं दिया गया, यहाँ तक कि इन्कार भी नहीं; जो कुछ उन्हें मिला वे थीं गालियाँ।

29. इसी क्षण परिवार की एक दास कन्या पिछले दिन का बासी चावल फेंकने वाली थी, और रट्ठपाल ने उससे कहाः "बहन, यदि यह फेंके जाने वाले हैं, इन्हें यहाँ मेरे पात्र में डाल दो।"

30. जब दासी ऐसा कर रही थी, तब उसने उनके हाथों, पांवों और आवाज को पहचान लिया, और अपनी मालकिन के पास सीधे जाकर रोते हुए बोली, "मालकिन! क्या आपको मालूम है, छोटे मालिक वापस लौट आये हैं।"

31. मां ने कहा, "यदि जो तुमने सत्य कहा है, तो तुम इसी क्षण दासता के बंधन से मुक्त हुई, "वह शीघ्रता से अपने पति को सूचित करने गयी कि उसने सुना है कि उनका पुत्र वापस लौट आया है।"

32. रट्ठपाल उस बासी चावल को झाड़ी के नीचे बैठे खा रहे थे। जब उनके पिता

आये, वे बोले; "क्या यह हो सकता है कि, मेरे प्रिय पुत्र, तुम बासी चावल खा रहे हो? क्या तुम्हें स्वयं अपने घर नहीं आना चाहिए था?"

33. रट्ठपाल ने कहा, "गृहपति! हम बे-घर हैं, गृह का परित्याग कर प्रव्रजित हो चुके हैं, ऐसे लोगों का अपना घर क्या है? हाँ, मैं तुम्हारे घर आया था, जहाँ मुझे कुछ नहीं दिया गया था, यहाँ तक कि इन्कार भी नहीं, जो कुछ मुझे मिला वे थीं-गालियाँ।"

34. "आओ, मेरे पुत्र! आओ हम घर के अन्दर चलें।" "ऐसा नहीं, गृहपति! मैंने आज का अपना भोजन समाप्त कर लिया है।" रट्ठपाल ने कहा।

35. "ठीक है मेरे पुत्र कल का भोजन करने का वचन दो।'

36. अपने मौन द्वारा भिक्षु रट्ठपाल ने स्वीकृति दी।

37. तब पिता घर के भीतर गये, जहाँ सर्वप्रथम उन्होंने सोने और चाँदी के विशाल ढेर लगाए और उसे चटाई से ढँक देने की आज्ञा दी और तब उन्होंने अपनी पुत्र-वधुओं से कहा, "जो पहले भिक्षु रट्ठपाल की पत्नियाँ थीं, वे स्वयं को अच्छे से अच्छे तरह से अलंकृत करें, जिस तरह से उनका पति उन्हें अलंकृत देखना चाहा करता था।"

38. जब रात बीत गई, पिता ने अपने घर में बढ़िया भोजन तैयार करने की आज्ञा देकर अपने पुत्र को बताया कि भोजन तैयार हो गया। उस पूर्वाह्न में, भिक्षु रट्ठपाल, भलि-भांति चीवर पहन और हाथ में भिक्षा-पात्र ले कर, आये और अपने लिये सज्जित आसन पर बैठे।

39. इसके तुरंत बाद, सोना-चाँदी के ढेरों को खोल देने की आज्ञा देकर पिता ने कहा, "यह तुम्हारी माँ का धन है, वह तुम्हारे पिता का धन है और वह तुम्हारे दादा से चला आ रहा है। तुम्हारे पास स्वयं भोगने और पुण्य-कार्य करने दोनों के लिये सम्पत्ति है।'

40. "आओ, मेरे पुत्र! अपने श्रमण-चर्या का परित्याग करो, गृहस्थ के निम्न जीवन में पुनः लौट आओ, अपनी धन-सम्पत्ति को भोगो और अच्छे कार्य करो।"

41. "रट्ठपाल ने उत्तर दिया, गृहपति! यदि तुम मेरी सलाह मानो तो तुम इस सारे ढेर लगे खजाने को गाड़ी में लादकर ले जाओ और गंगा नदी के मध्य में इसे डुबो दो। और ऐसा क्यों? क्योंकि इसके कारण तुम्हें केवल दुःख, विलाप, विपत्ति, चित्त और काय की पीड़ा तथा कष्ट ही मिलेगा।"

42. उसके चरणों से लिपट कर, भिक्षु रट्ठपाल की पूर्व पत्नियाँ पूछने लगीं कि आखिर वे अप्सरायें कैसी हैं, जिनके लिये वे ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

43. रट्ठपाल ने उत्तर दिया, ''बहनों! किन्हीं भी अप्सराओं के लिये नहीं।''

44. स्वयं को बहनों कहा जाना सुन कर, सभी स्त्रियां बेहोश हो गयीं और जमीन पर गिर पड़ीं।

45. रट्ठपाल ने अपने पिता से कहा, ''गृहपति! यदि भोजन कराना है तो कराओ, कष्ट मत दो।''

46. ''मेरे पुत्र! भोजन, तैयार है, प्रारम्भ करो,'' पिता ने कहा और उसने बढ़िया भोजन श्रद्धा भाव से परोसा जब तक कि उनके पुत्र की तृप्ति नहीं हो गई।

47. भोजन करने के बाद रट्ठपाल कुरु राजा के मृग-उद्यान की ओर चले गये, जहाँ वे मध्याह्न की गर्मी में एक वृक्ष के नीचे बैठ गये।

48. उसी समय राजा ने अपने शिकारी को निर्देश दे रखे थे कि वह उनके वहाँ आने से पहले उद्यान को ठीक-ठाक करके रखें, और आज्ञाकारी शिकारी अपने काम में लगा हुआ था, जब उसने मध्याह्न की गर्मी में रट्ठपाल को एक वृक्ष के नीचे बैठे देखा, उसने राजा को सूचित किया कि उद्यान ठीक-ठाक है, परंतु एक वृक्ष के नीचे रट्ठपाल, नवयुवक-भद्रपुरुष, जिनके विषय में महाराज ने प्रायः सुना है, बैठे हैं।

49. राजा ने कहा, ''आज उद्यान के विषय में भूल जाओ,'' ''मैं उन भिक्षुओं के दर्शन करूँगा।'' अतः जितना भी भोजन तैयार किया गया था उसे तैयार रखने को कहकर, वह रथ पर सवार हो कर राजकीय शैली में जुलूस के साथ नगर के बाहर रट्ठपाल के दर्शन करने चल पड़ा।

50. जहाँ तक जमीन उनके रथ के लिये उपयुक्त थी, रथ पर सवार होकर और उसके बाद अपने राजकीय जुलूस के साथ पैदल चल कर, राजा अन्ततोगत्वा भिक्षु रट्ठपाल के पास पहुंचे, जिन्हें, विनम्र अभिवादन के पश्चात् स्वयं अभी तक खड़े ही हुए, फूलों की एक ढेरी पर बैठने के लिये आमंत्रित किया।

51. ''नहीं राजन्! आप वहाँ बैठें, मैं अपने स्थान पर बैठा हूँ।''

52. उनको संकेत किए गये आसन पर स्वयं बैठते हुए, राजा ने रट्ठपाल से कहा, ''चार प्रकार की हानियाँ हैं, जो मनुष्य को बाल और दाढ़ी कटवाने, काषाय चीवर

धारण करने, और गृह का परित्याग कर प्रव्रजित होने को विवश करती हैं-यथा (1) बुढ़ापा, (2) गिरता हुआ स्वाथ्य, (3) दरिद्रता और (4) निकट सम्बन्धियों की मृत्यु।''

53. ''एक आदमी को लो, जो वृद्ध होने पर अधिक आयु हो जाने पर, जराजीर्ण हो जाने पर और जीवन के अन्त के निकट आने पर, अपनी स्थिति को महसूस कर और या तो नयी सम्पत्ति को अर्जित करने में या जो कुछ उसके पास है उससे ठीक से गुजारा करने में कठिनाई महसूस करता है, अतः वह प्रव्रजित होने का निर्णय करता है। इसे बुढ़ापे से उत्पन्न होने वाली हानि कहा जाता है। किन्तु यहाँ तुम तो यौवन के शीर्ष और जवानी की अवस्था में हो, कोयले के समान काले केशों की सम्पदा है, जिन्हें सफेदी छू भी नहीं पायी है और तुम्हारे यौवन की इस सुन्दरता में, बुढ़ाने द्वारा उत्पन्न हानि का कोई खतरा नहीं है। तुमने ऐसा क्या जाना या देखा या सुना जिसने तुम्हें प्रव्रजित होने को बाध्य किया?''

54. ''या एक आदमी को लो, जो रोग-ग्रस्त होने पर या कष्ट में होने पर या गंभीर रूप से बीमार होने पर, अपनी स्थिति को महसूस कर और या तो नयी सम्पत्ति को अर्जित करने में या जो कुछ उसके पास है, उससे ठीक से गुजारा करने में कठिनाई महसूस करता है; अतः वह प्रव्रजित होने का निर्णय करता है। इसे गिरते हुए स्वास्थ्य से उत्पन्न होने वाली हानि कहा जाता है। किन्तु यहाँ तुम न तो बीमार ही हो और न तुम्हें कोई कष्ट ही है, न तो अधिक गर्म और न ही अधिक ठण्डे तरल पदार्थ द्वारा पोषित अच्छी पाचन शक्ति सहित, तुम्हारी हानि ऐसी नहीं है जो गिरते हुए स्वास्थ्य के कारण उत्पन्न होती है। तुमने ऐसा क्या जाना या देखा या सुना, जिसने तुम्हें प्रव्रजित होने को बाध्य किया?''

55. ''या एक आदमी को लो, जो धनी, सम्पत्तिवान और बहुत सम्पदा वाला रहने के बाद, और धीरे-धीरे उसे खाने पर, अपनी स्थिति को महसूस कर और या तो नयी सम्पत्ति को अर्जित करने में जो कुछ उसके पास है उससे ठीक से गुजारा करने में कठिनाई महसूस करता है; अतः वह एक बेघर बनने का निर्णय करता है। इसे दरिद्रता से उत्पन्न होने वाली हानि कहा जाता है। किन्तु भिक्षु रट्ठपाल इसी ही थूल्लकोट्ठित के प्रमुख परिवार के पुत्र हैं और सम्पत्ति की हानि में से कोई भी भिक्षु रट्ठपाल के सम्मुख नहीं है। भिक्षु रट्ठपाल ने ऐसा क्या जाना या देखा या सुना कि वे गृह का परित्याग कर प्रव्रजित हो गये हैं?''

56. ''भिक्षु रट्ठपाल! निकट सम्बन्धियों की हानि क्या है? किसी के अनेक मित्र और परिचित और सम्बन्धी हैं, किन्तु धीरे-धीरे ये सम्बन्धी समाप्त होते जाते हैं। वह इस प्रकार विचार करता है : 'पहले मेरे पास अनेक मित्र और परिचित, और सम्बन्धी थे, किन्तु धीरे-धीरे मेरे सम्बन्धी समाप्त हो गये हैं, अतः मेरे लिए धन-सम्पत्ति इत्यादि अर्जित करना सरल नहीं है...., अतः वह संबंधियों की इस हानिके पश्चात्, केश और दाढ़ी कटवा कर, काषाय-वस्त्र धारण करके, गृह का परित्याग कर प्रव्रजित हो जाता है।' इसे सम्बन्धियों के मरण से उत्पन्न होने वाली हानि कहा जाता है। किन्तु तुम्हारे पास मित्रों और सम्बन्धियों का पूरा जमघट है, तुम्हारी हानि ऐसी नहीं है, जो सम्बन्धियों की मृत्यु से उत्पन्न होती है। तुमने ऐसा क्या जाना या देखा या सुना, जिसने तुम्हें प्रव्रजित होने को बाध्य किया?''

56. भिक्षु रट्ठपाल ने उत्तर दिया, ''राजन्! मैंने गृह का परित्याग किया और प्रव्रजित हो गया, क्योंकि मैंने सम्यक सम्बुद्ध द्वारा प्रतिपादित निम्नलिखित चार बातों को जाना, देखा और सुना है, जिन्हें वे जानते और देखते हैं:

(1) संसार अनित्य और परिवर्तनशील है।

(2) संसार का कोई संरक्षक या रक्षा करने वाला नहीं है।

(3) हमारा कुछ भी नहीं है, हमें निश्चय ही सभी कुछ छोड़ जाना है।

(4) तृष्णा के वशीभूत होकर अभावग्रस्त और संसार दुःखी रहता है।''

57. ''यह अद्‌भुत है, यह आश्चर्यजनक है,'' राजा ने कहा, ''इस विषय में तथागत का कथन कितना सत्य है!''

चौथा-भाग

जन्म-भूमि का आह्वान

1. शुद्धोदन से (अंतिम) भेंट
2. यशोधरा और राहुल की भेंट
3. शाक्यों द्वारा स्वागत
4. गृहस्थ बनाने का अंतिम प्रयास
5. बुद्ध का उत्तर
6. मंत्री का उत्तर
7. बुद्ध की दृढ़ता

1. शुद्धोदन से (अंतिम) भेंट

1. सारिपुत्त और मौद्गल्यापन की धर्म-दीक्षा के पश्चात् भगवान दो माह तक राजगृह में ही ठहरे।

2. यह सुनकर कि तथागत राजगृह में रह रहे थे, उनके पिता शुद्धोदन ने उनके पास यह संदेश भिजवाया कि : "मैं अपनी मृत्यु से पहले अपने पुत्र को देखना चाहता हूँ। दूसरों को उनके धर्म का लाभ प्राप्त होता रहा है, किन्तु न तो उनके पिता और न ही उनके संबंधियों को हुआ है।"

3. वह व्यक्ति जिसके द्वारा संदेश भेजा गया था, वह शुद्धोदन के दरबारियों में से एक का पुत्र कालउदायी था।

4. और संदेशवाहक ने आगमन पर कहा : "ओ लोक-पूज्य तथागत! आपके पिता आपके आने की राह ऐसे देख रहे हैं, जैसे कुमुदिनी सूर्य के उदय के लिये लालायित रहती है।"

5. तथागत ने अपने पिता के निवेदन को स्वीकार कर लिया और अपने शिष्यों की एक बहुत बड़ी संख्या के साथ अपने पिता के घर की यात्रा पर निकल पड़े।

6. भगवान जगह-जगह ठहरते हुए यात्रा कर रहे थे। किन्तु कालउदायी शुद्धोदन को सूचित करने के लिये उनसे आगे चला गया कि भगवान आ रहे हैं और रास्ते में ही हैं।

7. शीघ्र ही समाचार शाक्य-जनपद में फैल गया। "राजकुमार सिद्धार्थ, जो बोधि प्राप्त करने के लिये गृह का परित्याग कर प्रव्रजित हो गये थे, ने अपने उद्देश्य की प्राप्ति कर ली है, कपिलवस्तु में अपने घर आ रहे हैं।" यह बात सबके होंठों पर थी।

8. शुद्धोधन और महाप्रजापति अपने संबंधियों और मंत्रियों के साथ अपने पुत्र से मिलने के लिये बाहर गये। जब उन्होंने दूर से ही अपने पुत्र को देखा तो वे उसकी सुन्दरता, उसकी गरिमा और उसकी कांति से प्रभावित हो गये और हृदय से प्रसन्न हुए, किन्तु वे अपनी प्रसन्नता व्यक्त करने के लिये शब्द नहीं खोज पा रहे थे।

9. यह निस्संदेह उनका पुत्र ही था; सिद्धार्थ के नैन-नक्श ऐसे ही थे। महाश्रमण उनके हृदय के कितना समीप थे और फिर भी उनके मध्य कितनी अधिक दूरी थी। वह महामुनि अब उनका पुत्र सिद्धार्थ नहीं रहा था; अब वह, तथागत, अहन्त, शास्ता और मानव-मात्र का गुरु था।

10. शुद्धोदन, अपने पुत्र की धार्मिक गरिमा का ध्यान कर, रथ से उतरे और सर्वप्रथम उनका अभिवादन किया और बोले: ''तुम्हें देखे हुए अब सात वर्ष हो गये हैं। इस क्षण की हमने कितनी प्रतीक्षा की है।''

11. तब बुद्ध ने अपने पिता के ठीक सामने आसन ग्रहण किया, और राजा उत्सुकतापूर्वक टकटकी लगाकर अपने पुत्र को निहारते रहे। वे उन्हें उनके नाम से बुलाना चाहते थे, किन्तु उन्होंने साहस नहीं किया। 'सिद्धार्थ' वे अपने हृदय में मौन रूप से बोले, ''सिद्धार्थ, अपने वृद्ध पिता के पास लौट आओ और पुनः उसके पुत्र बन जाओ।'' किन्तु अपने पुत्र की दृढ़ता देखकर, उन्होंने अपनी भावनाओं को दबा लिया। उन पर और महाप्रजापति पर उदासी छा गयी।

12. इस प्रकार पिता अपने पुत्र के सम्मुख बैठ गया, वह अपने दुख से सुखी था और सुख से दुखी। उसे अपने पुत्र पर गर्व था, किन्तु उसका गर्व इस विचार से चूर-चूर हो गया कि उनका महान पुत्र कभी भी उनका उत्तराधिकारी नहीं बनेगा।

13. ''मैं तुम्हें अपना राज्य भेंट कर दूँ।'' राजा ने कहा, ''किंतु यदि मैंने ऐसा किया तो तुम उसे मिट्टी के मोल भी नहीं समझोगे।''

14. और भगवान ने कहा, ''मैं जानता हूँ कि राजा का हृदय प्रेम से ओत-प्रोत है और के अपने पुत्र की खातिर वह गहरी पीड़ा अनुभव करते हैं। किंतु प्रेम के जो धागे तुम्हें अपने पुत्र से बाँधे हुए हैं, जिसे तुम खो चुके हो, उन्हीं से समान करुणा द्वारा अपने सभी साथी-प्राणियों को गले लगा लो, और तब तुम्हें अपने पुत्र सिद्धार्थ से भी बढ़कर किसी अन्य की प्राप्ति होगी; तुम्हें उसकी प्राप्ति होगी जो सत्य का गुरु है, धर्म का मार्ग-दर्शक है, प्रचारक है, और शांति को लाने वाला है तथा निर्वाण तुम्हारे हृदय में प्रवेश कर जाएगा।''

15. शुद्धोदन प्रसन्नता से कांपने लगे, जब उन्होंने अपने पुत्र, बुद्ध के सुरीले वचन सुने और अपने हाथों को जोड़े हुए, आँखों से आँसू भर कर बोले, ''परिवर्तन अद्भुत है! अत्यधिक दुख समाप्त हो गया है। पहले मेरा दुखी हृदय भारी था किन्तु अब मैं तुम्हारे महान् अभिनिष्क्रमण-का फल प्राप्त कर रहा हूँ। यह ठीक ही था कि अपनी महान करुणा से प्रेरित होकर, तुम सत्ता के सुखों का त्याग करते और धार्मिक श्रद्धा में अपने उद्देश्य को प्राप्त करते। अब मार्ग को प्राप्त कर लेने के पश्चात् तुम उन सभी को जो मुक्ति की कामना करते हैं, धर्म का उपदेश दे सकते हो।''

16. शुद्धोदन अपने घर लौट गये, जबकि बुद्ध भिक्षु-संघ के साथ उद्यान में ही विराजमान रहे।

17. अगली सुबह तथागत ने अपना भिक्षा-पात्र लिया और कपिलवस्तु में भिक्षाटन के लिये निकल पड़े।

18. और नगर में समाचार फैल गया: "सिद्धार्थ नगर में एक घर से दूसरे घर भिक्षा प्राप्त करने जा रहे हैं, जहाँ वे अपने परिजनों सहित एक रथ की सवारी किया करते थे। उनका चीवर एक लाल-मिट्टी के रंग का है और उन्होंने अपने हाथों में एक मिट्टी का पात्र लिया हुआ है।

19. विचित्र जनश्रुति को सुन कर, शुद्धोदन अत्यंत शीघ्रता से दौड़े गये और कहा ,"क्यों तुम मुझे इस प्रकार लज्जित करते हो? क्या तुम नहीं जानते हो कि मैं आसानी से तुम्हारे और तुम्हारे भिक्षुओं के लिये भोजन उपलब्ध करा सकता हूँ।"

20. और बुद्ध ने उत्तर दिया, "यह मेरे वंश (संघ) की परम्परा है।"

21. "किन्तु ऐसा कैसे हो सकता है? तुम उनमें से एक नहीं हो, जिन्होंने कभी भी भोजन के लिये भिक्षा मांगी हो।"

22. "हाँ, पिताजी! तथागत ने उत्तर दिया तुम और तुम्हारा वंश राजाओं के वंशज होने का दावा कर सकते हैं, मेरा वंश प्राचीन बुद्धों का वंश हैं, उन्होंने अपना भोजन भिक्षा से मांगा था और सदैव भिक्षा द्वारा ही जिये थे।"

23. शुद्धोदन ने कोई उत्तर नहीं दिया और तथागत ने आगे कहा, "यह प्रथा है, जब किसी को एक छुपा खजाना मिले, तो उसे सबसे कीमती रत्न को अपने पिता को भेंट करना चाहिये। अतः मुझे अपने इस खजाने को, जो धर्म है, आपको भेंट करने दें।"

24. और तथागत ने अपने पिता से कहा, "यदि आप स्वयं को स्वप्नों से मुक्त करें, यदि आप अपना चित्त सत्य के लिये खोल लें, यदि आप कर्मठ रहें, यदि आप धर्मपरायण्ता का पालन करें, तो आपको परम सुख की प्राप्ति होगी।"

25. शुद्धोदन ने चुप रह कर ये वचन सुने और उत्तर दिया, "मेरे पुत्र! जो तुमने कहा मैं उसे पूरी तरह आचरण करने का प्रयास करूँगा।"

2. यशोधरा और राहुल से भेंट

1. तब शुद्धोदन तथागत को अपने घर ले गये और परिवार के सभी सदस्यों ने अत्यन्त श्रद्धा से उनका अभिवादन किया।

2. किन्तु राहुल की माता यशोधरा सामने नहीं आयीं। शुद्धोदन ने संदेश भिजवाया, किन्तु उसने उत्तर दिया, ''यदि मैं किसी सम्मान के योग्य समझी जाऊँगी तो सिद्धार्थ यही मेरे पास आयेंगे और मुझसे मिलेंगे।''

3. तथागत ने, अपने सभी सम्बन्धियों और मित्रों का अभिवादन करने के पश्चात् पूछा, ''यशोधरा कहाँ?'' और सूचित किये जाने पर कि उसने आने से इंकार कर दिया है, वे तुरंत उठ खड़े हुए और उनके कक्ष में गये।

4. तथागत ने अपने शिष्यों सारिपुत्र और मौद्गल्यापन को अपने साथ यशोधरा के कक्ष तक चलने के लिये आमन्त्रित किया और कहा, ''मैं मुक्त हूं, किन्तु यशोधरा, तथापि, अभी तक मुक्त नहीं है। मुझे काफी लम्बे समय से न देखने के कारण, वह अत्यन्त दुखी है। जब तक कि उसके दुख को आँसुओं के रास्ते बह नहीं जाने दिया जायेगा, उसका हृदय भारी रहेगा। यदि वह तथागत का स्पर्श भी करे, तुम लोग उसको रोकना नहीं।''

5. यशोधरा गहरी सोच में डूबी हुई अपने कक्ष में बैठी थी। जब तथागत ने प्रवेश किया, वह अपने भक्ति बाहुल्य के कारण, एक लबालब भरे पात्र के समान, स्वयं को रोकने में असमर्थ थी।

6. यह भूल गई कि जिस व्यक्ति को वह प्रेम करती है वह बुद्ध है, संसार का स्वामी है, सत्य का प्रचारक है, उसने उनके चरण पकड़ लिये और फूट-फूट कर रोने लगी।

7. लेकिन जब उसे ध्यान आया कि शुद्धोदन भी वहां आ गए थे, वह लज्जित हुई और उठ खड़ी हुई तथा कुछ दूरी पर श्रद्धापूर्वक बैठ गयी।

8. शुद्धोदन ने यशोधरा की ओर से क्षमा माँगते हुए कहा, ''यह उसके गहरे लगाव का परिणाम है, और क्षणिक भावना से अधिक है। सात वर्षों के दौरान जब से उसने अपना पति खोया है, जब उसने सुना कि सिद्धार्थ ने अपना सिर मुंडवा लिया है, उसने भी वैसा ही किया; जब उसने सुना कि उन्होंने सुगंधित पदार्थों और गहनों का प्रयोग छोड़ दिया है, उसने भी उनके प्रयोग से इन्कार कर दिया। अपने पति की तरह उसने निश्चित समय पर केवल एक मिट्टी के पात्र में भोजन किया है।''

9. ''यदि यह एक क्षणिक भावुकता से अधिक है, इसके लिये साहस की आवश्यकता नहीं है।''

10. तब तथागत ने यशोधरा को उसके महान् पुण्यों की याद दिलाई और उस महान

साहस का वर्णन किया, जो उसने दिखलाया था, जब उन्होंने प्रव्रज्या ग्रहण की थी। उसकी पवित्रता, उसकी सौम्यता और उसकी श्रद्धा एक बोधिसत्व के रूप में उनके लिए अमूल्य थी, जब वे मनुष्य के सर्वोच्च उद्देश्य बोधि को प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील थे। यह तब, उसका कर्म था, और यह उसके महान पुण्यों का ही परिणाम था।

11. यशोधरा का दुख अकथनीय था और कान्ति जो उसके आध्यात्मिक उत्तराधिकार के चारों ओर फैली थी, उसके जीवन काल में उसके महान व्यवहार द्वारा बढ़ गई और उसे एक विशिष्ट व्यक्ति बना दिया था।

12. तब यशोधरा ने राहुल को, जो अब सात वर्ष का था, एक राजकुमार की तरह सजाया और उससे, कहा:

13. ''यह श्रमण, जिसका रूप-रंग इतना गरिमापूर्ण है कि यह महाब्रह्म जैसे लगते हैं, तुम्हारे पिता हैं। उनके पास अक्षय निधि है, जिसे मैंने अभी तक देखा नहीं है। उनके पास जाओ तथा उनसे तुम्हें वह अक्षय निधि देने को कहो, क्योंकि पुत्र को अपने पिता की सम्पत्ति उत्तराधिकार में पाने का अधिकार होता है।''

14. राहुल ने उत्तर दिया : ''कौन मेरा पिता है? मैं तो शुद्धोदन के अतिरिक्त किसी पिता को नहीं जानता हूँ।''

15. यशोधरा ने लड़के को अपनी बांहों में उठाया और खिड़की से भगवान को दिखलाया, जो समीप ही थे, भिक्षुओं के मध्य भोजन ग्रहण कर रहे थे, उसे बतलाते हुए कि वह उसके पिता हैं और शुद्धोदन नहीं।

16. राहुल तब उनके पास गया और उनके मुख की ओर देखते हुए, बिना किसी भय के स्नेह-स्निग्ध स्वर में बोला:

17. ''क्या आप मेरे पिता नहीं हैं?'' और उनके समीप खड़े होकर, उसने आगे कहा, ''ओ श्रमण! यहाँ तक कि आपकी परछाई भी बड़ी सुखकर है।'' तथागत मौन ही रहे।

18. जब तथागत ने अपना भोजन समाप्त कर लिया, उन्होंने आशीर्वाद दिये और महल से दूर चले गये, किन्तु राहुल ने अनुसरण किया और अपना उत्तराधिकार माँगा।

19. किसी ने भी बालक को नहीं रोका और न ही स्वयं तथागत ने भी।

20. तब तथागत ने सारिपुत्र की ओर देखा और कहा, ''मेरा पुत्र अपने उत्तराधिकार

की माँग कर रहा है, मैं उसको नाशवान निधि नहीं दे सकता हूँ, जो अपने साथ चिन्ता और दुख लायेगी, किन्तु मैं उसे एक पवित्र जीवन का उत्तराधिकार दे सकता हूँ, जो एक ऐसी निधि है जो कभी नष्ट नहीं होगी।"

21. राहुल को गंभीरतापूर्वक सम्बोधित करते हुए तथागत ने कहा, "मेरे पास सोना, चाँदी, हीरे-जवाहरात कुछ भी नहीं है। किन्तु यदि तुम आध्यात्मिक निधियाँ प्राप्त करने के इच्छुक हो, और उन्हें वहन करने और सँभालने में समर्थ हो, तो वे मेरे पास प्रचुर हैं। मेरी आध्यात्मिक निधि धर्मपरायणता का मार्ग है। क्या तुम उनकी संगति चाहते हो जो अपना जीवन प्राप्त करने योग्य सर्वोच्च सुख को प्राप्त करने के लिये अपने चित्त का संवर्धन करने के लिये समर्पित करते हैं।"

22. और राहुल ने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया, "मैं चाहता हूँ।"

23. तब शुद्धोदन ने सुना कि राहुल भिक्षुओं की संगति में सम्मिलित हो गया है, तो उन्हें अत्यन्त कष्ट हुआ।

3. शाक्यों द्वारा स्वागत

1. शाक्यों के जनपद में अपनी वापसी पर तथागत ने पाया कि उनके जनपदवासी दो समूहों में विभक्त हैं। एक उनके पक्ष में और दूसरा उनके विरुद्ध।

2. इससे उन्हें उस पुराने मतभेद की याद आ गयी जो शाक्य-संघ में उस समय पैदा हुआ था, जब शाक्यों और कोलियों के मध्य युद्ध का प्रश्न विचारधीन था और जिसमें उन्होंने एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

3. जो उस समय उनके विरुद्ध थे, उन्होंने आज भी उन्हें प्रणाम करने और उनकी महानता को स्वीकार करने से इंकार कर दिया था। जो उनके पक्ष में थे उन्होंने पहले ही प्रत्येक घर से एक पुत्र के उनके संघ में दीक्षित के लिए निश्चय कर लिया था। उन लोगों ने अब संघ में दीक्षित तथागत के साथ-राजगृह को साथ जाने का संकल्प कर लिया।

4. जिन परिवारों ने एक पुत्र समर्पित करने का निश्चय किया था, उनमें से एक परिवार अमितोदन का था।

5. अमितोदन के दो पुत्र थे, एक अनुरुद्ध था, जो बहुत ही सुकोमलता से पाला-पोसा गया था, और दूसरा महोनाम था।

6. तब महानाम अनुरुद्ध के पास गया और कहा, ''या तो तुम संसार का त्याग दो, या मैं ऐसा करुँगा।'' अनुरुद्ध ने उत्तर दिया, ''मैं सुकुमार हूँ। मेरे लिये गृह-परित्याग कर प्रव्रजित होना असंभव है। तुम ऐसा करो।''

7. ''किन्तु आओ, प्रिय अनुरुद्ध! मैं तुम्हें बताता हूँ कि गृहस्थ-जीवन में क्या करना पड़ता है। सबसे पहले, तुम्हें अपने खेतों को जुतवाना होता है। जब वह हो गया, तुम्हें उनकी बोआई करानी होती है। जब वह हो गया, तुम्हें उन्हें पानी से सिंचवाना होता है। जब वह हो गया, तुम्हें पुनः पानी निकलवाना होता है। जब वह हो गया, तो खर-पतवार उखड़वाना होता है। जब वह हो गया, तुम्हें फसल को कटवाना होता है। जब वह हो गया, तुम्हें फसल को ढोकर उठवा ले जाना होता है। अब वह हो गया, तुम्हें उसको गट्ठरों के रूप में बंधवाना होता है। जब वह हो गया, तुम्हें उन्हें बैलों से रौंदवाना होता है। जब वह हो गया, तुम्हें तिनके चुनवा कर बाहर निकलवाने होते हैं। जब वह हो गया, तुम्हें भूसी हटवानी होती है। जब वह हो गया, तुम्हें उसे ओसवाना होता है। जब वह हो गया, तुम्हें फसल को कोठों से भरवाना होता है। जब वह हो गया, तुम्हें ठीक इसी प्रकार अगले वर्ष करना होगा और ठीक ऐसा ही उसके बाद आने वाले वर्षों में भी करना होगा।''

8. ''काम कभी समाप्त नहीं होता है, मनुष्य कभी भी अपने श्रम का अंत नहीं देखता है। ओह, कब हमारा काम समाप्त होगा? कब हम अपने श्रमों का अंत देख पाएंगे? कब हम, अपनी पाँच इन्द्रियों के सुखों को नियन्त्रित करते और भोगते हुए भी, आराम से रह सकेंगे? हाँ, प्रिय अनुरुद्ध, काम कभी समाप्त नहीं होता; हमारे श्रमों का कोई अन्त नहीं दिखता है?''

9. अनुरुद्ध बोला, ''तब क्या तुम गृहस्थ-कत्तव्यों को संभालने का विचार रखोगे। मैं ही गृह का परित्याग कर प्रव्रजित हो जाऊँगा।''

10. और तब अनुरुद्ध शाक्य अपनी माँ के पास गया, और उनसे कहा, ''माँ! मैं गृहस्थ-जीवन का परित्याग कर प्रव्रजित होना चाहता हूँ। मुझे ऐसा करने के लिये अपनी अनुमति दीजिए।''

11. और जब अनुरुद्ध शाक्य के ऐसा कहने पर उसकी माँ ने अनुरुद्ध को उत्तर दिया, ''अनुरुद्ध! तुम दोनों, मेरे दो पुत्र हो, मुझे अत्यन्त प्रिय हो, जिनमें मैं कोई बुराई नहीं पाती हूँ। किसी दिन, मृत्यु आने पर न चाहते हुए भी मैं तुमसे पृथक हो जाऊँगी, किंतु किन्तु जीते जी कैसे तैयार हो सकती हूं कि तुम गृहस्थ जीवन का परित्याग करने की अनुमति दूं कि प्रव्रजित हो जाओ?''

12. और दूसरी बार भी अनुरुद्ध ने वही प्रार्थना दोहराई, और वही उत्तर मिला। और तीसरी बार भी अनुरुद्ध ने वही प्रार्थना अपनी माँ से की।

13. उस समय भद्दिय नामक शाक्य राजा शाक्यों पर शासन करता था और वह अनुरुद्ध का मित्र था। और अनुरुद्ध की माँ, यह सोचते हुए कि राजा संसार का परित्याग करने में समर्थ नहीं हो सकता, अपने पुत्र से बोली, ''प्रिय अनुरुद्ध! यदि शाक्य राजा भद्दिय संसार का परित्याग कर दे, तो तुम भी उसके साथ जा सकते हो।''

14. तब अनुरुद्ध भद्दिय के पास गया और उससे कहा, ''प्रिय मित्र! मेरी प्रव्रज्या ''में तुम बाधक हो रहे हो। प्रिय मित्र! यदि।''

15. ''मैं बाधक हूं तो तब वह बाधा, दूर कर दी जाये। मैं तुम्हारे साथ हूँ। अपनी इच्छा के अनुसार संसार का परित्याग करो।''

16. ''आओ प्रिय मित्र! हम दोनों एक साथ संसार का परित्याग करें।''

17. भद्दिय बोला, ''प्रिय मित्र, मैं गृहस्थ जीवन को छोड़ने में असमर्थ हूँ। इसके अतिरिक्त जो कुछ भी तुम मुझसे कहो, मैं वह करूँगा। तुम अकेले ही प्रव्रजित हो जाओ!''

18. ''प्रिय मित्र! माँ ने मुझे कहा है कि यदि तुम प्रव्रजित होओ तो मैं भी कर सकता हूँ। और तुमने अभी-अभी कहा है, ''यदि तुम्हारी प्रव्रज्या मेरे द्वारा बाधित होती है, तब उस बाधा को दूर हो जाने दो। तुम्हारे साथ ही तुम्हारी इच्छा के अनुसार मैं संसार का परित्याग करूँगा। तब आओ, प्रिय मित्र! हम दोनों संसार का त्याग करें।''

19. और शाक्य राजा भद्दिय ने अनुरुद्ध से कहा, ''मेरे मित्र! सात वर्ष तक प्रतीक्षा करो। सात वर्षों की समाप्ति पर हम एक साथ संसार का परित्याग करेंगे।''

20. ''सात वर्ष का समय तो बहुत लम्बा है, प्रिय मित्र! मैं सात वर्ष तक प्रतीक्षा करने में समर्थ नहीं हूँ।''

21. भद्दीय ने प्रस्ताव को छः वर्ष और यहाँ तक कि एक वर्ष, सात महीने और यहाँ तक की एक महीना, और एक पखवारे तक कम किया। प्रत्येक प्रस्ताव पर अनुरुद्ध ने उत्तर दिया, ''प्रतीक्षा करने के लिए बहुत लम्बा समय है।''

22. तब राजा भद्दिय ने कहा, ''मेरे मित्र! सात दिन तक प्रतीक्षा करो, जब तक मैं अपने पुत्रों और अपने भाइयों को राज्य सौंप दूँ।''

23. ''सात दिन बहुत लम्बा समय नहीं है। इतने दिन मैं प्रतिक्षा करूँगा,'' यह अनुरुद्ध का उत्तर था।

24. अतः शाक्य राजा भद्दिय, अनुरुद्ध, आनन्द, भृगु, किम्बिल और देवदत्त जिस प्रकार वे प्रायः चतुरंगी सेना के साथ क्रीड़ा-उद्यान जाया करते थे, उसी प्रकार वे चतुरंगी सेना के साथ अब भी बाहर निकले और उपालि नाई उनके साथ गया। इस प्रकार कुल मिलाकर उनकी संख्या सात हो गयी।

25. और जब वे कुछ दूर चले गये तो उन्होंने अपनी सेना को वापस कर दिया और सीमा पार कर पड़ोसी जनपद में प्रवेश किया, और अपने सुन्दर गहनों इत्यादि को उतार कर उन्हें अपने वस्त्रों में लपेट कर उनकी एक गठरी बनाई और उपालि नाई से कहा, ''क्या तुम अब, भले उपालि! वापस कपिलवस्तु चले जाओगे। ये वस्तुयें तुम्हारा गुजर-बसर करने के लिये पर्याप्त होंगी। हम जायेंगे और तथागत शरण ग्रहण करेंगे।'' और इस प्रकार वे आगे बढ़ गये।

26. वे आगे बढ़ गये और उपालि ने वापस घर लौटने के उद्देश्य से विदा ली।

4. तथागत को गृहस्थ बनाने का अंतिम प्रयास

1. शुद्धोदन यह सोच कर कि उनका पुत्र दूर जा रहा है और दुबारा कभी नहीं देख सकेगा, फूट-फूट कर रोये।

2. तब शुद्धोधन अपने मंत्री एवं अपने पारिवारिक पुरोहित से बोले और उनसे पूछा कि क्या वे जाकर उनके पुत्र को रुके रहने और परिवार में सम्मिलित होने के लिये राजी कर सकते हैं।

3. पारिवारिक पुरोहित मंत्री के साथ, राजा की इच्छाओं का अनुसरण करते हुए गये और मार्ग में ही वे उनके पास जा पहुंचे

4. उन लोगों ने तथागत काय थोचित अभिवादन किया, और उनकी आज्ञा पाकर, उनके समीप बैठ गये।

5. जब तथागत वृक्ष की छाया के नीचे बैठ गये, तब पारिवारिक पुजारी ने तथागत से निवेदन किया।

6. ''हे राजकुमार, एक क्षण के लिये राजा की भावनाओं के विषय में सोचो जिसकी आंखों से आँसुओं की बरसात हो रही है और जिसके हृदय में आपकी जुदाई का तीर बिंधा हुआ है। उन्होंने आपसे घर लौट आने का आग्रह किया है। केवल तब ही वह शांति से मर सकेंगे।''

7. ''मैं जानता हूँ कि आपका संकल्प धर्म पर केन्द्रित है, और मैं यह भी समझता हूँ कि आपका यह उद्देश्य अपरिवर्तनीय है, किन्तु आपके इस बेघर अवस्था में जाने से वेदना के समान अग्नि की ज्वाला से उनका हृदय जल रहा है।''

8. ''आइये! आप जिस (धर्म) कर्त्तव्य को चाहते हैं, अपने कर्त्तव्य के लिये इस उद्देश्य का त्याग कर दीजिये।''

9. ''कुछ समय के लिये पृथ्वी के आधिपत्य का आनन्द लीजिये बाद में आप शास्त्रों द्वारा दिये गये समय पर वन में जा सकते हैं, अपने दुखी सम्बन्धियों के प्रति अनादर न दर्शायें। सभी के प्रति करुणा ही सच्चा धर्म है।''

10. ''धर्म की साधना केवल वन में ही नहीं होती है, तपस्वियों की मुक्ति नगर में भी प्राप्त की जा सकती है। ज्ञान और प्रयास ही सच्चे साधन हैं, वन और साधू-वेष केवल एक कायर के लक्षण हैं।''

11. ''शाक्यों का राजा दुख के गहरे सागर में डूब रहा है, जो कष्टों की लहरों से भरा हुआ है, जो आपसे पैदा हो रही हैं, अतः आप उन्हें बाहर निकालें जो असहाय और असुरक्षित हैं, जैसे एक गाय सागर में डूब रही हो।''

12. ''और उस रानी प्रजापति गोतमी का भी ख्याल करो, जिन्होंने तुम्हें पाल-पोस कर बड़ा किया, जो अभी तक अगस्त्य-लोक नहीं पधारी हैं, क्या आप उनकी तनिक भी चिन्ता नहीं करेंगे, जो एक गाय के समान निरन्तर दुखी हो रही है, जिसने अपना बछड़ा खो दिया है?''

13. निश्चय ही आप अपने दर्शनों द्वारा अपनी पत्नी को सहायता देंगे, जो अभी से एक विधवा की तरह विलाप कर रही है, जबकि अभी तक उसका पति जीवित है, जैसे कि हंसिनी जो अपने साथी से बिछुड़ गयी हो या एक हथिनी, जिसे जंगल में उसके साथी ने छोड़ दिया हो।

14. तथागत ने पारिवारिक पुरोहित के वचनों को सुनकर, एक क्षण तक मनन किया, धर्मात्मा के सभी सद्गुणों को जानते हुए और तब अपना सौम्य उत्तर इस प्रकार दिया-

5. भगवान बुद्ध का उत्तर

1. ''मैं राजा के पितृ-वात्सल्यपूर्ण भावों से भली-भाँति परिचित हूँ, विशेष कर वह, जो उन्होंने मेरे प्रति दर्शाया है, फिर भी यह सब जानते हुए जैसा कि मैं जानता हूँ, संसार में व्याप्त कष्ट और दुःख से सतर्क, मैं अपने सम्बन्धियों को त्यागने के लिये अपरिहार्य रूप से बाध्य हूँ।''

2. ''कौन अपने प्रिय सम्बन्धियों को देखना नहीं चाहता है, यदि प्रियजनों से यह वियोग अस्तित्व में नहीं होता? किन्तु, एक बार होने पर भी, वियोग फिर दोबारा आकर रहेगा, इसलिये ही मैं अपने हालाँकि प्रिय पिता को छोड़ कर जा रहा हूँ।''

3. ''हालाँकि मैं इसे ठीक नहीं समझता हूँ कि आप लोग सोचें राजा को दुख मेरे कारण हुआ है, जबकि अपने स्वप्नवत् समागमों के मध्य, वे भविष्य के वियोगों के विचारों से दुखी हैं।''

4. ''अतः इस विषय में तुम्हारा मत निश्चित विभिन्न होना चाहिये। वियोग के नाना-नाना रूप देख लेने के उपरान्त, न तो एक पुत्र और न ही सम्बन्धी दुख का कारण हैं, यह दुख केवल अज्ञान द्वारा उत्पन्न है।''

5. ''क्योंकि सभी प्राणियों के लिये समय अवधि में पृथक होना अनिवार्य रूप से निश्चित है, जैसा कि यात्रियों का, जो एक मार्ग पर इकट्ठे तो होते हैं, तो एक बुद्धिमान व्यक्ति क्यों दुख संजोए रखेगा, जब वह अपने सम्बन्धियों को खोता है, भले ही वह उन्हें प्रेम करता हो?''

6. अपने सम्बन्धियों को दूसरे लोक में छोड़कर, मनुष्य इधर प्रस्थान कर जाता है और उन्हें चुपके से यहाँ छोड़कर, वह पुनः आगे निकल जाता है; उधर जाने के बाद, वह अन्यत्र भी चला जाता है, ऐसा मानव-मात्र का भाग्य है, एक मुक्त मनुष्य उनके लिये क्या सोच-विचार करे?

7. ''क्योंकि माँ के गर्भ से बाहर निकलने के क्षण से ही मृत्यु एक आवश्यक है, तो क्यों अपने पुत्र के लिये अपनी अनुरक्ति, आपने मेरे वन में प्रस्थान को असमय कहा है?''

8. ''मनुष्य द्वारा एक सांसारिक वस्तु को प्राप्त करने में एक समय हो सकता है, समय निस्सन्देह सभी वस्तुओं के साथ अपृथक्करणीय रूप में संलग्न कहा गया है। समय संसार को इसके सभी विभिन्न परिवर्तनों में घसीटता है, किन्तु एक परमानन्द के लिये सभी समय उचित हैं, जो वास्तव में प्रशंसा के योग्य है।

9. ''यह कि राजा अपना राज्य मुझे सौंपना चाहते हैं, यह एक उच्च्व विचार है, जो एक पिता के योग्य है; किन्तु इसे स्वीकार करना मेरे लिये उसी प्रकार अनुचित होगा, जैसे कि एक रोगी मनुष्य लालच के कारण हानिकर भोजन स्वीकार कर ले।''

10. ''किस प्रकार एक बुद्धिमान व्यक्ति के लिये राजसत्ता में प्रवेश करना उचित हो

सकता है, जो माया का घर है, जहाँ चिन्ता, राग-द्वेष और क्लान्ति मिलती है, और जहाँ दूसरों की सेवा के द्वारा सभी अधिकारों का उल्लंघन होता है।''

11. ''सोने का महल मुझे जलता हुआ प्रतीत होता है, स्वादिष्ट खाद्य-पदार्थ विष मिले प्रतीत होते हैं, और शांत कमल-शैय्या पर मगरमच्छ लोटते प्रतीत होते हैं।'

6. मंत्री का उत्तर

1. बुद्ध का उपदेश सुन कर, उसके सद्गुणों और ज्ञान के भली-भाँति अनुरूप जो सभी तृष्णा-विमुक्त, तर्कपूर्ण कथनों से परिपूर्ण और प्रभावशाली था-मंत्री ने इस प्रकार उत्तर दिया :

2. ''आपका संकल्प तो सर्वथा योग्य है, जो स्वयं में अयोग्य नहीं है, किन्तु केवल वर्तमान समय में अयोग्य है। यह किसी भी प्रकार आपका कर्त्तव्य नहीं हो सकता, कि आप अपने पिता को दुखी होने के लिये वृद्धावस्था में छोड़ कर चल दो।''

3. ''निश्चय ही आपकी बुद्धि अत्यन्त तीक्ष्ण नहीं है, कम से कम वह धर्म-अर्थ और काम को परखने में अनिपुण है, जबकि एक अनदेखे परिणाम के लिये आप एक देखे हुए लक्ष्य का परित्याग करने के लिये तैयार हैं।''

4. ''कुछ कहते हैं कि पुनर्जन्म है, दूसरे विश्वास के साथ कहते हैं कि नहीं हैं, इसलिये इस विषय में इतना सन्देह है, तो फिर यह भी उचित है कि वर्तमान भोगों को भोगा जाये।''

5. ''यदि कोई परलोक होगा तो हम स्वयं ही इसका आनन्द उठायेंगे जब उसमें पड़ेंगे, किन्तु यदि कोई परलोक नहीं होगा, तब सारा ही संसार निश्चित रूप से अनायास मुक्त है, के निश्चित मुक्ति है।''

6. ''कुछ कहते हैं कि पुनर्जन्म है, किन्तु वे मोक्ष की सम्भावना को नहीं स्वीकारते हैं; जिस प्रकार अग्नि स्वभाव से ऊष्ण है, जल तरल, उसी प्रकार वे मानते हैं कि हमारे कार्य की शक्ति में एक विशेष स्वभाव है।''

7. ''कुछ मानते हैं कि सभी वस्तुएँ अन्तर्निहित गुणों से उत्पन्न होती हैं, अच्छी और बुरी दोनों तथा सत् और असत् दोनों, और क्योंकि यह सारा संसार इस प्रकार स्वतः उत्पन्न होता है, इसलिये हमारे सभी प्रयास भी व्यर्थ हैं।''

8. ''क्योंकि इन्द्रियों के कार्य निश्चित हैं और उसी प्रकार ब्राह्य पदार्थों की अनुकूलता या प्रतिकूलता भी, तब जो वृद्धावस्था और कष्टों से संयुक्त है, तो उसे परिवर्तित करने का कौन सा प्रयास हितकर हो सकता हैं?'' क्या ये सब स्वतः नहीं उत्पन्न होते हैं?

9. ''अग्नि जल से शान्त हो जाती है, और अग्नि जल को भाप बना देती है और विभिन्न तत्व, एक शरीर में एकत्रित हो, एकता उत्पन्न करते हैं और संसार का भार वहन करते हैं।''

10. ''गर्भ में भ्रूण की प्रकृति है कि वह हाथ, पाँव, पेट, पीठ और सिर से जुड़ा उत्पन्न होता है, और यह कि वह आत्मा से भी जुड़ा होता है, बुद्धिमान लोग कहते हैं कि यह सब स्वतः उत्पन्न होता है।''

11. ''काँटों के नुकीलेपन को कौन बनाता है? या जानवरों और पक्षियों के विभिन्न स्वभाव को कौन निर्धारित करता है? यह सभी स्वतः उत्पन्न होता है ऐसा कोई कार्य नहीं है, जो इच्छा से हो, तब कैसे चेतना जैसी एक वस्तु हो सकती है?''

12. ''दूसरे कहते हैं कि सृष्टि ईश्वर की रचना है, तो फिर किसी चेतन आत्मा का प्रयास की क्या आवश्यकता हैं? जो संसार के कार्य का कारण है, वही उसके कार्य करने को रोकने का कारण भी निश्चित करेगा।''

13. ''कुछ कहते हैं कि अस्तित्व में आना और अस्तित्व का नष्ट होना आत्मा के द्वारा एक समान किया जाता है, किन्तु वे कहते हैं कि अस्तित्व का आना बिना किसी प्रयास के होता है, जबकि मोक्ष की प्राप्ति प्रयास से होती है।''

14. ''एक मनुष्य अपने पूर्वजों के प्रति अपने ऋण से सन्तानोत्पत्ति द्वारा, शास्त्र अध्ययन द्वारा ऋषि ऋण से, यज्ञों द्वारा देव-ऋण से मुक्त होता है, वह इन तीनों ऋणों को लेकर जन्म लेता है, जो (इनसे) मुक्त हो गया है, वहीं वास्तव में मोक्ष पा जाएगा।''

15. ''अतः बुद्धिमान लोग उसी को मुक्ति का वचन देते हैं, जो नियमों की इसश्रृंखला के अनुसार प्रयास करता है; किन्तु जो अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ प्रयास करने को तैयार है, और मोक्ष का प्रयास करता है उसे मोक्ष प्राप्त जो जाएगा।''

16. ''इसलिये, हे सौम्य युवक! यदि तुम्हें मोक्ष की चाह है तो ठीक से निर्धारित नियम का पालन करो, इस प्रकार आपको स्वयं ही यह प्राप्त हो जाएगा और राजा का दुख भी समाप्त हो जायेगा।''

17. ''और जहाँ तक आपके वन से अपने घर लौट आने के बारे में जीवन की बुराइयों का विचार है, इस विचार से तुम्हें परेशान होने की आवश्यकता नहीं है, पूर्व समय में भी लोग वनों से अपने घरों को लौटे हैं।'' उन्होंने अम्बरीश, द्रुमकेश, राम इत्यादि का उल्लेख किया।

7. बुद्ध की दृढ़ता

1. तब मंत्री के स्नेहमय और निष्ठावान वचन सुनकर, जो राजा की आँखों के समान था, अपने संकल्प पर दृढ़, राजा के पुत्र ने अपना उत्तर दिया, बिना कुछ छोड़े या विस्थापित किये, न तो नीरस और न ही उतावला :

2. ''यह सन्देह कि किसी चीज का अस्तित्व है या नहीं, किसी अन्य के वचनों द्वारा मेरे लिये हल होने वाला नहीं है, तपश्चर्या या नैष्कर्म्य द्वारा सत्य को निर्धारित करने के बाद, मैं स्वयं इससे सम्बन्धित जो कुछ भी सत्य है पुर्णरूपेण समझ लूँगा।''

3. ''मैं किसी सिद्धांत को स्वीकार करने वाला नहीं हूँ, जो अज्ञान पर निर्भर है और पूर्णतया विवादास्पद हैं, मैं किसी ऐसे सिद्धांत को स्वीकार नहीं कर सकता, जिसमें सैकड़ों पूर्वाग्रहों से अन्तर्ग्रस्त है, कौन बुद्धिमान मनुष्य दूसरों की मान्यता पर विश्वास करेगा? मानव-जाति एक अन्धे व्यक्ति द्वारा अन्धकार में दूसरे व्यक्ति को निर्देश दिये जाने के समान बनी हुई है।''

4. ''किन्तु भले ही कोई सत्य और झूठ को नहीं पहचान सके यदि कोई अच्छाई और बुराई के विषय में सन्देह हो, तो एक व्यक्ति को अपना चित्त अच्छाई पर केन्द्रित करना चाहिये, सद्वृत्ति वाले के लिए थोड़ा व्यर्थ का परिश्रम भी कल्याणकारी ही होगा है।''

5. ''किन्तु यह देख कर कि 'पवित्र परम्परा' अनिश्चित है, यह समझो कि केवल वही सही है, जो विश्वास योग्य लोगों द्वारा कहा गया है, और जानो कि विश्वसनीयता का अर्थ दोषों की अनुपस्थिति है, वह जो दोषों से मुक्त है एक असत्य नहीं बोलेगा।''

6. ''और जहाँ तक आपने मेरे घर लौट जाने के सम्बन्ध में मुझ से कहा है, आपके दिये गये उदाहरण कोई प्रामाणिक नहीं हैं, क्योंकि कर्त्तव्य का निर्धारण करने के लिये, आप कैसे ऐसे लोगों का प्रामाणिक के रूप में उदाहरण दे सकते हैं, जिन्होंने अपने संकल्पों को तोड़ दिया था।''

1. "अतः भले ही सूर्य पृथ्वी पर गिर पड़े, भले ही मालय पहाड़ अपनी दृढ़ता खो दे, किन्तु मैं कभी भी एक सांसारिक मनुष्य की तरह अपने घर नहीं लौट सकता हूँ।"

8. "मैं जलती हुई अग्नि में प्रविष्ट हो जाऊँगा, किन्तु अपने उद्देश्य के अपूर्ण रहते अपने घर में नहीं लौटूंगा" उपेक्षत्व से परिपूर्ण अपने निश्चय के अनुरूप खड़े हो कर, तथागत अपने मार्ग पर चल दिए।

9. तब मंत्री और ब्राह्मण, नम आँखों से, उनका दृढ़ निश्चय सुनकर, कुछ देर तक उन्हें उदास निगाहों से देखते हुए और दुख पर नियंण करके, धीरे से कपिलवस्तु को लौट गये।

10. राजकुमार के प्रति अपने प्रेम और राजा के प्रति भक्ति होने के कारण वे लौट गये और प्रायः पीछे मुड़ कर देखने के लिये रुकते थे, वे न तो उन्हें मार्ग पर जाते हुए देख सकते थे और न ही उनको आँखों से ओझल कर सकते थे, –जो सूर्य के समान स्वयं अपने तेज से देदीप्यमान हो रहे थे और अन्य सभी की पहुँच से परे थे।

11. उनके घर लौटने के लिये राजी करने में असफल होकर, मंत्री और पुरोहित एक दूसरे से बात करते हुए, लड़खड़ाते कदमों से लौट गये, "हम किस प्रकार राजा के पास जाएंगे और उनसे मिलेंगे, जो अपने प्रिय पुत्र के लिए तड़फ रहे हैं?"

पाँचवाँ-भाग

धर्म-दीक्षा का पुनरारंभ

1. गँवार ब्राह्मणों की धर्म-दीक्षा
2. उत्तरवती के ब्राह्मणों की धर्म-दीक्षा

1. गँवार ब्राह्मणों का धर्म-दीक्षा

1. राजगृह के निकट, गृद्धकूट पर्वतों के पीछे एक गाँव था, जिसमें लगभग सत्तर परिवार थे, जो सभी ब्राह्मणों के थे।

2. बुद्ध इन लोगों को धर्म-दीक्षा देने के उद्देश्य से इस स्थल पर आये और एक वृक्ष के नीचे बैठ गये।

3. जब लोगों ने तथागत का तेज और गम्भीर व्यक्तित्व देखा, तो उससे प्रभावित होकर उनके चारों ओर इकट्ठा हो गये, इस पर उन्होंने ब्राह्मणों से पूछा, तुम! कब से इस पहाड़ के नीचे रह रहे हैं, और उनका व्यवसाय क्या था।

4. इस पर उनका उत्तर था, ''पिछली तीस पीढ़ियों से हम यहाँ रह रहे हैं, और हमारा व्यवसाय पशुपालन है।''

5. और आगे उनके धार्मिक विश्वास के विषय में पूछे जाने पर उन्होंने कहा, ''हम विभिन्न ऋतुओं के अनुसार सूर्य, चन्द्रमा, इन्द्र और अग्नि आदि की पूजा और यज्ञ करते हैं।''

6. ''यदि हम में से कोई मृत्यु को प्राप्त होता है, तो हम एकत्रित होते हैं और प्रार्थना करते हैं कि वह ब्रह्म लोग में उत्पन्न हो, जिससे वह पुनर्जन्मों से बच जाये।''

7. बुद्ध ने उत्तर दिया, ''यह सुरक्षित तरीका नहीं है, इसके द्वारा तुम्हें लाभ नहीं हो सकता। सच्चा मार्ग मेरा अनुसरण करना है, सच्चे तपस्वी बनो, और निर्वाण को प्राप्त करने का उद्देश्य लेकर सम्पूर्ण आत्म-संयम का अभ्यास करो।'' और तब उन्होंने इन पंक्तियों को जोड़ा :

8. ''जो सत्य को असत्य मानते हैं, और असत्य को सत्य मानते हैं, वे केवल मिथ्या दृष्टि को अपनाते हैं, इससे कभी सच्चा लाभ नहीं प्राप्त होगा।''

9. ''किन्तु सत्य को सत्य के रूप में जानता और असत्य को असत्य के रूप में समझता है, यही आदर्श सम्यक दृष्टि है, और उसी से सद्गति का लाभ होगा।''

10. ''संसार में सर्वत्र मृत्यु विद्यमान है, कहीं भी उससे छुटकारा नहीं है।''

11. ''यह समझ लेना कि जो पैदा हुआ है, उसे एक न एक दिन अवश्य मरना

होगा यही सभी प्राणियों की अवस्था है, अतः जन्म और मृत्यु से छुटकारे की इच्छा करना, यही धार्मिक सत्य में स्वयं को लगाने की क्रिया है।''

12. सत्तर ब्राह्मणों ने ये वचन सुन कर, तुरन्त श्रमण बनने की इच्छा प्रकट की, बुद्ध द्वारा अनुमीत मिल जाने पर, उनका केश-छेदन, और वे सच्चे शिष्यों के रूप में प्रस्तुत हो गये।

13. तब वे विहार की ओर चल पड़े, और मार्ग में उन्हें उनकी पत्नियों और परिवारों की याद ने उन्हें कष्ट दिया, जबकि ठीक उसी समय भारी वर्षा ने उनके आगे बढ़ना अवरुद्ध कर दिया।

14. मार्ग के किनारे लगभग दस मकान थे, जिसमें उन्होंने आश्रय खोजा, किन्तु उनमें से एक के भीतर जाने पर यह पाया कि छत के जरिये पानी टपक रहा था, और वर्ष से बहुत कम बचाव सम्भव था।

15. इस पर बुद्ध ने ये पंक्तियाँ जोड़ी और कहा, ''जिस प्रकार जब एक घर की छत ठीक से न छाई गई हो, तो वर्षा उसमें से एक रास्ता बना लेती है और टपकने लगती है, उसी प्रकार जब विचार ध्यानपूर्वक नियन्त्रित न किये गये हों, तृष्णाएं (कामेच्छा) हमारे सभी अच्छे संकल्पों में से रास्ता बना लेगी।''

16. ''किन्तु जब एक छत भांति-भाँति छाई गई हो, तब पानी उससे नहीं टपक सकता, अतः अपने विचारों पर नियंत्रण द्वारा और चिन्तन सहित कार्य करने पर, ऐसी कोई तृष्णा उत्पन्न नहीं हो सकती या हमें तंग नहीं कर सकती।''

17. सत्तर ब्राह्मण, इन पंक्तियों को सुनकर समझ गये थे कि उनकी तृष्णायें निन्दनीय थीं, फिर भी वे पूर्णतया संदेह से मुक्त नहीं थे, तथापि वे आगे बढ़ गये।

18. जैसे वे आगे बढ़े उन्होंने पृथ्वी पर कुछ सुगंधित द्रव्य पड़ा देखा और बुद्ध ने उस पर उनका ध्यान आकर्षित करने का अवसर उठाया; और इसके पश्चात्, कुछ मछली की आँते भी पड़े देख कर, उन्होंने उनका ध्यान उनकी गंदी महक की ओर आकर्षित किया और तब इन पंक्तियों को जोड़ा और कहा:

19. ''जो निम्न और नीच से मेल-जोल रखता है, वैसा ही चरित्र पा लेता है, जिस प्रकार जो दुर्गन्धयुक्त पदार्थ का स्पर्श करता है, तो उसके शरीर में भी दुर्गंध आने लगती है। और पूर्णतया बिना किसी कारण के, वह स्वयं को दुष्टता में दक्ष कर लेता है।''

20. "किन्तु बुद्धिमान व्यक्ति बुद्धिमान के साथ मेल-जोल रखकर वैसा ही चरित्र पा लेता है, जिस प्रकार एक सुगंधित पदार्थ की महक उससे लग जाती है, तो उसे स्पर्श करता है, प्रज्ञा में आगे बढ़ते हुए, शील का पालन करते हुए, वह पूर्णता की ओर बढ़ता जाता है, और संतुष्ट होता है।"

21. सत्तर ब्राह्मण इन गाथाओं को सुनकर, संतुष्ट हो गये कि घर वापस लौटने और व्यक्तिगत आसक्ति का आनन्द लेने की उनकी इच्छा बुरी विकृति थी जो उनसे जुड़ी थी, ऐसे विचारों को त्याग कर, और आगे बढ़ते हुए, वे विहार आये, और अन्ततोगत्वा अहत्व-पद को प्राप्त कर गये।

2. उत्तरवती के ब्राह्मणों की धर्म-दीक्षा

1. एक बार बुद्ध श्रावस्ती के जेतवन में विहार कर रहे थे और मनुष्यों तथा देवताओं के कल्याणार्थ धर्मोपदेश दे रहे थे, श्रावस्ती से पूर्व की ओर उत्तरवती नामक जनपद में पाँच ब्राह्मणों का एक समूह रहता था।

2. उन्होंने एक साथ गंगा नदी के किनारे एक निर्ग्रन्थ तपस्वी के पास जाने का संकल्प किया, जो अपने शरीर पर रेत-मिट्टी लेपेटे एक 'ऋषि' की अवस्था पाने का प्रयास कर रहा था।

3. रेगिस्तानी रास्ते में उनको अत्यधिक प्यास लगी। दूर से एक वृक्ष को देखकर, उन्हें उसके पास मानव-बस्ती पाने की आशा से, वे जल्दी से वहाँ पहुँचे, किंतु उन्हें वहाँ जीवन का कोई चिन्ह नहीं मिला।

4. इस पर वे जोर-जोर से विलाप करने लगे। अचानक उन लोगों ने वृक्ष पर से वृक्ष-देवता की आवाज सुनी, जिसने उनसे पूछा, "तुम लोग! क्यों विलाप कर रहे हो?" और कारण सुन कर, वृक्ष-देवता ने उन्हें यथेच्छ खाने-पीने को दिया।

5. ब्राह्मणों ने आगे बढ़ने से पहले, वृक्ष-देवता से पूछा कि वह पूर्व-जन्म में क्या-क्या था, कि वह इस प्रकार वृक्ष-देवता होकर उत्पन्न हुआ।

6. इस पर उसने बतलाया कि जब सुदत्त (अनाथपिण्डिक) ने बुद्ध को जेववनाराम का दान दिया था, तब वह श्रावस्ती की सभा में सारी रात उपदेश सुनता रहा, वहाँ से लौटते वक्त मैंने भिक्षुओं के पात्र को जल से भर लिया था, इस प्रकार मैंने भिक्षुओं को जल-दान दिया था।

7. अगली सुबह वापसी पर, उसकी पत्नी ने क्रोध से पूछा कि उसे ऐसा क्या कष्ट मिला था कि वह पूरी रात बाहर रहा। इस पर उसने उत्तर दिया कि वह गुस्से में नहीं था, बल्कि वह जेतवन में बुद्ध का धमोपदेश सुन रहा था।

8. इस पर उसकी पत्नी ने बुद्ध को बुरी तरह गालियाँ देना प्रारम्भ कर दिया, और कहा, ''यह गौतम केवल एक पागल धर्म–प्रचारक है, जो लोगों को धोखा देता है, इत्यादि''।

9. इस पर, वृक्ष–देवता ने कहा, ''मैंने उसके कथनों का विरोध नहीं किया, बल्कि उसके सामने हार मान ली और इस प्रकार जब मैं मृत्यु को प्राप्त हुआ तो मैंने वृक्ष–देवता के रूप में जन्म लिया, किन्तु अपनी कायरता के कारण मैं इस वृक्ष तक ही सीमित हूँ।'' और तब उसने इन गाथाओं को सुनाया।

10. ''यज्ञ और अन्य अनुष्ठान आदि दिन–रात, दुःख देने वाले सतत भार और चिन्ता के जनक हैं।''

11. ''चिन्ता से मुक्त होने और दुःख को नष्ट करने के लिये, एक व्यक्ति को अवश्यक ही (बुद्ध के) धर्म का पालन करना चाहिये, और जो ऋषियों के धर्म के सभी सांसारिक नियमों से मुक्ति पानी चाहिये।''

12. ब्राह्मणों ने इन शब्दों को सुनकर स्वयं श्रावस्ती में उस स्थल पर जाने का निश्चय किया और वे वहां पहुंचे जहाँ बुद्ध थे। उन्होंने तथागत को अपने आगमन का उद्देश्य बताने पर, तथागत ने उनसे कहाः

13. ''भले ही मनुष्य बालों की जटाओं सहित नग्न रहे, या चाहे वह कुछ पत्तों या छाल के कपड़ों से अपना शरीर ढके, या फिर वह स्वयं को धूल से ढके और पत्थरों पर सोता हो, किन्तु तृष्णा से छुटकारा पाने में इन सबका क्या प्रयोग है?''

14. ''किन्तु वह जो न तो किसी से संघर्ष करता है और न हत्या करता है, या अग्नि द्वारा किसी को नष्ट नहीं करता, वह जो दूसरे को हराकर विजय पाने की अभिलाषा नहीं करता, वह जो संपूर्ण संसार के प्रति मैत्री–भावना रखता है, ऐसी स्थिति में मनुष्य के लिए द्वेष या घृणा के लिये कोई स्थान नहीं है।''

15. ''शान्ति (पुण्य) पाने के लिए प्रेतों को आहुति देना, या इस जीवन के बाद (परलोक) पुरस्कार की आशा रखना, ऐसे व्यक्ति की प्रसन्नता उस व्यक्ति की चौथाई प्रसन्नता के बराबर भी नहीं हैं, जो सत्पुरुषों का सत्कार करता है।''

16. ''वह जो सदैव अच्छे आचरण और दूसरों को उचित सम्मान पर एकाग्रचित है, वह जो हमेशा वृद्धों का आदर करता है, उनके पास चार अच्छी चीजें निरन्तर बढ़ती रहती हैं सुन्दरता और शक्ति तथा आयु और शांति।''

17. अपने पति से यह सुनकर पत्नी संतुष्ट हो गयी।

छठा-भाग

निम्नस्तर लोगों की धर्म-दीक्षा

1. नाई उपालि का धर्म-दीक्षा
2. मेहतर सुणीत की धर्म-दीक्षा
3. अछूत सोपाक और सुप्पिय का धर्म-दीक्षा
4. सुमंगल तथा अन्य निम्न जाति वालों की धर्म-दीक्षा
5. कोढ़ी सुप्रबुद्ध की धर्म-दीक्षा

1. नाई उपालि की धर्म-दीक्षा

1. वापस लौटते समय नाई उपालि ने सोचा "शाक्य उग्र स्वभाव के लोग हैं। यदि मैं इन आभूषणों के साथ वापस जाऊँगा, तो वे मुझे मार डालेंगे, यह सोचकर कि मैंने अपने साथियों की हत्या की है और उनके आभूषणों के साथ भाग आया। क्यों न मैं भी उसी मार्ग पर जाऊँ, जिधर शाक्य कुल के ये नवयुवक गये हैं?"

2. "निस्सन्देह क्यों मुझे ऐसा नहीं करना चाहिये? उपालि ने स्वयं से पूछा और उसने आभूषणों की गठरी अपनी पीठ से उतारकर, यह कहते हुए, एक वृक्ष पर लटका दी: "जो इसे पाये एक भेंट के रूप में ले जाये," और शाक्य नवयुवकों का पीछा करने के लिये लौट पड़ा।"

3. और शाक्यों ने उसे दूर से आते देखा और उसके पास आने परे वे उससे बोले, "अच्छा उपालि! तुम किसलिये वापस आये हो?"

4. तब उसने जो सोचा था वही उन्होंने उत्तर दिया। शाक्य युवकों ने कहा, "तुमने अच्छा किया, उपालि कि तुम वापस नहीं लौट गये, क्योंकि शाक्य उग्र स्वभाव वाले हैं, और तुम्हें मार भी सकते थे।"

5. वहाँ जाने के लिए नाई उपालि को अपने साथ ले लिया जहाँ तथागत थे। और वहाँ आने पर, वे तथागत के समक्ष प्रणाम के लिये झुके और एक ओर आसन ग्रहण किया। इस प्रकार बैठकर उन्होंने तथागत से कहा:

6. "हम शाक्य, भगवान, अभिमानी स्वभाव के हैं। और यह नाई उपालि एक लम्बे समय से हमारी सेवा करता आ रहा है। भगवान हम से पहले इसे संघ में प्रवेश दें, जिससे कि हम इसे आदर और सत्कार दें और अपना ज्येष्ठ मान कर इनके सामने हाथ फैलाकर प्रणाम करें। इस प्रकार हम में शाक्यों का अभिमान विनम्र होगा।"

7. तब तथागत ने सर्वप्रथम नाई उपालि को प्रवेश दिया और तत्पश्चात् शाक्य कुल के उन नवयुवकों को संघ की व्यवस्था में सम्मिलित किया।

2. मेहतर सुणीत की धर्म-दीक्षा

1. राजगृह में सुणीत नामक एक मेहतर रहता था। गृहस्थों द्वारा सड़कों के किनारे फेंके गये कूड़े-करकट को साफ कर सड़क पर झाड़ू लगाने वाले के रूप में वह अपना जीविकोपार्जन किया करता था। उसका पेशा एक निम्न और वंशानुगत पेशा था।

2. एक दिन प्रातःकाल तथागत उठे, चीवर धारणा किया और बहुत से भिक्षुओं के साथ भिक्षाटन के लिये राजगृह में चल पड़े।

3. उस समय सुणीत सड़क साफ कर रहा था, कूड़ा-करकट, इत्यादि को इकट्ठा कर ढेर लगा रहा था और उसे टोकरी में भर रहा था, जिसे वह गाड़ी में भर कर ले जाने वाला था।

4. जब उसने तथागत और उनके संघ को आते हुए देखा, उसका हृदय प्रसन्नता और आश्चर्य से भर गया।

5. सड़क पर छिपने का कोई स्थान न पाकर, उसने दीवार के एक मोड़ से सटकर अपनी गाड़ी खड़ी कर दी और हाथ जोड़कर बुद्ध को प्रणाम करते हुए दीवार से सटकर खड़ा हो गया।

6. जब तथागत उसके कुछ समीप आये, तब उन्होंने दिव्य मधुर वाणी में उससे कहा, "सुणीत! तुम्हारे लिये यह जीविका का तुच्छ साधन क्या है? क्या तुम गृह-त्याग कर संघ में प्रविष्ट हो सकते हो?"

7. और सुणीत, जैसे व्यक्ति को ऐसा लगा कि उस पर अमृत की वर्षा हुई हो, वह हर्षोन्माद अनुभव करते हुए बोला, "जिस संघ में भगवान बुद्ध हैं, उस संघ में मैं कैसे नहीं आ सकता? कृपया भगवन्! मुझे संघ में प्रविष्ट कर लें।"

8. तब तथागत ने कहा, "आओ भिक्षु!" और इस एक वचन से ही सुणीत ने प्रव्रज्या और उप-सम्पदा प्राप्त कर ली और पात्र तथा चीवर से युक्त हो गया।

9. तथागत ने उसे विहार ले जाते हुए धर्म और विनय की शिक्षा दी और कहा, "शील, संयम और आत्म-नियन्त्रण द्वारा, मनुष्य शुद्ध बनता है।"

10. जब पूछा गया कि कैसे सुणीत इतना महान् बन गया, बुद्ध ने कहा, "जिस प्रकार राजमार्ग पर एक कूड़े के ढेर पर सुगन्धित और मधुर कुमुदिनी खिल सकती है, इसी प्रकार कूड़ा-करकट प्राणियों, अन्तर्दृष्टि से हुए अंधे सांसारिक लोगों के मध्य बुद्ध के ऐसे पुत्र प्रकाशमान हो सकते हैं।"

3. अछूत सोपाक और सुप्पिय की धर्म-दीक्षा

1. सोपाक श्रावस्ती का एक अछूत था। उसके जन्म के समय, अपनी प्रसव वेदना में उसकी माँ एक लम्बी गहरी मूर्छा में चली गयी, जिससे उसके पति और सम्बन्धियों ने समझा, 'वह मर गयी है।' और वे उसे उठा कर श्मशान ले गये और उसके शरीर को जलाने की तैयारी की।

2. किन्तु हवा और वर्षा के तूफान के कारण अग्नि नहीं जल पायी। अतः वे सोपाक की माँ को चिता पर लिटा, छोड़ कर चले गये।
3. सोपाक की माँ तब तक मरी नहीं थी। उसकी मृत्यु बाद में हुई। अपनी मृत्यु से पहले उसने एक बच्चे को जन्म दिया था।
4. उस बच्चे को श्मशान के रखवाले ने गोद ले लिया था और वह बच्चा उसके द्वारा अपने बच्चे सुप्पिय के साथ पाल-पोस कर बड़ा किया गया। वह बच्चा सोपाक समुदाय के नाम से जाना गया, जिस समुदाय से उसकी माँ सम्बन्धित थी।
5. एक दिन तथागत उस श्मशान के पास से गुजर रहे थे। भगवान को देख सोपाक उनके समीप गया। भगवान को प्रणाम कर उसने उनके शिष्य के रूप में उनके साथ जुड़ने की आज्ञा माँगी।
6. तब सोपाक केवल सात वर्ष का था। अतः भगवान ने उससे अपने पिता की अनुमति प्राप्त करने के लिये कहा।
7. सोपाक गया और अपने पिता को ले आया। पिता ने भगवान को प्रणाम किया और उसने अपने पुत्र को संघ में प्रविष्ट करने की प्रार्थना की।
8. इस बात की परवाह न करते हुए कि वह चाण्डाल समुदाय से सम्बंधित है, भगवान ने उसे संघ में प्रविष्ट कर लिया और उसे धर्म और विनय की शिक्षा दी।
9. बाद में सोपाक एक थेर (स्थविर) हुआ।
10. सुप्पिय और सोपाक बचपन से ही एक साथ बड़े हुए थे, क्योंकि सोपाक सुप्पिय के पिता द्वारा गोद लिया गया था और पाल-पोस कर बड़ा किया गया था, सुप्पिय ने अपने साथी सोपाक से भगवान का धर्म और विनय सीख लिया, सोपाक से निवेदन किया कि वह उसे संघ में प्रविष्ट कर ले, हालाँकि सोपाक एक ऐसे समुदाय से सम्बन्धित था, जो उस समुदाय से वर्ण-व्यवस्था के अनुसार नीचे था, जिससे सुप्पिय सम्बन्धित था।
11. सोपाक तैयार हो गया और सुप्पिय, जो एक तिरस्कृत समुदाय से सम्बन्धित था, जिसका पेशा श्मशान में रखवाले के कर्त्तव्यों का निष्पादन करना था, एक भिक्षु बन गया।

4. सुमंगल तथा अन्य निम्न जाति वालों की धर्म-दीक्षा

1. सुमंगल श्रावस्ती का एक किसान था। वह एक छोटी दरांती, हल और कुदाली से खेतों में काम करके अपना जीविकोपार्जन किया करता था।

2. छन्न कपिलवस्तु का मूल निवासी था और शुद्धोदन के घर में दास था।

3. धनिय राजगृह का निवासी था, वह कुम्हार था।

4. कप्पत-कुर श्रावस्ती का एक निवासी था। स्वयं की आजीविका के लिये, वह केवल एक ही तरीका जानता था कि चीथड़े पहन कर, हाथ में खप्पर लिये चावल की भीख माँगते घूमना। अतः कप्पत-कुर-'चीथड़े और चावल' नाम से ही जाना जाने लगा था। बड़ा होने पर, वह अपना गुजारा घास बेच कर करता था।

5. इन सभी ने बुद्ध से भिक्षु बनने और संघ में प्रविष्ट होने की अनुमति चाही। बुद्ध ने बिना झिझक के और बिना उनके निम्न जन्म या उनकी पूर्व अवस्था की परवाह किए, उन्हें संघ में प्रविष्ट कर लिया।

5. कोढ़ी सुप्रबुद्ध की धर्म-दीक्षा

1. एक समय तथागत राजगृह के निकट वेलुवन में गिरहरियों को दाना चुगाने के स्थल पर विराजमान थे।

2. उस समय राजगृह में एक कोढ़ी रहता था। जिसका नाम सुप्रबुद्ध था। वह दरिद्र, दुखी और अभागा व्यक्ति था।

3. उस समय ऐसा हुआ कि तथागत बड़ी भारी जनसभा के मध्य बैठकर धर्मोपदेश दे रहे थे।

4. सुप्रबुद्ध नामक कोढ़ी ने दूर से एकत्रित जन-सभा को देखा। इस दृश्य को देख उसने सोचा- 'निस्सन्देह वहाँ ठोस और द्रव्य दोनों प्रकार के भोजन भिक्षा में दिए जा रहे हैं। मान लो मैं उस भीड़ के समीप पहुँच जाता हूँ तो मुझे भी खाने के लिए भोजन या कुछ न कुछ अवश्य मिल जायेगा।

5. अतः कोढ़ी सुप्रबुद्ध उस भीड़ के समीप पहुँचा और उसने तथागत को एक बड़ी भारी भीड़ के मध्य धर्मोपदेश देते देखा। इस प्रकार, तथागत को देख कर उसने सोचा, 'नहीं, यहाँ भोजन की भिक्षा नहीं बँट रही है। यहां तो श्रमण गौतम सभा में धर्मोपदेश दे रहे हैं। अच्छा तो मैं उनकी शिक्षा को सुन लूँ।''

6. अतः वह यह सोचते हुए कि 'मैं भी धर्मोपदेश सुनूँगा' एक ओर बैठ गया।

7. तथागत ने अपने विचार से उस सम्पूर्ण सभा के विचारों को पढ़कर, स्वयं से कहा, ''मुझे सन्देह है कि यहाँ उपस्थित लोगों में से कौन सत्य को समझ लेने में सक्षम है?'' तब उन्होंने कोढ़ी सुप्प्रबुद्ध को भीड़ में बैठे देखा और उसको

देखते ही वह जान गये, ''यह सत्य को समझ सकता है।''

8. अतः कोढ़ी सुप्रबुद्ध के लिये तथागत ने क्रमशः इन विषयों से सम्बन्धित एक धर्मोपदेश दिया। भिक्षादान पर, पवित्र जीवन पर, स्वर्ग-लोक पर और उन्होंने काम-सुखों की तुच्छता और निरर्थकता तथा आश्रवों से मुक्ति के लाभ का निर्देश दिया।

9. जब तथागत ने देखा कि कोढ़ी सुप्रबुद्ध का चित्त विनम्र हो गया, आज्ञाकारी हो गया, मुक्त हो गया, ऊपर उठ गया और श्रद्धा से पूर्ण हो गया, तब उन्होंने उसे बुद्धों के सर्वोत्कृष्ट धम्म का उपदेश दिया, अर्थात्, दुःख, दुख समुदय, दुख निरोध और दुख निरोध की ओर से जाना वाला मार्ग।

10. जिस प्रकार एक श्वेत वस्त्र, दाग-धब्बों से मुक्त, रंग को अच्छी तरह ग्रहण करने के लिये तैयार है, उसी प्रकार कोढ़ी सुप्प्रबुद्ध में, जैसे कि वह ठीक उसी स्थल पर बैठा था, सत्य की शुद्ध विमला प्रज्ञा उत्पन्न हुई, यह सत्य कि जिस किसी का भी प्रारम्भ है, उसका अवश्य ही एक अन्त भी होगा। और कोढ़ी सुप्रबुद्ध ने सत्य को देखा, सत्य तक पहुँचा, सत्य का अनुभव किया, सत्य में निमग्न हो गया, सन्देह के परे चले गया, सभी जिज्ञासाओं से मुक्त हो गया, विश्वास जीत लिया, और उसे और कुछ भी करणीय नहीं रहा, तथागत की देशना पर सुप्रतिष्ठित होकर, अपने आसन से ऊपर उठकर और तथागत के समीप जाकर, और वहाँ एक ओर वह बैठ गया।

11. इस प्रकार बैठे हुए उसने तथागत से कहा, ''अद्भुत, हे भगवन्! अद्भुत, हे भगवन् जिस प्रकार कोई गिरे हुए को उठा ले, छुपे हुए को खोज ले किसी रास्ता भूले को रास्ता दिखा दे, अन्धकार में एक प्रदीप दर्शा दे, जिससे जिनके पास आँखें हैं, वे आकारों को देख सकें, इसी प्रकार तथागत ने नाना प्रकार से सत्य की व्याख्या की। मैं, यहाँ तक कि मैं, भगवन् बुद्ध, धर्म और भिक्षुओं के संघ की शरण ग्रहण करता हूँ। कृपया तथागत! मुझे अपने शिष्य के रूप में स्वीकार कर लें। भगवान आज से मेरे प्राण रहने तक मुझे अपना शरणागत उपासक समझें।''

12. इसके बाद कोढ़ी सुप्रबुद्ध तथागत की पुण्य वाणी से प्रसन्न हुआ, उनकी वाणी की प्रशंसा और स्वागत करके, धन्यवाद देकर, अपने आसन से उठा, दाहिनी ओर से तथागत का अभिवादन किया और चला गया।

13. संयोगवश ऐसा हुआ कि एक तरुण बछड़े ने कोढ़ी सुप्रबुद्ध को उठाकर पटक दिया और सींग घुसाकर जान से मान डाला।

सातवां-भाग

स्त्रियों की धर्म-दीक्षा

1. महाप्रजापति गौतमी, यशोधरा और अन्य स्त्रियों की प्रव्रज्या
2. प्रकृति नामक चाण्डालिका की प्रव्रज्या

1. महाप्रजापति गौतमी, यशोधरा और अन्य स्त्रियों की प्रव्रज्या

1. जब तथागत का कपिलवस्तु अपने पिता के घर आगमन हुआ था, तो संघ में प्रविष्ट होने की शाक्य-स्त्रियों की इच्छा उतनी ही प्रबल थी, जितनी शाक्य-पुरुषों के मध्य थी।

2. ऐसी स्त्रियों की अगुआ कोई अन्य नहीं स्वयं महाप्रजापति गौतमी थीं।

3. अब उस समय जब तथागत शाक्यों के मध्य निग्रोधाराम में ठहरे हुए थे, महाप्रजापति गौतमी उनके पास गयी और बोली, "भगवान्! यह अच्छा होता, यदि स्त्रियों को भी तथागत द्वारा उद्घोषित धर्म और विनय के अधीन परिव्राजक बनने और संघ में प्रविष्ट होने की अनुमति मिल जाती।"

4. " हे गौतमी! रहने दे, ऐसा विचार अपने मन में मत उत्पन्न होने दो।" दूसरी और तीसरी बार भी महाप्रजापति ने वही निवेदन उन्हीं शब्दों में किया, और दूसरी और तीसरी बार भी उन्हें वहीं उत्तर प्राप्त हुआ।

5. तब महाप्रजापति गौतमी, दुखी और उदास तथागत के सामने सिर झुकाकर और आँखों में आँसू लिये चली गयीं।

6. तथागत द्वारा अपनी चारिका के लिये निग्रोधाराम छोड़ने के उपरान्त, महाप्रजापति और शाक्य स्त्रियाँ एकत्रित हुई और विचार करने लगीं कि तथागत के द्वारा उनकी प्रार्थना स्वीकार न करने पर, अब आगे क्या किया जाए?

7. शाक्य-स्त्रियाँ भगवान के इन्कार को अन्तिम निर्णय मानने को तैयार नहीं हुईं। उन्होंने एक परिव्राजक के वस्त्र धारण करके और भगवान् के सम्मुख उपस्थित होने का निश्चय किया।

8. तद्नुसार महाप्रजापति गौतमी ने अपने केश काट डाले और काषाय वस्त्र धारण किये तथा शाक्य वंश की अनेक स्त्रियों के साथ भगवान से मिलने के लिए अपनी यात्रा पर चल पड़ीं, उस समय भगवान वैशाली के महावन में कूटगार शाला में ठहरे हुए थे।

9. यथासमय महाप्रजापति गौतमी अन्य स्त्रियों के साथ वैशाली पहुँचीं और सूजे पाँवों और धूल में ढँकी कूटगार-शाला में आयी।

10. पुनः उन्होंने वही प्रार्थना तथागत से की, जो उन्होंने तब की थी, जब वे निग्रोधाराम में ठहरे हुए थे और उन्होंने पुनः उसे अस्वीकार कर दिया।

11. दूसरी बार भी उनकी अस्वीकृति पाने पर महाप्रजापति वहां से पीछे हट गयी और

यह न जानते हुए कि अब वह क्या करे कूटागार-शाला के प्रवेश द्वार के बाहर खड़ी हो गयी थी। जब वे इस प्रकार खड़ी हुई थी, आनन्द ने कूटगार-शाला जाते हुए उनको देखा और उनको पहचान लिया।

12. उन्होंने तब महाप्रजापति से पूछा, "आप यहाँ क्यों खड़ी हैं, बरामदे के बाहर सूजे हुए पैरों के साथ, धूल से ढँकी हुई यह दुखी आँखों में आँसू हैं और क्यों रो रही हैं?" "क्योंकि, हे आनन्द! भगवान्, तथागत, स्त्रियों को अपने गृहों का परित्याग करने और तथागत द्वारा उद्घोषित धर्म और विनय के अधीन परिव्रजित अवस्था में प्रविष्ट होने की अनुमति नहीं देते हैं," महाप्रजापति ने कहा।

13. तब स्थविर आनन्द उस स्थल पर गये जहाँ तथागत थे, और तथागत के सामने सिर झुका कर, एक ओर अपना आसन ग्रहण किया और इस प्रकार बैठे हुए, स्थविर आनन्द ने तथागत से कहा, "भगवान्, देखिए, महाप्रजापति गौतमी बाहर प्रवेश बरामदे के नीचे खड़ी हैं, सूजे पांवों और धूल से ढँकी हुई दुखी और उदास, रोती हुई आँखों में आँसू लिये हुए, क्योंकि तथागत स्त्रियों को अपने गृहों का परित्याग करने तथा तथागत द्वारा उद्घोषित धर्म और विनय के अधीन परिव्रजित अवस्था में प्रविष्ट होने की अनुमति नहीं देते हैं। यह अच्छा होता, भगवान्! यदि स्त्रियों को जैसी उनकी इच्छा है वैसी अनुमति दे दी जाती।"

14. "क्या महाप्रजापति गौतमी ने तथागत की विशेष सेवा नहीं की थी, तब मौसी और परिचारिका के रूप में उन्होंने उन्हें पोषित किया और उनकी माता की मृत्यु हो जाने पर तथागत को शिशु अवस्था में अपने स्तनों से दुग्ध-पान कराती रही। अतः, यह अच्छा होता, भगवान् कि स्त्रियों को गृहस्थ जीवन का परित्याग करने और तथागत के द्वारा उद्घोषित धर्म और विनय के अधीन परिव्राजित अवस्था में प्रवेश करने की अनुमति प्रदान करें।"

15. "आनन्द! रहने दो। ऐसा न हो कि स्त्रियों को ऐसा करने की अनुमति मिले।" दूसरी बार और तीसरी बार भी आनन्द ने वही प्रार्थना की, उन्हीं शब्दों में, और वही उत्तर पाया।

16. तब स्थविर आनन्द ने तथागत से पूछा : "क्या कारण हो सकता है भगवान्, स्त्रियों को प्रव्रज्या लेने की अनुमति की अस्वीकृति का?"

17. "भगवान् जानते हैं कि ब्राह्मण का मत है कि शूद्र और स्त्रियाँ कभी मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकते हैं, क्योंकि वे अशुद्ध और निम्न होते हैं। इसलिए वे शूद्रों और स्त्रियों को प्रव्रज्या लेने की अनुमति नहीं देते। क्या तथागत भी वैसा ही दृष्टिकोण रखते हैं, जैसा कि ब्राह्मणों का है?"

18. "क्या तथागत ने ठीक उसी प्रकार शूद्रों को प्रव्रज्या लेने और संघ में उसी तरीके से सम्मिलित होने की अनुमति नहीं दी है जैसे उन्होंने ब्राह्मणों को दी है? क्या कारण है, भगवान् स्त्रियों के साथ भिन्न तरीके से व्यवहार करने का?"

19. "क्या तथागत समझते हैं कि स्त्रियाँ तथागत द्वारा उद्घोषित धर्म और विनय के अधीन निर्वाण तक पहुँचने में समक्ष नहीं हैं?"

20. तथागत ने उत्तर दिया, "आनन्द! मुझे गलत मत समझो। मैं मानता हूँ कि स्त्रियाँ भी उतनी ही सक्षम हैं, जितने कि पुरुष निर्वाण तक पहुँचने के मामले में। आनन्द! मुझे गलत मत समझो, मैं स्त्री-पुरुष की असमानता के सिद्धांत को मानने वाला नहीं हूँ। महाप्रजापति की प्रार्थना पर मेरी अस्वीकृति लिंग की असमानता पर आधारित नहीं है। वह व्यावहारिक कारणों पर आधारित है।"

21. "मैं प्रसन्न हूँ, भगवान्! वास्तविक कारण जानकर। किन्तु क्या भगवान् को व्यावहारिक कारणों से उनकी प्रार्थना अस्वीकृत करनी आवश्यक है? क्या इस प्रकार का कार्य धर्म की प्रतिष्ठा नहीं घटायेगा और इसे लिंग की असमानता को मानने के दोषारोपण का भागी नहीं बनायेगा? क्या भगवान्! ऐसी व्यावहारिक कठिनाइयों से बचने के लिये कुछ नियम नहीं सोच सकते हैं, जिनके कारण भगवान् चिन्तित हैं?"

22. "अच्छा, आनन्द! मैं अनुमति देता हूँ, यदि महाप्रजापति आग्रह करती हैं कि स्त्रियों को मेरे द्वारा उद्घोषित धर्म और विनय के अधीन प्रव्रज्या लेने की अनुमति अवश्य दी जाये। किन्तु यह आठ शर्तों पर आधारित होनी चाहिए, महाप्रजापति गौतमी स्वयं पर आठ प्रमुख नियम को लागू करने का दायित्व लें। यही उनकी दीक्षा होगी।"

23. जब स्थविर आनन्द, ने तथागत से ये आठ नियम सीख लिये, तब महाप्रजापति गौतमी के पास गये और उन्हें वह सब बताया जो तथागत ने कहा था।

24. महाप्रजापति बोली, "आनन्द! जिस प्रकार एक पुरुष या एक स्त्री, जब युवा और युवती स्वयं को अलंकित करने के आदी हो, जब दोनों हाथों से कमल और चमेली के फूलों या अतिमुक्तक की एक माला ग्रहण करे और उसे अपने सिर के ऊपर रखे इसी प्रकार मैं आनन्द! इन आठ नियमों को धारण करूँगी, जीवनपर्यन्त उल्लंघन न होने देने के लिये वचन देती हूं।"

25. तब स्थविर आनन्द तथागत के पास लौट गये, उनके सामने सिर झुकाया और एक ओर अपना आसन ग्रहण किया। और इस प्रकार बैठे हुए, स्थिवर आनन्द

ने तथागत से कहा, "भगवान! महाप्रजापति गौतमी, ने स्वयं के ऊपर नियमों को लागू कराने का दायित्व ले लिया है, अतः वे उपसम्पदा प्राप्त मान ली जायें।"

26. अब महाप्रजापति ने प्रव्रज्या-उपसम्पदा ग्रहण की, और उनके साथ आयी हुईं पाँच सौ शाक्य-स्त्रियों ने भी उसी समय प्रव्रज्या-उपसम्पदा ग्रहण की, इस प्रकार प्रव्रजित महाप्रजापति शास्ता के सम्मुख आयीं, और उनका अभिवादन कर, एक ओर खड़ी हो गयीं और तथागत ने उन्हें धर्म और विनय की शिक्षा दी।

27. अन्य पाँच सौ भिक्खुनियों को तथागत के शिष्यों में से एक नन्दक ने धर्म और विनय की शिक्षा दी।

28. महाप्रजापति के साथ जो शाक्य-स्त्रियाँ भिक्खुनी बनीं थी, उनमें यशोधरा भी थी। उनकी प्रव्रज्या के उपरान्त वे भद्दा कच्चाना (भद्रा कात्यायना) नाम से जानी जाने लगीं।

2. प्रकृति नामक चाण्डालिका की प्रव्रज्या

1. एक समय तथागत श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में रह रहे थे।

2. ऐसा हुआ कि एक दिन तथागत के शिष्य आनन्द नगर में भिक्षाटन के लिये गये थे। अपना भोजन करने के पश्चात् आनन्द पानी पीने के लिये नदी की ओर जा रहे थे।

3. उन्होंने नदी के तट पर एक लड़की को अपना घड़ा भरते हुए देखा। आनन्द ने उससे उन्हें थोड़ा पानी देने को कहा।

4. लड़की, जिसका नाम प्रकृति था, ने यह कहते हुए इन्कार कर दिया कि "मैं एक चाण्डालकन्या हूं। मैं पानी नहीं दे सकती।"

5. आनन्द ने उत्तर दिया, "मेरा मतलब पानी से है। मेरा मतलब तुम्हारी जाति से नहीं है।" लड़की ने तब अपने घड़े से थोड़ा पानी उन्हें दिया।

6. तत्पश्चात् आनन्द जेतवन के लिये चल पड़े। लड़की ने उनका पीछा किया और देखा कि वे कहाँ ठहरे हुए हैं और उसने यह मालूम कर लिया कि उनका नाम आनन्द है और वे बुद्ध के शिष्य हैं।

7. घर लौटने पर उसने अपनी माँ मातंगी को सारा वृत्तान्त बताया और जमीन पर लेट कर रोना शुरू कर दिया।

8. माँ ने उसके रोने का कारण पूछा। लड़की ने पूरी कहानी सुना दी और कहा, ''यदि आप मेरा विवाह करना चाहती है, तो मैं केवल आनन्द के साथ विवाह कर सकती हूँ। मैं किसी और के साथ विवाह नहीं करूँगी।''

9. माँ पूछ-ताछ के लिये गयी। लौटने पर उसने लड़की को बताया कि ''ऐसा विवाह असम्भव है क्योंकि आनन्द ने ब्राह्मचर्य-व्रत ग्रहण कर रखा है।''

10. यह समाचार सुनने के बाद लड़की अत्यन्त दुखी हुई थी और उसने खाना-पीना त्याग दिया। वह वस्तुस्थिति को स्वीकार करने को तैयार न थी, जबकि यही भाग्य का लेखा था। अतः वह बोली, ''माँ! तुम जादू-टोना जानती हो, क्या? तुम क्यों नहीं हमारे उद्देश्य की पूर्ति के लिये इसका उपयोग करती हो?'' माँ ने कहा, ''मैं देखूँगी कि क्या किया जा सकता है।''

11. मातंगी ने आनन्द को भोजन के लिये अपने घर आमन्त्रित किया। लड़की अत्यन्त प्रसन्न हुई। मातंगी ने तब आनन्द को बताया कि उसकी लड़की उनसे विवाह करने के लिए अत्यन्त व्याकुल थी। आनन्द ने उत्तर दिया, ''मैंने ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण किया है और इसलिये मैं किसी स्त्री से विवाह नहीं कर सकता हूँ।''

12. मातंगी ने कहा, ''यदि आप मेरी पुत्री से विवाह नहीं करेंगे, तो वह आत्महत्या कर लेगी, वह आप पर इतनी आसक्त है,'' किन्तु आनन्द का उत्तर था, 'किन्तु मैं सहायता नहीं कर सकता हूँ'।

13. मांतगी घर भीतर गयी और अपनी पुत्री को बताया कि आनन्द ने उससे विवाह से इन्कार कर दिया है।

14. लड़की चिल्लाई, ''माँ! तुम्हारा जादू-टोना कहाँ है?'' माँ ने कहा-''मेरा जादू-टोना तथागत के विरुद्ध विजयी नहीं हो सकता।''

15. लड़की चीखी और कहा, ''मां! दरवाजा बन्द कर दो और उन्हें बाहर मत जाने दो। मैं देखूँगी कि वे इसी रात मेरे पति बनते हैं।''

16. माँ ने वैसा ही किया जैसा लड़की उससे कराना चाहती थी। रात घिर आने पर माँ ने कमरे में एक बिस्तर लगा दिया। लड़की अपने अच्छे रूप में अलंकृत हो अन्दर आई, किन्तु आनन्द पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

17. माँ ने अंत में अपने जादू-टोने का प्रयोग किया। जिसके परिणाम-स्वरूप कमरे में आग जल उठी। माँ ने तब आनन्द को उनके कपड़ों से पकड़ा और बोली, ''यदि आप मेरी पुत्री से विवाह करने को तैयार नहीं होंगे, तो मैं आपको इस आग में झोंक दूँगी।'' तथापि, आनन्द नहीं झुके और माँ तथा पुत्री ने निस्सहाय अनुभव करके, उन्हें स्वतन्त्र कर दिया।

18. आनन्द ने लौट कर तथागत को यह सब बताया, जो उसके साथ हुआ था।

19. दूसरे दिन लड़की आनन्द की खोज में जेतवन आयी। आनन्द भिक्षाटन के लिये बाहर जा रहे थे। आनन्द ने उसे देखा और अनदेखा करना चाहा, किन्तु लड़की ने उनका पीछा किया जहाँ कहीं भी वे गये।

20. जब आनन्द जेतवन में लौटे, तो उन्होंने पाया कि लड़की उनके विहार के द्वार पर प्रतीक्षा कर रही है।

21. आनन्द ने तथागत को बताया, कैसे लड़की उनका पीछा कर रही थी। तथागत ने उसे बुलवा भेजा।

22. जब लड़की उनके सम्मुख पहुंची, तो तथागत ने उससे पूछा, "क्यों वह आनन्द का पीछा कर रही थी? लड़की ने उत्तर दिया कि वह उनसे विवाह करने को दृढ़संकल्प है। "मैंने सुना है यह अविवाहित हैं और मैं भी अविवाहित हूँ।"

23. भगवान् बोले, "आनन्द एक भिक्खु है, उनके सिर पर कोई बाल नहीं हैं। यदि तुम भी उसी तरह अपना सिर मुँडवा सकती हो, तो मैं देखूँगा कि क्या किया जा सकता है।"

24. लड़की ने उत्तर दिया, "मैं इसके लिए तैयार हूँ।" भगवन् ने कहा, "सिर मुँडवाने से पहले तुम्हें अवश्य ही अपनी माँ से इसके लिये अनुमति लेनी होगी।"

25. लड़की अपनी माँ के पास लौटी और कहा, "माँ! मैंने वह प्राप्त कर लिया है, जिसको प्राप्त करने में तुम असफल रही। भगवान् ने आनन्द से मेरा विवाह कराने का वचन दिया है, यदि मैं अपना सिर मुँडवा लूँ।"

26. माँ क्रोधित हो गयी और कहा, "तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिये। तुम मेरी पुत्री हो और तुम्हें बाल अवश्य रखने चाहिए। तुम आनन्द जैसे श्रमण से विवाह करने को क्यों इतनी इच्छुक हो। मैं तुम्हारा विवाह एक बेहतर व्यक्ति से करवा दूँगी।"

27. उसने उत्तर दिया, "या तो मैं मर जाऊँगी या आनन्द से विवाह करूँगी, मेरे लिये कोई तीसरा विकल्प नहीं है।"

28. माँ ने कहा, "तुम! क्यों मुझे अपमानित कर रही हो?" लड़की ने कहा, "यदि आप मुझसे प्रेम करती हैं, तो अवश्य ही मुझे वैसा करने दें, जैसा मैं चाहती हूँ।"

29. माँ ने अपना विरोध वापस ले लिया और लड़की ने अपना सिर मुँडवा लिया।

30. तब लड़की स्वयं तथागत के सम्मुख गई और बोली, ''मैंने अपना सिर मुँडवा लिया है, जैसा आपने कहा था।''

31. तथागत ने तब उससे पूछा, ''तुम क्या चाहती हो? उनके शरीर का कौन सा अंग तुम्हें सबसे प्रिय है?'' लड़की ने कहा, ''मुझे उनकी नाक से प्यार है, मुझे उनके मुँह से प्यार है, मुझे उनके कानों से प्यार है, मुझे उनकी आवाज से प्यार है, मुझे उनकी आँखों से प्यार है और मुझे उनकी चाल से प्यार है।''

32. तथागत ने तब लड़की से कहा, ''क्या तुम जानती हो कि आँखें आँसुओं का घर है, नाक गन्दगी का घर है, मुँह थूक का घर है, कान मैल का घर है और शरीर मल-मूत्र का पात्र है।''

33. ''जब पुरुष और स्त्री समीप आते हैं, वे बच्चे पैदा करते हैं। किन्तु जहाँ जन्म है, वहाँ मृत्यु भी है, जहाँ मृत्यु है, वहाँ दुःख भी है। लड़की! तुम आनन्द से विवाह करके क्या पाने वाली हो। मैं नहीं जानता हूँ।''

34. लड़की ने गम्भीर चिंतन करना प्रारम्भ कर दिया और सहमत हो गयी कि आनन्द से उसके विवाह का कोई उद्देश्य नहीं था, जिसके लिए वह दृढ़संकल्प थी और उसने तथागत को बता दिया।

35. तथागत का अभिवादन कर लड़की ने कहा, ''अज्ञान के कारण मैं आनन्द का पीछा कर रही थी। मेरा मन अब प्रबुद्ध है। मैं एक नाविक के समान हूँ, जिसका जहाज एक दुर्घटना के बाद दूसरे किनारे पर जा पहुँचा है। मैं एक अरक्षित वृद्ध व्यक्ति के समान हूँ, जिसे सुरक्षा मिल गयी है। मैं अन्धे के समान हूँ, जिसे नयी दृष्टि प्राप्त हो गयी है। तथागत ने अपने ज्ञानामृत वचनों से मुझे नींद से जगा दिया है।''

36. ''तुम धन्य हो, हे प्रकृति! यद्यपि तुम एक चाण्डालिका हो, लेकिन तुम श्रेष्ठ पुरुषों और श्रेष्ठ स्त्रियों के लिये एक आदर्श का काम करोगी। तुम निम्न जाति की हो, किन्तु ब्राह्मण भी तुमसे शिक्षा ग्रहण करेंगे। न्याय तथा धर्मपरायणता के मार्ग से विचलित मत होना और तुम राज-सिंहासन पर बैठी हुई रानियों की राजसी कीर्ति को भी मात दे दोगी।

37. विवाह असफल होने के पश्चात्, उसके लिये एकमात्र मार्ग भिक्खुनी संघ में प्रविष्ट होना ही बच रहा था।

38. अपनी इच्छा प्रकट करने पर उसे उसमें सम्मिलित कर लिया गया, यद्यपि वह निम्नतम जाति से सम्बन्धित थी।

आठवां-भाग

पतितों तथा अपराधियों की धर्म-दीक्षा

1. एक आवारा की धर्म-दीक्षा
2. डाकू अंगुलिमाल की धर्म-दीक्षा
3. अन्य अपराधियों की धर्म-दीक्षा
4. धर्म-दीक्षा में जोखिम

1. एक आवारा की धर्म-दीक्षा

1. प्राचीन काल में राजगृह में एक अत्यन्त उपद्रवी व्यक्ति रहता था, जो न तो अपने माता-पिता का सम्मान करता था और न अपने से बड़ों का आदर करता था, किन्तु जब उससे गलत कार्य हो जाता था, तो वह सदैव सूर्य, चन्द्र और अग्नि-देव के यज्ञ और पूजा का सहारा लेता था, इस आशा से कि इससे पुण्य मिलेगा और स्वयं में खुशी अनुभव करता।

2. किन्तु पूजा और यज्ञ में अपना सम्पूर्ण शारीरिक परिश्रम होते हुए भी, उसे शान्ति नहीं मिली, यहाँ तक कि तीन वर्ष तक दृढ़ता से यह सब करता रहा।

3. उसने अंत में बुद्ध के विषय में जानने के लिये श्रावस्ती जाने का निश्चय किया। वहाँ पहुँचकर और उनके दर्शनों की कीर्ति देख कर, वह उनके पैरों में गिर पड़ा और कहा कि वह कितना प्रसन्न हुआ।

4. तब भगवान् ने पशु-बलि की मूर्खता और ऐसे सभी बाहरी कर्मकाण्डों में लगे रहना व्यर्थ है, जिनका मन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। जिनमें आदरणियों का आदर नहीं होता और उनके प्रति अपने कर्त्तव्यपूर्ण व्यवहार का जोन नहीं होता। अंत में उन्होंने कुछ गाथाएं कहीं। उस समय उनके तेज से देदीप्यमान होकर वह सारा स्थान और आस-पास का स्थान प्रकाशित हो गया।

5. इस पर गाँववासी, और विशेष कर बच्चों के माता-पिता उनकी पूजा करने के लिये समीप आये।

6. माता-पिताओं को देखकर, और बच्चों के उनके विवरण को सुन कर, बुद्ध मुस्कराये, और इन गाथाओं का संगायन किया।

7. ''श्रेष्ठ मनुष्य लोभी इच्छा से पूर्णतया मुक्त होता है। वह ऐसे प्रकाशित युक्त स्थल पर रहता है, जो-स्वयं प्रकाशमान रहता है। यद्यपि संयोग से उसे दुख प्राप्त होते हैं। उस समय भी वह प्रसन्न होता है, बिना घबराये अपनी बुद्धि का प्रदर्शन करता है।

8. ''भद्र पुरुष स्वयं को किसी सांसारिक कार्यकलाप से सम्बद्ध नहीं रखता, सावधानी पूर्वक शीलों का पालन करते हुए और प्रज्ञा के पथ पर चलते हुए, वह विचित्र सिद्धान्त (धन या सम्मान) के पीछे लालायित नहीं होता।''

9. ''भद्र पुरुष अनित्यता के गुण को जानते हुए, और यह जानकर कि संसार बालू के मध्य जमे एक वृक्ष के समान है अपने अस्थिर चित्त मित्र को स्थिरता के पथ पर और अपने अपवित्र शील मित्र को पवित्रता के पथ पर लाने का पूरा प्रयास करता है।''

2. डाकू अंगुलिमाल की धर्म-दीक्षा

1. कोशल-नरेश प्रसेनजित् के राज्य में अंगुलिमाल नाम का एक डाकू रहता था, जिसके हाथ हमेशा खून से लाल रंगे रहते थे, और किसी भी जीवित प्राणी के लिए कोई दया नहीं दर्शाता था, जो सदैव हत्या और घायल करता रहता था। उसके कारण, जो पहले गाँव थे, वे अब नहीं रहे थे, जो पहले नगर थे वे अब नगर नहीं रहे थे, और जो पहले देहात थे वे अब देहात नहीं रहे थे।
2. जिस की वह हत्या करता था, उसकी एक अंगुलि अपने लिये एक माला बनाने के लिये ले लिया करता था, और इस प्रकार उसका नाम 'अंगुलिमाल' पड़ा।
3. एक समय जब तथागत श्रावस्ती के जेतवनाराम में ठहरे हुए थे, तब उन्होंने डाकू अंगुलिमाल द्वारा किये गये विध्वंस के विषय में सुना। तथागत ने उसको एक धर्मपरायण मनुष्य में परिवर्तित करने का निर्णय लिया। अतः एक दिन अपना भोजन ग्रहण करने और बिस्तर को एक ओर रखने के बाद अपना पात्र और चीवर धारण कर, डाकू अंगुलिमान को खोजने की अपनी यात्रा पर निकल पड़े।
4. उन्हें उधर यात्रा पर जाते हुए देख कर, ग्वाले, गडरिए, हलवाहे और राही चिल्ला उठे, "श्रमण उस रास्ते मत जाओ। यह आपको डाकू अंगुलिमाल तक ले जायेगा।"
5. "क्योंकि, यहाँ तक कि जब दस, बीस, तीस या चालीस लोगों का दल एक साथ इस रास्ते से यात्रा करता है, सम्पूर्ण दल डाकू के हाथों में जा गिरता है!" किन्तु, बिना एक भी शब्द बोले, तथागत अपने मार्ग पर चलते रहे।
6. दूसरी और तीसरी बार भी उन लोगों ने जो आस-पास थे तथा अन्य लोगों ने भी अपनी चेतावनी दोहराई, किन्तु फिर भी, बिना एक भी शब्द बोले, तथागत अपने मार्ग पर बढ़ते गये।
7. कुछ दूर से ही डाकू ने तथागत को आते देखा और उसे अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि जहाँ यहाँ तक कि दस से पचास यात्रियों के दल भी उसके रास्ते पर आने की हिम्मत नहीं करते, यह अकेला श्रमण एकाकी ही अपने मार्ग पर आगे बढ़ता देखा जा सकता है और डाकू ने इस श्रमण की हत्या करने का मन बना लिया। अतः, तलवार और ढाल तथा तीर और तरकश से लैस डाकू ने तथागत का पीछा किया।
8. तथागत, जबकि वे स्वयं अपनी स्वाभाविक गति से आगे बढ़ रहे थे, डाकू अपने पूरे प्रयास से भी, उन्हें पकड़ नहीं पा रहा था।
9. डाकू ने सोचा "यह एक अद्भुत और आश्चर्यजनक बात है। अब तक, मैं सदैव एक हाथी, या घोड़ा, या गाड़ी या हिरण को जब वे पूरी गति से जा रहे होते थे,

जाकर पकड़ लेता था। अपने पूरे प्रयास के होते हुए भी इस श्रमण को पकड़ पाने में असमर्थ ही रहा था, जबकि यह अपनी स्वाभाविक गति से बढ़ रहा है।'' अतः वह रुक गया और चिल्लाकर तथागत को रुकने के लिए कहा।

10. जब दोनों मिले तथागत ने कहा, ''अंगुलिमाल! मैं तो तुम्हारे लिये रुक गया हूँ। क्या तुम! पाप-कर्म वाले अपने पेशे का पालन करने से रुकोगे? मैं तुम्हें जीतने के लिये तुम्हें खोज रहा हूँ, तुम्हें धर्म-परायणता के मार्ग पर लाने के लिये। तुम्हारे भीतर का कुशल अब तक मरा नहीं है। यदि तुम केवल उसे एक अवसर दोगे, वह तुम्हें परिवर्तित कर देगा।''

11. अंगुलिमाल तथागत के वचनों से प्रभावित अनुभव करते हुए बोला, ''अन्ततोगत्वा इस मुनि ने मुझे जीत ही लिया।''

12. ''और अब जबकि आपके दिव्य वचनों ने सदैव के लिये मुझसे पाप-कर्मों का परित्याग करने को कहा है, मैं स्वयं को एक मौका देने के लिये तैयार हूँ।'' अंगुलिमाल ने उत्तर दिया।

13. अंगुलिमाल ने अपने अंगुलियों की माला, जिसे वह अपने गले में पहने रहता था, उतार कर दूर फेंक दी और शास्ता के चरणों पर गिर पड़ा और भिक्षु संघ में प्रवेश की याचना की।

14. देवताओं और मनुष्यों के पथप्रदर्शक तथागत ने कहा, ''भिक्षु! मेरे पीछे आओ'' और भिक्षु क्योंकि अंगुलिमाल के लिये सम्बोधित था, इसलिए वह भिक्षु बन गया।

15. तथागत जब श्रावस्ती में जेतवन विहार की ओर अपने मार्ग पर बढ़ रहे थे। और अंगुलिमाल उनके भिक्षु अनुचर के रूप में। तब तथागत ने उसी समय राजा प्रसेनजित् के आन्तरिक महल के प्रवेश-द्वार पर एक विशाल भीड़ एकत्रित जो जोर-जोर से चिल्ला रही थी कि उसके द्वारा विजित राज्य में अंगुलिमाल नामक एक भयानक डाकू था, जो कि विध्वंश कर रहा था और जो अपने द्वारा वध किये गये, शिकारों की अंगुलियों से बनी एक माला पहनने में गर्व महसूस करता था, जन-समूह ''श्रीमान्! उसका दमन करें,'' प्रसेनजित् ने उस भीड़ को उसे मारने का वचन दिया था।

16. एक दिन राजा प्रसेनजित् तथागत के दर्शन के लिए जेतवान विहार गए। तथागत ने पूछा, ''राजन्! क्या बात है? क्या मगध के सेणिय बिम्बिसार या वैशाली के विच्छवियों या किसी अन्य विरोधी शक्ति के साथ समस्या है?''

17. 'तथागत! उस प्रकार की कोई समस्या नहीं है। मेरे राज्य में अंगुलिमाल नामक एक डाकू है, जो मेरे क्षेत्र में आतंक मचा रहा है और मेरी प्रजा को सता रहा है। मैं उसका दमन करना चाहता हूँ, किन्तु मैं असफल रहा हूँ।''

18. तथागत ने कहा, ''राजन्! यदि आप अंगुलिमाल को देखें कि उसके बाल और

दाढ़ी मुंडी हुई है, वह काषाय वस्त्रों में है, वह एक भिक्षु है, वह किसी की हत्या नहीं करता, चोरी नहीं करता, झूठ नहीं बोलता, दिन में केवल एक बार भोजन करता है, तो और पुण्य एवं अच्छाई के साथ श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करता है–आप उसके साथ कैसा व्यवहार करेंगे?''

19. ''भगवान्! मैं उनका अभिनंदन करूँगा, या उनसे मिलने के लिए उठ खड़ा होऊँगा या उन्हें बैठने के लिए आमंत्रित करूँगा या उन्हें चीवर तथा अन्य वस्तुएँ स्वीकार करने के लिए आमंत्रित करूँगा, या मैं उन्हें बचाव के लिए सुरक्षा उपलब्ध करवाऊँगा जिसके वे अधिकारी हैं। किंतु इतना दुष्ट और इतना पतित ऐसा शीलवान् हो ही कैसे सकता है?''

20. उसी समय स्थविर अंगुलिमाल तथागत के काफी निकट बैठे हुए थे, भगवान् ने अपना दहिना हाथ आगे को बढ़ाया और कहा, ''राजन्! यह अंगुलिमाल है।''

21. उसे देख राजा भयभीत हो गया, उसके शरीर के सारे रोंगटे खड़े हो गए। यह देखकर तथागत ने कहा, ''राजन्! भय मत लाएं, डरें नहीं, यहाँ पर डर का कोई कारण नहीं है।''

22. तब राजा का भय दूर हो गया, वह स्थविर अंगुलिमाल के पास गया, और पूछा, ''क्या आप स्थविर सचमुच अंगुलिमाल हैं?'', ''हाँ राजन्।''

23. ''स्थविर! आपके पिता और माता का गोत्र क्या था?'' ''राजन्! मेरे पिता एक गार्ग्य थे और मेरी माता एक मैत्रापणी थीं।''

24. ''गार्ग्य–मैत्रायणी– पुत्र! यह सुन राजा प्रसन्न हुआ और बोला, ''मैं आपकी सभी आवश्यकताओं की आपूर्ति का ध्यान रखूँगा।''

25. अब उस समय स्थविर अंगुलिमाल अरण्य का निवासी होने, भिक्षा पर ही निर्वाह करने और कूड़े के ढेर से उठाये तीन से अधिक कपड़े नहीं पहनने का व्रत ले चुकने के कारण, उन्होंने इस आधार पर राजा का निमन्त्रण अस्वीकार कर दिया कि उनके पास पहले से ही तीन चीवर उपलबध हैं।

26. तब राजा तथागत के पास गया और अभिवादन के उपरान्त एक ओर बैठ गया और कहा, ''भगवान! यह अद्‌भुत है, यह आश्चर्यजनक है, तथागत जंगली को पालतू बनाने वाले कैसे हैं, कैसे आप अदान्त को दान्त कर देते हैं और कैसे आप अशान्त को शान्त कर देते हैं। यही एक ऐसा व्यक्ति है, जिसे मैं लाठी और तलवार से पराजित नहीं कर पाया, किन्तु लाठी या तलवार के बिना ही तथागत ने उसे पराजित कर दिया! और अब मुझे अवश्य चलना चाहिये, क्योंकि मुझे पर्याप्त काम करने हैं और ध्यान देना है।''

27. ''जब आप महाराज को अच्छा लगे।'' तब राजा प्रसेनजित् अपने आसन से उठकर, राजा ने विनम्रतापूर्ण एवं श्रद्धा से तथागत का अभिवादन किया और चला गया।

28. एक दिन जब, उचित तरीके से चीवर धारण कर और हाथ में पात्र लेकर, अंगुलिमाल भिक्षा के लिये श्रीवस्ती में गया, उसे एक मनुष्य ने ढेला फेंक कर मारा, एक दूसरे आदमी ने डण्डा फेंक कर मारा और एक तीसरे व्यक्ति ने एक ठीकरा फेंक कर मारा, इस प्रकार खून बहते हुए एक फूटा सिर लिये हुए, अपना टूटा पात्र लिये और अपने तार-तार हुआ चीवर लिये, वह तथागत के सम्मुख उपस्थित हुआ। उसे समीप आते हुए देख तथागत ने अंगुलिमाल से कहा, "यह सब सहन करो, यह सब सहन करो।"
29. इस प्रकार डाकू अंगुलिमाल बुद्ध की शिक्षाओं को स्वीकार करके एक धर्मपरायण मनुष्य बन गया।
30. मुक्ति-सुख का आनन्द लेते हुए उसने कहा, "वह जो धमोत्साह दर्शाता है, जहाँ धर्मोत्साह बिल्कुल नहीं था, वह जो पुण्य के द्वारा अपने भूतकाल को ढंक देता है, वह जो युवावस्था में बुद्ध से जुड़ जाता है, वह चन्द्रमा के समान, पृथ्वी को प्रकाशमान कर देता है।"
31. "मेरे शत्रु इस सीख को सुनें, इस मत को अपनायें और प्रज्ञा के पुत्रों का अनुसरण करें, जो इससे जुड़े हैं। मेरे शत्रु समय रहते सुनें, मैत्री का सन्देश जो विनम्र सहिष्णुता है और अपने जीवन को इसके अनुसार व्यतीत करें।"
32. "अंगुलिमाल के रूप में, मैं पतनोन्मुख था, मेरी अधोगति थी, मैं धारा में नीचे की ओर बहा जा रहा था। तथागत ने मुझे उस स्थान पर लाकर खड़ा कर दिया है मैं जी और चक्कर खाकर रह रहा था, जब तक वे मुझे भूमि पर नहीं लाये। 'अंगुलिमाल' के रूप में, मैं खून से भीगा हुआ था, अब में बचा लिया गया हूँ।"

3. अन्य अपराधियों की धर्म-दीक्षा

1. राजगृह के दक्षिण की ओर एक विशाल पर्वत था, जो नगर से लगभग दो सौ ली (पचहत्तर मील) की दूरी पर था।
2. इस पर्वत के मध्य एक दर्रा था, गहरा और सुनसान, जिसके मध्य से होकर दक्षिण भारत की सड़क गुजरती थी।
3. पाँच सौ डाकुओं ने इन संकीर्ण दर्रे में अपना निवास बना रखा था, जो उन सभी यात्रियों की हत्या करते थे और उन्हें लूट लेते थे, जो उस रास्ते से गुजरते थे।
4. राजा ने उन्हें पकड़ने के लिये अपनी सेनाएं भेजी थी, किन्तु वे सदैव बच निकलते थे।
5. बुद्ध, पड़ोस में ही निवास करते थे और इन मनुष्यों की स्थिति पर विचार करके, जो अपने आचरण को नहीं समझते हैं, और यद्यपि वे इस लोक में उन्हें शिक्षित करने के लिये आये हैं, फिर भी उनका आँखों से अब तक नहीं

देखा था, और न ही अपने कानों ने उनके धर्म का समाचार सुना था, तथागत ने उनके पास जाने का निश्चय किया।

6. अतः तथागत ने स्वयं को एक धनी घुड़-सवार मनुष्य के रूप में परिवर्तित कर लिया! एक अच्छे घोड़े पर सवार, कन्धे पर धनुष और तलवार सहित, चाँदी और सोने के थैले काठी से बँधे हुए, और कीमती जवाहरात घोड़े की लगाम में जड़े हुए थे।

7. संकीर्ण दर्रे में प्रवेश करने पर उनका घोड़ा जोर से हिनहिनाया। आवाज को सुन कर पाँच सौ डाकू उठ खड़े हुए, और यात्री का पीछा करते हुए बोले, "हमें कभी भी लूट का ऐसा अवसर नहीं मिला था, आओ हम उठ खड़े हों और उसे पकड़ लें।"

8. उन्होंने ने घुड़सवार को घेरना चाहा ताकि वह बचकर भाग न जाए। किन्तु उसको देखकर वे भूमि पर गिर पड़े।

9. भूमि पर गिर पड़ने पर, वे चिल्लाये, "यह क्या भगवान है?" "यह क्या भगवान है?"

10. इस पर घुड़सवार ने उन्हें समझाना प्रारम्भ किया कि ऐसी चोटें और दर्द जैसा कि वे दूसरों को देते हैं और अब स्वयं उठाते हैं, कुछ नहीं हैं, नगण्य हैं-उस दर्द के सामने जो इस दुख के कारण होता है, जो संसार में है और अविश्वास एवं सन्देह के घावों के सामने, और केवल धर्म-ग्रन्थों पर पूर्ण एकाग्रता (सुनना) द्वारा उत्पन्न प्रज्ञा ही ऐसे घावों को भर सकती है; और तब उन्होंने इन वचनों को जोड़ा और कहा :

11. "दुख के समान बुरा कोई दुखदायी घाव नहीं है! मूर्खता के समान कोई चुभने वाला तीर नहीं है। केवल धर्म के प्रति पूर्ण एकाग्रता ही इनका इलाज कर सकती है। इससे ही अन्धे को दृष्टि मिलती है और अज्ञानियों को ज्ञान होते हैं।"

12. "मनुष्य इसी प्रकाश को पीछे-पीछे चलते है, जैसे जो बिना नेत्रों के हों उन्हें नेत्र दिये जायें।"

13. "इससे अविश्वास को दूर करने, दुःख को हटाने, आनन्द प्राप्त करने में सक्षम है; यह विमल प्रज्ञा उन्हीं को प्राप्त होती है, जो धमोपदेश सुनते हैं।"

14. "यह पद उसी का है जिसने सर्वोच्च पुण्य प्राप्त कर लिया है।"

15. यह सुनकर डाकू अपने बुरे जीवन पर पश्चाताप करने लगे, दुःख व अविद्या के तीर स्वतः उनके शरीर से निकल गये और उनके घाव भर गये।

16. तब वे बुद्ध के श्रावक बन गये और विश्राम तथा शान्ति प्राप्त की।

4. धर्म-दीक्षा में जोखिम

1. प्राचीन काल में, बुद्ध राजगृह से पाँच सौ ली (पौने दो सो मील) दूर एक प्रदेश में निवास करते थे? जो पर्वतों से घिरा हुआ था। इन पर्वतों में लगभग 122 व्यक्तियों का एक विशेष दल रहता था, जो स्वयं को शिकार में ही व्यस्त रखता था और उनके द्वारा मारे गये पशुओं के माँस से अपना गुजारा करता था।
2. बुद्ध उस जगह पर पहुँच गए थे और उन्होंने स्त्रियों को धर्मांतिरित कर दिया था दिन के समय वे अकेली रह जाती थीं, और उनके पति शिकार के लिये चले जाते थे, और तब निम्नलिखित बात कहते हैं :
3. "वह जो दयालु है, हत्या नहीं करता वह सदैव जीवन को सुरक्षित रखने में सक्षम है।"
4. "यह धर्म अमर है, जो इसका पालन करता है, उस व्यक्ति को किसी आपत्ति का सामना नहीं करना पड़ता।"
5. "विनम्रता, सांसारिक भोगों के प्रति उपेक्षा, किसी को कष्ट न पहुँचाना, किसी पर क्रोध न करना यह ब्रह्मलोक वासियों के लक्षण हैं।"
6. दुर्बलों के प्रति सदा मैत्री प्रदर्शित करना, बुद्ध की शिक्षाओं के अनुरूप पवित्र रहना, कब पर्याप्त खा चुकने पर भोजन की मात्रा की जानकारी, यह जन्म और मृत्यु के (बार-बार होने) से बचने का साधन जानना। स्त्रियाँ, इन वचनों को सुन कर, धम्म में दीक्षित हो गयी थीं और पुरुषों के लौटने पर, जब उनहें जानकारी प्राप्त हुई, तो सर्वप्रथम वे बुद्ध की हत्या कर देना चाहते थे, लेकिन वे अपनी पत्नियों द्वारा रोक लिये गये, और मैत्री के इन वचनों को सुनकर, वे भी धम्म में दीक्षित हो गये।"
7. और तब भगवान ने इन पंक्तियों को कहा-
8. "'"जो मैत्री भावना का अभ्यास करता है, उस व्यक्ति को ग्यारह लाभ प्राप्त होते हैं। वह सभी जीवित प्राणियों के प्रति दयालु रहता है।"
9. "उसका शरीर सदैव स्वस्थ (सुखी) रहता है, उसे हमेशा शान्तिपूर्ण नींद आती है, और जब अध्ययन-रत रहता है, वह एकाग्र रहता है।"
10. उसे दुःस्वप्न नहीं आते, वह स्वर्गों (देवताओं) द्वारा सुरक्षा पाता है और मनुष्यों द्वारा प्रेम पाता है, वह विषैले जीवों से भयभीत नहीं रहता है, और युद्ध की हिंसा से बच जाता है, वह अग्नि या जल से बचा रहता है।
11. "वह जहाँ भी रहता है, सफल रहता है, और जब वह मृत्यु को प्राप्त करता है, ब्रह्मलोकगामी हो जाता है। ये ग्यारह लाभ हैं।"
12. इन वचनों का उपदेश ग्रहण करने के उपरान्त, पुरुष और स्त्रियाँ दोनों ने ध र्म-दीक्षा ग्रहण की और उनके शिष्यों के दल में सम्मिलित कर लिये गये, और शांत-लाभ प्राप्त किया।

अध्याय तीन

बुद्ध ने क्या सिखाया

पहला भाग	-	धम्म में भगवान् बुद्ध का स्थान
दूसरा भाग	-	भगवान् बुद्ध के धम्म के विषय में विभिन्न दृष्टिकोण
तीसरा भाग	-	धम्म क्या है?
चौथा भाग	-	अधम्म क्या है?
पाँचवाँ भाग	-	सद्धम्म क्या है?

पहला-भाग

धम्म में भगवान् बुद्ध का स्थान

1. भगवान् बुद्ध ने अपने धम्म में स्वयं के लिए कुछ भी स्थान नहीं रखा।

2. भगवान् बुद्ध ने कभी किसी को मुक्ति का वचन नहीं दिया। उन्होंने कहा कि वे मार्गदाता, हैं मोक्षदाता नहीं।

3. बुद्ध ने अपने लिए यह अपने धम्म के लिए किसी दैवत्व का दावा नहीं किया। धम्म मनुष्य द्वारा मनुष्य के लिए आविष्कृत था। यह एक अपौरुषेय धम्म नहीं था।

1. भगवान् बुद्ध ने अपने धम्म में स्वयं के लिए कुछ भी विशेष स्थान नहीं रखा।

1. ईसा ने ईसाई धर्म के पैगम्बर होने का दावा किया था।
2. इससे आगे उसने यह दावा भी किया था कि वह खुदा का बेटा है।
3. ईसा की यह भी शर्त थी कि जब तक मनुष्य के लिये कोई मुक्ति नहीं है, तब तक कि वह यह स्वीकार न करे कि ईसा ईश्वर का पुत्र था।
4. इस प्रकार ईसा ने ईसाइयों की मुक्ति को स्वयं को पैगम्बर और ईश्वर–पुत्र के रूप में स्वीकार किये जाने की शर्त लगाकर अपने लिये एक स्थान सुरक्षित कर लिया था।
5. इस्लाम के पैगम्बर मुहम्मद साहब ने दावा किया था कि वह खुदा द्वारा भेजे गये एक पैगम्बर थे।
6. इससे आगे उन्होंने यह दावा भी किया था कि कोई भी मनुष्य जब तक निजात नहीं पा सकता, तब तक कि वह दो अन्य शर्तों को न स्वीकार कर ले।
7. इस्लाम ने निजात चाहने वाला स्वीकार करे कि मुहम्मद खुदा के पैगम्बर है।
8. इस्लाम में निजात चाहने वाला पहले यह भी स्वीकार करे कि वह ही आखिरी पैगम्बर हैं।
9. इस प्रकार इस्लाम में निजात केवल उन्हीं लोगों के लिये सुनिश्चित है, जो इन दो शर्तों को स्वीकार करते हैं।
10. इस प्रकार मुहम्मद ने, मुसलमानों की निजात को, उन्हें खुदा का पैगम्बर स्वीकार किये जाने की शर्त के आधार पर ही अपने लिये एक स्थान सुरक्षित कर लिया था।
11. इस प्रकार कोई भी शर्त कभी भी बुद्ध द्वारा नहीं रखी गयी थी।
12. उन्होंने हमेशा शुद्धोदन और महामाया का प्राकृतिक पुत्र होने के अतिरिक्त दूसरा दावा नहीं किया था।
13. उन्होंने ईसा मसीह या मुहम्मद की भांति किसी भी प्रकार की शर्त लगाकर अपने धर्म–शासन में स्वयं अपने लिये कोई स्थान नहीं बनाया था।
14. यही कारण है कि प्रचुर साहित्यिक सामग्री उपलब्ध होने पर भी भगवान बुद्ध जीवन के विषय में हम बहुत कम जानते हैं।

15. जैसा कि ज्ञात है, भगवान बुद्ध के महापरिनिर्वाण के पश्चात् अविलम्ब ही राजगृह में प्रथम बौद्ध संगीति हुई थी।

16. महाकाश्यप ने संगीति की अध्यक्षता की थी। कपिलवस्तु के आनन्द, उपालि और अन्य भिक्षु उनके साथ-साथ, जहाँ कहीं भी वे प्राय: गये, वे उनकी मृत्युपर्यन्त उनके साथ रहे थे।

17. लेकिन अध्यक्ष महाकाश्यप ने क्या किया?

18. उन्होंने आनन्द से 'धम्म' का संगायन करने का निवेदन किया और संगीति के समक्ष प्रश्न रखा, "क्या यह सही है?" उन्होंने सकारात्मक उत्तर दिया। और महाकाश्यप ने तब प्रश्न को समाप्त कर दिया।

19. इसके पश्चात् उन्होंने उपालि से 'विनय' का संगायन करने का निवेदन किया और संगीति के समक्ष प्रश्न रखा, "क्या यह सही है?" उन्होंने सकारात्मक उत्तर दिया। महाकाश्यप ने तब प्रश्न को समाप्त कर दिया।

20. उस समय महाकाश्यप को चाहिये था कि वह संगीति में उपस्थित किसी अन्य के समक्ष भगवान बुद्ध के जीवन की कुछ महत्त्वपूर्ण घटनाओं का विवरण देने का तीसरा प्रश्न रखते।

21. किन्तु महाकाश्यप ने ऐसा नहीं किया। उन्होंने सोचा कि 'धम्म' और 'विनय' केवल यही दो विषय ऐसे हैं, जिनसे संघ का सरोकार है।

22. यदि महाकाश्यप ने भगवान बुद्ध के जीवन का विवरण संग्रहित करा लिया होता तो हमारे पास आज भगवान बुद्ध का सम्पूर्ण जीवन-वृतान्त होता।

23. भगवान बुद्ध के जीवन के विषय में विवरण संग्रहित करने की बात महाकाश्यप को क्यों नहीं सूझी?

24. इसका कारण उपेक्षा-भाव नहीं हो सकता। इसका एकमात्र जो उत्तर दिया जा सकता है वह है कि भगवान बुद्ध ने अपने-अपने धर्म-शासन में स्वयं के लिये कोई भी स्थान नहीं बनाया था।

25. भगवान बुद्ध और उनका धम्म सर्वथा पृथक-पृथक थे। उनका अपना स्थान था और धर्म का अपना।

26. भगवान बुद्ध द्वारा स्वयं को अपने धम्म से बाहर रखने का एक और उदाहरण अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करने की उनकी अस्वीकृति में पाया जा सकता है।

27. दो तीन बार भगवान बुद्ध के अनुयायियों द्वारा एक उत्तराधिकारी नियुक्त करने की प्रार्थना की गयी थी।

28. प्रत्येक बार भगवान बुद्ध ने उसे अस्वीकार कर दिया था।

29. उनका उत्तर था, ''धम्म ही उनका अपना उत्तराधिकारी है।''

30. ''धम्म को अपने ही द्वारा जीवित रहना चाहिये, किसी मानवीय अधिकार के बल पर नहीं।''

31. ''यदि धम्म को मानवीय अधिकार की आवश्यकता है, तो वह कोई धम्म नहीं है।''

32. ''यदि हर समय धम्म का प्रभुत्व स्थापित करने के लिये संस्थापक के नाम का आवाह्न करना आवश्यक है, तो वह कोई धम्म नहीं है।''

33. अपने धम्म को लेकर स्वयं अपने बारे में उनका यही दृष्टिकोण था।

2. भगवान बुद्ध ने कभी किसी को मुक्ति का वचन नहीं दिया। उन्होंने कहा कि वे मार्गदाता हैं, मोक्षदाता नहीं।

1. अधिकतर धर्म 'इल्हामी धर्म' माने जाते हैं। किन्तु भगवान बुद्ध का धम्म एक इल्हामी धर्म नहीं है।

2. कोई भी धर्म 'इल्हामी-धर्म' इसलिये कहा जाता है, क्योंकि यह उसकी सृष्टि में ईश्वर का एक संदेश या पैगाम समझा जाता है कि वे अपने रचरिया (अर्थात् ईश्वर) की पूजा करें कि वह उनकी आत्माओं को मुक्त करे।

3. प्राय: सन्देश या पैगाम एक चुने हुए व्यक्ति के द्वारा भेजा जाता है, जो पैगम्बर कहलाता है, जिसको यह पैगाम प्राप्त होता है और जब वह लोगों पर इसे प्रकट करता है, तब यह धर्म कहलाता है।

4. पैगम्बर का दायित्व है कि धर्म पर ईमान लाने वालों के लिये मुक्ति लाभ सुनिश्चित कर दे।

5. ईमान लाने वालों की मुक्ति का अर्थ है, उनकी रुहों को मुक्त करना, ताकि वे दोजक में न जा सके लेकिन इसके लिए शर्त है कि वे खुदा की आज्ञाओं का पालन कर स्वीकार करें क्योंकि पैगम्बर खुदा का पैग्राम-बर है।

6. भगवान बुद्ध ने कभी अपने को यह दावा नहीं किया कि वे एक पैगम्बर या ईश्वर के एक दूत (या अवतार) हैं। उन्होंने ऐसे किसी भी वर्णन का खण्डन किया था।

7. इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि भगवान बुद्ध का धम्म एक आविष्कार एक खोज (Discovery) है। इसे किसी भी इल्हामी-धर्म से सर्वथा भिन्न समझना चाहिए।

8. भगवान बुद्ध का धम्म इस अर्थ में एक आविष्कार या खोज है कि यह पृथ्वी पर माननीय-जीवन की परिस्थितियों के गम्भीर अध्ययन तथा जिन स्वाभाविक मानवीय प्रवृत्तियों (Instendts) के साथ मनुष्य का जन्म हुआ है, पूरी तरह समझने का परिणाम है, उसकी कुप्रवृत्तियाँ और कुव्यवस्थायें, जिन्हें मनुष्य ने इतिहास व परंपरा के परिणामस्वरूप रचा है जो उसकी विनाश का कारण बनी हुई हैं।

9. सभी पैगम्बरों ने मुक्ति-दाता होने का दावा किया है। बुद्ध ने एक-मात्र ऐसे शास्ता हैं, जिन्होंने इस प्रकार का कोई दावा नहीं किया। उन्होंने 'मोक्ष-दाता' और 'मार्ग-दाता' के मध्य सुस्पष्ट भेद रखा है, अर्थात् एक जो मुक्ति देता है और दूसरा जो केवल मुक्ति का मार्ग दिखलाता है।

10. भगवान बुद्ध केवल एक मार्गदाता थे। अपनी मुक्ति के लिए हर किसी को स्वयं अपने आप को प्रयास करना होता है।

11. उन्होंने निम्नलिखित सुत्त में ब्राह्मण मोग्गल्लान को यह बात पूर्णतया स्पष्ट कर दी थी।

12. एक बार तथागत श्रावस्ती के पूर्वाराम में मिगारमाता के प्रसाद में ठहरे हुए थे।

13. तब एक लेखाकार ब्राह्मण मोग्गल्लान तथागत के पास आया और मैत्रीपूर्वक अभिदान किया तथा शिष्टाचारों के आदान-प्रदान के उपरान्त एक ओर बैठ गया। इस प्रकार बैठकर लेखाकार ब्राह्मण मोग्गल्लान ने तथागत से यह कहा :

14. "श्रमण गौतम! जिस प्रकार किसी को इस बहुमंजिले प्रासाद का क्रमिक परिचय प्राप्त होता है, एक क्रम के अनुसार एक क्रमबद्ध के बाद दूसरा और इसी तरह सीढ़ियों के ठीक अन्तिम पायदान तक पहुंचा जाता है। उसी प्रकार हम ब्राह्मण ों का भी वेदों के शिक्षा पाठ्यक्रम में क्रमिक प्रशिक्षण है।"

15. "श्रमण गौतम! जिस प्रकार धुनर्विद्या के पाठ्यक्रम में होता है, उसी प्रकार हम ब्राह्मणों में, प्रशिक्षण, विकास, प्रस्ताव सभी क्रमशः हैं, उदाहरण-स्वरूप, जैसे गणना में।

16. "जब हम एक शिष्य अपनाते हैं हम उसे इस प्रकार गणना करने को कहते हैं: 'एक का एक, दो दूनी (चार), तीन तिया (नौ), चार चौके (सोलह) और

इसी प्रकार सौ तक।' श्रमण गौतम! क्या आपके लिये यह सम्भव है कि आप अपने धम्म में अपने अनुयायियों के लिये एक इसी प्रकार प्रशिक्षण को निर्दिष्ट कर सकें।''

17. ''यह ऐसा ही है ब्राह्मण! ब्राह्मण, एक चतुर अश्व-प्रशिक्षक का उदाहरण लो। वह एक नसलदार अश्व को हाथ में लेता है। वह सबसे पहले लगाम लगाकर साधता है और फिर धीरे-धीरे दूसरी बातें सिखाता है।''

18. ''उसी प्रकार, हे ब्राह्मण! तथागत हाथों में एक ऐसे मनुष्य को लेते हैं, जिसे प्रशिक्षित करना होता है और उसे उसका पहला पाठ इस प्रकार देते हैं : आओ, भिक्षु! शीलवान् रहो। प्रातिमोक्ष के नियमों से पालन की शिक्षा देते हैं।''

19. ''सदाचरण के पालन में कुशल बनो। छोटे-छोटे दोषों में भी संकट देखो। प्रशिक्षण ग्रहण करो और विनय से परिपूर्ण शिष्य बन जाओ।''

20. जैसे ही वह इन सब में निपुण हो जाता है, तथागत उसे उसका दूसरा पाठ इस प्रकार देते हैं, ''आओ भिक्षुओं! आँखों से किसी रूप को देख कर, उसके सामान्य स्वरूप या उसके विवरण से आकर्षित मत होओ।''

21. ''उस प्रवृत्ति के निग्रह पर दृढ़ रहो, जो असंयत चक्षु-इन्द्रिय के द्वारा उत्पन्न तृष्णा के कारण होती है, ... ये कुप्रवृतियाँ हैं, पेन्सित्त की अकुशल अवस्थाएं आदमी पर बाढ़ की तरह काबू पा लेती हैं चक्षु-इन्द्रिय को संयत रखो। चक्षु-इन्द्रिय को काबू में रखो।

22. ''और इसी प्रकार अन्य इन्द्रियों के विषय में सावधान रहो। जब तुम कान से कोई शब्द सुनो, या नाक से कोई गन्ध सूँघो, या जीभ से कोई स्वाद चखो, या शरीर से किसी स्पर्शनीय वस्तु को स्पर्श करो और जब मन में तत्संबंधी संज्ञा पैदा हो, तो उसके सामान्य स्वरूप या उसके विवरणों से आकर्षित मत होओ।''

23. जैसे ही वह उन सबमें निपुण हो जाता है, तथागत उसे अगला पाठ इस प्रकार देते हैं, 'आओ भिक्षुओ! भोजन में मात्रज्ञ हो। क्या तुम अपना भोजन गम्भीरता और सावधानी से ग्रहण करते हो? न खेल के लिये, न आसक्ति के लिये, न व्यक्तिगत आकर्षण को बढ़ाने के लिये या शरीर की चारुता के लिये, बल्कि इसे शरीर की स्थिरता के लिये, इसकी सहायता के लिये, हानि से सुरक्षा के लिये और सदाचरण जीवन का पालन करने के लिये ही यह करें। इस विचार के साथ, मैं अपनी पूर्व वेदना को नियंत्रित करता हूँ। मैं किसी नयी वेदना को उत्पन्न नहीं होने दूँगा, इसमें मेरी जीवन यात्रा अनुरक्षित और सूखपूर्वक होगी।''

24. "ब्राह्मण! जब उसने भोजन में निग्रह को संयत कर लिया हो तब तथागत उसे अगला पाठ इस प्रकार देते हैं, 'आओ भिक्षुओ! जागरूकता (सति) का अभ्यास करो। दिन के समय, जब चल रहे हो या बैठे हो, अपने चित्त को उन चित्त मलों से दूर कर परिशुद्ध करते रहो जो तुम्हें विघ्न पहुँचा सकते हैं। रात के समय पहले पहर में चलते-फिरते या बैठकर व्यतीत करो और इसी समान रात के समय दूसरे पहर में दाहिनी करवट सिंह-आसन में लेट जाओ, और एक पैर दूसरे पैर पर रखते हुए, जागरूकता और सम्यम, अपने विचारों में एकाग्रता की भावना केन्द्रित करो। तब रात के तीसरे पहर में उठ जाओ और चिलते-फिरते या बैठकर, अपने चित्त को चित्त-मलों से परिशुद्ध करो जो तुम्हें विघ्न पहुँचा सकते हैं।"

25. "ब्राह्मण! जब भिक्षु जागरूकता के प्रति समर्पित और हो जाता है, तथागत उसे अगला पाठ इस प्रकार देते हैं, "आओ भिक्षुओ! जागरूकता और स्मृति सम्यक ज्ञान से युक्त हो आत्म-नियन्त्रण से सम्पन्न होओ। आगे चलते हुए या पीछे हटते हुए, स्वयं को नियंत्रण में रखो। आगे देखते हुए या पीछे देखते हुए झुकते हुए या विश्राम करते हुए, चीवर धारण करते हुए या चीवर और पात्र ले जाते हुए, खाते हुए, चबाते हुए, चखते हुए शौच जाते हुए, चलते हुए, खड़े हुए, बैठे हुए, लेटे हुए, सोते हुए या जागते हुए, बोलते हुए या मौन रहते हुए स्वयं को नियन्त्रण में रखें।"

26. "ब्राह्मण, जब वह आत्म-नियन्त्रण से सम्पन्न होता है, तथागत उसे अगला पाठ इस प्रकार देते हैं, आओ भिक्षुओ! एक एकान्त आवास खोजो, चाहे वन हो या एक पेड़ की जड़, चाहे पहाड़ हो या एक गुफा या एक पहाड़ी कंदरा, चाहे एक श्मशान-भूमि हो या खुला एक वन आश्रम, खुला आकाश, एक पुआल या ढेर।' और वह वैसा ही करता है। और जब उसने अपना भोजन ग्रहण कर लिया हो, वह पालथी मार कर बैठता है और अपने शरीर को सीधा रखते हुए, वह चारों ध्यानों के अभ्यास की ओर बढ़ता है।"

27. "ब्राह्मण! उन सभी भिक्षुओ के लिये जिन्होंने अभी तक चित्त पर अधिपत्य नहीं प्राप्त किया है, जो प्रयत्नशील होने के लिये प्रतिबद्ध हैं, उनके लिये मेरा ऐसा प्रशिक्षण है।"

28. "किन्तु उन भिक्षुओं के लिये जो अर्हत हैं, जिन्होंने अपने आस्रवों को नष्ट कर लिया है, जिन्होंने अपना जीवन जी लिया है, अपने कार्यों को निपटा लिया है, जो कृत्कृत्य है, जो अपने सिर के बोझ को उतार चुके है, स्वयं अपनी मुक्ति प्राप्त करा चुके हैं, जिन्होंने भव-बन्धनों को पूर्णतया नष्ट कर लिया है और प्रज्ञा द्वारा विमुक्त हैं, ऐसों के लिये उपरोक्त श्रेष्ठ जीवन में सुख में सहायक हैं और साथ ही आत्म-नियन्त्रण के प्रति सतर्क रहने के लिये हैं।"

29. जब वह कहा जा चुका, गणक ब्राह्मण मोग्गल्लान ने तथागत से कहा :

30. "लेकिन श्रमण गौतम! मुझे यह तो बतायें क्या आपके सभी शिष्य निर्वाण को प्राप्त कर लेते हैं? या कुछ इसे प्राप्त करने में असफल रह जाते हैं?

31. "ब्राह्मण! कुछ मेरे श्रवण इस प्रकार मेरे द्वारा प्रशिक्षित होकर, निर्वाण प्राप्त करते हैं, कुछ नहीं भी कर पाते हैं।'

32. "किन्तु भ्रमण गौतम! इसका क्या कारण हैं? क्या हेतु है? श्रमण गौतम! यहाँ निर्ब्बाण है। यही निर्ब्बाण का मार्ग है। यहाँ श्रमण गौतम जैसा योग्य प्रशिक्षक के रूप में हैं। तो इसका क्या कारण है कि कुछ शिष्य इस प्रकार शिक्षा-प्राप्त कुछ श्रवक निर्वाण प्राप्त करते है और कुछ नहीं कर पाते। लेकिन उसे जो रास्ता बताया जाता है, उसे छोड़कर जबकि अन्य प्राप्त नहीं कर पाते?"

33. भगवान बुद्ध ने उत्तर दिया, "ब्राह्मण! यह ऐसा प्रश्न है, जिसका मैं उत्तर दूँगा। किन्तु इससे पहले क्या तुम मुझे इसका उत्तर दोगे, जैसा कि तुम उचित समझते हो। ब्राह्मण! अब यह बताओ कि क्या तुम राजगृह आने-जाने के मार्ग से भली-भाँति परिचित हो?

34. "श्रमण गौतम! निस्सन्देह मैं राजगृह आने-जाने के मार्ग से भली-भाँति परिचित हूँ।"

35. (अब कोई एक आदमी आता है, और राजगृह जाने का मार्ग पूछता है।) लेकिन उसे जो रास्ता बताया जाता है, उसे छोड़कर गलत मार्ग पकड़ लेता है, और वह पूर्व के बजाय पश्चिम की ओर चला जाता है।

36. "तब एक दूसरा मनुष्य आता है और तुमसे वह भी रास्ता पूछता है और तुम उसे ठीक रास्ता बता देते हो। वह तुम्हारी सलाह का पालन करता है और सुरक्षित राजगृह पहुंच जाता है।

37. तब ब्राह्मण बोला, "तो मैं क्या करूँ, मेरा काम रास्ता बता देना है।"

38. भगवान बुद्ध बोले, "यही तो मैं इस विषय में कहता हूँ, ब्राह्मण? तथागत का काम केवल मार्ग दिखाना है।"

39. यहाँ यह पूर्ण स्पष्ट कथन है कि वे तथागत मुक्ति नहीं देते। वह केवल मुक्ति का मार्ग दिखलाते हैं।

40. इसके अतिरिक्त मुक्ति या निजात क्या है?

41. हज़रत मुहम्मद और ईसा मसीह के लिये मुक्ति या निजात का अर्थ है पैगम्बर की मध्यस्थता के द्वारा रूह का दोजक़ जाने से बच जाना।

42. बुद्ध के लिये 'मुक्ति' का अर्थ निर्वाण और निर्वाण का अर्थ है, राग-द्वेष की आग का बुझ जाना।

43. ऐसे धम्म में मुक्ति का आश्वासन या वचनबद्धता हो ही कैसे सकती है?

3. बुद्ध ने अपने लिए अथवा अपने धम्म के लिए किसी प्रकार के दैवत्व का दावा नहीं किया। उनका धम्म मनुष्य द्वारा मनुष्य के लिए आविष्कृत था। यह एक अपौरुषेय धम्म नहीं था

1. प्रत्येक धर्म के संस्थापक ने या तो अपने को ईश्वरीय कहा अथवा अपने धर्म को 'ईश्वरीय' बताया।
2. हजरत मूसा ने यद्यपि अपने लिये 'ईश्वरीय' उत्पत्ति का दावा नहीं किया है, किन्तु अपनी शिक्षाओं को ईश्वरीय कहा है। उन्होंने अपने अनुयायियों से कहा कि यदि वे दूध और मधु के देश में पहुँचने की इच्छा रखते हैं, तो वे उनकी शिक्षाओं को स्वीकार करें क्योंकि वे ईश्वर की शिक्षायें हैं।
3. ईसा मसीह ने अपने लिए 'ईश्वरीय' होने का दावा किया था। उन्होंने दावा किया था कि वे ईश्वर के पुत्र हैं। स्वाभाविक रूप से उनकी शिक्षाएं भी ईश्वरीय हो गई।
4. कृष्ण ने कहा कि वह स्वयं ईश्वर हैं और गीता स्वयं भगवान के वचन हैं।
5. तथागत ने कोई ऐसा दावा नहीं किया न तो अपने लिये या न अपने धर्म-शासन के लिये।
6. उन्होंने इतना ही दावा किया था कि वे अनेक मनुष्यों में से एक हैं और लोगों को उनका सन्देश, मनुष्य का मनुष्य के लिये सन्देश है।
7. उन्होंने अपने सन्देश के लिये कभी भी गलत न होने का दावा नहीं किया था।
8. उन्होंने केवल यही दावा किया था कि जैसा कि उन्होंने इसे समझा है उनका सन्देश मुक्ति का एक सत्य मार्ग है।
9. यह संसार में जीवन के सार्वभौमिक मानव अनुभव पर आधारित था।
10. उन्होंने कहा कि प्रत्येक मनुष्य इसके लिए स्वतंत्र है कि वह इस पर प्रश्न करे, इसका परीक्षण करे और खोजे कि इसमें क्या सत्य समाहित है।
11. अन्य धर्म के किसी भी दूसरे संस्थापक ने अपने धर्म को इस तरह परीक्षण की कसौटी पर कसने की खुली चुनौती नहीं दी।

दूसरा-भाग

भगवान बुद्ध के धम्म के विषय में विभिन्न दृष्टिकोण

1. दूसरों ने उनके उपदेशों को किस प्रकार समझा
2. भगवान बुद्ध का अपना वर्गीकरण

1. दूसरों ने उनके उपदेशों को किस प्रकार समझा

1. भगवान बुद्ध की यथार्थ शिक्षायें क्या हैं?
2. यह एक प्रश्न है, जिस पर बुद्ध के कोई दो अनुयायी या बौद्ध धम्म के कोई दो विद्यार्थी एकमत नहीं प्रतीत होते।
3. कुछ के लिये 'समाधि' ही उनकी प्रमुख शिक्षा है।
4. कुछ के लिये 'विपश्यना' ही है।
5. कुछ के लिये बौद्ध धम्म चन्द विशेष रूप से दीक्षित लोगों का धर्म है। दूसरों के लिये यह लोकप्रचलित धर्म है।
6. कुछ के लिये यह शुष्क दार्शनिकता के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।
7. कुछ के लिये यह मात्र रहस्यवाद है।
8. कुछ के लिये यह संसार से स्वार्थ-पूर्ण पलायन है।
9. कुछ के लिये यह हृदय के प्रत्येक आवेग और भावना का एक व्यवस्थित निरोध है।
10. बौद्ध धम्म के सम्बन्ध में नाना प्रकार के अनेक दृष्टिकोण एकत्रित किये जा सकते हैं।
11. इन दृष्टिकोणों की भिन्नता एवं विरोध आश्चर्यजनक है।
12. इन दृष्टिकोणों में से कुछ ऐसे लोगों के दृष्टिकोण हैं, जिन्हें कुछ खास वस्तुओं से मोह है। ऐसे लोग वे हैं जो समझते हैं कि बौद्ध-धम्म का सार समाधि, विप्पस्सना या चन्द दीक्षित लोगों का धर्म होने में है।
13. दूसरे दृष्टिकोण इस तथ्य का परिणाम हैं कि बौद्ध धम्म के विषय में लिखने वाले लेखकों में से बहुसंख्यक प्राचीन भारतीय इतिहास के विद्यार्थी हैं। बौद्ध धर्म का उनका अध्ययन आकस्मिक है और प्रासंगिक है।
14. उनमें से कुछ बौद्ध धम्म के विद्यार्थी हैं ही नहीं।
15. यहाँ तक कि वे नृवंश-शास्त्र के विद्यार्थी भी नहीं हैं, ऐसी विषय-वस्तु जो धम्म की उत्पत्ति और विकास से सम्बन्ध रखती है।
16. प्रश्न उत्पन्न होता है-'क्या भगवान बुद्ध का कोई सामाजिक सन्देश नहीं है?'

17. जब उत्तर देने के लिये जोर डाला जाता है, तो बौद्ध धम्म के पण्डित प्राय: दो बातों का विशेष उल्लेख करते हैं। वे कहते हैं :–
18. भगवान बुद्ध ने अहिंसा की शिक्षा दी थी।
19. भगवान बुद्ध ने शान्ति की शिक्षा दी थी।
20. "क्या बुद्ध ने कोई दूसरा सामाजिक सन्देश दिया है?"
21. "क्या बुद्ध ने न्याय की शिक्षा दी?"
22. "क्या बुद्ध ने मैत्री की शिक्षा दी?"
23. "क्या बुद्ध ने स्वतंत्रता की शिक्षा दी?"
24. "क्या बुद्ध ने समानता की शिक्षा दी?"
25. "क्या बुद्ध ने भ्रातृभाव की शिक्षा दी?"
26. "क्या बुद्ध कार्ल मार्क्स का उत्तर दे सकते हैं?"
27. बुद्ध के धम्म पर चर्चा करते समय ये प्रश्न मुश्किल से ही कभी उठाये जाते हैं।
28. मेरा उत्तर है कि बुद्ध का एक सामाजिक सन्देश है। वे इन सभी प्रश्नों का उत्तर देते हैं। किन्तु, वे सभी आधुनिक लेखकों द्वारा दफना दिए गए हैं।

2. भगवान बुद्ध का अपना वर्गीकरण

1. भगवान बुद्ध ने धम्म का अपने ढंग का वर्गीकरण अपनाया है।
2. पहले वर्ग को उन्होंने 'धम्म' कहा है।
3. उन्होंने एक दूसरा वर्ग माना है जो धम्म नहीं (अधम्म) नामक एक नये वर्ग की रचना की वह भी धम्म के नाम से ही जाना जाता है।
4. उन्होंने एक तीसरे वर्ग की रचना की जिसे उन्होंने 'सद्धम्म' कहा है।
5. तीसरा वर्ग धम्म के दर्शन का एक दूसरा नाम था।
6. उनके धम्म को समझने के लिये आवश्यक है कि तीनों वर्गों को भली-भांति समझा जाये-धम्म, अधम्म और सद्धम्म।

तीसरा-भाग

धम्म क्या है?

1. जीवन की पवित्रता बनाये रखना धम्म है
2. जीवन में पूर्णता तक पहुँचना ही धम्म है
3. निर्वाण प्राप्त करना धम्म है
4. तृष्णा का त्याग करना धम्म है
5. सभी संस्कार अनित्य हैं-यह मानना धम्म है
6. 'कर्म' कौ नैतिक व्यवस्था का साधन मानना धम्म है

1. जीवन की पवित्रता बनाये रखना धम्म है

(i)

1. ''ये तीन प्रकार की जीवन की पवित्रतायें हैं... शारीरिक पवित्रता किस प्रकार की है?''

2. ''इसमें एक मनुष्य जीव-हिंसा से, चोरी से और दुष्चरित जीवन से विरत होता है। यह 'शारीरिक पवित्रता' कहलाती है।''

3. ''और वाणी की पवित्रता किस प्रकार की है?''

4. ''इसमें एक मनुष्य झूठ बोलने से विरत रहता है..........''

5. ''और मन की पवित्रता किस प्रकार की है?''

6. ''इसमें एक भिक्षु, यदि उसमें कुछ व्यक्तिगत काम-छन्द है तो वह जानता है कि 'मुझमें काम-छन्द है।' यदि उसमें कोई भी काम-छन्द नहीं है, तो वह जानता है कि उसमें काम-छन्द नहीं है। साथ ही वह इससे भी अवगत है कि अनुत्पन्न काम-छन्दों की कैसे, उत्पत्ति होती है। वह जानता है, कैसे उनका त्याग किया जाता है। वह यह भी जानता है कि कैसे भविष्य में इस प्रकार के काम-छन्द उत्पन्न नहीं होंगे।''

7. ''यदि उसमें कुछ व्यक्तिगत व्यापाद हैं, वह उनसे अवगत है, मुझमें व्यापाद (द्वेष) हैं। साथ ही वह उनकी उत्पत्ति और तत्पश्चात् उनके त्याग, और कैसे भविष्य में उनकी उत्पत्ति नहीं होगी इससे भी अवगत है।''

8. ''यदि उसमें कुछ थीन-मिद्ध (स्त्यान-मृद्ध, आलस्य और तन्द्रा) की उत्पत्ति हुई रहती है, तो यह जानता है कि मुझमें अलस्य-रान्द्रा उत्पन्न है। ... यदि उसमें उद्धच्छ-कुकुच्च (उद्धतपन)........ यदि उसमें कुछ विचिकिच्छा (विचिकित्सा) उत्पन्न है, तो वह जानता है कि कैसे उत्पन्न होते हैं, और किस प्रकार त्याग दिये जाते हैं और भविष्य में पुनः उत्पन्न नहीं होते हैं। यह 'तन की पवित्रता' कहलाती है।''

9. ''वह जो शरीर, वाणी और मन से पवित्र है।''

''निष्पाप, स्वच्छ तथा पवित्रता से युक्त है-''

''उसे लोग 'निष्कलंक' नाम से पुकारते हैं।''

(ii)

1. ''तीन प्रकार की पवित्रतायें हैं...... शारीरिक पवित्रता, वाणी की पवित्रता और मन की पवित्रता।''
2. ''शारीरिक पवित्रता किसे कहते हैं?''
3. ''इसमें एक मनुष्य, जीव-हिंसा से, चोरी से, और काम-मिथ्याचार से विरत रहता है। यह 'शारीरिक-पवित्रता' है।''
4. ''वाणी की पवित्रता किसे कहते हैं।''
5. ''इसमें एक मनुष्य झूठ बोलने से....... निरर्थक बातचीत करने से विरत रहता है। यह 'वाणी की पवित्रता' कहलाती है।''
6. ''और मन की पवित्रता किसे कहते है?''
7. ''इसमें एक मनुष्य लोभी या ईष्यालु नहीं होता और सम्यक् दृष्टि रखता है। यह 'मन की पवित्रता' कहलाती है। ये ही तीन प्रकार की पवित्रतायें हैं।''

(iii)

1. ये पाँच तरह की दुर्बलताएँ होती हैं, जिनसे साधना में बाधा पहुंचती है। कौन सी पाँच?
2. जीव-हिंसा, चोरी, काम-मिथ्याचार, झूठ; और मादक पेय पदार्थों का सेवन, जो आलस्य उत्पन्न करते हैं।
3. ये पाँच कारण हैं, जो असफलता की ओर ले जाते हैं।
4. जब साधना की ये पांचों बाधाएं दूर हो जाती हैं, तो चार स्मृति-उपट्ठान (उपस्थान) की उत्पत्ति होनी चाहिये।
5. इसमें एक भिक्षु कार्य के प्रति कायानुपश्यना करता हुआ बिहार करता है, प्रयत्नशील, ज्ञानवान स्मृतिवान, प्रशान्त और संसार में विद्यमान (लोभ तथा दौर्मनस्य) दोनों पर नियन्त्रण किये हुए विहार करता है।
6. वह वेदनाओं के प्रति वेदनानुपश्यी हो विहर करता है..................।
7. वह चित्त के प्रति चित्तानुपश्यी हो विहार करता है....................।
8. वह धर्मों (चित्त में उत्पन्न होने वाले विचारों) के प्रति धर्मानुपश्यी हो, प्रयत्नशील, स्मृतिवान् और प्रशान्त, संसार में विद्यमान लोभ ओर दौर्मनस्य दोनों पर नियन्त्रण किये विहार करता है।

9. जब साधना की पाँच बाधा और उनके स्रोत दूर कर दिये जाते हैं, तो चार स्मृति-उपस्थानों की उत्पत्ति होनी चाहिये।

(iv)

1. ये तीन घात (असफलतायें) हैं, शील-घात, चित्त-घात और दृष्टि-घात।
2. शील-घात किस प्रकार का है? एक मनुष्य जीव-हिंसा करता है, चोरी करता है, काम-भोग संबन्धी मिथ्याचार करता है, झूठ बोलता है, चुगली खाता है, कठोर बोलता है और व्यर्थ व निरर्थक बोलता है। यह "शील-घात" कहलाता है।
3. चित्त-घात किसे कहते हैं?
4. एक मनुष्य लोभी और ईष्यालु होता है। यह 'चित्त-घात' कहलाता है।
5. और दृष्टि-घात किसे कहते हैं?
6. इसमें एक मनुष्य भ्रष्ट, मिथ्या-दृष्टि रखता है कि दान देने में, त्याग करने में और बलिदान देने में कोई पुण्य नहीं है; कि शुभ और अशुभ कार्यों का कोई फल नहीं हैं; यह लोक नहीं है, न कोई परलोक है; न कोई माता, न कोई पिता, न कोई स्वोत्पन्न प्राणी ही है; संसार में कोई ऐसे श्रमण और ब्राह्मण नहीं हैं, जो शिखर तक पहुँचे हों जिन्होंने पूर्णता प्राप्त कर ली हो, जिन्होंने स्वयं ही अपनी अभिज्ञा शक्तियों से परलोक का साक्षात्कार कर लिया हो, और जो उसकी घोषणा कर सकता हो। भिक्षुओं! यह "दृष्टि-घात" कहलाता है।
7. "भिक्षुओ! यह शील-घात, चित्त-घात और दृष्टि-घात के कारण ही ऐसा होता है कि प्राणी, जब मरणोपरांत शरीर बिखरने पर उजाड़ में, दुर्गति में, अधःपतन में, शोधन-स्थान में पुनर्जन्म लेते हैं। इस प्रकार के तीन घात हैं।
8. भिक्षुओ! ये तीन लाभ (सफलतायें) हैं। कौन से तीन? शील-लाभ, चित्त-लाभ तथा दृष्टि-लाभ।
9. अब शील-लाभ किस प्रकार का है?
10. एक मनुष्य जीवन-हिंसा से विरत रहता है, कटु वचन और निरर्थक बोलने से विरत रहता है। यह "शील-लाभ" कहलाता है।
11. चित्त-लाभ क्या होता है?
12. इसमें एक मनुष्य लोभी और ईष्यालु नहीं है। यह "चित्त-लाभ" कहलाता है।
13. और दृष्टि-लाभ किस प्रकार का है?

14. इसमें एक मनुष्य सम्यक् दृष्टि रखता है, वह निश्चित रूप से समझता है कि दान देने में, त्याग करने में और बलिदान देने में पुण्य है, शुभ और अशुभ कर्मों का फल और परिणाम होता है; यह लोक है, परलोक है, माता है, पिता है और स्वोत्पन्न प्राणी है; संसार में ऐसे श्रमण और ब्राह्मण हैं जिन्होंने परलोक का साक्षात्कार कर लिया है और वे उसकी घोषणा कर सकते हैं। भिक्षुओ! यह 'दृष्टि-लाभ' कहलाता है।

15. इन्हीं तीन लाभों के कारण प्राणी, मरणोपरान्त शरीर बिखर जाने पर सुगति में, स्वर्गलोक में पुर्नजन्म लेते हैं। भिक्षुओ! इस प्रकार के ये तीन लाभ हैं।

2. जीवन में पूर्णता प्राप्त करना धम्म है

1. ये तीन पूर्णतायें होती हैं।

2. शरीर की पूर्णता, वारणी की पूर्णता और चित्त की पूर्णता।

3. और चित्त की पूर्णता क्या है?

4. आस्रवों अथवा चित्त मलों के क्षय द्वारा, स्वयं ही इसी जीवन में चित्त-विमुक्ति की प्राप्ति का अनुभव करते हुए चित्त-विमुक्ति होती है, अन्तदृर्ष्टि पैदा होती है, जो आस्रवों से मुक्त होती है, उसे प्राप्त कर, उसी में विहार करता है। यह "चित्त की पूर्णता" कहलाती है। ये तीन पूर्णताएं है।

5. यहाँ दूसरी पूर्णतायें (पारमितायें) भी हैं। बुद्ध ने उन्हें सुभूति को समझाया था।

6. सुभूति ने पूछा "बोधिसत्व की दान-पारमिता क्या है?"

7. तथागत ने उत्तर दिया, "यहाँ एक बोधिसत्व, सभी प्रकार के ज्ञान से संलग्न अपने विचारों के साथ, दान देता है, अर्थात् भीतरी या बाहरी वस्तुओं का, और उन्हें सभी प्राणियों के लिये सार्वजनिक बना कर, वह उन्हें सर्वोच्च 'बोधि' को समर्पित कर देता है, वह दूसरों को भी ऐसा करने की प्रेरणा देता है। किन्तु किसी भी वस्तु के प्रति उसकी आसक्ति नहीं है।"

8. सुभूति ने पूछा, "एक बोधिसत्व की शील-पारमिता क्या है?"

9. तथागत ने उत्तर दिया, "वह स्वयं दस कुशल-पथों के वचनानुसार जीवन व्यतीत करता है, और साथ ही दूसरों को भी वह ऐसा करने की प्रेरणा देता है।"

10. सुभूति ने पूछा, "एक बोधिसत्व की क्षान्ति-पारमिता क्या है?"

11. तथागत ने उत्तर दिया, "वह स्वयं क्षमा-शीलता को प्राप्त कर लेता है, और दूसरों को भी वह क्षमा-शीलता के लिये प्रेरित करता है।"

12. सुभूति ने पूछा, "एक बोधसत्व की वीर्य-पारमिता क्या है?"

13. तथागत ने उत्तर दिया, "वह सतत पाँचों पारमिताओं की पूर्ति में संलग्न रहता है, और दूसरों को भी वह ऐसा करने के लिये प्रेरित करता है।"

14. सुभूति ने पूछा, "बोधिसत्व की समाधि-पारमिता क्या है?"

15. तथागत ने उत्तर दिया, "वह स्वयं उपाय की निपुणता द्वारा ध्यानों का लाभ करता है समाधियों में प्रवेश करता है, फिर भी वह तत्संबंधी रूप-लोकों में पुनर्जन्म नहीं लेता, जैसा कि वह कर सकता है और दूसरों को भी वह ऐसा करने के लिये प्रेरित करता है।"

16. सुभूति ने पूछा, "एक बोधिसत्व की प्रज्ञा-पारमिता क्या है?"

17. तथागत उत्तर दिया, "वह किसी भी भौतिक या अभौतिक वस्तु के गुण-धर्म में नहीं फँसता है, वह सभी गुण-धर्मों की मूलभूत वास्तविक प्रकृति पर विचार करता है; और दूसरों को भी वह सभी गुण धर्मों पर विचार करने के लिए प्रेरित करता है।"

18. इन परमिताओं का पोषण करना धम्म है।

3. निर्वाण प्राप्त करना धम्म है

1. भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा है, "निर्वाण से बढ़कर सुखद कुछ नहीं है।"

2. भगवान बुद्ध द्वारा उपदिष्ट सभी सिद्धांतों में निर्वाण का सिद्धांत सबसे प्रमुख है।

3. निर्वाण क्या है? भगवान बुद्ध द्वारा उपदिष्ट निर्वाण का अर्थ और सार पूर्णतया भिन्न हैं, जो उनके पूर्वजों ने इसको किया था।

4. उनके पूर्वजों की दृष्टि में निर्वाण से उसका तात्पर्य आत्मा की मुक्ति था।

5. अतः चार प्रकार के रूप थे, जिनसे निर्वाण पर विचार किया जाता था : (1) लौकिक (भौतिक, खाओ, पिओ और मौज मनाओ), (2) यौगिक, (3) ब्राह्मणवादी और (4) उपनिषदिक।

6. ब्राह्मणवादी और उपनिषदिक अवधारणाओं में निर्वाण का एक समान लक्षण था। वे आत्मा की एक स्वतन्त्र सत्ता के रूप में मान्यता की अपेक्षा करते थे-यही

एक सिद्धान्त है, जिसको बुद्ध ने अस्वीकार किया था। इसलिये भगवान बुद्ध को निर्वाण के ब्राह्मणवादी और उपनिषदिक सिद्धान्त को अस्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं थी।

7. निर्वाण की लौकिक अवधारणा इतनी भौतिक थी कि वह कभी भी भगवान बुद्ध को आकर्षित नहीं कर सकती थी। इसका अभिप्राय कुछ नहीं, बल्कि मनुष्य की पशु-प्रवृत्ति को सन्तुष्ट करना है। इसमें कुछ भी आध्यात्मिक तत्त्व नहीं था।

8. भगवान बुद्ध को प्रतीत होता था कि निर्वाण की ऐसी अवधारणा को स्वीकार करना, जिससे किसी मनुष्य की बड़ी से बड़ी हानि हो सकती थी।

9. इन्द्रिय-प्रवृत्तियों की सन्तुष्टि का परिणाम केवल उस भूख को बढ़ाने का ही कारण बनती थी, जीवन की ऐसी पद्धति कोई सुख नहीं ला सकती। इसके विपरीत, इस प्रकार का सुख अवश्य ही और अधिक दुख लाने वाला था।

10. निर्वाण की यौगिक अवधारणा एक सर्वथा अस्थायी अवस्था थी। इसका सुख नकारात्मक था। इसके माध्यम से संसार से अलगाव सम्भव था। यह दुख से बचना था, किन्तु कोई सुख सम्भव नहीं था। इससे जो कुछ भी सुख प्राप्त करने की आशा की जा सकती थी, वह तभी तक टिकता जब तक योग टिकता है। यह स्थायी नहीं बल्कि अस्थायी था।

11. भगवान बुद्ध के निर्वाण की अवधारणा अपने पूर्वजों की अवधारणा से सर्वथा भिन्न है।

12. भगवान बुद्ध के तीन मत हैं, जो उनके निर्वाण की अवधारणा के आधार हैं।

13. इनमें से एक है सचेतन प्राणी का सुख, जो आत्मा की मुक्ति से सर्वथा भिन्न है।

14. दूसरा मत संसार में जीते जी सचेतन प्राणी का सुख है, किन्तु आत्मा की मुक्ति और मरणोपरान्त की मुक्ति का विचार भगवान बुद्ध की निर्वाण की अवधारण ा के लिये पूर्णतया अनुपयुक्त है।

15. तीसरा मत जो भगवान बुद्ध के निर्वाण की अवधारणा का मूलाधार है, वह सदैव प्रज्ज्वलित रहने वाली राग-द्वेषाग्नि को नियन्त्रण में लाकर शांत करना।

16. राग-द्वेष प्रज्ज्वलित अग्नि के समान हैं यह बात भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को अपने प्रवचन में बोधा-गया में कही थी, गया में ठहरे हुए दिया था। उन्होंने क्या कहा था-

17. "हे भिक्खुओ! सभी कुछ जल रहा है। भिक्खुओ, सभी कुछ क्या जल रहा है?"

18. ''हे भिक्खुओ! चक्षु-इन्द्रिय जल रही हैं, रूप जल रहा है, चक्षु-विज्ञान जल रहा है, चक्षु-संस्कार जल रहा है, और उस संस्कार से जो कुछ भी सुख-दुख या असुख-अदुख वेदना उत्पन्न होती है, वह भी जल रही है।''

19. ''और ये किससे जल रहे हैं?''

20. ''मैं कहता हूँ, ये रागाग्नि से जल रहे है, द्वेषाग्नि से जल रहे हैं, मोहाग्नि से जल रहे हैं; वे जाति, जरा, मरण, दुख, दौर्मनस्य, दुर्गति, शोक और निराशा से जल रहे हैं।''

21. ''भिक्षुओं! श्रोत-इन्द्रिय जल रही हैं, शब्द जल रहा है, घ्राण-इन्द्रिय जल रही है, गन्ध जल रहा है, जिह्वा-इन्द्रिय जल रही है, रस जल रहा है, शरीर जल रहा है, विचार जल रहे हैं और चित्त द्वारा प्राप्त संस्कार से जो कुछ भी सुख-दुख या असुख-अदुख वेदना उत्पन्न होती है, वह वेदना भी जल रही है।''

22. ''और ये किससे जल रहे हैं?''

23. ''मैं कहता हूँ, ये रागाग्नि से जल रहे हैं, द्वेषाग्नि से जल रहे हैं, मोह-अग्नि से जल रहे हैं, वे जाति, जरा, मरण, दुख; दौर्मनस्य, दुर्गति, शोक और निराशा से जल रहे हैं।''

24. ''हे भिक्खुओ! यह अनुभव करके, विज्ञ और श्रेष्ठ अपने मन में उपेक्षा उत्पन्न करते हैं। और इस उपेक्षा को उत्पन्न करने से रागाग्नि आदि की शान्ति होती है, और रागाग्नि आदि के शान्त होने से वह मुक्त हो जाता है, और जब वह मुक्त हो जाता है तो वह अवगत हो जाता है कि वह मुक्त है।''

25. निर्वाण कैसे सुखद हो सकता है? यह अगला प्रश्न है, जो व्यवस्था की अपेक्षा करता है।

26. सामान्य तौर पर यह कहा- समझा जाता है कि अभाव मनुष्य को दुखी बनाता है, किन्तु यह सदैव सत्य नहीं है। मनुष्य बाहुल्य के मध्य भी दुखी रहता है।

27. दुख लोभ का परिणाम है, लोभ उन लोगों को भी है, जिनके पास है, साथ ही साथ उन लोगों को भी है, जिनके पास नहीं है।

28. यह बात भगवान बुद्ध के द्वारा भिक्खुओं को दिये एक उपदेश में स्पष्ट कर दी है, जिसमें उन्होंने कहा था-

29. ''भिक्षुओ! लोभ से लुब्ध, द्वेष से दुष्ट, मोह से मूढ़, अभिभूत चित्त और वशीभूत चित्त सहित मनुष्य स्वयं अपने-अपने अशुभ कार्यों से दुखी रहते हैं, मनुष्य दूसरों की दुर्भावनाओं से दुखी रहते हैं, मनुष्य मानसिक वेदना और पीड़ा का अनुभव करते हैं।''

30. " किन्तु यदि, किसी भी तरह, लोभ और मोह का विनाश हो जाये, तो मनुष्य न तो स्वयं अपने दु:खों से दु:खी होगा और न ही मानसिक वेदना और पीड़ा से ही।"

31. "अत: भिक्षुओ! निर्वाण इसी जीवन में प्राप्य है और केवल भविष्य में ही नहीं, यह आकर्षक, मनोहर तथा बुद्धिमान श्रावक की पहुंच के भीतर है।

32. इसमें यह बात स्पष्ट हो जाती है कि मनुष्य को क्या जला डालती है और उसे दुखी बना देती है। प्रज्ज्वलित अग्नि के समान मनुष्य के राग-द्वेष की अग्नि जलती के समान कहकर भगवान बुद्ध ने मनुष्य के दुख की सबसे सशक्त व्याख्या दी है।

33. राग-द्वेषों की अधीनता ही मनुष्य को दुखी बनाती है। ये राग-द्वेष संयोजन (बंधन) कहे जाते हैं, जो मनुष्य को निर्वाण की अवस्था तक पहुँचने से रोकते हैं। जिस क्षण वह अपने राग-द्वेषों के प्रभाव से मुक्त हो जाता है, वह निर्वाण प्राप्त करना सीख लेता है, मनुष्य के सुख का मार्ग उसके लिये खुल जाता है और वह दु:ख का अंत कर सकता है।

34. भगवान बुद्ध ने अपने विश्लेषण में इन संयोजनों को तीन वर्गों में विभक्त किया है।

35. पहला : वह जो सभी श्रेणियों की तृष्णा या मोह से है, जैसे कि कामुकता या आसक्ति और लोभ का उल्लेख करता है।

36. दूसरा : वह जो सभी श्रेणियों के विद्वेष से है, जैसे घृणा, क्रोध, चिढ़ या द्वेष का उल्लेख करता है।

37. तीसरा : वह जो सभी श्रेणियों की अविद्या है, जैसे भ्रान्ति, जड़ता और मूर्खता (मोह या अविद्या) का उल्लेख करता है।

38. पहला (राग) अग्नि और दूसरी (द्वेष) अग्नि का सम्बन्ध मनोभावों तथा दूसरे प्राणियों के प्रति मनुष्य के दृष्टिकोण और भावनाओं के पूरे मापदण्ड से है, जबकि तीसरी (मोह) अग्नि का सम्बन्ध उन सभी विचारों से है जो किसी भी प्रकार से सत्य से भिन्न हैं।

39. भगवान बुद्ध के निर्वाण के सिद्धान्त के विषय में कुछ भ्रान्तियाँ हैं।

40. शब्द की व्युत्पत्ति को दृष्टि से निर्वाण का अर्थ है बुझ जाना।

41. शब्द की इस व्युत्पत्ति को लेकर आलोचकों ने निर्वाण के सिद्धान्त को दो कौड़ी का नहीं रहने दिया एवं अर्थ का अनर्थ करके सर्वथा बेहूदा सी चीज बना देने की चेष्टा की है।

42. वे मानते हैं कि निर्वाण का अर्थ सभी मानवीय-प्रवृत्तियों का बुझ जाना, अर्थात् मृत्यु होता है।

43. इस अर्थ के द्वारा उन्होंने निर्वाण के सिद्धान्त का मजाक उड़ाने की चेष्टा की है।

44. यदि कोई 'अग्नि-स्कन्धोपम' सूक्त की भाषा का परीक्षण करे, तो उसे यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाएगा कि 'निर्वाण' का ऐसा अर्थ कदापि नहीं है।

45. इस प्रवचन में यह नहीं कहा गया है कि जीवन जल रहा है और बुझ जाना मृत्यु है। इसमें यह कहा गया है कि राग-द्वेष-मोह जल रहे हैं।

46. इस अग्नि स्कन्धोपम सूक्त में यह नहीं कहा गया है कि राग-द्वेषों (मनुष्य की प्रवृत्तियों) को पूर्णतया बुझा देना चाहिये। उनका कहना है कि ऐसा करके अग्नि में घी न डालें।

47. दूसरी बात यह है कि आलोचक निर्वाण और परिनिर्वाण में अन्तर करने में असफल रहे हैं।

48. जैसे कि उदान में कहा गया है, "जब परिनिर्वाण घटित होता है, तब शरीर विघटित हो जाता है, सभी प्रत्यक्ष ज्ञान रुक जाते हैं, सभी देवनाओं का नाश हो जाता है, गतिविधियाँ बन्द हो जाती हैं तथा चेतना समाप्त हो जाती है। इस प्रकार परिनिर्वाण का अर्थ है पूर्णतया बुझ जाना।"

49. निर्वाण का कभी यह अर्थ नहीं हो सकता है। निर्वाण का अर्थ है अपनी प्रवृत्तियों पर पर्याप्त नियन्त्रण रखना, जिससे कि सद्धर्म के मार्ग पर चलने के योग्य बना जा सके। इससे अधिक इसका कोई अर्थ अभीष्ट नहीं।

50. भगवान बुद्ध द्वारा स्वयं राध को स्पष्ट किया गया है कि निर्वाण सदाचरण जीवन का ही दूसरा नाम है।

51. एक बार भदन्त राध तथागत के पास आये। उन्होंने तथागत को प्रणाम किया और एक और बैठ गये। इस प्रकार बैठे हुए, भदन्त राध ने निर्वाण तथागत को सम्बोधित किया, "विनती करता हूँ तथागत, निर्वाण किस लिये है?"

52. तथागत ने उत्तर दिया "निर्वाण का अर्थ है रागाग्नि, द्वेषाग्नि तथा मोहाग्नि का बुझ जाना अर्थात् प्रवृत्तियों से मुक्ति।"

53. "किन्तु भन्ते! निर्वाण का उद्देश्य क्या हैं?"

54. "राधा निर्दोष जीवन का मूल निर्वाण में है, निर्वाण इसका लक्ष्य है। निर्वाण ही इसका अन्त है।

55. निर्वाण का अर्थ सभी प्रवृत्तियों का बुझ जाना नहीं है। यह सारिपुत्त द्वारा निम्नलिखित उपदेश में भी स्पष्ट किया गया है:

56. "एक बार भगवान बुद्ध श्रीवास्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में विहार करते थे, जहाँ सारिपुत्त भी ठहरे हुए थे।"

57. तथागत ने भिक्षुओं को सम्बोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओ! आप लोग भौतिक-वस्तुओं के नहीं, बल्कि मेरे धम्म के दायाद बनो, तुम सभी के प्रति मेरी अनुकम्पा है। मैं इसको सुनिश्चित करने का उत्सुक हूँ।"

58. तब इस प्रकार कहकर तथागत उठे और अपनी गन्ध-कुटी में चले गये।

59. सारिपुत्त पीछे रह गये और भिक्षुओं ने उनसे स्पष्ट करने को कहा कि निर्वाण क्या है?

60. तब सारिपुत्त ने भिक्षुओं के उत्तर में कहा, "भिक्षुओ! आप जानते हैं कि लोभ घृणित है, तथा घृणित है विद्वेष।"

61. "इस लोभ और इस विद्वेष से छुटकारा पाने के लिये, मध्यम-मार्ग है, जो हमें देखने के लिये आँखें देता है और हमें ज्ञात करवाता है, हमें शान्ति, अभिज्ञा, बोधि तथा निर्वाण की ओर ले जाता है।"

62. "यह मध्यम-मार्ग क्या है? यह और कुछ नहीं, बल्कि सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाणी, सम्यर्क कर्मान्त, सम्यक् आजीविका, सम्यक् व्यायाम, सम्यक स्मृति तथा सम्यक् समाधि ही आर्य आष्ट्रांगिक मार्ग ही है। यही, भिक्षुओ! मध्यम-मार्ग है।"

63. "हाँ, भिक्षुओ! क्रोध घृणित है, द्वेष घृणित है, ईर्ष्या और जलन घृणित हैं, कंजूसी और कृपणता घृणित है, लालच घृणित है, पाखण्ड, छल-कपट, और घमण्ड घृणित है, गर्व घृणित है, तथा प्रमाद घृणि है।"

64. "मोह और प्रमाद को छोड़ देने के लिये मध्यम-मार्ग है, जो हमें देखने के लिये आँखें देता है, हमें ज्ञान करवाता हैं और शान्ति, अभिज्ञा, बोधि तथा निर्वाण की ओर ले जाता है।"

65. "निर्वाण कुछ नहीं, बल्कि वही आर्य आष्ट्रांगिक मार्ग है।"

66. इस प्रकार भदन्त सारिपुत्त ने उपदेश दिया, जो कुछ उन्होंने कहा उस पर प्रसन्नचित हो भिक्षु प्रमुदित हुए।

67. अत: निर्वाण के मूल में जो विचार है वह यही है कि यह सदाचार का मार्ग है। किसी को निर्वाण से कुछ और समझने की गलती नहीं करनी चाहिये।

68. सम्पूर्ण उच्छेदवाद एक अन्त है और 'परिनिर्वाण' दूसरा अन्त है। 'निर्वाण' मध्यम-मार्ग है।

69. इस प्रकार समझ लिये जाने पर निर्वाण के विषय में सभी भ्रान्तियाँ दूर हो जायेंगी।

4. तृष्णा का त्याग करना धम्म है

1. धम्मपद में भगवान बुद्ध ने कहा है, "स्वास्थ्य से बढ़ कर कोई लाभ नहीं है और सन्तोष से बढ़ कर कोई मूल्यवान धन नहीं है।"

2. सन्तोष की भावना का अर्थ बेचारगी, दब्बूपन या परिस्थितियों के सामने झुक जाना नहीं समझना चाहिये।

3. क्योंकि ऐसा समझ लेना भगवान बुद्ध की अन्य शिक्षाओं के सर्वथा प्रतिकूल होगा।

4. भगवान बुद्ध ने ऐसा कभी नहीं कहा कि "वे भाग्यवान हैं जो दरिद्र हैं।"

5. भगवान बुद्ध ने कभी नहीं कहा कि पीड़ितों को अपनी अवस्था एवं परिस्थितियों को बदलने का प्रयास नहीं करना चाहिये।

6. दूसरी ओर उन्होंने 'ऐश्वर्य' का स्वागत किया है। अपनी परिस्थिति की ओर से उपेक्षावान् होकर पड़े-पड़े कष्ट सहते रहने के उपदेश के स्थान उन्होंने वीर्य, एवं उत्साहपूर्वक परिस्थिति को बदलने के प्रयास का उपदेश दिया।

7. भगवान बुद्ध का क्या अभिप्राय है जब उन्होंने कहा कि सन्तोष सबसे बड़ा धन है कि मनुष्य को स्वयं लोभ के वशीभूत नहीं होने देना चाहिये जिसकी कोई सीमा नहीं है।

8. जैसा कि भिक्षु रट्ठपाल ने कहा, "मैं धनी मनुष्यों को देखता हूँ, जो मूर्खतावश, कभी किसी को कुछ नहीं देते हैं। अधिकतर संचय करते हैं, नये सुखों के लिये प्यासे रहते हें। राजा जिनके राज्य समुद्र तक विस्तृत है, समुद्रपार के साम्राज्यों तक शासन करने के लिये लालायित होते हैं। अभी भी लालसा है, राजा और प्रजा सभी संसार से गुजर जाते हैं। अभाव है, अभी भी अभाव है, वे अपने शरीर त्याग देते हैं, किन्तु कभी इस पृथ्वी पर उनकी इच्छा की तृप्ति नहीं होती।

9. महा-निदान-सुत्त में भगवान बुद्ध ने आनन्द को लोभ को वश में रखने की आवश्यकता को स्पष्ट किया है। यह है तथागत ने जो कहा है।

10. "यह इस प्रकार है आनन्द! कि तृष्णा लाभ की इच्छा के कारण अस्तित्व में

आती हैं, जब लाभ की इच्छा स्वामित्व का अनुराग बन जाती है, जब स्वामित्व की भावना, स्वामित्व के दुराग्रह, को जन्म देती है। यह कृपणता बन जाती है।''

11. अनियंत्रित लोभी मूल प्रवृत्ति द्वारा उत्पन्न कृपणता या स्वामित्व पर निगाह रखने की आवश्यकता है।

12. ''इस तृष्णा या लोभ को क्यों वश में किया जाये? क्योंकि इसी के कारण,'' बुद्ध ने आनन्द से कहा, ''बहुत सी बुरी और दुष्ट वस्तुओं की अवस्थायें उत्पन्न होती हैं, प्रहार और आघात, संघर्ष, विवाद, और प्रयुत्तर, झगड़े, झूठी निंदा और झूठ बोले जाते हैं।''

13. ''कि यही वर्ग-संघर्ष का समुचित विश्लेषण है, इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता है।''

14. इसीलिये ही भगवान बुद्ध ने लोभ और तृष्णा को वश में रखने का उपदेश दिया था।

5. सभी संस्कार अनित्य हैं-यह मानना धम्म है

1. अनित्यता के सिद्धान्त के तीन पहलू हैं।

2. संयुक्त वस्तुएं अनित्य हैं।

3. व्यक्तिगत रूप से प्राणी अनित्य है।

4. प्रतीत्य-समुत्पन्न वस्तुएं स्व-तत्त्व अनित्य हैं।

5. महान बौद्ध दार्शनिक असंग द्वारा सभी वस्तुओं की अनित्यता भली-भांति स्पष्ट की गयी है।

6. उसंग कहते हैं, ''सभी वस्तुएं हेतुओं और प्रत्ययों के संयोग से उत्पन्न हुई हैं तथा उनका अपना कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। जब संयोग विघटित हो जाता है तो उनका विनाश सुनिश्चित है।

7. ''एक प्राणी का शरीर चार महाभूतों अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु के संयोग से बना है, और जब चारों महाभूतों का यह संयोग विघटित हो जाता है, तो उसके परिणामस्वरूप भरण होता है।''

8. अनेक तत्त्वों के मेल से बनी हुई चीजें अनित्य हैं, कहने का यही अभिप्राय है।

9. सजीव प्राणी की अनित्यता को सबसे अच्छी व्याख्या यही है कि वह है नहीं, वह हो रहा है इस सूत्र द्वारा व्यक्त किया जा सकता है।

10. इस अर्थ में भूतकाल का प्राणी जीवन व्यतीत कर चुका है, किन्तु वर्तमान में जी नहीं रहा है और न ही भविष्य में जीवित रहेगा। एक भविष्यकाल का प्राणी भविष्य में जीवित रहेगा, किन्तु न भूतकाल में जीवित रहा है और न ही वर्तमान में जी रहा है। वर्तमान काल का प्राणी जी रहा है, किन्तु भूतकाल में जीवित नहीं रहा और न ही भविष्य में जीवित रहेगा।

11. संक्षेप में एक मनुष्य सदैव परिवर्तनशील है, सदैव संवर्धनशील है। वह अपने जीवन के दो भिन्न क्षणों में समान नहीं है।

12. अनित्यता के सिद्धांत का तीसरा पहलू एक सामान्य मनुष्य के लिए समझना कुछ कठिन है।

13. यह समझना है कि प्रत्येक सजीव प्राणी कभी न कभी मृत्यु को प्राप्त होगा, समझने के लिए एक अत्यन्त सरल विषय है।

14. किन्तु यह समझना उतना आसान नहीं है कि कैसे एक प्राणी परिवर्तित होता रहता है, जबकि वह जीवित होता है।

15. ''यह कैसे संभव है?'' भगवान बुद्ध का उत्तर था, ''यह संभव है, क्योंकि सब कुछ अनित्य है।''

16. आगे चल कर इसी 'अनित्यता' के सिद्धान्त ने शून्यवाद को जन्म दिया।

17. बौद्ध धर्म की शून्यता का तात्पर्य पूर्णतया निषेध नहीं है। इसका अर्थ केवल इतना ही है कि संसार में, जो प्रति क्षण घटित होने वाला है, वह सतत् परिवर्तनशील है।

18. बहुत कम लोग समझते हैं कि 'शून्यता' के कारण ही सब कुछ सम्भव हो पाता है, इसके बिना संसार में कुछ भी सम्भव नहीं हो सकता। सभी वस्तुएँ अनित्यता के स्वभाव की सम्भावना पर निर्भर हैं।

19. यदि वस्तुएँ परिवर्तनशील न हों, बल्कि स्थायी और अपरिवर्तनशील हों, तो एक रूप से किसी दूसरे रूप में जीवन का सम्पूर्ण विकास और सजीव वस्तुओं की प्रगति रुक जायेगी।

20. यदि मनुष्य मर जाते या परिवर्तित हो जाते हैं और वे समान अवस्था में ही सदैव बने रहें तो क्या परिणाम होगा? मानव-जाति की प्रगति सर्वथा रुक जायेगी।

21. 'यदि शून्य' का अर्थ अभाव या रिक्त माना जाता है, तो असीम कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जायेंगी।

22. किन्तु यह ऐसा नहीं है। 'शून्य' उस बिन्दु के समान है, जिसमें तत्त्व या पदार्थ तो है, किन्तु जिसकी कोई लम्बाई-चौड़ाई नहीं है।

23. सभी वस्तुएँ अनित्य हैं, यह सिद्धान्त भगवान बुद्ध द्वारा उपदेशित किया गया था।

24. बुद्ध के इस सिद्धांत की क्या शिक्षा है? यह एक अधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है।

25. अनित्यता के इस सिद्धान्त की शिक्षा सरल है। किसी भी वस्तु के प्रति आसक्त न होओ।

26. यह अनासक्ति, सम्पत्ति के प्रति अनासक्ति, मित्रों, इत्यादि के प्रति अनासक्ति का अभ्यास करने के लिए उन्होंने कहा है कि सभी चीजें अनित्य हैं।

6. 'कर्म' को नैतिक-व्यवस्था का साधन मानना, धम्म है

1. भौतिक जगत में एक व्यवस्था दिखाई देती है। यह निम्नलिखित तथ्यों से सिद्ध होता है-

2. आकाश के नक्षत्रों की गतिविधियों और कार्यों में एक निश्चित व्यवस्था है।

3. उस निश्चित व्यवस्था के नियमानुसार ऋतुएँ नियमित क्रम से आती और जाती हैं।

4. उस निश्चित व्यवस्था के अनुसार बीज वृक्षों के रूप में विकसित होते हैं और वृक्ष फल उत्पन्न करते हैं तथा फल बीज देते हैं।

5. बौद्ध परिभाषिक शब्दावली में से नियम कहलाते हैं। ऐसे नियम जो एक विधिवत् क्रम उत्पन्न करते हैं, जैसे 'ऋतु-नियम', 'बीज-नियम।'

6. इसी प्रकार क्या मानव समाज में भी एक नैतिक व्यवस्था है? यह कैसे उत्पन्न हुई हैं? यह कैसे सम्पोषित की जाती है?

7. जो 'ईश्वर' के अस्तित्व में विश्वास करते हैं, उन्हें इस प्रश्न का उत्तर देने में कोई कठिनाई नहीं होती है और उनका उत्तर सरल है।

8. वे कहते हैं, नैतिक व्यवस्था दिव्य-विधान द्वारा सम्पोषित है, ईश्वर ने संसार की रचना की है और ईश्वर ही संसार का सर्वोच्च शासक है व कर्त्ता-धर्ता साथ ही वह नैतिक नियमों के साथ-साथ भौतिक नियमों का रचयिता भी है।

9. उनके अनुसार, नैतिक नियम मनुष्य के हित के लिये है, क्योंकि ये दिव्य इच्छा के परिणामस्वरूप निर्मित हैं। मनुष्य ईश्वर की आज्ञा मानने को बाध्य है, जो

उसका रचयिता है और यह ईश्वर का आज्ञापालक है, जो नैतिक व्यवस्था को सम्पोषित करता है।

10. यही तर्क इस मत के समर्थन में दिया जाता है कि नैतिक व्यवस्था ईश्वर की इच्छा पर निर्भर करती है।

11. किन्तु यह व्याख्या किसी भी तरह संतोषजनक नहीं है। क्योंकि, यदि नैतिक नियम 'ईश्वर' से उत्पन्न हुए हैं और यदि ईश्वर नैतिक व्यवस्था का आदि और अन्त है और मनुष्य ईश्वर के आज्ञा-पालन से बच नहीं सकता तो संसार में इतनी अधिक नैतिक अव्यवस्था क्यों है?

12. इस ईश्वरीय नियम के पास कौनसी शक्ति है? इस ईश्वरीय नियम का मनुष्य पर क्या नियन्त्रण है? यह प्रासंगिक प्रश्न हैं। किन्तु जो लोग यह मानते हैं कि संसार या नैतिक-संस्थान ईश्वर की इच्छा का परिणाम है, उनके पास इन प्रश्नों का कोई संतोषजनक उत्तर नहीं है।

13. इन कठिनाइयों पर विजय पाने के लिये इस बात में थोड़ा परिवर्तन किया गया है।

14. अब ऐसा कहा जाता है : निस्सन्देह ईश्वर की इच्छा से ही सृष्टि अस्तित्व में आयी। यह भी सत्य है कि ब्रह्माण्ड ने उसकी इच्छा और उनके निर्देशों द्वारा काम करना प्रारम्भ कर दिया। यह भी सत्य है कि उसने ब्राह्माण्ड को एक ही बार में सम्पूर्ण ऊर्जा प्रदान कर दी थी, जिसने एक अति विशाल प्रक्रिया के प्रेरक बल के रूप में कार्य किया।

15. किन्तु बाद में ईश्वर ने प्रकृति के ऊपर ही छोड़ दिया कि वह स्वयं मूलतः उनके ही द्वारा बनाये गये नियमों का अनुसरण करते हुए कार्य करती रहे।

16. इसलिये यदि नैतिक व्यवस्था ईश्वर की इच्छा या आज्ञा के अनुसार कार्य करने में असफल रहती है तो दोष प्रकृति का है न कि ईश्वर का।

17. इस सिद्धान्त में थोड़ा परिवर्तन कर देने से भी कठिनाई को नहीं सुलझाया जा सकता। यह केवल ईश्वर को अपनी जिम्मेदारियों से मुक्त करने में सहायता करता है। फिर भी यह प्रश्न बचा रहता है कि ईश्वर ने अपने नियमों के लागू करने की जिम्मेदारी प्रकृति के ऊपर क्यों छोड़ दी? इस प्रकार की अनुपस्थित या गैर-जिम्मेदार ईश्वर की क्या आवश्यकता है?

18. इस प्रश्न का कि-"नैतिक व्यवस्था कैसे संरक्षित है?" जो उत्तर भगवान बुद्ध ने दिया है, वह पूर्णतया भिन्न है।

19. तथागत का उत्तर सरल था, "विश्व में नैतिक-व्यवस्था को बनाए रखने वाला

ईश्वर नहीं है, बल्कि धर्म-नियम ही है। यह उपरोक्त प्रश्न का बुद्ध का उत्तर था।

20. विश्व में नैतिक व्यवस्था चाहे अच्छी या चाहे बुरी हो, किन्तु भगवान बुद्ध के अनुसार नैतिक व्यवस्था मनुष्य पर निर्भर करती है और किसी अन्य पर नहीं।

21. 'कर्म' का तात्पर्य है, मनुष्य द्वारा किया जाने वाला कर्म और विपाक का मतलब है, उसका परिणाम है। यदि नैतिक व्यवस्था बुरी है, तो वह इसलिये क्योंकि मनुष्य अकुशल कर्म करता है। यदि नैतिक व्यवस्था अच्छी है, तो वह इसलिये क्योंकि मनुष्य कुशल (अच्छा) कर्म करता है।

22. भगवान बुद्ध केवल कर्म के विषय में कहने से संतुष्ट नहीं थे। उन्होंने कर्म-नियम के विषय में भी कहा, जो कर्म-नियम का एक अन्य नाम है।

23. कर्म-नियम के विषय में कहते हुए भगवान बुद्ध यह व्यक्त करना चाहते हैं कि कर्म का परिणाम उतनी निश्चितता से कर्म का अनुसरण करने को बाध्य है, जैसे रात्रि, दिन का अनुसरण करती है। यह एक नियम या कानून के समान है।

24. कोई भी कुशल कर्म के अच्छे परिणाम से लाभ उठाने से असफल नहीं हो सकता है और कोई भी अकुशल कर्म के बुरे प्रभावों से नहीं बच सकता है।

25. इसलिये भगवान बुद्ध की देशना थी : कुशल कर्म करो, जिससे कि एक अच्छी नैतिक व्यवस्था को सहायता मिले-जिसे बनाए रखने से मानवता लाभान्वित हो। अकुशल कर्म मत करो, क्योंकि बुरी नैतिक-व्यवस्था से अकुशल कर्म उत्पन्न होंगे, जिससे मानवता कष्ट झेलेगी।

26. यह हो सकता है कि जिस समय कर्म किया गया हो और परिणाम प्राप्ति के मध्य समय का थोड़ा-बहुत अन्तराल हो। प्रायः ऐसा होता ही है।

27. इस दृष्टिकोण से, कर्म के कई प्रकार होते है, (1) दिट्ठधम्म वेदनीय वेदनिय कम्म (तत्काल परिणामी कर्म), (2) उपपज्जवेदनीय कम्म (सुदूर परिणामी कर्म) और (3) अपरापरिवेदनीय वेदनिय कम्म (अनिश्चित काल में परिणामी कर्म)।

28. कभी-कभी कम्म अहोसि कम्म की श्रेणी में भी आ सकता है, अर्थात् ऐसा कर्म जो अप्रभावी है। इस अहोसि में ऐसे सभी कम्म समाहित हैं, जो परिचालित होने के लिये अत्यन्त दुर्बल हैं, या जो एक अधिक सबल कम्म द्वारा बाधित हैं, उस समय जब उन्हें प्रभावित होना चाहिये।

29. किन्तु इन सभी बातों के लिये गुंजाइश बनाने के बाद यह किसी भी अर्थ में भगवान बुद्ध द्वारा किये गये दावे से कि कम्म का नियम अटल है कर्म का

नियम लागू होकर ही रहता है।

30. कर्म के सिद्धान्त का आवश्यक तौर पर यह तात्पर्य नहीं कि करने वाले को कर्म का फल भुगतना पड़ता है और इससे अधिक कुछ नहीं, ऐसा समझना एक गलती है। कभी-कभी किसी कर्म के कर्त्ता को प्रभावित करने के स्थान पर किसी दूसरे को प्रभावित करते हैं। तथापि यह कर्म-नियम की प्रक्रिया ही है, क्योंकि यह या तो नैतिक व्यवस्था को संभालती है या अस्त-व्यस्त करती है।

31. मनुष्य आते रहते हैं और मनुष्य जाते रहते हैं। किन्तु विश्व में नैतिक-व्यवस्था बनी रहती है और साथ ही वह कर्म का नियम भी, जो इसे बनाये रखता है।

32. इसी कारण भगवान बुद्ध में नैतिकता को वह स्थान दिया है, जो अन्य धर्मों में ईश्वर को स्थान दिया गया है।

33. अतः इस प्रश्न का कि-''विश्व में नैतिक-व्यवस्था किस प्रकार बनी रहती है?'' बुद्ध ने जो उत्तर दिया है, वह इतना सरल और इतना अकाट्य है।

34. और फिर भी इसका वास्तविक अर्थ शायद ही पूर्णरूपेण समझा गया है। प्रायः लगभग सदैव, यह तो गलत समझा गया है या अयथार्थ विवरण दिया गया है या गलत व्याख्या की गयी है। बहुत कम लोग समझते प्रतीत होते हैं कि कर्म नियम का सिद्धांत बुद्ध द्वारा यह प्रश्न कि-''नैतिक व्यवस्था कैसे सम्पोषित है?'' के उत्तर में प्रस्तुत किया गया था।

35. तथापि, बुद्ध के कर्म-नियम के सिद्धांत का यही उद्देश्य है।

36. कर्म-नियम का सम्बन्ध केवल सामान्य नैतिक व्यवस्था के प्रश्न से है। इसका किसी मनुष्य के सौभाग्य या दुर्भाग्य से कुछ भी लेना-देना नहीं है।

37. इसका सम्बन्ध विश्व में नैतिक-व्यवस्था के सम्पोषण से ही है।

38. यह इसी कारण से कर्म का नियम, धम्म का एक महत्त्वपूर्ण अंग है।

चौथा भाग

अ-धम्म क्या है?

1. परा-प्राकृतिक में विश्वास अ-धम्म है।
2. ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास अ-धम्म है।
3. ब्रह्म से संयोजन पर आधारित धम्म मिथ्या धम्म है।
4. आत्मा में विश्वास अ-धम्म है।
5. यज्ञ (बलि-कर्म) में विश्वास अ-धम्म है।
6. कल्पनाश्रित विश्वास अ-धम्म है।
7. कर्म के ग्रंथों का वाचन मात्र अ-धम्म है।
8. धर्म-ग्रन्थों की गलती को सम्भावना से परे मानना अ-धम्म है।

1. परा-प्रकृति में विश्वास अ-धम्म है।

1. जब कभी कोई घटना घटती है, तो मनुष्य सदैव यह जानना चाहता है कि यह कैसे हुआ? इसका क्या कारण है?
2. कभी-कभी कारण और उससे फलित होने वाला कार्य इतने समीप होते हैं कि घटना के घटित होने के कारण का पता लगाना कठिन नहीं होता।
3. लेकिन कभी-कभी कारण से कार्य इतना अधिक दूर होता है कि कार्य के कारण का पता लगाना कठिन हो जाता है। ऊपरी तौर पर इसके लिये कोई कारण दिखायी नहीं देता।
4. तब प्रश्न उठता है कि यह घटना कैसे घटी?
5. इसका सबसे सरल और सीधा-सादा उत्तर है कि घटना का घटित होना किसी अलौकिक कारण के परिणामस्वरूप है, जिसे प्राय: करिश्मा और चमत्कार (प्रातिहार्य) कहा जाता है।
6. भगवान बुद्ध के पूर्ववर्तियों ने इस प्रश्न के उत्तर भिन्न-भिन्न दिये हैं।
7. पकुध कत्यान ने इस बात को अस्वीकार किया था कि प्रत्येक घटना का कोई कारण होता है। उन्होंने कहा था कि घटनायें बिना किसी कारण के स्वतंत्र रूप से घटित होती हैं।
8. मक्खली गोशाल ने स्वीकार किया था कि हर घटना का अवश्य कोई कारण होना चाहिये। किन्तु उसका कहना था कि कारण मानव की शक्ति में नहीं पाया जा सकता, बल्कि इसे प्रकृति, अनिवार्यता, वस्तुओं के अन्तर्निहित नियमों, भाग्य इत्यादि में ही खोजा जाना चाहिये।
9. भगवान बुद्ध ने इन सिद्धान्तों का खण्डन किया। उन्होंने दृढ़तापूर्वक कहा कि न केवल प्रत्येक घटना का कोई न कोई कारण होता है, बल्कि कारण किसी न किसी मानवीय क्रिया या प्राकृतिक नियम का परिणाम होता है।
10. समय (काल), प्रकृति, अनिवार्यता, इत्यादि के सिद्धान्त को किसी घटना के घटित होने के कारण के खिलाफ ही उनका विरोध था।
11. यदि काल (समय), प्रकृति, अनिवार्यता, इत्यादि ही किसी घटना के घटित होने के एकमात्र कारण हैं, तो हमारी स्थिति क्या रह जाती है?
12. तो क्या मनुष्य काल (समय), प्रकृति, संयोग, ईश्वर, भाग्य, अनिवार्यता के हाथों की एक कठिपुतली मात्र है?

13. यदि मनुष्य स्वतंत्र नहीं है, तो मनुष्य के अस्तित्व का क्या प्रयोजन है? यदि वह अलौकिक कारणों में विश्वास रखता है तो मनुष्य की बुद्धि का क्या उपयोग है?
14. यदि मनुष्य स्वतंत्र है, तो प्रत्येक घटना का या तो मानवी कारण या प्राकृतिक कारण अवश्य ही होना चाहिये। ऐसी कोई भी घटना हो ही नहीं सकती, जिसका कारण अलौकिक हो।
15. यह सम्भव हो सकता है कि मनुष्य किसी घटना के घटित होने के वास्तविक कारण को खोज पाने में समर्थ न हो सके, किन्तु यदि वह बुद्धिमान है तो वह एक न एक दिन इसको खोज लेगा।
16. परा-प्राकृतिकवाद का खण्डन करने में भगवान बुद्ध के तीन उद्देश्य थे।
17. उनका पहला उद्देश्य मनुष्य को बुद्धिवादी मार्ग की ओर ले जाना था।
18. उनका दूसरा उद्देश्य सत्य की खोज करने के लिये मनुष्य को स्वतंत्र करना था।
19. उनका तीसरा उद्देश्य अन्धविश्वासों के सबसे प्रबल स्रोत को काट देना था, जिसके कारण मनुष्य की खोज करने की प्रवृत्ति की हत्या होती है।
20. इसी को बौद्ध धर्म का हेतुवाद या कारण-कार्य सम्बन्ध का नियम कहा जाता है।
21. यह हेतुवाद कारण कार्य-सम्बन्ध का सिद्धान्त बौद्ध धम्म का सबसे प्रमुख सिद्धान्त है। यह धम्म बुद्धिवाद का उपदेश होता है और यदि बुद्धिवाद नहीं, तो बौद्ध धम्म कुछ नहीं है।
22. यही कारण है कि पराप्रकृति (अलौकिक) की पूजा अधम्म है।

2. ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास अधम्म है।

1. इस संसार की रचना किसने की? यह एक सामान्य प्रश्न है। संसार की रचना ईश्वर द्वारा की गई यह अत्यन्त सामान्य उत्तर है।
2. ब्राह्मण-योजना में यह ईश्वर विभिन्न नामों से जाना जाता है, प्रजापति, ईश्वर, ब्रह्म या महाब्रह्मा।
3. अब प्रश्न किया जाए कि यह ईश्वर कौन है? और यह कैसे अस्तित्व में आया? तो इसका कोई उत्तर नहीं है।

4. जो लोग ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास रखते हैं उसकी व्याख्या किसी ऐसे प्राणी के रूप में करते हैं, जो सर्व–शक्तिमान, सर्व–व्यापक और सर्वअन्तर्था भी (सर्वज्ञ) है।
5. ईश्वर में कुछ ऐसे विशेष नैतिक गुण भी हैं, जो ईश्वर पर आरोपित किये गये हैं, ईश्वर को शिव (भला) कहा जाता है, ईश्वर को न्यायी कहा जाता है और ईश्वर को दयालु कहा जाता है।
6. प्रश्न यह है कि क्या तथागत ने ईश्वर को सृष्टिकर्ता के रूप में स्वीकार किया है?
7. उत्तर है, 'नहीं'। उन्होंने स्वीकार नहीं किया।
8. ऐसे अनेक कारण हैं, जिनकी वजह से तथागत ने ईश्वर के अस्तित्व के सिद्धान्त को अस्वीकार किया है।
9. किसी ने भी 'ईश्वर' को नहीं देखा है। लोग केवल ईश्वर की चर्चा करते हैं।
10. ईश्वर 'अज्ञात' और 'अदृश्य' है।
11. कोई भी यह सिद्ध नहीं कर सकता कि ईश्वर ने संसार की रचना की है। संसार का विकास हुआ है, निर्माण नहीं हुआ।
12. 'ईश्वर' में विश्वास करने से क्या लाभ हो सकता है? यह अलाभपद्र है।
13. भगवान बुद्ध ने कहा कि जो धर्म ईश्वर पर आश्रित है, वह निराधार व कल्पना पर आश्रित है।
14. इसलिये ईश्वर पर आश्रित कोई धर्म, रखने के योग्य नहीं है।
15. इससे केवल अन्धविश्वास उत्पन्न होता है।
16. भगवान बुद्ध ने इस प्रश्न को यहीं और यूँ ही छोड़ दिया है। उन्होंने इस प्रश्न के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा की है।
17. जिन आधारों पर भगवान बुद्ध ने सिद्धान्त को अस्वीकार किया है उसके अनेक कारण थे।
18. उन्होंने तर्क प्रस्तुत किया कि ईश्वर के अस्तित्व का सिद्धान्त सत्य पर आधारित नहीं है।
19. यह भगवान बुद्ध वसेट्ठ और भारद्वाज नामक दो ब्राह्मणों के साथ अपने संवाद में स्पष्ट कर दिया है।

20. उन दोनों के मध्य एक विवाद उठ खड़ा हुआ था कि मुक्ति का सच्चा मार्ग कौन-सा है और झूठा कौन सा?

21. लगभग उसी समय एक विशाल भिक्षु-संघ के साथ बुद्ध कोशल जनपद में यात्रा कर रहे थे। वे मनसाकत नामक ब्राह्मण-गांव में और अचिरवती नदी के तट पर आम्र-वन में ठहरे थे।

22. मनसाकत का कस्बा था, जिसमें वासेट्ठ और भारद्वाज रहते थे। यह सुनकर कि तथागत उनके कस्बे में ठहरे हुए हैं, वे उनके पास गये और प्रत्येक ने अपना पक्ष प्रस्तुत किया।

23. भारद्वाज ने कहा, ''तरुक्ख का मार्ग सीधा मार्ग है। यह सीधा मार्ग है, जो मुक्ति की ओर जाता है और जो इसके अनुसार आचरण करता है, उसे वह सीधा ब्रह्म की अवस्था में ले जाता है।

24. वासेट्ठ ने कहा, ''हे गौतम! अनेक ब्राह्मण अनेक मार्गों की शिक्षा देते हैं; अध्वर्य्य ब्राह्मण, तैत्तिरिय ब्राह्मण, कन्छोक ब्राह्मण, भीहुवर्गीय ब्राह्मण! जो उनके अनुसार आचरण करते हैं, उसे ब्रह्म की ओर ले जाते हैं।''

25. ''जिस प्रकार किसी गांव या कस्बे के निकट अनेक और विभिन्न मार्ग होते हैं, फिर भी वे सब एक साथ गांव में जाकर मिलते हैं, ठीक उसी तरह से अनेक ब्राह्मणों द्वारा सिखाये गये सभी विभिन्न मार्ग ब्रह्म की ओर ले जाते हैं।''

26. भगवान बुद्ध ने पूछा, ''वासेट्ठ क्या तुम यह कहते हो कि वे सभी मार्ग ठीक है? ''मैं ऐसा ही कहता हूँ, गौतम,'' वसेट्ठ ने उत्तर दिया।

27. ''किन्तु वासेट्ठ! तीन वेदों के जानकार इन ब्राह्मणों में क्या कोई भी ऐसा है, जिसने कभी आमने-सामने ब्रह्म के दर्शन किये हैं?''

28. ''निस्सन्देह नहीं, गौतम।''

29. ''तीन वेदों के जानकार इन ब्राह्मणों के गुरुओं में से क्या कोई भी ऐसा है, जिसने आमने-सामने ब्रह्म के दर्शन किये हों?''

30. ''निस्संदेह, नहीं, गौतम।''

31. ''किसी ने भी ब्रह्म के दर्शन नहीं किये हैं। ब्रह्म के विषय में किसी को अनुभूतिजन्य ज्ञान नहीं हैं। ''हाँ ऐसा ही है'' वासेट्ठ ने कहा। ''तब तुम कैसे विश्वास करते हो कि ब्राह्मणों का ब्रह्म विषयक दावा सत्य पर आधारित है?''

32. ''वासेट्ठ! जिस प्रकार, अंधे लोगों की कतार हो, न आगे चलने वाला अंधा देख सकता हो, न बीच में चलने वाला देख सकता और न पीछे चलने वाला अंधा देख सकता हो, ठीक उसी प्रकार, मैं सोचता हूँ, वासेट्ठ! क्या ब्राह्मणों का कथन और कुछ नहीं, बल्कि अंधा कथन है? पहला नहीं देख सकता, मध्य वाला नहीं देख सकता और न ही आखिर वाला देख सकता है। इन ब्राह्मणों का कथन हास्यास्पद, शब्द मात्र, एक हास्यास्पद, व्यर्थ और निस्सार है।''

33. ''वासेट्ठ! क्या वह वैसा ही मामला नहीं है, कि किसी मनुष्य का किसी ऐसी औरत से प्रेम हो गया है, जिसे उसने देखा ही नहीं है?'' ''हाँ, यह तो ऐसा ही है'', वासेट्ठ ने उत्तर दिया।

34. ''वासेट्ठ! अब तुम क्या सोचते हो? यदि लोग उस आदमी से पूछेंगे कि मित्र? अच्छा मित्र! जिस प्रदेश की यह सबसे सुन्दर स्त्री है, जिससे तुम इस प्रकार प्रेम करते हो और जिसके लिये लालायित रहे हो, वह कौन है? क्या वह एक कुलीन स्त्री है, या एक ब्राह्मण स्त्री है, या वैश्य जाति की है या शूद्र है?''

35. ''वासेट्ठा! महाब्रह्मा, तथाकथित सृष्टिकर्ता की उत्पत्ति के विषय में'' चर्चा करते हुए, तथागत ने भारद्वाज और वासेट्ठ को सम्बोधित करते हुए कहा, ''मित्रों! वह प्राणी जो सबसे पहले पैदा हुआ, वह इस प्रकार सोचने लगा: मैं महाब्रह्म हूँ, विजेता हूँ, अविजित हूँ सर्वदृष्टा हूं, सर्वाधिकारी हूं, मासिक हूं, निर्माता हूं, रचयिता हूं, मुख्य हूं, व्यवस्थापल हूं, महाब्रह्म अधिन्यसक हूँ, आप ही अपना स्वामी हूँ, वे सब जो भविष्य में पैदा होने वाले हैं, सबका पिता हूँ, मुझ में ही से ये सब प्राणी उत्पन्न होते हैं।''

36. ''इसका यह तात्पर्य हुआ कि ब्रह्मा उन सब का पिता है जो हैं और भविष्य में होने वाले हैं।''

37. ''तुम कहते हो कि यह जो पूज्य ब्रह्मा, विजेता, अविजित, जो उन सब का पिता है जो हैं और भविष्य में होने वाले हैं, जिसके द्वारा हम सब की उत्पत्ति हुई है, वह स्थायी, सतत, नित्य, अपरिवर्तनीय है, और अनन्त काल तक ऐसा ही रहेगा। तब हम जो उस ब्रह्म द्वारा उत्पन्न किये गये हैं, इधर से आये हैं, सभी अस्थायी, अनित्य अस्थिर, अल्प-जीवी, मरणधर्मी क्यों हैं?''

38. इसका वासेट्ठ के पास कोई उत्तर नहीं था।

39. उनके तीसरे तर्क में ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता का उल्लेख था। ''यदि ईश्वर सर्वशक्तिमान है और साथ ही सृष्टि का कर्त्ता है, तो इस कारण से मनुष्य में कुछ भी करने की कोई इच्छा नहीं हो सकती, और न उसे कुछ भी करने की

कोई आवश्यकता है, और न ही उसमें कुछ भी करने या कोई प्रयास करने का संकल्प पैदा हो सकता है। मनुष्य अवश्य ही एक निष्क्रिय प्राणी बना रहेगा, जिसको संसार के कार्यकलापों में कोई भाग नहीं निभाना होगा। यदि यह ऐसा ही है, तो ब्रह्म ने मनुष्य की उत्पत्ति ही क्यों की?''

40. इसका भी वासेट्ठ के पास कोई उत्तर नहीं था।

41. उनका चौथा तर्क था कि यदि ईश्वर अच्छा (शिव) है, तो क्यों मनुष्य हत्यारे, चोर, व्यभिचारी, झूठे, चुगलखोर, बकवादी, लोभी, विद्वेषी और कुमार्गी बन जाते हैं? इसका कारण अवश्य ही ईश्वर होगा। किसी अच्छे भले ईश्वर के रहते क्या यह सम्भव है?

42. उनका पाँचवाँ तर्क ईश्वर के सर्वज्ञ, न्यायी और दयालु होने से सम्बन्धित था।

43. ''यदि कोई ऐसा सर्वोच्च सृष्टिकर्ता है, जो न्यायी और दयालु है, तो संसार में इतना अधिक अन्याय क्यों हो रहा है?'' तथागत ने पूछा–''वह जिसके पास आंखें भी हैं, जो दर्दनाक हालात को देख सकता है, क्यों नहीं वह अपनी रचनाओं को ठीक करता है? यदि उसकी शक्ति असीम है कि कोई उसे नियंत्रित करने वाला नहीं, तो क्यों उसके हाथ कल्याण करने के लिय इतने रुकते हैं और उसकी सारी रचनायें दुख क्यों झेल रही हैं? वे सभी को सुख क्यों नहीं देती? छल–कपट झूठ और अज्ञान क्यों प्रचलित है? झूठ सत्य पर विजय प्राप्त क्यों करता है? क्यों सत्य और न्याय असफल हो जाते हैं? मैं तुम्हारे ब्रह्म को अन्यायी मानता हूँ जिसने केवल अन्याय को आश्रय देने के लिये एक संसार का निर्माण किया है।''

44. ''यदि कोई ऐसा ईश्वर सर्वशक्तिमान है, जो प्राणियों को सुखी या दुखी बनाता है और कार्यों में उनसे पाप–पुण्य कराता है, तो ऐसा ईश्वर भी पाप से अभिरंजित है। या तो मनुष्य ईश्वर की इच्छानुसार कार्य नहीं करता या ईश्वर न्यायी और कल्याणकारक नहीं है या ईश्वर अंधा है।''

45. ईश्वर के सिद्धांत के विरुद्ध उनका अगला तर्क यह था कि ईश्वर के अस्तित्व के विषय में इस प्रश्न की चर्चा से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता।

46. भगवान बुद्ध के अनुसार धर्म का केन्द्र मनुष्य के ईश्वर से सम्बन्ध पर स्थित नहीं है। यह मनुष्य के मनुष्य से संबंध पर स्थित है। मनुष्य को शिक्षित करना धर्म का उद्देश्य है कि वह अन्य लोगों के साथ कैसा व्यवहार करें, जिससे कि सभी सुखी रह सकें।

47. एक और भी कारण था, जिसकी वजह से तथागत ईश्वर के अस्तित्व पर विश्वास के विरुद्ध थे।

48. भगवान बुद्ध धार्मिक अनुष्ठानों, समारोहों और व्यर्थ के धार्मिक क्रिया-कलापों के विरुद्ध थे। वे उनके विरुद्ध इसलिए थे, क्योंकि अन्धविश्वास के घर होते हैं तथा अन्धविश्वास सम्यक्-दृष्टि का शत्रु होता है जो कि उनके आर्य आष्ट्रांगिक-मार्ग का सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष है।

49. भगवान बुद्ध की दृष्टि में ईश्वर में विश्वास सबसे खतरनाक बात थी, क्योंकि ईश्वर के विश्वास ने पूजा और प्रार्थना के पाखण्डी कार्य में विश्वास को बढ़ावा दिया तथा पूजा और प्रार्थना की क्षमता ने पुरोहित के पद को बढ़ावा दिया और पुरोहित ही वह दुष्ट एवं शरारती दिमाग वाला व्यक्ति था, जिसने सभी अन्धविश्वासों को जन्म दिया और उसी ने सम्यक्-दृष्टि के विकास को अवरुद्ध कर दिया।

50. ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास के विरुद्ध इन तर्कों में कुछ व्यावहारिक थे किन्तु उनमें से अधिकतर दार्शनिक थे। लेकिन तथागत जानते थे कि वे ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास के लिये मारक-तर्क नहीं हैं।

51. तथापि, यह नहीं सोचना चाहिये कि तथागत के पास ऐसे कोई तर्क नहीं थे। एक तर्क, जिसे उन्होंने प्रस्तुत किया, जो निस्सन्देह ईश्वर में विश्वास के लिये प्राणघातक है। यह उनके प्रतीत्य समुत्पाद के सिद्धान्त में समाहित है।

52. इस सिद्धान्त के अनुसार यह मुख्य प्रश्न नहीं हैं कि ईश्वर का अस्तित्व है या नहीं है, और न तो यह वास्तविक प्रश्न है कि क्या ईश्वर ने सृष्टि कैसे की? यदि इस प्रश्न का ठीक-ठीक उत्तर दिया जा सके कैसे संसार की रचना हुई, तो उसमें से जो ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास के लिये कुछ औचित्य का निष्कर्ष मिल सकता है।

53. "अब महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या ईश्वर ने अभाव (शून्य) में से कुछ उत्पन्न किया या उसने भाव (कुछ) में से कुछ उत्पन्न किया?"

54. यह विश्वास करना असम्भव है कि 'कुछ नहीं' (शून्य) में से कुछ की रचना की जा सकती है।

55. यदि तथाकथित ईश्वर ने 'कुछ' में से सृष्टि की रचना की है, तो वह कुछ जिसमें से नया कुछ उत्पन्न किया है, उसके द्वारा कोई वस्तु उत्पन्न किये जाने से पहले से ही अस्तित्व में था। अतः ईश्वर उस 'कुछ वस्तु' का सृष्टिकर्त्ता

नहीं कहा जा सकता है, जो पहले से ही अस्तित्व में है। यदि ईश्वर द्वारा किसी वस्तु की रचना पहले से ही मौजूद 'कुछ वस्तु' में से उत्पन्न की गयी है तो, ईश्वर की सृष्टिकर्ता या आदि कारण नहीं कहा जा सकता है।

57. भगवान बुद्ध का ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास के विरुद्ध ऐसा उनका अन्तिम किन्तु अकाट्य तर्क था, जिसका कोई जवाब नहीं था।

58. मूल–स्थापना ही मिथ्या होने के कारण, ईश्वर को सृष्टि के सृष्टिकर्ता पर विश्वास अधम्म है। यह केवल 'झूठ' में विश्वास करना है।

3. ब्रह्म से संयोजन पर आधारित धम्म मिथ्या धम्म है

1. जब भगवान बुद्ध अपने धम्म का प्रचार कर रहे थे, उस समय 'वेदान्त' नामक एक सिद्धान्त प्रचलित था।
2. उस सिद्धान्त के मत थोड़े और सरल हैं।
3. सृष्टि के पीछे जीवन का एक मूलतत्त्व सर्वव्यापी है, जिसे 'ब्रह्म' या 'ब्रह्मन्' कहा जाता है।
4. यह 'ब्रह्म' एक वास्तविकता है।
5. 'आत्मन्' या व्यक्तिगत आत्मा 'ब्रह्म' के समान ही है।
6. जीवात्मा और 'ब्रह्मात्मा' को जो वास्तव में एक हैं, एक मान लेने से ही मनुष्य की 'मोक्ष' लाभ हो सकता है। यह दूसरा सिद्धान्त है।
7. 'जीवात्मा' और 'ब्रह्मात्मा' को, जो वास्तव में एक ही हैं, एक मान लेने से, जब इसका ज्ञान हो जाता है।
8. 'जीवात्मा' और 'ब्रह्मात्मा' की एकता का बोध प्राप्त करने के लिए संसार का त्याग आवश्यक है।
9. यही सिद्धान्त वेदान्त कहलाता है।
10. इस सिद्धान्त के लिये बुद्ध के मन में कोई आदर नहीं था। उनको लगता था कि इसका आधार ही मिथ्या है, इसकी जीवन में कुछ उपयोगिता नहीं है और इसीलिए यह अपनाने योग्य नहीं है।
11. यह उन्होंने भारद्वाज और वासेट्ठ, दो ब्राह्मणों के साथ हुई अपनी चर्चा में स्पष्ट कर दिया था।

12. बुद्ध ने तर्क प्रस्तुत किया कि किसी वस्तु की वास्तविकता स्वीकार करने के लिये पहले उसका कोई न कोई प्रमाण अवश्य होना चाहिये।

13. प्रमाण दो प्रकार के हैं, प्रत्यक्ष और अनुमान।

14. बुद्ध ने पूछा, ''क्या किसी ने ब्रह्म का अनुभव किया है? क्या तुमने ब्रह्म को देखा है? क्या तुमने ब्रह्म से बातचीत की है, क्या तुमने ब्रह्म को सूँघा है?''

15. वासेट्ठ ने कहा, ''नहीं''।

16. ''प्रमाण का दूसरा तरीका भी ब्रह्म के अस्तित्व को सिद्ध करने में अपर्याप्त है।''

17. ''किस चीज से ब्रह्म का अनुमान लगाया जा सकता है?'' बुद्ध ने पूछा। पुनः इसका भी कोई उत्तर नहीं था।

18. कुछ अन्य लोग भी तर्क देते हैं कि एक अदृश्य वस्तु का भी अस्तित्व हो सकता है। अतः वे कहते हैं कि ब्रह्म विद्यमान है, यद्यपि वह अदृश्य है।

19. इस खोखले कथन में यह एक असम्भव स्थिति है।

20. किन्तु तर्क के लिये यह मान लिया जाये कि अदृश्य होने पर भी कोई वस्तु विद्यमान हो सकती है।

21. इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण बिजली है। यह विद्यमान होती है, यद्यपि यह अदृश्य है।

22. यह तर्क पर्याप्त नहीं है।

23. एक अदृश्य वस्तु को किसी अन्य दृश्य रूप में अपने को दर्शाना चाहिये केवल तब ही यह वास्तविक कही जा सकती है।

24. किन्तु यदि कोई अदृश्य वस्तु किसी दृश्य रूप में स्वयं को नहीं दर्शाती है, तब उसकी वास्तविकता नहीं है।

25. हम अदृश्य बिजली की वास्तविकता को उसके उपरान्त होने वाले परिणामों को देखकर स्वीकार करते हैं।

26. बिजली प्रकाश उत्पन्न करती है। प्रकाश से हम बिजली की वास्तविकता स्वीकार करते है, यद्यपि यह अदृश्य है।

27. यह अदृश्य ब्रह्म क्या उत्पन्न करता है? क्या यह कोई दृश्य परिणाम उत्पन्न करता है?

28. उत्तर नकारात्मक है।

29. एक दूसरा उदाहरण दिया जा सकता है। कानून में भी यह सामान्य बात है कि प्रस्ताव को एक मूल अवधारणा के रूप में स्वीकार कर लिया जाता है, जिसका अस्तित्व सिद्ध नहीं है परन्तु जिसे सत्य स्वीकार कर लिया जाता है।

30. और हम सभी ऐसी एक 'कानूनी कल्पना' को स्वीकार करते हैं।

31. किन्तु ऐसी 'कानूनी कल्पना' को क्यों स्वीकार किया जाता है?

32. इसका कारण यह है कि एक 'कानूनी कल्पना' इसलिये स्वीकार की जाती है, क्योंकि उससे लाभप्रद और न्याय-संगत परिणाम निकलता है।

33. "ब्रह्म भी एक कल्पना है। इससे कौन सा लाभप्रद परिणाम निकलता है?"

34. वासेट्ठ और भारद्वाज मौन थे।

35. तर्क को भली-भांति समझने के लिये वे वासेट्ठ की ओर मुड़े और पूछा, "क्या तुमने ब्रह्म को देखा है?"

36. "क्या तीन वेदों के जानकार इन ब्राह्मणों में से कोई भी एक ऐसा है, जिसने कभी आमने-सामने ब्रह्म के दर्शन किये हैं?"

37. "नहीं, निस्सन्देह, गौतम।"

38. "क्या तीन वेदों के जानकार इन ब्राह्मणों के गुरुओं में से कोई भी एक ऐसा है, जिसने आमने-सामने ब्रह्म के दर्शन किये हों?"

39. "नहीं, निस्सन्देह, गौतम।"

40. "क्या वासेट्ठ, इन ब्राह्मणों की सात पीढ़ियों में से कोई भी एक ऐसा है जिसने आमने-सामने ब्रह्म के दर्शन किये हों?"

41. "नहीं, निस्सन्देह, गौतम।"

42. "अच्छा तो, वासेट्ठ-क्या ब्राह्मणों के प्राचीन ऋषियों ने कभी इस प्रकार कहा है: "हम इसे जानते हैं, हमने इसके दर्शन किये हैं, हम जानते हैं। ब्रह्म कहाँ है, ब्रह्म किधर है?"

43. "ऐसा नहीं है, गौतम।"

44. भगवान बुद्ध ने दोनों ब्राह्मण बालकों से अपने प्रश्न पूछना जारी रखा, और कहा:

45. "तो वासेट्ठ! अब तुम क्या सोचते हो? यदि यह ऐसा ही है, तो क्या इसका परिणाम यह नहीं होगा, कि ब्रह्म के साथ संयोजन के विषय में ब्राह्मणों की सारी चर्चा मूर्खतापूर्ण चर्चा मात्र ही है?

46. "वासेट्ठ! जिस प्रकार अंधे लोगों की एक कतार हो। न तो सबसे आगे चलने वाला देख सकता है और न बीच वाला देख सकता है और न ही पिछला देख सकता है–ठीक उसी प्रकार से, मैं सोचता हूँ, वासेट्ठ, क्या ब्राह्मणों का कथन और कुछ नहीं, बल्कि अंधा कथन है? पहला नहीं देखता है, मध्य वाला नहीं देखता है, और न ही आखिर वाला देख सकता है। इन ब्राह्मणों का कथन हास्यास्पद, शब्द मात्र, व्यर्थ और निस्सार वस्तु मात्र है।"

47. "वासेट्ठ! जिस प्रकार एक मनुष्य यह कहे, 'मैं एक स्त्री से प्रेम करता हूं, जिसे उसने कभी नहीं देखा है। वह अत्यन्त सुन्दर है।"

48. वासेट्ठा! जब कैसा होगा कि लोग उस मनुष्य से पूछें, 'क्यों मित्र? प्रदेश की वह सबसे सुन्दर स्त्री, जिससे तुम इस प्रकार प्रेम करते हो और जिसके लिये लालायित हो, क्या तुम उसका नाम जानते हो? वह सुन्दर स्त्री कुलीन स्त्री है या ब्राह्मण स्त्री है, या वैश्य जाति की है, या शूद्र हैं?"

49. "किन्तु जब ऐसा पूछा जाये तो वह उत्तर देगा 'नहीं'।"

50. "और जब लोग उससे यह पूछें, 'क्यों भले मित्र! सभी प्रदेशों में यह सबसे सुन्दर स्त्री, जिससे तुम प्रेम करते हो और जिसके लिये लालायित रहते हो, क्या तुम जानते हो उस सबसे सुन्दर स्त्री का क्या नाम है, या उसका कुल नाम क्या है, कि वह लम्बी है या छोटी है या मध्यम ऊँचाई की है, काले, भूरे या सुनहरे रंग की है, या किस गांव, कस्बे या नगर में रहती है?' किन्तु जब ऐसा पूछा जाये तो वह उत्तर देगा 'नहीं'।"

51. "वासेट्ठ! अब तुम क्या सोचते हो, क्या यह इस प्रकार नहीं लगता कि उस मनुष्य का कथन मूर्खतापूर्ण कथन है?"

52. दोनों ब्राह्मणों ने कहा, "वास्तव में, गौतम! यह ऐसा ही है।"

53. अतः ब्रह्म, यथार्थ नहीं है और उस पर आधारित कोई भी धर्म व्यर्थ है।

4. आत्मा में विश्वास अधम्म है

1. भगवान बुद्ध ने कहा कि आत्मा पर आधारित धर्म निराधार एवं कल्पनों पर आश्रित है।

2. किसी ने भी न तो आत्मा को देखा है और न उससे बातचीत की है।

3. आत्मा अज्ञात और अदृश्य है।

4. वह वस्तु जो विद्यमान है वह आत्मा नहीं, बल्कि मन या चित्त है। चित्त आत्मा से भिन्न होता है।

5. उन्होंने कहा आत्मा में विश्वास करना अलाभप्रद है।

6. अतः आत्मा पर आधारित धर्म अपनाने योग्य नहीं है।

7. यह केवल अन्धविश्वास उत्पन्न करने वाला है।

8. बुद्ध ने इस प्रश्न को यहाँ यहीं नहीं छोड़ दिया। उन्होंने इसके सभी पहलुओं पर चर्चा की है।

9. आत्मा के अस्तित्व में विश्वास उतना ही सामान्य है, जितना कि ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास।

10. आत्मा के अस्तित्व में विश्वास भी ब्राह्मणवादी धर्म का एक भाग था।

11. ब्राह्मणवादी धर्म में आत्मा को आत्म या आत्मन् कहते हैं।

12. ब्राह्मणवादी धर्म में, आत्मन् वह नाम है जो एक तत्त्व को दिया गया है, जो शरीर से पृथक लगातार शरीर के भीतर रहने वाला माना गया है और जन्म के क्षण से ही वह अस्तित्व में आता है।

13. आत्मा में विश्वास अपने साथ इससे सम्बन्धित अन्य विश्वासों को भी समाहित करता है।

14. आत्मा का मरण शरीर के साथ नहीं होता है। वह अन्य शरीर में जन्म लेती है, जब वह अस्तित्व में आता है।

15. आत्मा के लिये शरीर एक बाह्य परिधान के रूप में कार्य करता है।

16. क्या बुद्ध आत्मा में विश्वास करते हैं? नहीं, वे नहीं करते। आत्मा के विषय में उनका सिद्धान्त अनात्मवाद (अन्-अत्त) कहलाता है।

17. एक अशरीरी आत्मा स्वीकृत करने पर, विभिन्न प्रश्न उत्पन्न होते हैं : आत्मा क्या है? यह कहां से आती है? शरीर के मरण पर इसका क्या होता है? यह कहां जाती है? 'परलोक' में यह किस रूप में विद्यमान् रहती है? वहां यह कब तक रहती है? इन प्रश्नों पर बुद्ध ने आत्मा के सिद्धान्त के समर्थकों से तर्क-वितर्क करने का प्रयास किया था।

18. सबसे पहले उन्होंने तर्क करने के अपने सामान्य तरीके द्वारा यह बताने का प्रयास किया कि आत्मा के विषय में विचार कितना गोलमोल था।

19. जो आत्मा के अस्तित्व में विश्वास रखते थे, उनसे उन्होंने पूछा, आत्मा आकार और स्वरूप में कैसी है?

20. आनन्द को उन्होंने कहा कि आत्मा से सम्बन्धित घोषणायें प्रचुर हैं। कुछ घोषित करते हैं 'मेरी आत्मा का एक रूप है और वह सूक्ष्म है।' अन्य घोषित करते हैं कि आत्मा का रूप है और वह असीम एवं सूक्ष्म है। कुछ अन्य इसे निराकार और अनन्त घोषित करते हैं।

21. ''आनन्द! अनेक तरीकों से आत्मा से सम्बन्धित घोषणायें की गयी हैं।''

22. ''उन लोगों द्वारा जो आत्मा में विश्वास रखते हैं किस प्रकार आत्मा की कल्पना की गयी है?'' यह एक अन्य प्रश्न था, जो बुद्ध द्वारा उठाया गया था। कुछ कहते हैं, ''मेरी आत्मा (सुख-दुख), अनुभूति-जन्य है।'' दूसरे कहते हैं, ''नहीं, मेरी आत्मा अनुभूति-जन्य नहीं है, मेरी सचेतन नहीं हैं'' या कोई-कोई कहते हैं, पुनः ''नहीं मेरी आत्मा तो अनुभूति जन्य है, और न यह सचेतन है, मेरी आत्मा अनुभूति जन्य है, इसमें सचेतन के गुण हैं।'' इस तरह के पहलुओं के अधीन आत्मा की कल्पना की गयी है।

23. 'जो आत्मा' के अस्तित्व में विश्वास रखते थे, भगवान बुद्ध ने उन लोगों से पूछा कि शरीर के मरणोपरान्त आत्मा की क्या स्थिति होती है?

24. भगवान बुद्ध ने यह प्रश्न भी उठाया कि क्या शरीर के मरणोपरान्त आत्मा देखी जा सकती है?

25. उन्हें असंख्य गोल-मटोल उत्तर प्राप्त हुए।

26. क्या शरीर के मरणोपरान्त 'आत्मा' अपने रूप (आकार-प्रकार) को बनाये रखती है? उन्होंने देखा कि इस प्रश्न की आठ भिन्न-भिन्न परिकल्पनाएं थीं।

27. क्या शरीर के साथ 'आत्मा' मर जाती है? इस पर भी अनगिनत परिकल्पनाएँ थीं।

28. भगवान बुद्ध ने यह भी पूछा कि शरीर के मरने के बाद आत्मा के सुख या दुख के प्रश्न को भी उठाया। क्या शरीर के मरने के बाद आत्मा सुखी है? इस पर भी श्रमणों और ब्राह्मणों में मतभेद था। कुछ ने कहा, यह पूर्णतया दुखी थी। कुछ ने कहा वह सुखी थी। कुछ ने कहा, सुखी और दुखी दोनों है तथा कुछ ने कहा यह न तो सुखी और न ही दुखी है।

29. 'आत्मा' के अस्तित्व के विषय में इन सभी मतों का उनका उत्तर वही था, जो उन्होंने चुन्द को दिया था।

30. भगवान बुद्ध ने चुन्द को कहा "अब, चुन्द! उन श्रमणों और ब्राह्मणों के पास जाता हूँ, जो इन मतों में से किसी एक पर विश्वास रखते हैं और स्वीकार करते हैं और यह कहता हूँ 'क्या यह ऐसा है मित्रों?' और यदि वे उत्तर देते हैं 'हाँ। केवल यह ही सत्य है, शेष सब मत निरर्थक हैं।' मैं उनके दावे को स्वीकार नहीं करता हूँ। ऐसा क्यों है? क्योंकि ऐसे प्रश्नों पर लोगों के भिन्न-भिन्न मत हैं। और न तो मैं इस पर उस मत को अपने समान मानता हूँ, श्रेष्ठ मानने की तो बात ही नहीं।"

31. अब अधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है कि 'आत्मा' के अस्तित्व के विरुद्ध बुद्ध के तर्क क्या थे?

32. आत्मा के खण्डन के समर्थन में उन्होंने, जो सामान्य तर्क प्रस्तुत किये थे। वे वहीं थे, जो उन्होंने ईश्वर के अस्तित्व के खण्डन के समर्थन में प्रस्तुत किये थे।

33. उन्होंने तर्क दिया कि 'आत्मा' के अस्तित्व की चर्चा उतनी ही अलाभप्रद है, जितनी ईश्वर के अस्तित्व की चर्चा।

34. उन्होंने तर्क दिया कि 'आत्मा' के अस्तित्व में विश्वास सम्यक दृष्टि के विकास में उतना ही बाधक है, जितना ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास।

35. उन्होंने तर्क दिया कि आत्मा के अस्तित्व में विश्वास अन्धविश्वास का उतना ही एक स्रोत है, जितना ईश्वर में विश्वास। निस्सन्देह उनकी सम्मति में एक आत्मा के अस्तित्व में विश्वास ईश्वर में विश्वास की अपेक्षा बहुत अधिक खतरनाक है। क्योंकि न केवल यह एक पुरोहितवपाद को उत्पन्न करता है, न केवल यह सभी अन्धविश्वासों का मूल है, बल्कि यह पुरोहितवाद को मनुष्य पर जन्म से मृत्यु तक पूर्ण नियन्त्रण प्रदान करता है।

36. इन सामान्य तर्कों के कारण यह कहा जाता है कि बुद्ध ने 'आत्मा' के अस्तित्व पर कोई निश्चित सम्मति नहीं व्यक्त की है। कुछ दूसरे लोगों का कहना है कि उन्होंने 'आत्मा' के अस्तित्व के मत को अस्वीकार नहीं किया। कुछ औरों ने कहा है कि वे सदैव मसले से कतराकर बच जाते थे।

37. ये कथन एकदम गलत हैं। क्योंकि महाली को सबसे सुनिश्चित शब्दों में भगवान बुद्ध ने कहा था कि 'आत्मा' नाम की कोई ऐसी वस्तु नहीं है। इसलिये 'आत्मा' के बारे में उनका मत अनत्त (अनात्मवाद) कहलाता है।

38. 'आत्मा' के अस्तित्व के विरुद्ध सामान्य तर्कों से पृथक, बुद्ध के पास एक विशेष तर्क था, जिसे वे आत्मा के मत के प्रति एकदम मारक मानते थे।

39. 'आत्मा' के अस्तित्व के विरुद्ध उनका मत एक पृथक तत्व के रूप में नामरूप का सिद्धान्त कहलाता है।

40. यह सिद्धान्त सचेतन प्राणी के संघटक अवयवों के प्रति 'विभज्ज-वाद' द्वारा परीक्षण, तीक्ष्ण एवं कड़े विश्लेषण का परिणाम है, जिन्हें अन्यथा मानव व्यक्तित्व कहा जाता है।

41. नामरूप एक सचेतन प्राणी का सामूहिक नाम है।

42. बुद्ध के विश्लेषण के अनुसार, प्रत्येक सचेतन प्राणी भौतिक तत्वों और कुछ मानसिक तत्वों के सम्मिश्रण का परिणाम है। वे भौतिक तथा मानसिक तत्त्व खन्द (स्कन्ध) कहलाते हैं।

43. रूप खन्द (स्कंध) में भौतिक तत्व, जैसे कि पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु समाहित हैं। वे शरीर या रूप को संघटित करते हैं।

44. रूप स्कन्ध के अतिरिक्त, (चित्त-चैतसिकों का समूह) नाम स्कन्ध जैसी भी एक वस्तु है, जो एक सचेतन प्राणी का निर्माण करता है।

45. यह नाम-स्कन्ध विज्ञान या चेतना कहलाता है। यह नाम-स्कन्ध तीन मानसिक तत्वों को सम्मिलित करता है। वेदना छह इन्द्रियों तथा उनके संसारी विषयों के सम्पर्क से उत्पन्न होने वाली अनुभूति सञ्ञा (संज्ञा/बोध), संखार (संस्कार/चित्त की अवस्थायें) होती हैं। विज्ञान भी इन तीनों के साथ मिल जाता है अन्य मानसिक अवस्थाओं के साथ उनमें से एक के रूप में कही जाती हैं। एक आधुनिक मनोविज्ञान कह सकता है कि चेतना वह मूल स्रोत है, जिसमें से अन्य मनौवैज्ञानिक तथ्य उत्पन्न होते हैं। विज्ञान (चित्त) एक सचेतन प्राणी का केन्द्र है।

46. चेतना (विज्ञान) चार तत्वों-पृथ्वी, जल, तेज और वायु के सम्मिश्रण का परिणाम है।

47. भगवान बुद्ध द्वारा प्रतिपादित चेतना (विज्ञान) के इस सिद्धान्त पर एक आपत्ति उठायी जाती है।

48. वे जो इस सिद्धान्त पर आपत्ति करते हैं, पूछते हैं, "चेतना (विज्ञान) कैसे उत्पन्न होती है?"

49. यह सत्य है कि चेतना (विज्ञान) मनुष्य के जन्म के साथ उत्पन्न होती है और मृत्यु के साथ समाप्त हो जाती है। तथापि, क्या यह कहा जा सकता है कि चेतना (विज्ञान) चार तत्वों के सम्मिश्रण का परिणाम है?

50. भगवान बुद्ध का उत्तर यह नहीं था कि भौतिक तत्वों के सह-अस्तित्व या सम्मिश्रण से चेतना (विज्ञान) की उत्पत्ति होती है। कुछ ने इस रूप में कहा था कि जहां किसी भी रूप-काय है, वहां नाम-काय भी साथ में रहता है।

51. आधुनिक विज्ञान से एक उपमा ली जा सकती है, जहाँ-जहाँ भी विद्युत क्षेत्र होता है, वहाँ-वहाँ सदैव एक चुम्बकीय क्षेत्र साथ-साथ होता है। कोई नहीं जानता कि चुम्बकीय क्षेत्र कैसे निर्मित होता है, या कैसे उत्पन्न होता है? किन्तु यह सदैव विद्युत क्षेत्र के साथ-साथ विद्यमान रहता है।

52. शरीर और चेतना (विज्ञान) के मध्य विद्यमान हम कुछ-कुछ इसी समान सम्बन्ध क्यों न मान लें?

53. चुम्बकीय क्षेत्र विद्युत क्षेत्र के सम्बन्ध में एक प्रेरित क्षेत्र कहलाता है। तो फिर हम चेतना (विज्ञान) भी रूप-कार्य के सम्बन्ध में एक प्रेरित क्षेत्र क्यों न कहें?

54. आत्मा के विरुद्ध भगवान बुद्ध का तर्क यहीं समाप्त नहीं होता। उन्हें अभी आगे कुछ महत्त्वपूर्ण बातें कहनी हैं।

55. एक बार जब चेतना उत्पन्न हो जाती है, तो मनुष्य एक जीवित प्राणी बन जाता है। इसलिये चेतना (विज्ञान) मनुष्य के जीवन में प्रमुख गुण है।

56. विज्ञान (चेतना) की प्रकृति है, ज्ञानात्मक, भावनात्मक और क्रियाशील है।

57. विज्ञान (चेतना) ज्ञानात्मक है, जब वह ज्ञान, सूचना प्रदान करती है, जैसे महत्त्व समझना या आशंका करना, या यह आन्तरिक तथ्यों या बाह्य वस्तुओं या घटनाओं के मूल्यांकन करने का हो सकता है।

58. विज्ञान (चेतना) भावात्मक है, तब तक विशेष व्यक्तिपरक अवस्थाओं में विद्यमान रहती है, जो या तो अनुकूल-अनुभूतियाँ या प्रतिकूल अनुभूतियाँ हो सकती है, जब भावात्मक चेतना अनुभूति उत्पन्न करती है।

59. विज्ञान (चेतना) अपनी क्रिया-शील अवस्था में प्राणी को उद्देश्य-विशेष की सिद्धि के लिये स्वयं प्रयास करने को प्रोत्साहित करती है। क्रिया-शील चेतना उसे उत्पन्न करती है, जिसे हम संकल्प या क्रियाशीलता कहते हैं।

60. इस प्रकार यह स्पष्ट है कि एक सचेतन प्राणी की सभी क्रियाएं, जो चेतना के द्वारा और चेतना के परिणामस्वरूप सचेतन प्राणी द्वारा निष्पादित होता है।

61. इस विश्लेषण के उपरान्त भगवान बुद्ध ने पूछा, ''ऐसी कौन-सी क्रियाएं हैं,

जो आत्मा द्वारा निष्पादित होने के लिए छूट गयी हैं? 'आत्मा' के लिये निर्दिष्ट सभी क्रियाएं विज्ञान (चेतना) द्वारा निष्पादित की जाती है।

62. बिना किसी क्रिया के एक 'आत्मा' निरर्थक है।

63. इस प्रकार से भगवान बुद्ध ने 'आत्मा' के अस्तित्व को असिद्ध किया है।

64. इसलिये आत्मा का अस्तित्व किसी भी तरह धम्म का अंग नहीं हो सकता।

5. यज्ञ (बलि-कर्म) में विश्वास अ-धम्म है

(i)

1. ब्राह्मणवादी धर्म यज्ञों पर आधारित था।
2. कुछ यज्ञ 'नित्य' के रूप में वर्गीकृत थे और कुछ 'नैमित्तिक' रूप में वर्गीकृत थे।
3. 'नित्य' यज्ञ नैतिक बाध्यता थे, जो अनिवार्य रूप से निष्पादित किये जाते थे, भले ही किसी को उनसे कोई फल प्राप्त हुआ हो या नहीं।
4. 'नैमित्तिक' यज्ञ जब निष्पादित किये जाते थे, तब यजमान सांसारिक लाभ के रूप में कुछ वस्तु अर्जित करना चाहता था।
5. ब्राह्मणवादी यज्ञों में सुरा-पान, पशुओं की बलि और आमोद-प्रमोद सम्मिलित थे।
6. फिर भी ये यज्ञ धार्मिक-कृत्य समझे जाते थे।
7. भगवान बुद्ध ने इस तरह यज्ञों पर आधारित धर्म को अपनाने से इन्कार कर दिया था।
8. तथागत के साथ विवाद करने आए अनेक ब्राह्मणों को उन्होंने अपने तर्क दिये कि यज्ञ धर्म का अंग क्यों नहीं हो सकते?
9. यह विवरण मिलता है कि ऐसे तीन ब्राह्मण थे, जिन्होंने इस विषय पर उनके साथ वाद-विवाद किया था।
10. उनके नाम थे, कूटदन्त, उज्जय और तीसरा था उदायी।
11. कूटदन्त ब्राह्मण ने तथागत से उसे यह बताने का निवेदन किया था कि वे यज्ञ के महत्त्व के विषय में क्या सोचते हैं?

12. तब तथागत ने कहा, ‘‘अच्छा तो हे ब्राह्मण! ध्यान दो और सावधानी से सुनो और मैं बोलूँगा।’’

13. ‘‘बहुत अच्छा! ’’ कूटदन्त ने उत्तर में कहा और तथागत ने निम्नलिखित बातें कहीं:

14. ‘‘हे ब्राह्मण! बहुत पहले, महाविजेता नामक एक राजा था वह बहुत, शक्तिशाली, धनवान् और विशाल सम्पत्ति वाला था। उसके पास चांदी के भण्डार, सुख-भोग के साधन, धन-धान वाला, धान से भरे कोठे वाला था।’’

15. ‘‘जब राजा महाविजेता एक बार अकेला समाधि में बैठा था, वह इस विचार में चिन्तित हो गया: ‘एक मनुष्य द्वारा सुख भोगने वाली सभी वस्तुएं मेरे पास बहुतायत में हैं। मैं विजय द्वारा पृथ्वी का चक्रवर्ती राजा हूँ। यह अच्छा होगा कि मैं एक महान् यज्ञ करूँ जो दीर्घ काल तक मेरे लिये समृद्धि और कल्याण ाकारी हो।’’

16. ‘‘तत्पश्चात् ब्राह्मण ने जो पुरोहित था, राजा से कहा: ‘आपका राज्य, राजन्! उत्पीड़ित और लुटा हुआ है। चारों और डाकू हैं, जो गांवों और कस्बों को लूटते हैं और जो रास्तों को असुरक्षित करते हैं। जब तक ऐसी अवस्था है, तब तक यदि महाराज ने एक नया कर और लगाया, तो वास्तव में महाराज गलत कार्य करेंगे।’’

17. ‘‘किन्तु हो सकता है महाराज! यह सोचे: कार्यवाही बंद कर दूंगा-उनको पकड़वा लूंगा, उन पर जुर्माना करूंगा, उनको देश निकाल दूंगा, उनको मृत्यु-दंड दूंगा। किन्तु उनकी उदण्डता में शीघ्र ही उन दुष्टों पर सन्तोषजनक रूप से विराम नहीं लगाया जा सकता। लेकिन जो दण्डित बचे रहेंगे, वे राज्य को तब भी उत्पीड़ित करते रहेंगे।’’

18. ‘‘अब इस अव्यवस्था पर सम्पूर्ण विराम लगाने के लिये एक तरीका है। जो कोई भी आपके राज्य में पशुपालन और खेती में लगा हो, उन्हें महाराज! आप भोजन और बीज-अनाज दें। जो कोई भी आप के राज्य में व्यापार में लगा हो, महाराज उन्हें पूँजीं दें। जो कोई भी आप के राज्य में सरकारी सेवा में लगा हो, उन्हें महाराज! आप वेतन और भोजन दें।’’

19. ‘‘तब वे प्रत्येक अपने-अपने पेशे का पालन करेंगे, तब और राज्य को उत्पीड़ित नहीं करेंगे, राजा का राजस्व और अधिक होने लगेगा, देश शान्त और स्थिर हो जायेगा, और जनता, एक दूसरे से सन्तुष्ट और सुखी, अपने हाथों में अपने बच्चों को लिये नाचते हुए, बिना भय के खुले दरवाजों सहित निवास करेंगे।’’

20. "तब हे ब्राह्मण! राजा महाविजेता ने, अपने पुरोहित के कथन को स्वीकार कर लिया, और वैसा ही किया, जैसा उसने कहा था। और उन मनुष्यों ने अपने पेशे का पालन करते हुए, और अधिक राज्य को उत्पीड़ित नहीं किया। राजा का राजस्व और अधिक होने लगा। देश शान्त और स्थिर हो गया। जनता, एक दूसरे से संतुष्ट और सुखी, अपनी गोद में अपने बच्चों को लिये नाचते हुए, खुले दरवाजों सहित निवास करने लगी।"

21. "जब शान्ति और व्यवस्था स्थापित हो गयी थी, राजा महाविजेता ने पुनः अपने पुरोहित को बुलवाया और कहा, "अव्यवस्था समाप्त हो गयी है। देश शान्त है। मैं दीर्घ काल तक अपनी समृद्धि और अपने कल्याण के लिये वह महान यज्ञ करना चाहता हूँ आदरणीय! आप मुझे निर्देश करें, कैसे करूँ?"

22. "पुरोहित ने, राजा को उत्तर देते हुए, कहा– 'अब ऐसा ही हो। आप महाराज! अपने राज्य में जो नगर में हैं या देश में हैं जो क्षत्रिय हैं, आपके जागीरदार हैं, जो मंत्री हैं और जो अधिकारी हैं या जो प्रतिष्ठित ब्राह्मण हैं, या जो सम्पन्न गृहपति हैं, उन्हें यह कहते हुए निमन्त्रण भेजें, मैं दीर्घ काल तक अपनी समृद्धि और अपने कल्याण के लिए एक महान यज्ञ करने का विचार रखता हूँ। आदरण ीय, आप अपनी स्वीकृति दें।"

23. "हे ब्राह्मण टदन्त! तब राजा ने अपने पुरोहित के कथन को स्वीकार कर वैसा ही किया, जैसा उसने कहा था। और उनमें से प्रत्येक ने–क्षत्रिय, मंत्री, ब्राह्मण और गृहपतियों–वैसा ही उत्तर दिया : आप महाराज! यज्ञ का अनुष्ठान करें। हे राजा! समय अनुकूल है।"

24. "राजा महाविजेता बुद्धिमान था और अनेक प्रकार से प्रतिभाशाली था। और उसका पुरोहित भी समान रूप से बुद्धिमान और प्रतिभाशाली था।"

25. "हे ब्राह्मण! पुरोहित ने यज्ञ के प्रारम्भ होने से पहले, राजा को स्पष्ट बता दिया कि इसमें कितना क्या सम्मिलित होगा।"

26. "कहीं ऐसा न हो महाराज! यज्ञ प्रारम्भ होने से पहले या जब वह महान यज्ञ कर रहे हों या जब महान् यज्ञ समाप्त किया जा चुका हो, इस प्रकार कोई पश्चाताप अनुभव करें: 'ओह, इसमें मेरी सम्पत्ति के विशाल अंश का प्रयोग हो गया, महाराज! ऐसे पश्चाताप को मन में न आने दें।"

27. "हे ब्राह्मण! और आगे, पुरोहित ने, यज्ञ प्रारम्भ होने से पहले, जिस किसी ने इसमें भाग लिया, उनके मन में किसी प्रकार का अनुताप जो सम्भवतः बाद में

उत्पन्न हो सकता है, के सम्बन्ध में उसे रोकने के लिए कहा 'महाराज! अब आपके यज्ञ में ऐसे लोग आ सकते हैं, जिन्होंने सजीव प्राणियों के जीवन को नष्ट किया हो, और ऐसे मनुष्य भी, जो इससे विरत रहे हों, ऐसे मनुष्य जिन्होंने उधार लेकर नहीं दिया हो, और ऐसे मनुष्य भी, जो इससे विरत रहे हों; ऐसे मनुष्य, जो काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचार करते हों, और ऐसे मनुष्य भी जो इससे विरत रहते हों, ऐसे मनुष्य जो झूठ बोलते हों और ऐसे भी जो नहीं बोलते हों, ऐसे मनुष्य जो चुगली करते हों, और ऐसे भी जो नहीं करते हो; ऐसे मनुष्य जो कठोरता से बोलते हों, और ऐसे मनुष्य भी जो ऐसा न करते हों, ऐसे मनुष्य जो व्यर्थ बकवास करते हों और ऐसे मनुष्य भी, जो इससे विरत रहते हो; ऐसे मनुष्य जो लोभ करते हों, और ऐसे मनुष्य भी जो लोभ न करते हों, ऐसे मनुष्य जो मन में द्वेष रखते हों और ऐसे मनुष्य भी, जो इसे मन में न रखते हों; ऐसे मनुष्य जिनकी मिथ्या-दृष्टि हो, और ऐसे मनुष्य भी जिनकी सम्यक् दृष्टि हो। इसमें से प्रत्येक को, जो बुरा करते हैं, उनकी बुराई के साथ उन्हें रहने दो। जो भलाई करते हैं, आप महाराज! उनके लिये अनुष्ठान आयोजित करें, राजन! उन्हें सन्तुष्ट करें, इससे आपके चित्त को आन्तरिक शान्ति प्राप्त होगी।''

28. ''हे ब्राह्मण! और उस यज्ञ में न तो एक भी वृषभ का वध किया गया था, न तो बकरियां, और न मुर्गे, न मोटे सूअर, और न किसी भी प्रकार के सजीव प्राणियों की बलि चढ़ाई गयी थी। यूप (वध-स्तंभ) के लिये कोई वृक्ष नहीं काटा गया था, यज्ञ-स्थल के चारों ओर बिखेरने के लिये कोई दूब घास नहीं काटी गयी थी। और वहां कार्यरत दास, सन्देशवाहक और श्रमिक न तो दण्डित और न ही भयभीत किए गए थे, और न ही अश्रु-मुख हो विलाप करते हुए वे काम पर लाये गये थे। जिस किसी ने सहायता करने को चुना, उसने कार्य किया, जिस किसी ने सहायता नहीं करने को चुना, कार्य नहीं किया। प्रत्येक ने करने को चुना, उसने किया, जिन्होंने करने को चुना, उन्होंने बिना किये छोड़ा न था। वह यज्ञ, केवल घी, तेल, मक्खन, दूध, शहद और शक्कर से सम्पादित किया गया था।''

29. ''यदि आप कोई यज्ञ करना ही चाहते हैं, तो आप अपना यज्ञ वैसा ही होने दें, जैसा राजा महाविजेता का था। यज्ञ अपव्यय है। पशु बलि क्रूरता है ऐसे यज्ञ धर्म का अंग कभी नहीं हो सकते हैं। वह धर्म का एक निकृष्टतम रूप है, जो कहता है कि पशुओं की बलि द्वारा तुम स्वर्ग जा सकते हो।''

30. कूटपन्त ने पूछा, ''हे गौतम! क्या कोई ऐसा दूसरा यज्ञ है जिसमें पशुओं की बलि देने की अपेक्षा अधिक फल मिले और अधिक कल्याण हो?''

31. ''हाँ, हे ब्राह्मण! ऐसा है।''

32. ''हे गौतम! और वह यज्ञ कैसा होगा?''

33. जब एक मनुष्य श्रद्धायुक्त हृदय से स्वयं इन शिक्षापदों के पालने का संकल्प लेता है–जीव–हत्या से विरत रहना, चोरी से विरत रहना, काम–भोग सम्बन्धी मिथ्याचार से विरत रहना, झूठ बोलने से विरत रहना, असावधानी के मूल सुरा–मेरय–मद्य आदि नशीली चीजों के सेवन से विरत रहना। यह ऐसा यज्ञ है, जो उन्मुक्त उदार दान से श्रेष्ठ है, नित्य भिक्षा दान से श्रेष्ठ है, विहार आदि भेंट देने से श्रेष्ठ है, त्रिशरण ग्रहण करने से भी श्रेष्ठ है।''

34. और जब उन्होंने इस प्रकार कहा, तो कूटदन्त ब्राह्मण को भी कहना पड़ा ''हे गौतम! आप सर्वश्रेष्ठ हैं, आपके मुख से निकले वचन सर्वश्रेष्ठ हैं।''

(ii)

1. एक समय उज्जय ब्राह्मण ने तथागत से यह पूछा :

2. ''श्रमण गौतम! क्या आप यज्ञों के प्रशंसक हैं?''

3. तथागत ने उत्तर दिया, ''नहीं ब्राह्मण! मैं प्रत्येक यज्ञ की प्रशंसा नहीं करता। तथापि मैं प्रत्येक यज्ञ की प्रशंसा नहीं रोकता। हे ब्राह्मण! जिस किसी यज्ञ में, गायों का वध किया जाता है, बकरियों और भेड़ों का वध किया जाता है, मुर्गे–मुर्गियों और सूअरों का वध किया जाता है और नाना प्रकार के जीवित प्राणियों का हत्या होती है–ऐसा यज्ञ, जिसमें पशु–बलि दी जाती है, हे ब्राह्मण! मैं उसकी प्रशंसा नहीं करता। ''ऐसा क्यों?'' उज्जय ने पूछा।

4. ''हे ब्राह्मण! ऐसे यज्ञ में, जिसमें पशु–बलि समाहित रहता है, न तो श्रेष्ठ लोग और न वे जो श्रेष्ठ मार्ग में प्रवेश कर चुके हैं, समीप जाते हैं।''

5. ''किन्तु हे ब्राह्मण! जिस किसी यज्ञ में गायों का वध नहीं किया जाता है और सजीव प्राणियों की बलि नहीं होते, ऐसे यज्ञ जो पशु–बलियों को समाहित नहीं करते, मैं उनकी प्रशंसा करता हूँ।'' जैसे कि, उदाहरण के लिये, चिर स्थापित दान, या परिवार के कल्याण के लिये त्याग।''

6. उज्जय ने शंका की, ''ऐसा क्यों?'' तथागत ने शंका का निवारण करते हुए कहा, ''क्योंकि, ब्राह्मण! श्रेष्ठ लोग, जो श्रेष्ठ मार्ग में प्रवेश कर चुके हैं, ऐसे यज्ञ के समीप जाते हैं जो पशु–बलियों को समाहित नहीं करते।''

(iii)

1. ब्राह्मण उदायी ने भी तथागत से वही प्रश्न पूछा, जो ब्राह्मण उज्जय द्वारा पूछा

गया था :

2. "श्रमण गौतम! क्या आप यज्ञ की प्रशंसा करते हैं?" तथागत ने वही उत्तर दिया, जो उन्होंने उज्जय को दिया था।

3. उन्होंने कहा, "यथोचित समय में किया गया उपयुक्त यज्ञ और जो क्रूरता से मुक्त है, ऐसे के समीप जाते हैं, वे जो श्रेष्ठ जीवन में भली-भाँति प्रशिक्षित हैं, यहाँ तक कि वे भी जिन्होंने पर्दे को हटा लिया है, जबकि (अभी तक वे पृथ्वी पर हैं), जो समय और आवागमन से परे जा चुके हैं। ऐसों की तथागत प्रशंसा करते हैं, वे जो पुण्य में निपुण हैं। भले ही यज्ञ हो या श्रद्धायुक्त कर्म हो, श्रद्धायुक्त हृदय से किया गया उपयुक्त त्याग हो, ऐसे पुण्य के श्रेष्ठ क्षेत्र में जो निवास करते हैं। श्रेष्ठ जीवन इस प्रकार दिया गया उन्मुक्त, दान, इससे देवता प्रसन्न होते हैं। इस प्रकार के दान से, विज्ञ जन, विद्या का लाभ करते हैं दुख से मुक्त हो सुखद संसार को विजित करते हैं।"

6. कल्पनाश्रित विश्वास अ-धम्म है।

1. ऐसे प्रश्नों को पूछना स्वाभाविक था जैसे कि (1) क्या मैं भूत कालों में था? (2) क्या मैं भूत-कालों में नहीं था? (3) तब मैं क्या था? (4) मैं किसमें से गुजर कर क्या हुआ? (5) क्या मैं भविष्य में होऊँगा? (6) क्या मैं भविष्य में नहीं होऊँगा? (7) तब मैं क्या होऊँगा? (8) तब मैं कैसे होऊँगा? (9) मैं किसमें से गुजर कर क्या होऊँगा? या, पुनः आज यह स्वयं हैं जिसके विषय में वह सन्देहशील है, और स्वयं से पूछता है-(1) क्या मैं हूँ? (2) क्या मैं नहीं हूँ? (3) मैं क्या हूँ? (4) मैं कैसे हूँ? (5) मेरा अस्तित्व कहाँ से आया? (6) यह गुजरकर किधर जायेगा?"

2. जहाँ तब विश्व का सम्बन्ध है, विभिन्न प्रश्न उठाये गये थे। उनमें से कुछ इस प्रकार थे-

3. "किस प्रकार इस सृष्टि की रचना की गयी थी? क्या यह अनन्त है?"

4. पहले प्रश्न के उत्तर में कुछ लोग कहते थे कि प्रत्येक वस्तु ब्रह्म द्वारा रची गयी थी-अन्य कहते थे कि यह प्रजापति द्वारा रची गयी थी।

5. दूसरे प्रश्न के उत्तर में कुछ कहते थे कि यह अनन्त है अन्य कहते थे यह नहीं है। कुछ कहते थे यह सीमित है, अन्य कहते थे यह असीमित है।

6. बुद्ध ने इन प्रश्नों पर विचार करने से मना कर दिया था। उनका कहना था

कि ऐसे प्रश्न केवल विकृत मस्तिष्क के लोगों द्वारा पूछे और विचार किये जा सकते हैं।

7. इन प्रश्नों का उत्तर देने के लिये सर्वज्ञता की आवश्यकता थी, जो कोई होता ही नहीं।

8. उन्होंने कहा कि इन प्रश्नों का उत्तर देने के लिये, वे ऐसे सर्वज्ञ नहीं थे। कोई भी वह सब जानने का दावा नहीं कर सकता, जो जानना चाहते हैं वह जानना चाहिए और न ही हम किसी समय जानना चाहते हैं उस समय ज्ञात है। सदैव ही कुछ न कुछ ऐसा होता है, जो अज्ञात है। उनका कहना था कि वह ऐसे सर्वज्ञ नहीं कि इस तरह के प्रश्नों का उत्तर दें। कोई यह दावा नहीं कर सकता कि जो कुछ हम जानना चाहते हैं, वह सब कुछ जानता है और न कोई यह दावा कर सकता है कि किसी भी समय जो कुछ हम जानना चाहते हैं वह किसी को हर समय ज्ञात रहता है। हमेशा कुछ न कुछ अज्ञात रहता ही है।

(ii)

1. जिन सिद्धान्तों को बुद्ध के समकालीन आचार्यों ने अपने-अपने धर्म का आधार बनाया था। उनका संबंध दो बातों से था - आत्मा से और सृष्टि की उत्पत्ति से।

2. उन्होंने आत्मा के विषय में कुछ विशेष प्रश्न उठाये थे। उन्होंने पूछा था: (1) क्या मैं भूत कालों में था? (2) क्या मैं भूत कालों में नहीं था? (3) उस समय मैं क्या था? (4) मैं किस में से गुजर कर क्या हुआ? (5) क्या मैं भविष्य में होऊँगा? (6) क्या मैं भविष्य में नहीं होऊँगा? (7) तब मैं क्या होऊँगा? (8) तब मैं कैसे होऊँगा? (9) मैं किसमें से गुजर कर क्या होऊँगा? या पुनः आज यह स्वयं हैं जिसके विषय में वह सन्देहशील है, और स्वयं से पूछता है- (1) क्या मैं हूँ? (2) क्या मैं नहीं हूँ? (3) मैं क्या हूँ? (4) मैं कैसे हूँ? (5) यह प्राणी कहां से आया? (6) यह गुजर कर किधर जायेगा?

3. अन्य लोगों ने सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में प्रश्न उठाये थे।

4. कुछ का कहना था, यह ब्रह्म द्वारा रचित था।

5. अन्य लोग कहते थे, यह स्वयं प्रजापति द्वारा आहुति देकर रचा गया था।

6. दूसरे आचार्यों के पास उठाने के लिये दूसरे : "अनन्त है? संसार अनन्त नहीं है? संसार सीमित है? संसार असीमित है? शरीर ही जीवन (जीव) है? शरीर एक वस्तु है और जीवन-जीव दूसरी? सत्य-ज्ञाता (तथागत) मरणोपरान्त विद्यमान रहते हैं? तथागत मरणोपरान्त विद्यमान नहीं रहते हैं? तथागत मरणोपरान्त विद्यमान

रहते हैं और विद्यमान नहीं रहते हैं? वे रहते भी हैं और नहीं भी रहते? वे मरणोपरान्त न तो विद्यमान रहते हैं और न विद्यमान नहीं रहते हैं।''

7. बुद्ध का कहना था कि ऐसे प्रश्न विकृत मस्तिष्क लोगों द्वारा ही पूछे जा सकते हैं।

8. बुद्ध ने ऐसे धार्मिक सिद्धान्तों का खण्डन क्यों किया? इसके तीन कारण थे।

9. सबसे पहला कारण तो यही था, कि उन्हें धर्म का अंग बनाने की कोई तुक नहीं थी।

10. दूसरा कारण यह था, कि इन प्रश्नों का उत्तर देने के लिये 'सर्वज्ञ' की आवश्यकता थी, जो कोई होता ही नहीं। उन्होंने अपने उपदेशों में इसी पर जोर दिया था।

11. उन्होंने कहा कि एक समय और उसी समय, कोई भी प्रत्येक वस्तु को न तो जान सकता है और न देख सकता है। ज्ञान का कभी भी अन्त नहीं। सदैव ही कुछ न कुछ और अधिक जानने को रहेगा ही।

12. इन सिद्धान्तों के विरुद्ध तीसरा तर्क था कि वे केवल कल्पनाश्रित थे। न तो सत्यापित किये गये और न ही उनकी सत्य-परीक्षा ही हो सकती थी।

13. वे कल्पना के घोड़ों के बेलगाम होने के परिणाम थे। उनके पीछे कोई वास्तविकता नहीं थी।

14. इसके अलावा कल्पानाश्रित सिद्धान्तों का एक दूसरे मनुष्यों के आपसी सम्बन्ध में क्या प्रयोजन था? एक दम कुछ भी नहीं।

15. भगवान बुद्ध यह नहीं विश्वास करते थे कि संसार की रचना की गयी है। वह विश्वास करते थे कि संसार का विकास हुआ है।

7. धर्म के ग्रंथों का वाचन-मात्र अ-धम्म है

1. ब्राह्मणों ने अपना पूरा जोर 'ज्ञान' पर दिया है। उन्होंने शिक्षा दी कि 'ज्ञान' की प्रत्येक वस्तु का 'अथ' और 'इति' है। इससे आगे कुछ भी नहीं समझा जाता था।

2. दूसरी ओर बुद्ध सभी के लिये शिक्षा के समर्थक थे। इसके अतिरिक्त, उन्हें चिन्ता थी कि मनुष्य ज्ञान का उचित उपयोग कैसे करता है? उनकी शिक्षा ज्ञान के लिए नहीं, बल्कि शिक्षा के उपयोग के लिए थी।

3. अतः वे इस बात पर सावधानीपूर्वक जोर देते थे कि जिसके पास ज्ञान है उसके पास शील भी अवश्य होना चाहिये, क्योंकि शील से रहित ज्ञान अत्यन्त खतरनाक था।

4. भिक्षु पटिसेन को जो उन्होंने कहा उससे प्रज्ञा के मुकाबिले शील का महत्व भली-भाँति स्पष्ट होता है।

5. प्राचीन समय में जब बुद्ध श्रावस्ती में निवास कर रहे थे, उस समय पटिसेन नाम का एक वृद्ध भिक्षु, जो स्वभाव से कूढ़-मगज होने के कारण इतना भी नहीं सीख सकता था कि एक गाथा भी मन से याद कर सके।

6. तदनुसार बुद्ध ने पांच सौ अर्हतों को प्रतिदिन उसे शिक्षा देने के लिए कहा था, किन्तु तीन वर्ष पश्चात् भी वह यहां तक कि एक गाथा भी याद नहीं कर सका था।

7. तब जनपद के सभी लोग (लोगों के चारों प्रकार-भिक्षु, भिक्षुणियाँ, उपासक और उपासिकायें) उसकी अज्ञानता को जानकर, उसकी हँसी उड़ाने लगे। तब बुद्ध ने उस पर दया करके उसे एक ओर बुलाया और कोमलता से निम्नलिखित गाथा कही:

कायेन संवरो साधु, साधु वाचाय संवरो

मनसा संवरो साधु, साधु सब्बत्व संवरो

सब्बत्थ संवुतो भिक्खु सब्ब दुक्खा पमुच्चति

"वह जो अपने मुंह को संयत रखता है, और अपने विचारों को संयत रखता है, जो अपने शरीर द्वारा विरुद्ध आचरण नहीं करता, वह व्यक्ति जो इस प्रकार आचरण करता है, निर्वाण को प्राप्त करता है।"

8. जब पटिसेन, अपने प्रति तथागत की करुणा की भावना से प्रभावित हुआ, उसने अनुभव किया उसका मन खुल गया है, और एक बार उसने वह गाथा दोहरायी।

9. तब बुद्ध ने उसे आगे सम्बोधित किया, "हे वृद्ध! तुम अब केवल एक गाथा को दोहरा सकते हो, और लोग इसे जानते हैं, और वे अब भी तुम्हारी हँसी उड़ायेंगे, अतः मैं अब तुम्हें गाथा का अर्थ स्पष्ट करता हूँ, तुम ध्यानपूर्वक सुनो।"

10. तब बुद्ध ने शरीर से सम्बन्धित तीन अकुशल कर्म, वाणी से सम्बन्धित चार

अकुशल कर्म और मन से सम्बन्धित तीन अकुशल कर्म समझाए इन दस अकुशल कर्मों को त्याग करके मनुष्य निर्वाण प्राप्त कर सकते हैं, जिसके आधार पर भिक्षु को सत्य का बोध हो गया और वह अर्हत्व पद का लाभी हुआ।

11. अब, इसी समय, विहार में पांच सौ भिक्षुणियां निवास कर रही थीं, जिन्होंने अपने में से एक को बुद्ध के पास प्रार्थना करने के लिये भेजा कि वे किसी भिक्षु को उन्हें धर्म का निर्देश देने के लिए भेज दें।

12. उनकी प्रार्थना सुनकर बुद्ध ने इस उद्देश्य के लिये उनके पास वृद्ध भिक्षु पटिसेन को भेजना चाहा।

13. यह जानकर कि वह व्यवस्था की गयी है, सभी भिक्षुणियों ने एक साथ हँसना शुरू कर दिया, और तय किया कि कल, जब वे आयेंगे, वे गाथा का उल्टा उच्चारण कर वृद्ध भिक्षु को भ्रमित करेंगी और उसे शर्मिन्दा करेंगी।

14. तब दूसरे दिन जब वह आये, तो बड़ी और छोटी सभी भिक्षुणियाँ प्रणाम करने को आगे बढ़ीं और अभिवादन कर उन्होंने एक-दूसरे की ओर देखा और मुस्करायीं।

15. तब बैठने के उपरान्त, उन्होंने उसे भोजन प्रस्तुत किया। भोजन कर लेने और अपने हाथ धो लेने के बाद, उन्होंने उससे अपना उपदेश आरम्भ करने की प्रार्थना की। जिस पर वृद्ध भिक्षु ने धर्मासन ग्रहण किया और बैठते हुए, प्रारम्भ किया :

16. "बहनो! मेरी योग्यता कम है, मेरा ज्ञान अत्यन्त कम है। मैं केवल एक ही गाथा जानता हूँ, किन्तु मैं उसको दोहराऊँगा और उसका अर्थ स्पष्ट करूँगा। तुम ध्यानपूर्वक सुनो और समझो।"

17. तब सभी युवा भिक्षुणियों ने गाथा को उल्टे क्रम से कहने का प्रयास किया, लेकिन यह क्या वे अपने मुँह को नहीं खोल सकीं, और लज्जा से मर गई उन्होंने दुख से अपने सिर नीचे लटका लिये।

18. तब पटिसेन ने गाथा को दोहराने के पश्चात् उसको स्पष्ट करना प्रारम्भ कर दिया, जैसा कि भगवान बुद्ध ने उन्हें समझाया था।

19. तब सभी भिक्षुणियाँ उसके वचन सुनकर, आश्चर्य से भर गयीं, और इस प्रकार के उपदेश सुनकर प्रसन्न होते हुए, उसे एकाग्र चित्त से ग्रहण किया, और वे अर्हत बन गयीं।

20. इसके बाद अगले दिन, राजा प्रसेनजति ने बुद्ध और सम्पूर्ण भिक्षु संघ को अपने

महल में भोजन के लिये आमंत्रित किया।

21. अतः भगवान बुद्ध ने पटिसेन की श्रेष्ठ योग्यता को पहचान कर, उसे अपना भिक्षा पात्र लेकर साथ-साथ चलने के लिए कहा।

22. किन्तु जब वे राजमहल के द्वार पर पहुँचे, द्वारपाल ने जो उनसे पूर्व परिचित था, उसने यह कहते हुए उन्हें भीतर महल में जाने नहीं दिया, "हमारे पास ऐसे भिक्षु के लिए आधित्य नहीं है, जो केवल एक गाथा ही जानता हो, आपके जैसे सामान्य व्यक्तियों के लिये यहां कोई स्थान नहीं है। अपने से श्रेष्ठ लोगों के लिये रास्ता छोड़ें और हट जायें।"

23. पटिसेन तदनुसार द्वार के बाहर ही बैठ गये।

24. अब बुद्ध ने आसन ग्रहण किया, अपने हाथ धो लेने के पश्चात्, और लो! भिक्षा पात्र अपने हाथ में लिये हुए पटिसेन का हाथ वहां उपस्थित था।

25. तब राजा, मंत्री और संपूर्ण उपस्थित जनों ने यह दृश्य देखा और आश्चर्य से भर गये, और कहा, "ओह! यह कौन हैं?"

26. जिस पर बुद्ध ने उत्तर दिया, "यह भिक्षु पटिसेन है। इसने अभी बोधि प्राप्त की है, और मैंने उससे अपने पीछे-पीछे मेरा भिक्षा पात्र लेकर आने को कहा था, किन्तु द्वारपाल ने उन्हें प्रवेश नहीं करने दिया।"

27. इस पर पटिसेन प्रवेश मिल गया और संघ में सम्मिलित हुए।

28. बुद्ध की ओर अभिमुख होकर तब प्रसेनजित ने कहा, "मैंने सुना है कि इस पटिसेन की कुछ योग्यता नहीं है और केवल एक ही गाथा जानते हैं, तब उसे सर्वोच्च बोधि कैसे प्राप्त हो गई?"

29. भगवान बुद्ध ने उत्तर दिया, "ज्ञान अधिक होने की आवश्यकता नहीं है, शील मुख्य गुण है।"

30. "इस पटिसेन ने इस एक गाथा के मर्म को अच्छी तरह हृदयंगम कर लिया है। इनके शरीर, वाणी और विचार सम्पूर्ण रूप से शांत हो गए हैं, क्योंकि यद्यपि एक मनुष्य बहुत अधिक जानता हो, किन्तु यदि उसका आचरण तदनुसार नहीं है, तो वह सारा ज्ञान उस आदमी को विनाशोन्मुखी होने से नहीं बचा सकता।"

31. तब बुद्ध ने कहा :

32. "यद्यपि कोई मनुष्य एक हजार गाथाओं का वाचन करे, किन्तु उन गाथाओं का अर्थ नहीं समझे, तो उसका वह वाचन भली-भाँति समझी गयी एक गाथा

के वाचन के समान नहीं है, जिसे सुनकर अपने को नियन्त्रित या शान्ति को प्राप्त हो। बिना समझे हजारों शब्दों के उच्चारण में क्या लाभ है? किन्तु एक शब्द को समझना और उसको सुनना, तदनुसार आचरण करना, यह मुक्ति प्राप्त करने के लिये है।''

33. ''एक मनुष्य अनेक ग्रन्थों का वाचन कर सकता है किन्तु यदि वह उनकी व्याख्या नहीं कर सकता है, तो उसे क्या लाभ है? किन्तु धम्म के एक वाक्य की व्याख्या करना और तदनुसार आचरण करना, यही सर्वोच्च प्रज्ञा या बोधि पाने का मार्ग है।''

34. इन शब्दों को सुन कर, दो सौ भिक्षु, राजा और उनके मंत्री सभी आनन्द से परिपूर्ण हो गये।

8 धर्म-ग्रन्थों को गलती की सम्भावना से परे मानना अ-धम्म है।

1. ब्राह्मणों ने घोषणा की हुई थी कि वेद न केवल पवित्र ही हैं, बल्कि सत्ता के प्रश्न पर वे स्वतः प्रमाण हैं।

2. ब्राह्मणों द्वारा वेद न केवल स्वतः प्रमाणित घोषित किये गये बल्कि उन्होंने उन्हें अपौरुषेय होने के कारण गलती की सम्भावना से परे माना।

3. इस विषय पर बुद्ध ब्राह्मणों के सर्वथा विरुद्ध थे।

4. उन्होंने अस्वीकार किया कि वेद पवित्र हैं। उन्होंने वेदों को स्वतः प्रमाण एवं आपौरुषेय नहीं माना और उन्होंने वेदों को गलती की सम्भावना से परे नहीं माना।

5. उनके समकालीन कई दूसरे धर्मोपदेशकों का भी यही मत था। बाद में उन्होंने या उनके अनुयायियों ने भी दर्शन की अपनी व्यवस्थाओं को ब्राह्मणों से आदर एवं सद्भाव प्राप्त करने के लिए अपना पक्ष पूर्णतया छोड़ दिया था किन्तु बुद्ध इस विषय पर कभी नहीं झुके थे।

6. तेविज्ज सुत्त से भगवान बुद्ध ने कहा था कि वेद एक जल-रहित मरूस्थल, एक पथविहिन जंगल और वास्तव में विनाश-पथ हैं। बौद्धिक और नैतिक प्यास वाला कोई भी मनुष्य अपनी प्यास बुझाने की आशा से वेदों के पास नहीं जा सकता है।

7. वेदों में गलती की सम्भावना के सम्बन्ध में, उन्होंने कहा कोई ऐसी चीज हो

ही नहीं सकती, जो भ्रमाती नहीं है, यहाँ तक कि वेद भी नहीं। उन्होंने कहा, प्रत्येक सिद्धान्त व वस्तु अवश्य ही परीक्षण और पुनर्परीक्षण के अधीन होनी चाहिये।

8. यह उन्होंने कालाम लोगों को अपने उपदेश में स्पष्ट किया है।

9. एक बार तथागत, एक विशाल भिक्षु संघ सहित कोसल जनपद से होकर गुजरते हुए केसपुत्त नगर में आये, जिसमें कालाम लोग निवास करते थे

10. जब कालाम लोगों को उनके आगमन के विषय में ज्ञात हुआ, तो वे स्वयं वहां पहुंचे जहाँ तथागत थे और एक ओर बैठ गये। इस प्रकार सपुत्त के कालाम लोग तथागत से इस प्रकार बोले :

11. "श्रमण! गौतम ऐसे कुछ तपस्वी और भिक्षु हैं, जो केसपुत्त आते हैं और जो स्वयं अपने मतों पर प्रकाश डालते हैं और अपनी-अपनी प्रशंसा करते हैं, किन्तु वे दूसरों के मतों का खण्डन करते हैं, नीचा दिखाते हैं, निन्दा और विरोध करते हैं। और ऐसे अन्य तपस्वी और भिक्षु भी हैं, तथागत्, जो केसपुत्त आते हैं, और वे भी स्वयं अपनी धारणाओं को प्रतिपादित और अतिरंजित करते हैं, किन्तु दूसरों की धारणाओं को ध्वस्त, दमित और तिरस्कृत करते हैं और दूसरे के मत को नीचा दिखाते हैं।"

12. "हे श्रमण गौतम! और इसीलिये हम अनिश्चय और सन्देह में हैं, यह न जानते हुए कि इन श्रमणों में से कौन सत्य बोलता है और कौन झूठ।"

13. तथागत ने कहा, "निस्सन्देह, अनिश्चित और संदेह होने के लिये कालाम लोगों तुम्हारे पास अच्छा कारण है, वस्तुतः ठीक अवसर पर तुम में अनिश्चय और सन्देह उत्पन्न हुआ है।"

14. तथागत ने आगे कहा, "आओ, हे कालामों! जो कुछ तुमने सुना है केवल उस पर मत जाओ, जो कुछ परम्परा से प्राप्त हुआ और बहुतों द्वारा कहा गया केवल उस पर मत जाओ, जो धर्मग्रन्थों में लिखा प्राप्त हुआ है केवल उस पर मत जाओ, तर्कशास्त्र की निपुर्णता पर मत जाओ, केवल न्यायशास्त्र पर आधारित विचारों पर ही मत जाओ, अनुकूल धारणाओं और मतों पर ही केवल मत जाओ, जो प्रामाण्कि प्रतीत होता है केवल उस पर मत जाओ, कुछ श्रमणों या श्रेष्ठ लोगों के द्वारा कहीं हुई बातों पर ही मत जाओ।"

15. "तब, फिर हमें क्या करना चाहिये? हमें कौन सी कसौटी अपनानी चाहिये?" कालामों ने पूछा।

16. तथागत ने उत्तर दिया, ''यही कसौटियाँ हैं, स्वयं अपने से पूछो, क्या हम जानते हैं कि ये बातें अहितकर हैं, ये बातें निन्दनीय हैं, ये बातें बुद्धिमानों द्वारा निन्दनीय कहीं गयी हैं, इन बातों को किये जाने पर या प्रयास करने पर ये कष्ट और दुख की ओर ले जाती हैं।''

17. ''कालामो, तुम्हें यह भी देखना चाहिये और पूछना चाहिये कि क्या विशेष मत तृष्णा, घृणा, मूढ़ता और हिंसा को बढ़ावा देता है।''

18. ''कालामो! तुम्हें यही पर्याप्त नहीं है। तुम्हें यह भी जानना चाहिये और देखना चाहिये कि क्या मत एक मनुष्य को उसकी इंद्रियों का गुलाम तो नहीं बना रहा, उसे सजीव प्राणियों के वध की ओर तो नहीं ले जा रहा, उसे चोरी करने की प्रेरणा तो नहीं देता, उसे दूसरों की पत्नी के पीछे तो नहीं लगाता, झूठ बोलने को प्रेरित तो नहीं करता और दूसरों को उसी समान कर्म करने को प्रवृत्त तो नहीं करता?''

19. ''और अंत में तुम्हें अपने से पूछना चाहिये, 'क्या यह कष्ट और दुख की ओर तो नहीं ले जाता है?''

20. ''हे कालामो! अब तुम क्या सोचते हो?''

21. ''क्या ये बातें मनुष्य के लिए अहितकर हैं या हितकर?''

22. ''उसके लिए अहितकर हैं तथागत!'' कालामों ने उत्तर दिया।

23. ''तुम क्या सोचते हो, कालामो क्या ये चीजें लाभप्रद हैं या हानिकारक?''

24. ''ये हानिकार हैं, तथागत!''

25. ''क्या ये वस्तुयें निन्दनीय हैं?''

26. ''निन्दनीय, तथागत!'' कालामों ने उत्तर दिया।

27. ''बुद्धिमान लोगों द्वारा निषिद्ध हैं या समर्थित हैं?''

28. ''बुद्धिमान लोगों द्वारा निषिद्ध,'' कालामों ने उत्तर दिया।

29. ''किये जाने या प्रयास करने पर, क्या उनसे कष्ट और दुख होता है?''

30. ''किए जाने या प्रयास करने पर, तथागत! ये कष्ट और दुख की ओर ले जाते हैं।''

31. ''कोई धर्मग्रन्थ जो ऐसा सिखाता हो क्या गलती की सम्भावना से परे स्वीकार किया जा सकता है या स्वतः प्रमाण माना जा सकता है?''

32. "नहीं, तथागत!" कालामों ने कहा।

33. "किन्तु हे कालामो! यही तो मैंने कहा है। मैंने कहा है कि जो कुछ तुमने सुना है, केवल उस पर मत जाओ, जो कुछ परम्परा से प्राप्त हुआ केवल उस पर मत जाओ, जो बहुतों द्वारा कहा गया है उस पर मत जाओ, जो धर्मग्रन्थों में लिखा प्राप्त हुआ है केवल उस पर मत जाओ, तर्क की निपुणता पर मत जाओ, तर्कशास्त्र की निपुणता पर मत जाओ, केवल न्याय 'शास्त्र' पर आधारित विचारों पर ही मत जाओ, अनुकूल धारणाओं और मतों पर ही केवल मत जाओ, जो प्रामाणिक प्रतीत होता है, केवल उस पर मत जाओ, कुछ श्रमणों या श्रेष्ठ लोगों के द्वारा कही हुई बातों पर ही मत जाओ।"

34. "केवल जब तुम स्वयं मन के अनुभव से निस्सन्देह यह जान जाओ कि ये बातें अहितकर हैं, ये बातें निन्दनीय हैं, ये बातें बुद्धिमान लोगों द्वारा निषिद्ध हैं, ये बातें किये जाने पर या प्रयास करने पर कष्टकर और दुख की ओर ले जाती हैं तब, कालामों! तुम्हें उनका त्याग कर देना चाहिये।"

35. "अद्भुत, तथागत, अत्यन्त अद्भुत है। हम तथागत आपकी तथा आपके धम्म की शरण ग्रहण करते हैं। आज से जीवनपर्यन्त तक तथागत हमें अपने अनुयायियों के रूप में स्वीकार करें, हम आपकी शरण में आते हैं।"

36. इस तर्क-वितर्क का सार स्पष्ट है कि किसी की शिक्षाओं को प्रामाणिक स्वीकार करने से पहले, इस तथ्य पर मत जाओ कि यह धर्मग्रन्थों में समाहित है, तर्क की निपुणता पर और न्याय-शास्त्र पर आधारित विचारों पर, केवल इस तथ्य पर मत जाओ कि प्रतिपादित धारणाएं और मत अनुकूल हैं, केवल इसलिए मत जाओ क्योंकि वे प्रामाणिक प्रतीत होते हैं, केवल इस तथ्य पर मत जाओ कि धारणाएँ और मत वे हैं, जो कुछ श्रमणों या श्रेष्ठ लोगों के हैं।

37. किन्तु इस बात पर ध्यान दो कि मन में बैठायी जाने वाली धाराणाएँ और मत क्या हितकर हैं या अहितकर, निन्दनीय हैं या निर्दोष, कल्याण की ओर ले जाते हैं या अकल्याण की ओर?

38. केवल इन्हीं आधारों पर ही कोई किसी की शिक्षाओं को स्वीकार कर सकता है।

पाँचवाँ भाग

सद्धम्म क्या है?

परिच्छेद एक

(क) सद्धम्म के कार्य

1. मन के मैल को दूर कर उसे निर्मल बनाना।
2. संसार को एक धम्म-'राज्य' बनाना।

परिच्छेद दो

(ख) धम्म तभी सद्धम्म हो सकता है, जब वह प्रज्ञा की वृद्धि करे।

1. धम्म तभी सद्धम्म है, जब वह सभी के लिए ज्ञान के द्वार खोल दे।
2. धम्म तभी सद्धम्म है, जब वह यह भी शिक्षा देता है कि केवल 'विद्वान' होना पर्याप्त नहीं, इससे मनुष्य पंडिताऊपन' की ओर अग्रसर हो सकता है।
3. धम्म तभी सद्धम्म है, जब वह सिखाता है कि जिस चीज की आवश्यकता है वह प्रज्ञा है।

परिच्छेद तीन

(ग) धम्म सद्धम्म हो सकता है, जब वह मैत्री की वृद्धि करे।

1. धम्म केवल तभी सद्धम्म है, जब वह शिक्षा देता है कि मात्र प्रज्ञा ही पर्याप्त नहीं है इसके साथ शील का होना अनिवार्य है।
2. धम्म केवल तभी सद्धम्म है, जब वह शिक्षा देता है कि प्रज्ञा और शील के साथ-साथ करुणा का भी होना अनिवार्य है।
3. धम्म केवल तभी सद्धम्म है, जब वह यह शिक्षा देता है कि करुणा से भी अधिक मैत्री की आवश्यकता है।

परिच्छेद चार

(घ) धम्म तभी सद्धम्म हो सकता है, जब वह समस्त सामाजिक (भेद-भावों के) प्रतिबन्ध मिटा दे।

1. धम्म तभी सद्धम्म है जब वह मनुष्य-मनुष्य के बीच अवरोधों (दीवारों) को मिटा दें।
2. धम्म तभी सद्धम्म है, जब वह यह शिक्षा दे कि मनुष्य का जन्म से नहीं बल्कि योग्यता के आधार पर मूल्यांकन किया जाना चाहिए।
3. धम्म तभी सद्धम्म है जब वह मनुष्य-मनुष्य के मध्य समानता की अभिवृद्धि करे।

परिच्छेद एक

(क) सद्धम्म के कार्य

1. मन के मैल को दूर कर उसे निर्मल बनाना

1. एक बार जब भगवान बुद्ध श्रावस्ती में विहार कर रहे थे, तब कोसल नरेश प्रसेनजित वहां आया जहां वे ठहरे हुए थे और अपने रथ से उतर कर अत्यन्त श्रद्धापूर्वक तथागत के पास गया।

2. उसने तथागत से प्रार्थना की, कि कल के लिए उसका निमंत्रण स्वीकार करें। उसने दूसरे दिन नगर में सार्वजनिक धर्मोपदेश देने के लिए भी प्रार्थना की, ताकि लोग उनके और उनके दर्शन की श्रेष्ठता जान सकें, उनका उपदेश सुन उसे ग्रहण कर सकें।

3. भगवान बुद्ध ने स्वीकार करके, अगले दिन अपने सभी भिक्षु-संघ के साथ नगर में प्रवेश किया और नगर के चौराहों से गुजरते हुए, वे पूर्व निश्चित स्थान तक आये और बैठ गये।

4. भोजनोपरान्त राजा ने तथागत से प्रार्थना की, कि चार राजमार्गों के मध्य उन्होंने खुली सभा में उपदेश देने की कृपा करें, उस समय श्रोतागण बहुत बड़ी संख्या में थे। तथागत ने अपना उपदेश देना आरम्भ किया।

5. उस समय श्रोताओं में दो व्यापारी भी उनके धर्मोपदेश को सुन रहे थे।

6. उनमें से एक ने चिन्तन किया, ''राजा ने यह कितनी बड़ी बुद्धिमानी की बात की है कि इस प्रकार के धर्मोपदेश सार्वजनिक रूप से प्रतिपादित कराया है! इनकी उपयुक्तता कितनी व्यापक है, इनके गुण कितने गंभीर हैं!''

7. दूसरे ने इस प्रकार चिन्तन किया, ''राजा ने यह कितनी बड़ी मूर्खता की है कि इस व्यक्ति को यहां उपदेश देने के लिये बुलवाया है।''

8. ''जिस प्रकार बछड़ा गाय के पीछे-पीछे यहां और वहां चलता है, उस गाड़ी से बंधा हुआ जिसे वह खींचती हैं, मिमियाते हुए जैसे वह चलता है, उसी प्रकार यह बुद्ध है जो राजा का अनुसरण करता है।'' दोनों व्यापारी नगर से विदा होकर एक सराय में आये जहां वे ठहर गये।

9. थोड़ा सा सुरा-पान करते समय भले व्यापारी को सद्वृत्ति के चातुर्महाराजिक देवताओं ने संयत और सुरक्षित रखा, जो संसार की देख-देख करते हैं।

10. इसके विपरीत दूसरे की दुष्प्रवृत्ति के दुष्ट प्रेतात्मा द्वारा तब तक पीते रहने को प्रेरित किया गया, जब तक कि वह नशे और नींद द्वारा अभिभूत नहीं हो गया और सराय के पास ही सड़क पर गिर गया।

11. प्रातःकाल जब व्यापारियों की गाड़ियां उस स्थल को छोड़ रहीं थीं, तो गाड़ीवान सड़क पर पड़े हुए उस मनुष्य को न देख सके, तब वह गाड़ियों के पहियों के नीचे आकर मर गया।

12. दूसरा व्यापारी एक दूर–दराज के देश में जा पहुंचा, वहां एक पवित्र घोड़े के घुटने टेकने के परिणामस्वरूप उस देश के राजा का उत्तराधिकारी चुन लिया गया और वह तदनुसार सिंहासन पर विराजमान हुआ।

13. इसके पश्चात्, घटनाओं के विचित्र मोड़ पर विचार करके, वह अपने देश लौट आया और भगवान बुद्ध को अपने यहां निमंत्रित किया, जिससे वे जनता को उपदेश दे सकें।

14. इस अवसर पर तथागत ने दुष्ट–हृदय व्यापारी की मृत्यु का कारण बताया और दूसरे बुद्धिमान व्यापारी के ऐश्वर्यशाली बनने का भी कारण बताया और कहा :

15. ''मन ही इन सब प्रवृत्तियों का मूल है, मन ही मालिक है, मन ही कारण है।''

16. ''यदि मन के भीतर दुष्प्रवृत्तियाँ हैं, तब उसके वचन भी दुष्ट होते हैं, कर्म भी दुष्ट होते हैं, और दुष्कर्म का परिणाम दुख उस मनुष्य का उसी प्रकार अनुसरण करते हैं, जैसे रथ के पहिये रथ खींचने वाले (बैलों) के पीछे–पीछे।''

17. ''मन ही इन सब प्रवृत्तियों का मूल है, यह मन ही उन पर शासन करता है, यह मन ही है, जो सफल होता है।''

18. ''यदि मन में अच्छे विचार हैं, तो वचन भी अच्छे होते हैं और कर्म भी अच्छे होते हैं और उनके आचरण का परिणाम सुख उस मनुष्य का उसी प्रकार अनुसरण करते हैं, जैसे कभी साथ न छोड़ने वाली छाया है।''

19. इन शब्दों को सुन कर, राजा और उसके मन्त्रीगण, अन्य अनगिनत लोगों के साथ धर्मान्तरित हो गये और तथागत के शिष्य बन गये।

2. संसार को धम्म-राज्य बनाना

1. धर्म का क्या उद्देश्य है?

2. विभिन्न धर्मों ने इसके भिन्न-भिन्न उत्तर दिये हैं।

3. मनुष्य को ईश्वर-प्राप्ति के मार्ग पर लगाना और उसे अपनी आत्मा को बचाने के महत्त्व को सिखलाना, इस प्रश्न का एक सामान्य उत्तर मिलता है।

4. अधिकतर धर्म तीन राज्यों की चर्चा करते हैं।

5. एक स्वर्ग का राज्य कहलाता है। दूसरा पृथ्वी का राज्य कहलाता है। तीसरा नरक का राज्य कहलाता है।

6. यह स्वर्ग का राज्य ईश्वर द्वारा शासित कहा जाता है। नरक का राज्य एक ऐसा स्थान वर्णित किया गया है, जहां शैतान की संप्रभुता निर्विरोध है। पृथ्वी का राज्य एक विवादित क्षेत्र है। यह शैतान के प्रभुत्व के अधीन नहीं है। साथ ही साथ ईश्वर की संप्रभुता भी इस पर विस्तारित नहीं है। यह आशा की जाती है कि किसी दिन यह हो जाये।

7. कुछ धर्मों में स्वर्ग का राज्य एक ऐसा राज्य कहा जाता है, जिसमें धर्म-परायण ाता प्रबल होती है। निस्संदेह क्योंकि वह सीधे ईश्वर द्वारा शासित है।

8. कुछ दूसरे धर्मों में स्वर्ग का राज्य पृथ्वी पर नहीं है। यह स्वर्ग का एक दूसरा नाम है जो ईश्वर और उसके पैगम्बर पर ईमान लाता है। यहां तक वही पहुंच सकता है, जब वह स्वर्ग पहुँचता है और उनमें श्रद्धा रखता है तो जीवन के सभी भौतिक सुख उन तक पहुंचा दिये जाते हैं।

9. सभी धर्म प्रतिपादित करते हैं कि स्वर्ग के इस राज्य तक पहुँचना मनुष्य का लक्ष्य होना चाहिये और वहां तक कैसे पहुंचा जाये, यही सब-कुछ का अन्त है।

10. "धर्म का क्या उद्देश्य है?" इस प्रश्न पर बुद्ध ने सर्वथा भिन्न उत्तर दिया है।

11. भगवान बुद्ध लोगों को यह नहीं कहते कि जीवन में उनका लक्ष्य किसी काल्पनिक स्वर्ग तक पहुंचना होना चाहिये। धर्मपरायण राज्य पृथ्वी पर ही है और वह मनुष्य द्वारा धर्मपरायण आचरण करके प्राप्त किया जा सकता है।

12. उन्होंने लोगों को बताया कि यदि तुम अपने दुख का अन्त करना चाहते हो, तो प्रत्येक को दूसरों के साथ न्याय-संगत, धर्म-संगत, व्यवहार करना होगा, तभी यह पृथ्वी धर्मपरायण राज्य बन सकेगी।

13. यही है, जो उनके धम्म को अन्य सभी धर्मों से पृथक करता है।

14. उनका धम्म पंचशील, आष्टांगिक मार्ग और पारमिताओं पर जोर देता है।

15. बुद्ध ने इनको अपने धम्म का आधार क्यों बनाया? क्योंकि वे एक जीवन शैली को संस्थापित करते हैं, केवल यही मनुष्य को धर्मपरायण बना सकती है।

16. मनुष्य-मनुष्य के प्रति अनुचित-व्यवहार का परिणाम ही मनुष्य के दुख का कारण है।

17. मनुष्य का मनुष्य के प्रति जो अनुचित व्यवहार है, उसका नाश केवल धम्म ही कर सकता है और उससे उत्पन्न दुख का भी।

18. इसीलिये भगवान बुद्ध ने कहा कि धर्म का काम केवल उपदेश देना ही नहीं है, बल्कि जैसे भी हो मनुष्य के मन में यह बात बिठानी है कि सर्वोपरि आवश्यकता सदाचारी बनने की है।

19. उन्होंने कहा कि धर्मपरायणता को मन में बैठाने के उद्देश्य से धर्म के लिए आवश्यक है कि वह कुछ दूसरे कार्य भी करे।

20. धर्म मनुष्य को यह शिक्षा देनी चाहिए कि कुशल कर्म कौन सा जिससे उसका अनुसरण करने के लिये कुशल कर्म करे।

21. धर्म मनुष्य को यह यह दीक्षा देनी चाहिए कि अकुशल कर्म कौन सा है और उसका अनुसरण न करे, जिससे वह अकुशल कर्म करने से बच सके।

22. धर्म के इन उद्देश्यों के अतिरिक्त उन्होंने दो अन्य उद्देश्यों पर भी जोर दिया जिन्हें वे सर्वोच्च महत्त्व प्रदान करते थे।

23. पहला मनुष्य का सहज स्वभाव और उसकी प्रवृत्तियों का प्रशिक्षण, जो प्रार्थना करने, व्रत आदि रखने या यज्ञ-बलि इत्यादि से भिन्न प्रक्रिया है।

24. इसे भगवान बुद्ध ने देवदह सुत्त में जैन धर्म की व्याख्या करते हुए स्पष्ट किया है।

25. जैन धर्म के संस्थापक महावीर का कहना था कि जो भी व्यक्तिगत अनुभव होते हैं, भले ही वे सुखद हों या दुखद, सभी पूर्व जन्मों में किए गये कर्मों का परिणाम होते हैं।

26. ऐसा होने पर पूर्व जन्म के दुष्कर्मों के निर्जरा हो जाने से और नए दुष्कर्म न करने से, भविष्य के लिये कुछ संग्रह नहीं होता। जब भविष्य के लिये कुछ

संग्रह नहीं होता, तो दुष्कर्मों का क्षय हो जाता है। जब दुष्कर्मों का क्षय हो जाता है, तो दुखों का भी क्षय हो जाता है। जब दुखों का क्षय हो जाता है, तो सुख-दुख अनुभव करने की शक्ति (वेदना) का भी क्षय हो जाता है। और जब वेदना का क्षय हो जाता है, तो सभी दुखों का क्षय हो जाता है और वे समाप्त हो जाते हैं।

27. यही जैन धर्म (के निगण्ठनाथ) की शिक्षा थी।

28. इस पर भगवान बुद्ध ने यह प्रश्न पूछा, "क्या तुम जानते हो कि यहाँ ही और अब ही, अकुशल प्रवृत्तियों से छुटकारा मिल गया और कुशल प्रवृत्तियाँ अर्जित हो गयीं?"

29. उत्तर था, "नहीं"।

30. तब भगवान बुद्ध ने पूछा, "पूर्वजन्म के दुष्कर्मों की निर्जरा से और नये दुष्कर्मों को न करने से क्या लाभ है यदि चित्त को इसका अभ्यास नहीं है कि अकुशल प्रवृत्तियों को कुशल प्रवृत्तियों में बदला जा सके।"

31. जैन धर्म के विचार से धर्म में यह सबसे गम्भीर त्रुटि थी। कुशल प्रवृत्ति या शुभ संस्कार ही केवल स्थायी कल्याण का स्थायी आधार और गारण्टी हो सकती है।

32. इसीलिए भगवान बुद्ध ने मन के प्रशिक्षण को पहला स्थान दिया है, जो कि एक मनुष्य की प्रवृत्तियों के प्रशिक्षण के समान ही है।

33. दूसरी बात जिसे तथागत ने विशेष महत्त्व दिया वह यह है कि मनुष्य में इस बात का साहस हो कि चाहे कोई अकेला ही क्यों न हो, तब भी उचित मार्ग से विचलित न हो।

34. सल्लेख सुत्त में भगवान बुद्ध ने इसी बात पर जोर दिया है।

35. उन्होंने कहा हैं:

36. "यह निश्चय करके तुम्हें अपने मन को निर्मल बनाने के लिए निश्चय करना चाहिए कि यद्यपि अन्य लोग हानि करें मैं हानि नहीं करूंगा।"

37. "यद्यपि अन्य लोग हिंसा करें मैं हिंसा नहीं करूंगा।"

38. "यद्यपि अन्य लोग चोरी करें मैं चोरी नहीं करूंगा।"

39. "यद्यपि अन्य लोग श्रेष्ठ जीवन व्यतीत नहीं करें, मैं श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करूंगा।"

40. ''यद्यपि अन्य लोग झूठ बोलें, चुगली खाएं कठोर बोलें, या व्यर्थ बकवास करें, मैं नहीं करूंगा।''

41. ''यद्यपि अन्य लोग लोभी हों, मैं लोभ नहीं करूंगा।''

42. ''यद्यपि अन्य लोग द्वेष करें, मैं द्वेष नहीं करूंगा।''

43. ''यद्यपि अन्य लोग मिथ्या दृष्टियों, मिथ्या संकल्पों, मिथ्या वचनों, मिथ्या कर्मान्तों और मिथ्या समाधि को मानते हों, मैं अवश्य ही (आर्य आष्ट्रांगिक मार्ग का) सम्यक, दृष्टि, सम्यक्, संकल्प, सम्यक् वचन, सम्यक् आजीविका, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि का पालन करूंगा।''

44. ''यद्यपि अन्य लोग सत्य के विषय में गलती पर हों और मुक्ति के विषय में गलती पर हों, तुम सत्य और मुक्ति के विषय में सही होऊँगा।''

45. ''यद्यपि अन्य लोग आलस्य और तन्द्रा से ग्रसित हों, मैं अपने को उनसे मुक्त रखूंगा।''

46. ''यद्यपि कुछ लोग उद्धत स्वभाव के हों, मैं विनम्र स्वभाव का रहूँगा।''

47. ''यद्यपि अन्य लोग शंकाओं से व्याकुल हों, मैं उनसे मुक्त रहूँगा।''

48. ''यद्यपि अन्य लोग क्रोध, द्वेष, ईर्ष्या, चिन्ता, कंजूसी, लोभ, ढोंग, ठगी, वाधक, दुस्साहस, कुसंगति, असावधानी, अविश्वास, निर्लज्जता, अनैतिकता, अशिक्षा, सुस्ती, घबराहट और मूर्खता को मन में रखते हैं, मैं इन सब बातों के विपरीत रहूँगा।''

49. ''यद्यपि अन्य लोग लौकिक वस्तुओं से चिपटे रहें और उनसे अपना नियंत्रण ढीला न करें, मैं ऐसा नहीं करूंगा।''

50. ''चुन्द! वाणी और कर्म का तो कहना ही क्या, विज्ञान भी चेतना से प्रभावित होता है और इसलिये मैं कहता हूं चुन्द! इन सभी संकल्पों के सम्बन्ध में जो मैंने बताये हैं, दृढ़-निश्चयी होना चाहिये।''

51. इस प्रकार भगवान बुद्ध द्वारा बताया गया धम्म का यही उद्देश्य है।

परिच्छेद दो

(ख) धम्म तभी सद्धम्म हो सकता है, जब वह प्रज्ञा की वृद्धि करे

1. धम्म तभी सद्धम्म है, जब वह सभी के लिये ज्ञान के द्वार खोल दे

1. ब्राह्मणवादी सिद्धांत था कि ज्ञानार्जन सभी के लिये नहीं खोला जा सकता है। यह अनिवार्य रूप से कुछ लोगों के लिये ही सीमित रहना चाहिये।
2. उन्होंने केवल ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों के लिये ज्ञानार्जन की अनुमति दी थी, किन्तु यह केवल इन तीन वर्गों के पुरुषों के लिये ही थी।
3. सभी स्त्रियाँ, भले ही वे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्ग से क्यों न सम्बन्धित हों, और सभी शूद्रों-पुरुष और स्त्रियाँ-दोनों के लिये ज्ञान अर्जित करना, यहाँ तक कि साक्षरता अर्जित करना निषिद्ध था।
4. बुद्ध ने ब्राह्मणों के इस नृशंस सिद्धांत के विरुद्ध एक विद्रोह उत्पन्न किया।
5. उन्होंने उपदेश दिया कि ज्ञान-प्राप्ति का मार्ग अवश्य ही सबके लिये, पुरुषों के साथ ही साथ स्त्रियों के लिए भी, खुला होना चाहिये।
6. अनेक ब्राह्मणों ने तथागत के दृष्टिकोण का खण्डन करने का प्रयास किया। ब्राह्मण लोहिच्च के साथ उनका विवाद उनके दृष्टिकोणों पर पर्याप्त प्रकाश डालता है।
7. तथागत, जब एक बार बहुत बड़े भिक्षु संघ के साथ कोशल जनपद से चारिका करते हुए गुजर रहे थे, साल वृक्षों की कतार से घिरे सालवाटिका नामक एक गाँव में पहुँचे।
8. उस समय, लोहिच्च ब्राह्मण सालवाटिका में रहता था, जो जीवन से भरपूर, घास, जंगल और धन-धान्य से परिपूर्ण था। यह शाही भेंट के रूप में कोशल के राजा प्रसेनजित् द्वारा उसे एक शाही तौर पर दिया गया था, ऐसे अधिकार सहित मानो वह वहाँ का राजा था।
9. लोहिच्च ब्राह्मण का मत था कि यदि किसी श्रमण या ब्राह्मण ने ज्ञान अर्जित कर लिया है, तो वह उसे स्त्रियों या शूद्रों को प्रदान न करे।
10. तब लोहिच्च ब्राह्मण ने सुना कि तथागत सालवाटिका में ठहरे हुए हैं।
11. यह सुनकर उसने भेसिक नामक नाई को बुलाकर उस से कहा: "आओ, भले भेसिक!" वहाँ जाओ जहाँ श्रमण गौतम ठहरे हुए हैं, और अपने पहुँचने पर,

मेरी तरफ से उनका कुशल-क्षेम पूछाना कि उन्हें कोई तकलीफ और परेशानी तो नहीं है। क्या वे स्वस्थ, और आराम की अवस्था में हैं? और इस प्रकार कहना।''

''आदरणीय गौतम, भिक्षुसंघ सहित कृपया कल का भोजन ब्राह्मण लोहिक्क द्वारा स्वीकार करें।''

12. ''बहुत अच्छा, श्रीमान्,'' नाई ने कहा।

13. लोहिच्च ब्राह्मण का कथन स्वीकार कर, उसने वही किया, जो उसे करने के लिये कहा गया था। तथागत ने मौन रहकर उसकी प्रार्थना को स्वीकार किया।

14. दूसरे दिन प्रातः काल तथागत चीवर ग्रहण कर, पात्र चीवर ले भिक्षु-संघ सहित सालवाटिका की ओर पधारे।

15. भेसिक नामक नाई को लोहिच्च द्वारा तथागत को लाने के लिये भेजा गया था, तथागत के पीछे कदम-दर-कदम चला आ रहा था। रास्ते में उसने तथागत को बताया कि लोहिच्च ब्राह्मण की यह मिथ्या दृष्टि है कि किसी श्रमण या ब्राह्मण को कोई ज्ञान या विद्या स्त्रियों और शूद्रों को नहीं प्रदान करना चाहिये।

16. ''भेसिक! ऐसा हो सकता है, भेसिक! ऐसा हो सकता है,'' तथागत ने उत्तर दिया।

17. और तथागत लोहिच्च ब्राह्मण के निवास-स्थान पर पहुँचे और अपने लिये तैयार आसन पर बैठ गये।

18. तब लोहिच्च ब्राह्मण ने भिक्षुसंघ सहित तथागत को प्रमुख रूप से स्वयं अपने हाथों से मधुर भोज्य पदार्थ, परोसे, जब तक कि उन्होंने और अधिक के लिये मना नहीं कर दिया।

19. जब तथागत ने अपना भोजन समाप्त कर दिया, और पात्र तथा अपने हाथ धो लिये, ब्राह्मण लोहिच्च एक नीचा आसन ले आया और उनके समीप बैठ गया।

20. इस प्रकार बैठे हुए उससे तथागत ने कहा, ''क्या यह सत्य है, जैसा लोग कहते हैं, लोहिच्च, कि तुम्हारा यह मत है कि किसी श्रमण या ब्राह्मण को कोई ज्ञान या विद्या स्त्रियों और शूद्रों को नहीं प्रदान करनी चाहिये?''

21. ''ऐसा ही है, गौतम,'' लोहिच्च ने उत्तर दिया।

22. ''अब तुम क्या सोचते हो, लोहिच्च? क्या तुम सालवाटिका के मालिक नहीं हो?'' ''हाँ, ऐसा ही है, गौतम!''

23. ''तब मान लो, लोहिच्च, कि कोई इस प्रकार कहे: ''ब्राह्मण लोहिच्च! का

सालवाटिका पर अधिकार है। किसी दूसरे के लिये कुछ भी न छोड़ते हुए उसे ही केवल सालवाटिका से प्राप्त समस्त कर और समस्त आनन्द लेने दो। क्या यह बात कहने वाला व्यक्ति उन लोगों के लिये खतरनाक नहीं होगा, जो तुम पर निर्भर करते हैं कि नहीं?''

24. ''वह खतरनाक होगा, गौतम!''

25. ''क्या वह ऐसा खतरा उत्पन्न करने वाला व्यक्ति हितचिन्तक समझा जायेगा?''

26. ''नहीं, वह उनका हित चाहने वाला नहीं होगा, गौतम!'' लोहिच्च ने उत्तर दिया।

27. ''और उनके हित का ध्यान न रखने वाला, क्या वह उसका मित्र होगा या शत्रु?''

28. ''गौतम! शत्रु।''

29. ''किन्तु जब किसी का हृदय शत्रुता से परिपूर्ण हो, तो क्या वह सिद्धांत ठीक है, या गलत?''

30. ''यह एक गलत सिद्धांत है, गौतम!''

31. ''अब तुम क्या सोचते हो, लोहिच्च! क्या कोशल के राजा प्रसेनजित् का काशी और कोसल पर अधिपत्य नहीं है?''

32. ''हाँ, ऐसा ही है, गौतम!''

33. ''तब मान लो, लोहिच्च!, कि कोई इस प्रकार कहे– कोसल के राजा प्रसेनजित् का काशी और कोसल पर आधिपत्य है। उसे ही काशी और कोशल से प्राप्त समस्त कर और समस्त उपज का आनन्द लेने दो, किसी दूसरे के लिये कुछ भी न छोड़ते हुए तो क्या यह कहने वाला व्यक्ति उन लोगों के लिये जो कोसल के राजा प्रसेनजित् पर निर्भर करते हैं–तुम्हारे और दूसरे लोगों सहित–खतरनाक होगा कि नहीं?''

34. ''गौतम! वह खतरनाक होगा।''

35. ''और वह खतरा उत्पन्न कर, क्या वह एक ऐसा व्यक्ति होगा, जो उनके हित के प्रति सहानुभूति रखता है?''

36. ''वह उनका हित चाहने वाला नहीं होगा, गौतम!''

37. ''और उनके हित का ध्यान न रखते हुए, क्या उसका हृदय उनके प्रति प्रेम से परिपूर्ण होगा या शत्रुता से?''

38. "शत्रुता से, गौतम!"

39. "किन्तु जब किसी का हृदय शत्रुता से परिपूर्ण हो, तो क्या वह सिद्धांत गलत है, या ठीक?"

40. "यह एक गलत सिद्धांत है, गौतम!"

41. "अतः तब, लोहिच्च, तुम स्वीकार करते हो कि जो यह कहे कि तुम्हें, सालवाटिका पर आधिपत्य होने के कारण, तुम्हें समस्त कर और समस्त उपज का आनन्द लेना चाहिये, किसी दूसरे के लिये कुछ नहीं छोड़ना चाहिये, और वह जो कहे कि कोसल के राजा प्रसेनजित् काशी और कोसल पर अधिकार होने के कारण, वे ही समस्त उपज का आनन्द उठायें, किसी दूसरे के लिये कुछ भी नहीं छोड़ें, उन लोगों के लिये खतरनाक होगा, जो तुम पर निर्भर करते हैं, या उनके लिये, तुम और अन्य लोग, जो राजा पर निर्भर करते हैं, जो इस प्रकार दूसरों के लिये खतरा उत्पन्न करे, उनके लिये सहानुभूति नहीं, बल्कि उनके लिये अपने हृदय में शत्रुता होगी। किसी के लिये अपने हृदय में शत्रुता रखना गलत सिद्धांत है।"

42. "तब वह उसी प्रकार है लोहिच्च! जो यह कहे कि किसी श्रमण या ब्राह्मण को कोई ज्ञान या विद्या स्त्रियों और शूद्रों को नहीं प्रदान करनी चाहिये।"

43. "वह उसी प्रकार, दूसरों के मार्ग में रोड़े अटकाने वाला होगा और उनके हित के लिये सहानुभूति से रहित होगा।"

44. "उनके हित के लिये सहानुभूति से रहित होने के कारण उसके हृदय में शत्रुता स्थापित हो जायेगी और जो किसी के हृदय में शत्रुता स्थापित हो जाए, तो वह सिद्धांत ही गलत है।"

2. धम्म तभी सद्धम्म है जब वह यह शिक्षा देता है, कि केवल विद्वान होता पर्याप्त नहीं, इससे मनुष्य 'पंडिताऊपन' की ओर अग्रसर हो सकता है

1. एक बार जब भगवान बुद्ध कौसाम्बी जनपद के 'सुस्वर' नामक विहार में ठहर कर एकत्रित लोगों को धर्मोपदेश दे रहे थे उस समय वहाँ एक ब्रह्मचारी रह रहा था।

2. उस ब्रह्मचारी को यह अभिमान था कि शास्त्रों के ज्ञान में वह अद्वितीय है और वह शास्त्रार्थ में अपने समान किसी को भी नहीं समझता था। इसलिये वह जहाँ कहीं भी जाता, अपने हाथ में एक जलती हुई मशाल ले जाता था।

3. एक दिन किसी नगर के एक बाजार में एक मनुष्य ने, उसे इस प्रकार देख कर, उससे इस विचित्र आचरण का कारण पूछा, जिस पर उसने उत्तर दिया:
4. ''संसार इतना अंधकारमय है, और मनुष्य इतने पथ-भ्रष्ट हैं, कि मैं जहाँ तक कर सकता हूँ, वहाँ तक इसे प्रकाशवान करने के लिए यह मशाल लेकर चलता हूँ।''
5. यह देखकर भगवान बुद्ध ने तुरन्त ब्रह्मचारी को सम्बोधित किया, ''अरे! यह किसलिये है? तुम उस मशाल को किसलिये लिए हुए हो?''
6. ब्रह्मचारी ने उत्तर दिया, ''सभी मनुष्य अज्ञान और अन्धकार में इतने घिरे हुए हैं, कि मैं उन्हें रास्ता दिखाने के लिये यह मशाल लेकर चलता हूँ।''
7. तब तथागत ने उससे पुनः पूछा, ''क्या तुम इतने विद्वान हो कि तुम उन चार विद्याओं के जानकार हो, जो शास्त्रों के मध्य पायी जाती हैं, अर्थात्, शब्द-विद्या, नक्षत्र-विद्या, राज-विद्या और युद्ध-विद्या?''
8. ब्रह्मचारी को मजबूर होकर यह स्वीकार करना पड़ा कि उसे इनके विषय में जानकारी नहीं है। उसने अपनी मशाल दूर फेंक दी, तब भगवान बुद्ध ने आगे यह कहा :
9. ''यदि कोई मनुष्य, भले ही वह विद्वान हो या नहीं, वह दूसरों की उपेक्षा करता है, स्वयं को इतना महान समझता है, तो वह उस अन्धे मनुष्य के समान है, जो स्वयं अन्धा होकर दूसरों को मशाल दिखाता फिरता है। ''

3. धम्म तभी सद्धम्म है जब वह सिखाता है, जिस चीज की आवश्यकता है वह 'प्रज्ञा' है

1. ब्राह्मण 'विद्या' को ही बहुत बड़ी मूल्यावान समझते थे। उनके लिये मात्र 'विद्वान' व्यक्ति ही पूज्य था, भले ही वह व्यक्ति शीलवान व्यक्ति हो या न हो।
2. निस्सन्देह उन्होंने कहा कि एक राजा का सम्मान उसके अपने देश में होता है, किन्तु एक विद्वान का सम्मान सम्पूर्ण संसार में होता हे। इससे यह ज्ञात होता है कि एक विद्वान एक राजा से अधिक महान् होता है।
3. भगवान बुद्ध ने 'विद्या' और 'प्रज्ञा' के मध्य एक भेद किया है, उन्होंने 'प्रज्ञा' को 'विद्या' से भिन्न माना है।
4. यह कहा जा सकता है कि ब्राह्मणों ने भी प्रज्ञा और विद्या के मध्य एक भेद किया है।

5. यह सही हो सकता है, किन्तु बुद्ध की 'प्रज्ञा' और ब्राह्मणों की 'प्रज्ञा' में जमीन-आसमान का अन्तर होता है।

6. अंगुत्तर निकाय में दिये गये अपने उपदेशों में भगवान बुद्ध ने भली-भाँति इस भेद को स्पष्ट किया है।

7. एक विशेष अवसर पर तथागत राजगृह के समीप वेणुवनाराम के 'कलन्दक-निवास' में ठहरे हुए थे।

8. उस अवसर पर मगध का एक बड़ा अमात्य वर्षकार ब्राह्मण तथागत से मिलने आया और उनके पास आकर शिष्टता से उन्हें प्रणाम किया। कुशल-क्षेम पूछने के उपरान्त एक ओर बैठ गया। बैठने के बाद वर्षकार ब्राह्मण ने तथागत से कहा :

9. "श्रमण गौतम! यदि किसी आदमी में ये चार गुण हैं, तो हम उसे बड़ा विद्वान समझते हैं, बड़ा आदमी मानते हैं। वे चार गुण क्या हैं?"

10. "इसमें, श्रमण गौतम! (1) वह विज्ञ होता है, जो कुछ भी वह सुनता है, उसके सुनते ही तुरन्त वह उसके अर्थ को समझ लेता है, वह कह सकता है कि उस कथन का यह अर्थ है। इसके अतिरिक्त, (2) उसकी स्मरण-शक्ति अच्छी होती है, वह बहुत पहले की गयी और पहले कही गयी एक बात को याद रख सकता है और पुनः प्रस्तुत कर सकता है।"

11. "पुनः तथागत ने कहा- (3) एक गृहस्थ के सभी कार्यों में वह निपुण और परिश्रमी है, और दृष्टि से (4) वह यह जानने में चतुर और सक्षम है कि क्या करना उचित है, क्या व्यवस्था की जानी चाहिये।"

12. "तब, श्रमण गौतम! यदि एक मनुष्य में ये गुण हैं, तो हम उसे विद्वानों में से एक महान् विद्वान मनुष्य प्रमाणित करते हैं। गौतम! यदि आप मेरे कथन का समर्थन करना उचित समझते हैं, तो मेरा समर्थन करें। इसके विपरीत, यदि खण्डन करने योग्य समझते हैं, तो मेरा खण्डन करें।"

13. "अच्छा, ब्राह्मण! इसमें मैं न तो तुम्हारा समर्थन करता हूँ और न ही तुम्हारा खंडन करता हूँ। मैं स्वयं उस मनुष्य को विद्वान समझता हूँ, यदि उसमें निम्नलिखित चार गुण हैं, जोकि तुम्हारे द्वारा बताये गये गुणों से सर्वथा भिन्न हैं।"

14. "हे ब्राह्मण! एक मनुष्य बहुत जनों के हित के लिये और बहुत जनों के कल्याण के लिये समर्पित है। उसके द्वारा बहुत लोग आर्य-मार्ग पर स्थापित हैं, अर्थात् वह एक सुन्दर स्वभाव का है, वह हित कर स्वभाव का है।"

15. "जिस किसी विषय में वह अपने मन को लगाना चाहता है, उस विषय में वह अपने मन को लगा लेता है। जिस किसी विषय में वह अपने मन को नहीं

लगाना चाहता, उस विषय में वह अपने मन को नहीं लगाता है।''

16. ''जिस किसी संकल्प को वह मन में ठान लेना चाहता है, उस विषय में वह मन को लगा सकता है। जिस संकल्प को मन में उत्पन्न होने नहीं देना चाहता है, उसे उत्जेना नहीं होने देता। इस प्रकार वह अपने मन पर और अपने विचारों पर अधिकार रखता है।''

17. ''साथ ही वह जब चाहे बिना किसी कठिनाई के और बिना किसी विघ्न के चारों लोकोत्तर ध्यानों को प्राप्त कर सकता है, जो कि इसी जीवन में सुख-विहार के लिए हैं।''

18. ''साथ ही इसी जीवन में पूर्णतया आस्रवों के क्षय करके वह चित्त की विमुक्ति प्राप्त करता है, प्रज्ञा द्वारा विमुक्ति को प्राप्त कर इसमें विहार करता है।''

19. ''इसलिये हे ब्राह्मण! इसमें न तो मैं तुम्हारा समर्थन करता हूँ और न ही तुम्हारा खण्डन करता हूँ, बल्कि मैं उस मनुष्य को विद्वान और बड़ा आदमी समझता हूँ, जिसमें ये चार गुण हैं, जो तुम्हारे बताए गुणों से सर्वथा भिन्न हैं।''

20. ''यह अद्‌भुत है, श्रमण गौतम! यह आश्चर्यजनक है, श्रमण गौतम! आपने यह कितनी अच्छी तरह स्पष्ट किया है!''

21. ''मैं स्वयं समझता हूँ कि गौतम! ये समान रूप से चारों गुण योग्य हैं। निस्संदेह, श्रमण गौतम! बहुत जनों के हित, कल्याण के लिए अर्पित हैं। उनके द्वारा बहुत लोग आर्य-मार्ग पर स्थापित हैं। अर्थात्, वह जो एक सुंदर स्वभाव का है, वह एक हितकर स्वभाव का है, स्थापित किए गए हैं।''

22. ''निस्सन्देह, श्रमण गौतम! जिस किसी विषय में वे अपने मन को लगाना चाहते हैं, उस विषय में वे अपने मन को लगा सकते हैं...... निश्चय ही उन्हें अपने मन और विचारों पर अधिकार होता है।''

23. ''निश्चय ही श्रमण गौतम! जब चाहे बिना कठिनाई के, बिना तकलीफ के. .....चारों लोकोत्तर ध्यानों को....... निश्चय ही श्रमण गौतम आस्रवों के क्षय का......... चित्त की विमुक्ति प्राप्त कर सकते हैं, प्रज्ञा द्वारा विमुक्ति और इसे प्राप्त कर इसमें विहार करते हैं।''

24. इसमें बहुत ही स्पष्ट शब्दों में बुद्ध द्वारा प्रतिपादित प्रज्ञा और ब्राह्मणों के अनुसार प्रतिपादित प्रज्ञा के मध्य के भेद को स्पष्ट किया गया है।

25. इसमें यह भी स्पष्ट किया गया है कि भगवान बुद्ध विद्या की अपेक्षा प्रज्ञा को क्यों अधिकार महत्त्व देते थे।

परिच्छेद तीन

धम्म तभी सद्धम्म हो सकता है, जब वह मैत्री की वृद्धि करे

1. धम्म केवल तभी सद्धम्म है, जब वह यह शिक्षा दे कि मात्र प्रज्ञा ही पर्याप्त नहीं है, इसके साथ शील का होना अनिवार्य है।

1. प्रज्ञा आवश्यक है, किन्तु शील अधिक आवश्यक है। शील के बिना प्रज्ञा खतरनाक हो जाती है।
2. अकेली प्रज्ञा खतरनाक है।
3. प्रज्ञा मनुष्य के हाथ में दुधारी तलवार के समान होती है।
4. शीलवान मनुष्य के हाथ में होने पर यह खतरे में पड़े मनुष्य की रक्षा में प्रयोग की जा सकती है।
5. किन्तु एक शीलरहित मनुष्य के हाथ में होने पर यह हत्या के लिये प्रयोग की जा सकती है।
6. इसलिये शील, प्रज्ञा से अधिक महत्त्वपूर्ण होती है।
7. प्रज्ञा, विचार-धम्म या सम्यक् विचार करना है। शील, आचार-धम्म है, सम्यक् आचरण।
8. बुद्ध ने शील के सम्बन्ध में पाँच मूल सिद्धांत निर्धारित किये हैं।
9. प्रथम जीव-हिंसा से सम्बन्धित है।
10. द्वितीय चोरी से सम्बन्धित है।
11. तृतीय काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचार से सम्बन्धित है।
12. चतुर्थ झूठ बोलने से सम्बन्धित है।
13. पंचम नशीले पदार्थ के सेवन से सम्बन्धित है।
14. इनमें से प्रत्येक पर तथागत ने लोगों को जीव-हिंसा से विरत रहने, चोरी से विरत रहने, झूठ बोलने से विरत रहने, काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचार से विरत रहने और नशीले पदार्थों के सेवन से विरत रहने के लिये उपदेश दिया है।
15. इस कारण स्पष्ट है कि बुद्ध ने ज्ञान की अपेक्षा शील को अधिक महत्त्व क्यों दिया है?
16. ज्ञान का उपयोग एक मनुष्य के शील पर निर्भर करता है। शील से पृथक ज्ञान का कोई मूल्य नहीं है। यही है, जो उन्होंने कहा।
17. एक अन्य स्थान पर, उन्होंने कहा, "संसार में शील अतुलनीय है।"

18. "शील आरम्भ और शरण-स्थान है, शील समस्त कल्याण की जननी है। यह समस्त अच्छी अवस्थाओं में प्रमुख है। इसलिये अपने शील को शुद्ध करो।"

2. धम्म केवल सद्धम्म है, जब वह यह शिक्षा देता है कि प्रज्ञा और शील के साथ-साथ करुणा का भी होना अनिवार्य है

1. बुद्ध के धम्म की आधार-शिला के प्रश्न पर दृष्टिकोणों में कुछ भेद रहे हैं।
2. क्या मात्र प्रज्ञा उनके धम्म की आधार-शिला है? क्या मात्र करुणा उनके धम्म की आधार-शिला है?
3. इस विवाद ने भगवान बुद्ध के अनुयायियों को दो पक्षों में विभाजित कर दिया था। एक वर्ग की मान्यता थी कि केवल प्रज्ञा ही बुद्ध के धम्म की आधार-शिला है। दूसरे वर्ग की मान्यता थी कि केवल करुणा ही बुद्ध के धम्म की आधार-शिला है।
4. ये दोनों वर्ग अभी भी विभाजित हैं।
5. दोनों ही वर्ग गलत प्रतीत होते हैं, यदि उन्हें स्वयं बुद्ध के वचनों के प्रकाश में समझा जाये।
6. इसमें कोई मतभेद नहीं है कि प्रज्ञा बुद्ध के धम्म के दो स्तम्भों में से एक है।
7. विवाद यह है कि क्या करुणा भी उनके धम्म का एक स्तम्भ है?
8. करुणा उनके धम्म का एक स्तम्भ है, यह विवाद से परे है।
9. इसके समर्थन में स्वयं उनके वचन उद्घृत किये जा सकते हैं।
10. प्राचीन काल में गान्धार नामक देश में एक बहुत घृणित रोग से पीड़ित कोई वृद्ध भिक्षु था, वह जिस स्थान पर बैठता, उसी जगह को प्रदूषित करता था।
11. वह एक ऐसे विहार में रहता था, जहाँ कोई भी उसके समीप नहीं जाता था या उसकी सहायता नहीं करता था।
12. भगवान बुद्ध अपने 500 अनुयायियों के साथ यहाँ आये, और सभी प्रकार के आवश्यक बर्तन तथा गर्म पानी लेकर वे एक साथ उस स्थान पर पहुंचे, जहाँ वृद्ध भिक्षु लेटा था।
13. उस स्थान की दुर्गन्ध इतनी बुरी थी कि सभी भिक्षुओं को उस मनुष्य के प्रति घृणा हो गयी, किन्तु विश्व-पूजनीय तथागत ने शुक्र-देव को गर्म पानी ले आने

को कहा। तब स्वयं अपने हाथों से भिक्षु के शरीर को धोया और उसके रोग की देखभाल की।

14. उस समय पृथ्वी काँपी और वह सम्पूर्ण स्थान अलौकिक प्रकाश से भर उठा, जिससे कि राजा और मंत्री, तथा सभी आकाश-स्थित देवता, नाग इत्यादि उस स्थान पर एकत्रित हो गये। और भगवान बुद्ध की आराधना की।

15. वहाँ एकत्रित उन सभी को आश्चर्य हुआ, उन्होंने विश्व-पूजनीय तथागत को संबोधित किया और पूछा कि, ''इतने महान होकर आप इतना सामान्य काम कैसे और क्यों कर सके?'' जिस पर भगवान बुद्ध ने इस विषय को समझाया।

16. ''संसार में तथागत के आने का उद्देश्य ही यह है कि जो दरिद्र, असहाय और अनारक्षित हैं उनको मित्र बनाना, जो शारीरिक कष्ट में हैं उनकी सेवा करना, भले ही वे श्रमण हों या किसी अन्य धर्म के अनुयायी हों-कंगाल, अनाथ और वृद्धों की सहायता करना, तथा दूसरों को ऐसा करने के लिये प्रेरित करना।''

3. धम्म केवल तभी सद्धम्म है, जब वह यह शिक्षा दे कि करुणा से भी अधिक मैत्री की आवश्यकता है

1. भगवान बुद्ध करुणा की शिक्षा देकर ही नहीं रुके।

2. करुणा केवल मानव मात्र के प्रति प्रेम है। भगवान बुद्ध इससे भी आगे गये और उन्होंने मैत्री की शिक्षा दी। मैत्री प्राणी-मात्र के प्रति प्रेम है।

3. भगवान बुद्ध चाहते थे कि मनुष्य करुणा पर ही न रुक जाये, बल्कि मनुष्यता से भी आगे जाये और सभी प्राणी-मात्र के प्रति मैत्री की भावना को पोषित करे।

4. यह उन्होंने बहुत अच्छी तरह एक सुत्त में स्पष्ट किया है, जब तथागत श्रावस्ती में ठहरे हुए थे।

5. मैत्री के विषय में बोलते हुए, तथागत ने भिक्षुओं से कहा :

6. ''मान लो एक मनुष्य पृथ्वी खोदने आता है। क्या पृथ्वी विरोध करती है?''

7. ''नहीं, भगवन्!'' भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

8. ''मान लो एक मनुष्य लाख और रंग लेकर आकाश में चित्र बनाना चाहता है। क्या तुम समझते हो वह ऐसा कर सकेगा?''

9. ''नहीं, भगवन्!''

10. ''क्यों?'', ''क्योंकि आकाश में कोई कालापन नहीं हैं।'', भिक्षुओं ने कहा।

11. ''इसी प्रकार से तुम्हाने मन में भी काले धब्बे नहीं होने चाहिये, जो तुम्हारे बुरे मनोविकारों के प्रतिबिम्ब हों।''

12. ''मान लो कोई एक जलती हुई मशाल लेकर गंगा नदी में आग लगाने के लिये आता है, तो क्या वह ऐसा कर सकता है?''

13. ''नहीं, भगवन!''

14. ''क्यों? क्योंकि गंगा नदी के जल में कोई जलने का गुण नहीं है।

15. अपना उपदेश समाप्त करते हुए, तथागत ने कहा, ''ठीक जिस प्रकार पृथ्वी आघात अनुभव नहीं करती और विरोध नहीं करती, जैसे हवा के विरुद्ध किसी प्रकार की प्रतिक्रिया नहीं होती, जैसे गंगा नदी का जल अग्नि से अप्रभावित हो कर बहता रहता है, इसी प्रकार भिक्षुओ! तुम्हारे प्रति किये गये सभी अपमानों और अन्यायों को तुम भी सहन कर लो और उन अपराधियों के प्रति मैत्री की धारणा करते रहो।''

16. ''अत: भिक्षुओ! मैत्री की धारा हमेशा बहती रहनी चाहिये। अपने चित्त को पृथ्वी के समान दृढ़, वायु के समान स्वच्छ और गंगा नदी के समान शीतल बनाये रखना और पवित्र कर्त्तव्य बना लो। यदि तुम मैत्री का अभ्यास रखोगे, तो कोई चाहे कितना भी अरुचिकर व्यवहार करे, उसके द्वारा तुम्हारा चित्त सरलता से विचलित नहीं होगा, क्योंकि वे सभी जो हानि पहुँचाते हैं, शीघ्र ही थक जायेंगे।''

17. ''अपनी मैत्री के विस्तार को इतना असीम होने दो जैसे संसार और अपने विचार को इतना व्यापक और अपरिमित होने दो, जिसमें कहीं घृणा के विषय में सोचा भी न जा सके।''

18. ''मेरे धम्म के अनुसार, करुणा का ही पालन करना पर्याप्त नहीं है। मैत्री का पालन करना भी आवश्यक है।''

19. अपने उपदेश के दौरान तथागत ने भिक्षुओं को एक कथा सुनाई, जो याद रखने योग्य है।

20. ''एक समय की बात है श्रावस्ती में विदेसिका नामक एक सम्पन्न स्त्री रहती थी, जिसके सौम्य, सुशील और शान्त के रूप में ख्याति थी। काली नामक उसकी एक नौकरानी थी, जो एक दक्ष लड़की, बहुत सुबह जागने वाली और अच्छा कार्य करने वाली थी। काली ने सोचा मुझे आश्चर्य है कि क्या मेरी मालकिन को, जो इतनी सुभाषित है, वास्तव में क्रोध आता ही नहीं या वह अपना क्रोध प्रकट नहीं करती? या मैं अपना कार्य इतनी अच्छी तरह से करती हूँ, कि यद्यपि उनमें क्रोध है, लेकिन वह इसे दर्शाती नहीं? मैं उनको परीक्षा लूंगी।''

21. ''अतः अगली सुबह वह देर से उठी। 'काली! काली!' मालकिन चिल्लायी। 'हाँ, मालकिन', लड़की ने उत्तर दिया। 'तू इतनी देर से क्यों उठी?' 'ओह, ऐसा कुछ भी नहीं है, मालकिन!' 'शरारती लड़की! कहती है कुछ बात नहीं। क्रोध और अप्रसन्नता से भौंहें चढ़ाते हुए मालकिन ने कहा।''

22. ''अतः उनमें क्रोध है, यद्यपि वह इसे दर्शाती नहीं हैं, नौकरानी ने सोचाः 'यह है क्योंकि मैं अपना कार्य इतनी अच्छी तरह करती हूँ इसलिए इसका क्रोध अप्रकट रहता है। मैं उन्हें और अधिक परीक्षा लूंगी।' अतः वह अगली सुबह और देर से उठी। 'काली! काली'! मालकिन चिल्लायी। 'हाँ, मालकिन! 'लड़की ने उत्तर दिया। ''तुम इतनी देर करके क्यों उठी?'' ओह ऐसा कुछ नहीं हैं, 'मालकिन'! दुष्ट लड़की कहती है कुछ बात नहीं, अपने क्रोध और अप्रसन्नता को शब्दों में अभिव्यक्त करते हुए मालकिन चिल्लाई।''

23. ''नौकरानी ने सोचा, 'हाँ,' उनमें क्रोध तो निश्चित है, यद्यपि वे इसे दर्शाती नहीं हैं, क्योंकि मैं अपना कार्य इतनी अच्छी तरह करती हूँ, मैं उन्हें और भी अधिक परीक्षा लूंगी, अतः अगली सुबह वह और भी अधिक देर से उठी। 'काली! काली! मालकिन चिल्लायी।' 'हाँ, मालकिन!' लड़की ने उत्तर दिया। 'तू इतनी देर से क्यों उठी?' ओह, ऐसी कुछ बात नहीं है, मालकिन!''

24. 'इतनी देर में उठती है दुष्ट लड़की! और कहती है कुछ बात नहीं' मालकिन चिल्लायी और अपने क्रोध और अप्रसन्नता में उसने दरवाजे की सांकल उठायी और उस लड़की के सिर में दे मारी जिससे खून बहने लगा।''

25. ''अपने फूटे हुए सिर जिससे खून बह रहा था, को लेकर काली ने चीखों से पड़ोसियों को जगा दिया, 'देखो! मालकिन ने क्या किया है! देखो रे लोगो! सुशील स्त्री ने क्या किया है। देखो! स्त्रियो, शान्त स्त्री ने क्या किया है। वह भी किसलिये? केवल इसलिये कि उनकी एकमात्र नौकरानी देर से उठी, वे इतनी क्रोधित और अप्रसन्न थी कि दरवाजे की सांकल लेकर मेरे सिर पर मारने और उसे फोड़ने के लिए बस कूद पड़ी।''

26. ''परिणामस्वरूप स्त्री विदेसिका सुशील और शान्त की बजाए बड़ी अशान्त और बड़े क्रोधी स्वभाव के रूप में मशहूर हो गई।''

27. ''इसी तरह कोई भिक्षु पर्याप्त विनम्र और सुशील और शान्त हो सकता है, जब तक कि उसके विरुद्ध कुछ अरुचिकर नहीं कहा जाए। यह तो केवल तभी ज्ञात हो सकता है, जब आप परीक्षा लें, जब उसके विरुद्ध अरूचिकर बातें कही जायें कि उसके भीतर मैत्री की भावना है कि नहीं।''

28. तब उन्होंने आगे कहा, ''मैं उस भिक्षु को मैत्री-भाव-सम्पन्न नहीं कहता, जो केवल वस्त्र और भोजन प्राप्त करने के लिये मैत्री को दर्शाता है। मैं केवल उसी को सच्चा भिक्षु कहता हूँ, जिसकी मैत्री धम्म से उत्पन्न होती है।''

29. ''हे भिक्षुओ! कोई भी धार्मिक पुण्य अर्जित करने के लिये अपनाया गया उपाय, मैत्री-भावना के सोलहवें भाग के बराबर नहीं है। मैत्री, जो चित्त की विमुक्ति है, उन सभी को आत्मसात कर लेती है; जो प्रकाशमान हैं, जो प्रदीप्त हैं, जो प्रज्ज्वलित हैं।''

30. ''इसी तरह से हे भिक्षुओ! जिस प्रकार सभी तारों का प्रकाश चन्द्रमा के प्रकाश के सोलहवें भाग के भी बराबर नहीं है, किन्तु चन्द्रमा उसको आत्मसात कर लेता है और प्रकाशमान होता है, प्रदीप्त होता है, प्रज्ज्वलित होता है, उसी तरह से, हे भिक्षुओ! धार्मिक पुण्य अर्जित करने के लिये अपनाया गया कोई भी उपाय मैत्री-भावना के सोलहवें भाग के भी बराबर नहीं है। मैत्री, जो कि चित्त की विमुक्ति है, उन्हें आत्मसात कर लेती है; जो प्रकाशमान है, जो प्रदीप्त हैं, जो प्रज्ज्वलित है।''

31. ''और उसी तरह से, हे भिक्षुओ! जिस तरह वर्षा ऋतु की समाप्ति पर, सूर्य, स्वच्छ और बादल रहित आकाश में उदय होते हुए, सभी अन्धकार को निर्वासित कर देता है और प्रकाशमान होता है, प्रदीप्त होता है, और प्रज्ज्वलित होता है और पुनः उसी तरह से जैसे रात्रि की समाप्ति पर भोर का तारा प्रकाशमान होता है, प्रदीप्त होता है और प्रज्ज्वलित होता है, ठीक उसी प्रकार हे भिक्षुओ! धार्मिक पुण्य अर्जित करने के लिये अपनाया गया कोई भी उपाय मैत्री-भावना के सोलहवें भाग के भी बराबर नहीं है। मैत्री, जोकि चित्त की विमुक्ति है, उन्हें आत्मसात कर लेती है, जो प्रकाशमान होती है, जो प्रदीप्त होती है और प्रज्ज्वलित होती है।''

परिच्छेद-चार

धम्म तभी सद्धम्म हो सकता है, जब वह समस्त सामाजिक (भेद-भावों के) प्रतिबन्ध को मिटा दे

1. धम्म तभी सद्धम्म है, जब वह मनुष्य-मनुष्य के बीच के अवरोधों (दीवारों) को गिरा दे

1. एक 'आदर्श-समाज' क्या है? ब्राह्मणों के अनुसार वेदों ने आदर्श-समाज को परिभाषित किया है कि एक आदर्श-समाज क्या है और वेद भ्रम या गलती से परे होने से, उसी में वर्णित एकमात्र आदर्श-समाज है जिसे मनुष्य स्वीकार कर सकता है।
2. वेदों द्वारा प्रतिपादित आदर्श-समाज चातुर्वर्ण्य नाम से जाना जाता है।
3. वेदों के अनुसार ऐसे एक समाज में तीन शर्तें अवश्य पूरी करनी चाहियें।
4. यह चार वर्गों में निर्मित होना चाहिए-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र।
5. इन वर्गों के परस्पर संबंध क्रमिक असमानता के सिद्धांत द्वारा नियंत्रित होने चाहियें। दूसरे शब्दों में, ये सभी वर्ग समान स्तर पर नहीं हो सकते, बल्कि एक-दूसरे के ऊपर-नीचे होने चाहियें, सामाजिक स्तर और अधिकारों एवं सुविधाओं के विषय में।
6. ब्राह्मण सबसे ऊपर पर रखे गये थे; क्षत्रिय ब्राह्मणों से नीचे किन्तु वैश्य से ऊपर, वैश्य क्षत्रियों से नीचे किन्तु शूद्रों से ऊपर और शूद्र सबसे नीचे रखे गये थे।
7. चातुर्वर्ण का तीसरा महत्त्वपूर्ण लक्ष्य यह था कि प्रत्येक वर्ग को अपने-अपने पेशे में लगा रहना होगा। ब्राह्मणों का व्यवसाय पढ़ना-पढ़ाना और धार्मिक अनुष्ठानों के कार्य करना था। क्षत्रियों का पेशा शस्त्र धारण करना और युद्ध करना था। वैश्यों का पेशा व्यापार और व्यवसाय था। शूद्रों का पेशा तीनों वर्गों की दासोचित सेवा करना था।
8. कोई भी वर्ग दूसरे वर्गों के पेशे का अतिक्रमण और अनाधिकार हस्तक्षेप नहीं कर सकता है।
9. एक आदर्श-समाज का यह सिद्धांत ब्राह्मणों द्वारा अनुमोदित था और लोगों में प्रचारित किया गया था।
10. यह स्पष्ट ही है कि इस सिद्धांत की 'आत्मा' ही असमानता है। यह सामाजिक

असमानता ऐतिहासिक विकास का परिणाम नहीं है। असमानता ब्राह्मणवाद का शास्त्र सम्मत सिद्धांत है।

11. भगवान बुद्ध ने इसका जड़-मूल से विरोध किया था।

12. भगवान बुद्ध जातिवाद के प्रबलतम विरोधी और समानता के सबसे पहले व बड़े समर्थक थे।

13. जातिवाद और असमानता के पक्ष में ऐसा कोई भी तर्क नहीं है, जिसका उन्होंने खण्डन नहीं किया।

14. ऐसे अनेक ब्राह्मण थे, जिन्होंने इस विषय पर बुद्ध को चुनौती दी थी। किन्तु तथागत ने उन्हें पूर्णतया मौन कर दिया था।

15. अश्वलायन-सुत्त में कथा कही गयी है कि एक बार सब ब्राह्मणों ने इकट्ठे होकर अश्वलायन को भगवान बुद्ध के पास जाने और जातिवाद व असमानता के विरुद्ध उनके मतों का खण्डन करने के लिये राजी कर लिया था।

16. अश्वलायन भगवान बुद्ध के पास गया और उनके समक्ष ब्राह्मणों की श्रेष्ठता के पक्ष में अपना मत प्रस्तुत किया।

17. उसने कहा, "श्रमण गौतम! ब्राह्मण दावा करते हैं कि केवल ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ग के हैं, अन्य सभी वर्ग उनसे निम्न हैं, केवल ब्राह्मण ही शुक्ल वर्ण में उत्पन्न हैं, अन्य सभी वर्ग कृष्ण-वर्ण के हैं पवित्रता केवल ब्राह्मणों में वास करती है और अब्राह्मणों में नहीं और केवल ब्राह्मण ब्रह्मा के औरस पुत्र हैं, उसके मुँह से जन्मे, उसकी सन्तानें, और उसके उत्तराधिकारी हैं। इस पर गौतम क्या कहते हैं?"

18. भगवान बुद्ध के उत्तर ने अश्वलायन को बिल्कुल हतप्रद कर दिया।

19. भगवान बुद्ध ने कहा, "अश्वलायन, क्या ब्राह्मणों की ब्राह्मण पत्नियों को उनका मासिक धर्म नहीं होता, और गर्भ धारण नहीं करती, और लेटती नहीं तथा सन्तान का प्रसव नहीं करती? यह सब होते हुए भी क्या ब्राह्मण वास्तव में उन सबका दावा करते हैं, जो तुमने कहा है, जबकि वे स्वयं स्त्रियों से अन्य सभी लोगों के समान जन्मे हैं? फिर भी ब्राह्मण कहते है......।"

20. अश्वलान ने कोई उत्तर नहीं दिया।

21. तब भगवान बुद्ध ने अश्वलायन से एक दूसरा प्रश्न पूछा।

22. "मान लो, अश्वलायन, एक युवक क्षत्रिय एक ब्राह्मण कन्या के साथ सहवास करता है, तो वह संतान क्या होगी? क्या एक जानवर होगा या मनुष्य?"

23. पुनः अश्वलायन ने कोई उत्तर नहीं दिया।

24. "जहाँ तक नैतिक उन्नति की सम्भावना है, क्या इस राष्ट्र के केवल ब्राह्मण ही अपने मत में ऐसा प्रेम उत्पन्न करके घृणा या राग-द्वेष से मुक्त हो सकते हैं? दूसरे शेष तीन वर्गों में से कोई मनुष्य नहीं हो सकता।

25. नहीं सभी चारों वर्ग ऐसा कर सकते हैं, अश्वलायन ने उत्तर दिया।

26. भगवान बुद्ध ने पूछा, "अश्वलायन! क्या तुमने कभी सुना है, कि यवन और कम्बोज राष्ट्रों और अन्य निकटवर्ती राष्ट्रों में, केवल दो वर्ग ही हैं, यथा, मालिक और दास, और जहाँ एक मालिक एक दास बन सकता है तथा इसके विपरीत भी!"

27. "हाँ, मैंने ऐसा सुना है," अश्वलयान ने उत्तर दिया।

28. "यदि तुम्हारा चातुर्वर्ण एक आदर्श समाज है, तो यह सार्वभौमिक क्यों नहीं है?"

29. इन बातों में से किसी एक पर भी अश्वलयान अपने जातिवाद और असमानता के सिद्धांत का बचाव करने में समर्थ नहीं हो पाया और वह पूर्णता मौन हो गया था। उसे अंत में बुद्ध का शिष्य ही बनना पड़ा।

30. वासेट्ठ नामक एक ब्राह्मण ने तथागत के धर्म को ग्रहण कर लिया था। उसके धर्मान्तरण के लिये ब्राह्मण उसे बुरा-भला कहा करते थे।

31. एक दिन वह भगवान बुद्ध के पास गया और उनके सामने वह सब कुछ कह दिया, जो ब्राह्मण उसको कहा करते थे।

32. तब वासेट्ठ ने कहा, "भगवन्! ब्राह्मण लोग इस प्रकार कहते हैं, केवल एक ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ सामाजिक स्तर का है, अन्य निम्न-स्तर के हैं। केवल एक ब्राह्मण ही शुक्ल-वर्ण होता है, अन्य वर्ण साँवलें होते हैं। केवल ब्राह्मण ही शुद्ध वंश के होते हैं, अब्राह्मण नहीं। केवल ब्राह्मण ही ब्रह्म की असली संतान हैं, उसके मुख से जन्मे ब्रह्म की संतानें, ब्रह्म द्वारा रचित ब्रह्मा के उत्तराधिकारी हैं।"

33. "जहाँ तुम्हारा सम्बन्ध है, तुम अभिजात्य वर्ग का परित्याग करके उस निम्न वर्ग में सम्मिलित हो गये हो, सिरमुंडे भिक्षुओं में, गँवारों, उन साँवली चमड़ी वालों में, पैरों से जन्मों के वंशजों में सम्मिलित हो गये हो। ऐसा मार्ग अच्छा नहीं है, ऐसा मार्ग उचित नहीं हैं, यहाँ तक कि तुमने, उस उच्च वर्ग का परित्याग करके निम्न वर्ग से संगति की है, अर्थात् सिरमुण्डों, गँवारों, दासों, साँवली चमड़ी वालों, हमारी जाति की जूतियों से उत्पन्न वर्ग में।"

34. "भगवान्! इन शब्दावली में, ब्राह्मण मुझे भला-बुरा और अपशब्दों से मेरी निन्दा करते हैं और प्रचुर मात्रा में गाली देते हैं, इस तरह कहकर कोई कसर नहीं छोड़ते हैं।"

35. भगवान बुद्ध ने कहा, ''निश्चय ही, वासेट्ठ! ब्राह्मण पूर्णतया प्राचीन परम्परा को भूल गये हैं, जब वे ऐसा कहते हैं। इसके विपरीत अन्य वर्गों की सभी स्त्रियों के समान, ब्राह्मणों की पत्नियाँ बच्चों को उत्पन्न करती और पालन-पोषण करती देखी जाती हैं। और फिर भी सभी माता के गर्भ से उत्पन्न ब्राह्मण ही हैं, जो कहते हैं कि ब्राह्मण ब्रह्मा की असली संतान हैं, उसके मुँह से जन्मे हैं, उसकी संतानें, उसकी रचनायें, और उसके उत्तराधिकारी हैं। ऐसा कहकर वे ब्रह्मा की प्रकृति का एक उपहास करते हैं।''

36. एक बार एसुकारी ब्राह्मण बुद्ध के पास तीन प्रश्नों पर तर्क करने के लिये गया।

37. पहला प्रश्न जो उसने उठाया, पेशों के स्थायी वर्गीकरण से सम्बन्धित था। व्यवस्था के पक्ष में कहते हुए उसने प्रारम्भ किया, ''मैं आपसे एक प्रश्न पूछने के लिये आया हूँ। ब्राह्मण कहते हैं कि वे किसी की भी सेवा नहीं करेंगे, क्योंकि वे सर्वोपरि हैं। शेष सभी उनकी सेवा करने के लिये जन्में हैं।''

38. ''श्रमण गौतम! सेवा चार भाग में विभाजित है- (1) ब्राह्मणों द्वारा की जाने वाली सेवा, (2) क्षत्रियों द्वारा की जानेवाली सेवा, (3) वैश्यों द्वारा की जाने वाली सेवा और (4) शूद्रों द्वारा की जाने वाली सेवा, किन्तु शूद्र की सेवा तो कोई अन्य शूद्र ही कर सकता है? ''इस पर आदरणीय गौतम को क्या कहना है?''

39. भगवान बुद्ध से प्रश्न पूछ कर उसको उत्तर दिया गया, ''क्या सम्पूर्ण संसार ब्राह्मणों के सेवा के इस वर्गीकरण से सहमत है?'' भगवन् ने पूछा।

40. ''जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मैं न तो यह दावा करता हूँ कि सभी सेवायें की जानी चाहियें और न यह कि सभी सेवाओं को अस्वीकार किया जाना चाहिये। यदि सेवा एक मनुष्य को बुरा और अच्छा नहीं बनाती है, वह नहीं की जानी चाहिए; किन्तु यदि यह उसे बेहतर और बुरा नहीं बनाती तब वह भी की जानी चाहिये।''

41. ''यह मार्गदर्शक कसौटी है, जिस पर क्षत्रियों, ब्राह्मणों, वैश्यों, शूद्रों की सेवा के बारे में समान रूप से निर्णय किया जाना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को ऐसी सेवा को अस्वीकार कर देना चाहिये, जो उसे बुरा बनाती है और केवल ऐसी सेवा को स्वीकार करना चाहिए जो उसे एक बेहतर मनुष्य बनाती हैं।''

42. एसुकारी द्वारा उठाया गया अगला प्रश्न था, ''एक मनुष्य के स्तर के निर्धारण में कुल और वंश का एक स्थान क्यों नहीं होना चाहिए?''

43. इस प्रश्न पर भगवान बुद्ध ने इस प्रकार उत्तर दिया, ''जहाँ तक कुल के अभिमान की बात है, जिस कुल में एक मनुष्य जन्म ग्रहण करता है, वह

केवल उसका नाम निर्धारित करता है, भले ही वह क्षत्रिय या ब्राह्मण या वैश्य वंश में पैदा हुआ हो। जैसे कि अग्नि उस नाम से पुकारी जाती है, जिस ईंधन से वह प्रज्ज्वलित की जाती है, और इस तरह या तो एक लकड़ी की आग या एक चैली की आग, या एक लकड़ी की गाँठ की आग या एक उपले की आग कही जाती हैं। ठीक उसी प्रकार से मैं निश्चयपूर्वक कहता हूँ आर्य, श्रेष्ठ, सद्धम्म मनुष्य के लिये असली सम्पत्ति का स्रोत है, जन्म से तो केवल चार वर्णों में से किसी न किसी एक में उसका नाम निर्धारित होता है।''

44. ''न वंश परम्परा से, न अच्छी शक्ल होने और न धन होने से कोई अच्छा या बुरा होता है। अच्छे वंश में पैदा हुआ आदमी भी तो एक हत्यारा, एक चोर, एक व्यभिचारी, एक झूठा, एक चुगलखोर, एक कटुभाषी, एक गप्पी, एक लोभी मनुष्य, विद्वेषी या मिथ्या दृष्टि वाला मनुष्य होता है। इसलिए मैं दावा करता हूँ कि श्रेष्ठ वंश में उत्पन्न कोई अच्छा मनुष्य नहीं होता या तुम एक श्रेष्ठ वंश के मनुष्य को पाओगे जो इन सभी दुर्गुणों से निर्दोष है; और इसलिये, मैं दावा करता हूँ कि यह वंश-परंपरा का कारण नहीं है जो एक मनुष्य को बुरा बनाती है।''

45. तीसरा प्रश्न जो एसुकारी ने उठाया था, जो प्रत्येक वर्ग के लिये नियत जीविका अर्जित करने के तरीकों से सम्बन्धित था।

46. एसुकारी ब्राह्मण ने तथागत ने कहा, ''ब्राह्मण चार तरह के जीविका के साधनों का विधान करते हैं; ब्राह्मणों के लिये भिक्षा से, क्षत्रियों के लिये उनके तीर-कमान से, वैश्यों के लिए व्यापार, कृषि करने व और पशु-पालन से, और शूद्रों के लिये उसके कंधों से लटकी बँहगी पर फसल ढोने से। यदि इनमें से कोई भी किसी अन्य पेशे के लिये अपना पेशा छोड़ता है, वह ऐसा काम करता है जो उसे नहीं करना चाहिये, यह ठीक वैसे ही है जैसे कोई चौकीदार किसी दूसरे की सम्पत्ति पर अपना अधिकार कर ले, जो कि उसकी नहीं है। इस पर श्रमण गौतम को क्या कहना है?''

47. ''क्या सम्पूर्ण संसार इस ब्राह्मणी वर्गीकरण से सहमत है?'' तथागत ने पूछा।

48. ''नहीं,'' एसुकारी ने उत्तर दिया।

49. वासेट्ठ ने तथागत से कहा, ''जो महत्त्वपूर्ण है वह है उच्च आदर्श, न कि श्रेष्ठ वंश।''

50. ''कोई जाति नहीं, कोई असमानता नहीं, कोई ऊंच-नीच नहीं, कोई हीनता नहीं, सभी समान हैं। यही है जिसकी तथागत ने देशना दी।''

51. ''स्वयं को दूसरों के साथ एक कर दो जैसे वे हैं, वैसा मैं हूँ। जैसा मैं हूँ, वैसे वे हैं,'' ऐसा बुद्ध ने कहा।

2. धम्म तभी सद्धम्म है, जब वह शिक्षा दे कि मनुष्य का जन्म से नहीं बल्कि योग्यता के आधार पर मूल्याकन किया जाना चाहिए

1. ब्राह्मणों द्वारा उपदेशित चातुर्वर्ण का सिद्धांत जन्म पर आधारित था।
2. कोई एक ब्राह्मण माता-पिता से जन्मा है इसलिए वह ब्राह्मण है। एक क्षत्रिय इसलिए क्षत्रिय है, क्योंकि वह क्षत्रिय माता-पिता से जन्मा है। कोई एक वैश्य इसलिए वैश्य है क्योंकि वह वैश्य माता-पिता से जन्मा है। और कोई एक शूद्र इसलिए शूद्र है, क्योंकि कोई शूद्र माता-पिता से जन्मा है।
3. ब्राह्मणों के अनुसार एक मनुष्य की योग्यता जन्म पर आधारित थी और किसी पर नहीं।
4. यह सिद्धांत बुद्ध के लिये उतना ही अरुचिकार था जितना कि चातुर्वर्ण का सिद्धांत।
5. उनका सिद्धांत ब्राह्मणों के सिद्धांत के ठीक विपरीत था। उनका सिद्धांत यह था कि मनुष्य का मूल्यांकन जन्म से नहीं, बल्कि योग्यता से हो।
6. जिस अवसर पर बुद्ध ने अपना सिद्धांत प्रतिपादित किया था, उसका स्वयं अपना विशेष महत्त्व है।
7. एक बार तथागत अनाथपिण्डिक के जेतवना राम में ठहरे हुए थे। एक दिन पूर्वाह्न में उन्होंने अपना भिक्षा-पात्र लिया और भिक्षा के लिये श्रावस्ती में प्रवेश किया।
8. उस समय एक यज्ञाग्नि प्रज्ज्वलित थी और आहुति तैयार की जा रही थी। तब तथागत, श्रावस्ती में एक घर से दूसरे घर भिक्षाटन के लिए जाते हुए अग्गिक के घर पहुँचे।
9. तथागत को कुछ दूरी से आते हुए देख कर, ब्राह्मण क्रोधित हो गया और बोला, ''वहीं ठहर, ओ मुण्डक! वहीं, ठहर, हे दरिद्र भिक्षु! वहीं ठहर, दुखी बृसल।''
10. जब वह इस प्रकार बोला, तथागत ने उसे सम्बोधित किया, ''क्या तुम जानते हो, हे ब्राह्मण! कौन सा बृसल (नीच) है, या कौन सी ऐसी बातें हैं, जो एक मनुष्य को बृसल (नींच) बनाती हैं।''
11. ''नहीं गौतम! मैं नहीं जानता कि कौन बृसल होता है। और अमल में मैं नहीं जानता कि क्या करने से एक मनुष्य बृसल बनता है।''
12. तथागत ने कहा कि यदि तुम यह जान लोगे कि बृसल कौन होता है तो इससे

तुम्हारी कुछ हानि नहीं होगी। ''अब जब तुम इसे जानने के लिए जोर दे रहे हो तो,'' ब्राह्मण अग्गिक ने कहा, ''अच्छा कहो और स्पष्ट करो।''

13. ब्राह्मण के द्वारा इच्छा प्रगट करने पर तथागत ने उससे कहा–

14. ''मनुष्य जो क्रोधी, लोभी, अनैतिक, चुगलखोर, मिथ्या दृष्टि वाला, और वंचक हो, तुम उसे एक बृसल जानो।''

15. ''जो कोई भी इस संसार में एकज या द्विज (पक्षी आदि) सजीव प्राणियों को हानि पहुँचाता है, जिसमें मन में प्राणियों के लिये कोई करुणा नहीं है–तुम उसे बृसल जानो।''

16. ''जो कोई भी गाँवों और झोपड़ियों को नष्ट करता और घेर लेता है, और एक अत्याचारी के रूप में जाना जाता है–तुम उसे बृसल जानो।''

17. ''भले ही गाँव में या जंगल में जो कोई भी चोरी द्वारा उन वस्तुओं को अपनी बना लेता है जो दूसरों की हैं या जो दी नहीं गयी हैं–तुम उसे बृसल जानो।''

18. ''वास्तव में जो कोई भी ऋण लेकर वापस नहीं करता, जब दबाव डाला जाता है, तो यह कहते हुए कि मुझ पर तुम्हारा कोई ऋण नहीं है, भाग जाता है–तुम उसे बृसल जानो।''

19. ''क्षुद्र धनराशि की इच्छा से जो कोई भी सड़क पर अकेले जाते हुए एक मनुष्य की हत्या करता है, और उसे लूटता है–तुम उसे बृसल जानो।''

20. ''जो कोई भी स्वयं अपने लिये, या दूसरों के लिए या सम्पत्ति के लिए जब एक गवाह के रूप में उससे पूछे जाने पर झूठी गवाही देता है–तुम उसे एक बृसल जानो।''

21. ''जो कोई भी बल से या सहमति से, सम्बन्धियों या मित्रों की पत्नियों के साथ अनाचार करता है–तुम उसे एक बृसल जानो।''

22. ''जो कोई भी, धनी होने पर भी, वृद्ध माता और पिता को सहारा नहीं देता तुम उसे एक बृसल जानो।''

23. ''जो कोई भी, जब किसी से कुशलता के विषय में जानना चाहता है, तो अकुशलता का परामर्श देता है तथा रहस्यमय तरीके से शिक्षा देता है–तुम उसे एक बृसल मानो।''

24. ''कोई भी जन्म से बृसल नहीं होता–कोई भी जन्म से ब्राह्मण होता है।''

25. यह सुनकर, तथागत को कहे गये अपशब्दों के लिये अग्गिक बहुत लज्जित हुआ।

3. धम्म तभी सद्धम्म है जब वह मनुष्य-मनुष्य के मध्य समानता की अभिवृद्धि करे

1. मनुष्य असमान ही जन्म लेते हैं।
2. कुछ हृष्ट-पुष्ट होते हैं, कुछ कमजोर होते हैं।
3. कुछ अधिक बुद्धिमान होते हैं, कुछ कम या बिल्कुल नहीं होते।
4. कुछ के पास अधिक क्षमता होती है, कुछ के पास कम।
5. कुछ खाते-पीते होते हैं, कुछ दरिद्र होते हैं।
6. सभी को जीवन-संघर्ष में प्रवेश करना पड़ता है।
7. जीवन-संघर्ष में यदि असमानता को स्वाभाविक रूप से स्वीकार कर लिया जाये, तो सबसे कमजोर सदैव ही हार जायेगा।
8. क्या इस 'असमानता' के नियम को जीवन का नियम बनने दिया जाना चाहिये?
9. कुछ इस आधार पर सकारात्मक उत्तर 'हाँ' में देते हैं। उनका तर्क 'जीवन-संघर्ष' में टिकने के लिए अधिक योग्य होगा, वही टिका रहेगा।
10. प्रश्न है, "क्या योग्यतम आदमी ही समाज की दृष्टि से श्रेष्ठतम है?"
11. कोई भी इसका निश्चयात्मक उत्तर नहीं दे सकता है।
12. इसी सन्देह के कारण धम्म 'समानता' का उपदेश देता है, क्योंकि समानता श्रेष्ठतम को बने रहने में सहायता कर सकती है, भले ही श्रेष्ठतम योग्यतम नहीं भी हो सकती।
13. समाज 'श्रेष्ठतम' आदमी को चाहता है, 'योग्यतम' को नहीं।
14. इसलिये, यही प्राथमिकता है, जिसके कारण धम्म समानता का समर्थक है।
15. भगवान बुद्ध का यही दृष्टिकोण था और इसी कारण से उन्होंने प्रमाणित किया कि धम्म जो समानता का उपदेश नहीं देता है अपनाने योग्य नहीं है।
16. क्या आप एक ऐसे विचारों का सम्मान कर सकते हैं या विश्वास कर सकते हैं, जो उन कार्यों की सलाह देता है, जो दूसरों को दुख पहुँचाकर स्वयं के लिये सुख प्राप्त करने की शिक्षा देते हैं, या स्वयं को दुख पहुँचाकर दूसरों के लिये सुख देने की शिक्षा देते हैं, या स्वयं और दूसरों, दोनों को दुख पहुँचाने की शिक्षा देते हैं?

17. क्या वह अधिक श्रेष्ठतर धम्म नहीं है, जो स्वयं के सुख के साथ ही साथ दूसरों के सुखों में वृद्धि करता है और किसी भी प्रकार के अत्याचार को सहन नहीं करता?

18. ये कुछ प्रासंगिक प्रश्न थे जो उन्होंने उन ब्राह्मणों से पूछे जो समानता के विरोधी थे।

19. भगवान बुद्ध का धम्म मनुष्य की स्वयं अपनी पुण्य-परक मनोवृत्ति में से उत्पन्न होने वाला पूर्णतया न्याय-संगत 'धम्म' है।

अध्याय–चार

धर्म और धम्म

पहला भाग	–	धर्म और धम्म
दूसरा भाग	–	किस प्रकार शाब्दिक समानता तात्विक भेद को छिपाये रखती है।
तीसरा भाग	–	बौद्ध जीवन–पद्धति
चौथा भाग	–	उनका प्रवचन

पहला भाग

धर्म और धम्म

1. धर्म क्या है?
2. धम्म धर्म से कैसे भिन्न है?
3. धर्म का उद्देश्य और धम्म का उद्देश्य
4. नैतिकता और धर्म
5. धम्म और नैतिकता
6. केवल नैतिकता ही पर्याप्त नहीं है। उसे पवित्र और व्यापक भी होना चाहिए।

1. धर्म क्या है?

1. 'धर्म' (Religion) शब्द एक अनिश्चित एवं अस्पष्ट शब्द है, जिसका कोई निश्चित अर्थ नहीं है।
2. 'धर्म' एक शब्द है, जिसके अनेक अर्थ हैं।
3. इसका कारण यह है कि 'धर्म' अनेक अवस्थाओं से होकर गुजरा है। प्रत्येक अवस्था में धारणा को धर्म कहा जाता है, हालाँकि एक अवस्था में धारणा का वही अर्थ नहीं रहा है जो उसका अर्थ पूर्व अवस्था में था या आने वाली अवस्था में होनेवाला होगा।
4. 'धर्म' की अवधारणा कभी निश्चित नहीं रही है।
5. यह हर काल में बदलती रहती है।
6. एक समय ऐसा था, जब बिजली, वर्षा और बाढ़, जिनका घटित होना आदि मानव की समझ से परे था, इन तथ्यों को नियंत्रित करने के लिये किया जाने वाला कोई भी अनूठा कृत्य जादू कहा जाता था। अत: 'धर्म' जादू के रूप में पहचाना जाने लगा।
7. तब धर्म के विकास की दूसरी अवस्था आयी। इस अवस्था में धर्म की पहचान मान्यताओं, कर्म-काण्डों, रीति-रिवाजों, प्रार्थनाओं और बलियों से की गयी।
8. किन्तु धर्म की यह अवधारणा व्युत्पन्न (अमौलिक व नकली) है।
9. 'धर्म' का केन्द्र बिन्दु इस मान्यता के साथ प्रारम्भ होता है कि कोई ऐसी शक्ति विद्यमान है, जो इन तथ्यों का कारण है, जिन्हें आदि-मानव नहीं जानता था और नहीं समझ सकता था। इस (दूसरी) अवस्था में जादू ने अपना स्थान खो दिया।
10. आरम्भ में यह शक्ति अपकारी थी। किन्तु बाद में यह अनुभव किया गया कि वह परोपकारी भी हो सकती है।
11. ये विश्वास व मान्यतायें, कर्म-काण्ड, रीति-रिवाज और बलियाँ एक परोपकारी शक्ति को संतुष्ट करने और एक क्रोधी शक्ति को शान्त करने, दोनों के लिये ही आवश्यक थे।
12. आगे चलकर वह शक्ति 'ईश्वर', 'परमात्मा' या 'सृष्टिकर्त्ता' कहलाई।
13. तब 'धर्म' की तीसरी अवस्था आयी जब यह माना जाने लगा कि यही ईश्वर

है, जिसने इस संसार और मानव की सृष्टि की थी।

14. इसके बाद 'धर्म' में मान्यता भी प्रचलित हुई कि मनुष्य के पास एक आत्मा है और आत्मा शाश्वत है और संसार में मनुष्य के कार्यों के लिये 'ईश्वर' के प्रति उत्तरदायी है।

15. संक्षेप में, यह धर्म की धारणा के विकास का इतिहास है।

16. अब धर्म का यही अभिप्राय है और यह अब यही दर्शाता है-ईश्वर में विश्वास, आत्मा में विश्वास, ईश्वर की पूजा, भ्रमित आत्मा का सुधार, प्रार्थनाओं, रीति-रिवाजों, बलियों, इत्यादि द्वारा ईश्वर को सन्तुष्ट करना।

2. धम्म से धर्म कैसे भिन्न है?

1. भगवान बुद्ध जिसे 'धम्म' कहते हैं, वह धर्म कहे जाने से मूलतः भिन्न है।

2. भगवान बुद्ध जिसे धम्म कहते हैं, वह उसके सदृश है, जिसे धर्मतत्त्वज्ञ यूरोपियन 'रिलिजन' (Religion) या धर्म कहते हैं।

3. किन्तु दोनों के मध्य कोई विशेष समानता नहीं है। दूसरी ओर, दोनों के मध्य अन्तर बहुत अधिक है।

4. इसलिए कुछ यूरोपियन धर्मतत्त्वज्ञ भगवान बुद्ध के धम्म को रिलिजन स्वीकार करने से इन्कार करते हैं।

5. इस पर खेद करने की आवश्यकता नहीं है। हानि उनकी ही है। इससे भगवान बुद्ध के 'धम्म' की कोई क्षति नहीं है। बल्कि यह स्पष्ट करता है कि रिलिजन में क्या कमी है।

6. इस विवाद में पड़ने की अपेक्षा यह अच्छा है कि हम यह बताएं कि 'धम्म' का विचार क्या है और वह धर्म या रिलिजन से कैसे भिन्न है।

7. यह कहा जाता है कि धर्म या रिलीजन व्यक्तिगत है और मनुष्य को इसे अपने तक ही रखना चाहिये। किसी मनुष्य को इसकी सार्वजनिक जीवन में भूमिका नहीं निभानी चाहिये।

8. इसके विपरीत 'धम्म' सामाजिक है। यह मूलभूत रूप से और आवश्यक रूप से ऐसा है।

9. धम्म सदाचरण है, जिसका अर्थ जीवन के सभी क्षेत्रों में एक मनुष्य का और

दूसरे मनुष्य के प्रति व्यवहार है।

10. इससे यह स्पष्ट होता है कि एक मनुष्य को यदि वह अकेला है, तो उसे 'ध म्म' की आवश्यकता नहीं है।

11. किन्तु जब दो मनुष्य एक दूसरे से परस्पर सम्बन्ध के साथ रहते हैं, तो उन्हें धम्म के लिए स्थान अवश्य खोजना होगा, भले ही वे इसे चाहें या न चाहें। उन दोनों में से कोई भी इससे बच नहीं सकता।

12. दूसरे शब्दों में, समाज का कार्य 'धम्म' के बिना नहीं चल सकता।

13. समाज के तीन विकल्पों में से एक का चुनाव करना ही पड़ेगा।

14. शासन के साधन हेतु समाज किसी भी धम्म को न रखने का चुनाव कर सकता है। यदि वह शासन का साधन नहीं है तो धम्म कुछ भी नहीं है।

15. इसका अर्थ है समाज अराजकता के पथ का चुनाव करता है।

16. दूसरे, समाज पुलिस का अर्थात् शासन के साधन हेतु तानाशाही का चुनाव कर सकता है।

17. तीसरे, समाज धम्म और जब कभी लोग धम्म का पालन करने में असफल रहें, तो दण्डाधिकारी का चुनाव कर सकता है।

18. अराजकता और तानाशाही में स्वतन्त्रता नहीं है।

19. केवल तीसरे विकल्प में ही स्वतन्त्रता जीवित रहती है।

20. इसलिए जो स्वतन्त्रता चाहते हैं। उन्हें धम्म रखना अनिवार्य है।

21. अब धम्म क्या है? और धम्म की आवश्यकता क्यों है? भगवान बुद्ध के अनुसार धम्म के दो प्रधान तत्त्व हैं–प्रज्ञा और करुणा।

22. प्रज्ञा क्या है? और प्रज्ञा क्यों? प्रज्ञा समझ या निर्मल बुद्धि है। भगवान बुद्ध ने प्रज्ञा को अपने धम्म की दो आधारशिलाओं में से एक बनाया था क्योंकि वे अंधविश्वासों के घर के लिये कोई गुंजाईश नहीं छोड़ना चाहते थे।

23. करुणा क्या है? और करुणा क्यों? करुणा प्रेम, दया (मैत्री) है। क्योंकि इसके बिना समाज न तो जीवित रह सकता और न विकास कर सकता है, इसीलिये भगवान बुद्ध ने इसे अपने धम्म की दूसरी आधारशिला बनाया था।

24. भगवान बुद्ध के 'धम्म' की यही परिभाषा है।

25. 'धम्म' की यह परिभाषा धर्म की परिभाषा से कितनी भिन्न है?

26. भगवान बुद्ध द्वारा दी गयी 'धम्म' की परिभाषा कितनी प्राचीन है, फिर भी कितनी आधुनिक है।

27. कितनी आदिम फिर भी कितनी मौलिक।

28. किसी से भी उधार नहीं ली गयी, फिर भी कितनी सत्य।

29. प्रज्ञा और करुणा का एक विशिष्ट सम्मिश्रण तथागत का धम्म है।

30. धर्म और धम्म के मध्य यही अन्तर है।

3. 'धर्म' का उद्देश्य और 'धम्म' का उद्देश्य

1. 'धर्म' या 'रिलीजन' का उद्देश्य क्या है? 'धम्म' का उद्देश्य क्या हैं? क्या वे एक ही और समान हैं? या वे भिन्न-भिन्न हैं?

2. इन प्रश्नों के उत्तर दो सूक्तों में पाये जा सकते हैं, एक जिसमें भगवान बुद्ध और सुनक्खत्त के मध्य तथा दूसरा बुद्ध और पोट्ठपाद के मध्य हुआ संवाद।

3. तथागत एक बार मल्लों के मध्य, उनके अनुपिय नगर में विहार करते थे।

4. तब यथागत ने पूर्वाह्न में अपना चीवर धारण कर और अपना भिक्षा-पात्र लेकर भिक्षा के लिये नगर में प्रवेश किया।

5. रास्ते में उन्होंने सोचा कि भिक्षा हेतु जाने के लिए अभी काफी जल्दी है। अतः वे विहार भूमि चले गये, जहाँ भग्गव परिव्राजक निवास करते थे और उसे आवाज दी।

6. तथागत को आता देख कर भग्गव उठ खड़ा हुआ, अभिवादन किया और बोला, "कृपया! सम्भवतः आपको बैठना अच्छा लगे, तो यह एक आसन आपके लिये तैयार है।

7. उस पर तथागत बैठ गये और भग्गव एक अपेक्षाकृत नीचा आसन लेकर उनके पास ही बैठ गया। इस प्रकार बैठकर परिव्राजक भग्गव तथागत से इस प्रकार बोला :

8. "कुछ दिन हुए, भगवान्! काफी दिनों पहले, लिच्छवी का सुनक्खत्त मुझे मिलने आया था और इस प्रकार बोला था: मैंने अब तथागत को छोड़ दिया है, भग्गव! अब मैं और अपने गुरु के रूप में उनके अधीन नहीं रह रहा। क्या वास्तव में यह ठीक ही है, जैसा कि उसने कहा है?"

9. ''भग्गव! यह ठीक ऐसा ही है, जैसा सुनक्खत्त ने कहा है,'' तथागत ने उत्तर दिया।

10. इसके आगे तथागत ने ''कुछ दिन हुए, भग्गव, काफी दिनों पहले, नुसक्खत्त मुझसे मिलने आया था और इस प्रकार बोला, 'अब मैं तथागत के शिष्यत्व का त्याग करता हूं। तथागत, मैं अब से अपने गुरु के रूप में उनके अधीन नहीं रहूँगा।' जब उसने मुझसे यह कहा, मैंने उससे कहा, 'किन्तु अब, सुनक्खत्त! क्या मैंने कभी तुमसे कहा था, आ, सुनक्खत्त! (मेरे शिष्य के रूप में) मेरे अधीन रह।''

11. ''नहीं भगवान! ऐसा आपने कभी नही कहा।''

12. ''या कभी तूने मुझसे कहा था कि मैं तथागत को अपने गुरु के रूप में स्वीकार करता हूं?''

13. ''नहीं, भगवान! मैंने ऐसा कभी नहीं कहा।''

14. ''तब मैंने उससे पूछा, 'जब मैंने तुमसे कुछ नहीं कहा, और न तूने भी मुझसे नहीं कहा, तो तू क्या है? और मैं क्या हूँ, जो तू मुझे त्यागने की बात करता है? मूर्ख कहीं के, इसमें स्वयं तेरा ही दोष नहीं है?''

15. सुनक्खत्त बोला, ''लेकिन भगवान! आप मुझे सामान्य मनुष्यों की शक्ति से परे काई अद्‌भुत चमत्कार (प्रातिहार्य) नहीं दिखाते हैं।''

16. ''क्यों, सुनक्खत्त! क्या मैंने कभी तुझसे कहा था, 'आ! मुझे अपने गुरु के रूप में स्वीकार करो, सुनक्खत्त! मैं तुझे सामान्य मनुष्यों की शक्ति से परे कोई अद्‌भुत चमत्कार (प्रातिहार्य) दिखाऊँगा?''

17. ''भगवान! ऐसा आपने कभी नहीं कहा।''

18. ''या सुनक्खत्त कभी तूने मुझसे कहा था, 'मैं तथागत को अपने गुरु के रूप में स्वीकार करने को तैयार हूँ, क्योंकि वे मुझे सामान्य मनुष्यों की शक्ति से परे अद्‌भुत चमत्कार (प्रातिहार्य) दिखलायेंगे?''

19. ''भगवान! नहीं। मैंने ऐसा नहीं कहा था।''

20. ''जब न मैंने तुझसे कहा, और तूने ही मुझसे कहा, तो मूर्ख मनुष्य, जो तू मुझे त्यागने की बात करता है? तू क्या सोचता है, सुनक्खत्त? चाहे सामान्य मनुष्य की शक्ति से परे प्रातिहार्य दिखाए जाएं या नहीं, क्या मेरे धम्म की शिक्षा देने का यही उद्देश्य नहीं है कि इसका अनुसरण करने वाले को आगे से दुखों का सम्पूर्ण विनाश को प्राप्त हो सकेगा?''

21. ''भगवान! चाहे इस प्रकार प्रतिहार्य दिखाए जाए या नहीं, निस्सन्देह यह ही उद्देश्य है, जिसके लिये तथागत ने धम्म की शिक्षा दी है।''

22. ''सुनक्खत्त! तब उस उद्देश्य के लिये इसका कोई महत्त्व नहीं है, चाहे प्रतिहार्य दिखाए जाए या नहीं, तो तुम्हारे लिये उनका प्रदर्शन किस काम का होगा? देख, मूर्ख मनुष्य! इसमें स्वयं तुम्हारा कितना अधिक दोष है।''

23. ''किन्तु, तथागत ने मुझको सृष्टि के आरम्भ के विषय में कुछ नहीं बताया है।''

24. ''क्यों सुनक्खत्त! क्या मैंने तुम्हें कभी कहा था: आ, सुनक्खत्त! मेरे शिष्य बन जा और मैं तुझे सृष्टि का आरम्भ बताऊँगा?''

25. ''भगवान! आपने नहीं कहा।''

26. ''या कभी तूने मुझसे कहा था, कि मैं तथागत का शिष्य बनूँगा, क्योंकि वे मुझे सृष्टि का आरंभ बतायेंगे?''

27. ''भगवान! मैंने नहीं कहा था।

28. ''जब न मैंने ही तुझे कहा, और न तू ही मुझे कुछ कहा, तो तू क्या है और मैं क्या हूँ, मूर्ख मनुष्य, कि तू उस आधार पर मुझे त्यागने की बात करता है? तू क्या सोचता है, सुनक्खत्त? चाहे सृष्टि का प्रारम्भ बताया जाये, या नहीं बताया जाये क्या, मेरे धम्म की शिक्षा का यही उद्देश्य नहीं कि इसका अनुसरण करने वाला अपने दु:ख का नाश कर सकेगा?''

29. ''भगवान चाहे आप सृष्टि के आरम्भ का पता बताएं और चाहे न बताएं। उन्हें बतायें या नहीं, निस्सन्देह यह ही उद्देश्य है, जिसके लिये तथागत ने धम्म की शिक्षा दी है, वह अपने दुख का नाश करेगा।''

30. ''जब, सुनक्खत्त! उस उद्देश्य के लिये इसका कोई महत्त्व ही नहीं है चाहे सृष्टि के आरम्भ का पता बताया जाए या नहीं, तो तेरे लिए सृष्टि के आरम्भ का बताना जाना, किस काम का होगा?''

31. इससे यह स्पष्ट होता है कि धर्म (रिलीजन, मज़हब) का तो सृष्टि के आरम्भ के बताए जाने से सरोकार है, धम्म का एकदम नहीं।

2. तथागत और पोट्ठपाद के बीच हुई चर्चा में धर्म और धम्म के मध्य सामने आई अन्य भिन्नताएँ

1. तथागत एक बार श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में ठहरे हुए थे। उस समय पोट्ठपाद नामक परिव्राजक रानी मल्लिका के उद्यान में दार्शनिक सिद्धान्तों की सामान्य व्यवस्थाओं पर चर्चा के लिये बने सभागाार में निवास कर रहा था।

2. उनके साथ अनुयायी परिव्राजकों की एक काफी बड़ी संख्या थी, कोई लगभग तीन सौ। तथागत और पोट्ठपाद के मध्य एक संवाद हुआ। पोट्ठपाद ने पूछाः

3. "तब, भगवान! यदि ऐसा ही है, तो मुझे कम से कम इतना बतायें 'क्या संसार शाश्वत् है? क्या केवल यही सत्य है, और अन्य मत मूर्खता मात्र हैं'?"

4. तथागत ने उत्तर दिया, "पोट्ठपाद! मैंने कब कहा है कि यही मत ठीक है कि 'संसार अनंत है' और सब मूर्खता है, इस विषय पर मैंने कोई मत व्यक्त नहीं किया है।"

5. तब, उन्हीं शब्दों में, पोट्ठपाद ने निम्नलिखित सभी प्रश्नों को पूछा :

(i) 'क्या संसार शाश्वत नहीं है?'

(ii) 'क्या संसार ससीम है?'

(iii) 'क्या संसार असीम है?'

(iv) 'क्या आत्मा और शरीर एक ही हैं?'

(v) 'क्या आत्मा एक शरीर और शरीर भिन्न-भिन्न है।'

(vi) 'क्या तथागत मरणोपरांत पुनः जन्म लेते हैं?'

(vii) 'क्या वह मरणोपरांत पुनः जन्म नहीं लेते हैं?'

(viii) 'क्या वह मरणोपरांत पुनः जन्म लेते हैं और नहीं भी लेते हैं?'

(ix) 'क्या वह मरणोपरांत न तो पुनः जन्म लेते हैं और ही पुनः जन्म नहीं लेते हैं?'

6. और इस प्रकार प्रत्येक प्रश्न का तथागत ने समान ही एक ही उत्तर दियाः

7. "पोट्ठपाद! यह भी एक ऐसा विषय है, जिस पर मैंने कोई मत व्यक्त नहीं किया है।"

8. "किन्तु तथागत ने इन विषयों पर कोई मत व्यक्त क्यों नहीं किया?"

9. "क्योंकि इन प्रश्नों का उत्तर देने से किसी को कुछ लाभ नहीं है। यह 'धम्म' से सम्बन्धित नहीं है, और यहाँ तक कि उचित आचरण के तत्वों को सुधारने में सहायक नहीं है, और न तो विराग में और न राग-द्वेष से शुद्धि में, और न शान्ति में, और न हृदय को शान्त करने में, और न वास्तविक ज्ञान में, और न (मार्ग की उच्च अवस्थाओं) की सूक्ष्मदृष्टि में, और न निर्वाण में सहायक हैं। इसीलिये मैंने इन विषयों पर कोई मत व्यक्त नहीं किया है।"

10. पोट्ठपाद ने पुनः पूछा, "तब तथागत ने किस विषयों पर व्याखित करना निर्धारित किया हैं?"

11. "पोट्ठपाद! मैंने प्रतिपादित किया है, दुख क्या है; मैंने प्रतिपादित किया है दुख का समुदय (मूल कारण) क्या है; मैंने प्रतिपादित किया है दुख का निरोध क्या है, मैंने प्रतिपादित किया है वह मार्ग क्या है जिसके द्वारा दुख के निरोध (अन्त) तक पहुँचा जा सकता है।"

12. "और तथागत ने इन विषयों पर तथागत ने अपने उपदेश (व्याख्यान) क्यों नहीं दिए हैं?"

13. "क्योंकि पोट्ठपाद! जिन प्रश्नों का समाधान किया है वे प्रश्न लाभ के लिये उपयुक्त हैं, 'धम्म' से सम्बन्धित हैं, उचित आचरण के प्रारम्भ में सहायक हैं, विराग में, राग-द्वोष से शुद्धिकरण में, हृदय को शान्त करने में, वास्तविक ज्ञान में, मार्ग की उच्च अवस्थाओं की सूक्ष्मदृष्टि में और निर्वाण में सहायक हैं। इसलिये, पोट्ठपाद, मैंने ऐसा वक्तव्य प्रस्तुत किया है।"

14. इस संवाद में यह स्पष्ट हो गया है कि धर्म (रिलीजन, मज़हब) की क्या विषय वस्तु है और धम्म का क्या विषय है। दोनों में जमीन-आसमान का अन्तर है।

15. धर्म का उद्देश्य संसार की उत्पत्ति की व्याख्या करना है। 'धम्म' का उद्देश्य संसार का पुनर्निर्माण करना है।

4. नैतिकता और धर्म (रिलीजन या मज़हब)

1. नैतिकता का धर्म (रिलीजन या मज़हब) में क्या स्थान है?

2. वास्तव में सत्य यह है कि नैतिकता का धर्म (रिलीजन या मज़हब) में कोई स्थान नहीं है।

3. धर्म (रिलीजन या मज़हब) के अन्तर्गत ईश्वर, आत्मा, प्रार्थनायें, पूजा, कर्म-काण्ड, रीति-रिवाज और बलि-कर्म समाहित हैं।

4. नैतिकता केवल उसी मध्य आती है जहाँ मनुष्य-मनुष्य के सम्पर्क में आता है।
5. धर्म (रिलीजन या मज़हब) में नैतिकता मात्र शान्ति और व्यवस्था की स्थापना के लिये एक सहासक हवा के झोंके की तरह आती है।
6. धर्म एक तिकोना टुकड़ा है।
7. अपने पड़ोसी के प्रति अच्छे बनो क्योंकि तुम दोनों ईश्वर के बच्चे हो।
8. यही धर्म रिलीजन या मज़हब का तर्क है।
9. प्रत्येक धर्म (रिलीजन या मज़हब) नैतिकता का उपदेश तो देता है, किन्तु नैतिकता धर्म (रिलीजन या मज़हब) का मूलाधार नहीं है।
10. यह इसके साथ जुड़ा एक रेल का डिब्बा मात्र है। यह अवसर की आवश्यकता के अनुसार जोड़ दिया और पृथक कर दिया जाता है।
11. इसलिए धर्म (रिलीजन या मज़हब) में नैतिकता का कार्य आकस्मिक और प्रासंगिक है। जिसका कभी-कभी प्रयोजन रहता है।
12. अतः धर्म (रिलीजन या मज़हब) में नैतिकता प्रभावकारी नहीं है।

5. धम्म और नैतिकता

1. धम्म में नैतिकता का क्या स्थान है?
2. सीधा उत्तर है नैतिकता धम्म है और धम्म नैतिकता है।
3. दूसरे शब्दों में यद्यपि धम्म में ईश्वर का कोई स्थान नहीं है, तो भी धम्म में 'नैतिकता' का वही स्थान है जो धर्म में 'ईश्वर' का।
4. धम्म में प्रार्थनाओं, तीर्थ-यात्राओं, कर्म-काण्डों, रीति-रिवाजों या बलियों के लिए कोई स्थान नहीं है।
5. 'नैतिकता' ही धम्म का सार है। इसके बिना कोई 'धम्म' नहीं है।
6. धम्म में जो नैतिकता है, वह मनुष्य-मनुष्य के बीच मैत्री करने की सीधी आवश्यकता से उत्पन्न होती है।
7. इसमें ईश्वर की स्वीकृति की आवश्यकता नहीं है। यह ईश्वर को प्रसन्न करने के लिये नहीं है कि मनुष्य नैतिकता का पालन करें। यह स्वयं उसके अपने कल्याण के लिये है कि एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से मैत्री करे।

6. केवल नैतिकता ही पर्याप्त नहीं है, इसे पवित्र और व्यापक भी होना चाहिए

1. एक वस्तु कब पवित्र होती है? वस्तु पवित्र क्यों होती है?
2. प्रत्येक मानव-समाज में, चाहे वह आदिम अवस्था का हो या आधुनिक, कुछ ऐसी वस्तुयें या मान्यतायें हैं, जिन्हें वह पवित्र मानता है और कुछ और अपवित्र।
3. जब एक वस्तु या मान्यता पवित्र होने की अवस्था तक पहुँच जाती हैं तो इसका अर्थ है कि उसका उल्लंघन नहीं हो सकता है, निस्संदेह उसे निषिद्ध जानकर स्पर्श भी नहीं किया जा सकता है।
4. इसके विपरीत, एक वस्तु या मान्यता जो अपवित्र है, अर्थात्, पवित्रता के क्षेत्र के बाहर है, का उल्लंघन किया जा सकता है। इसका अर्थ है कोई मनुष्य बिना किसी भय के या अन्तःकरण की आशंकाओं को अनुभव न करते हुए इसके विपरीत कार्य कर सकता है।
5. पवित्र का तात्पर्य है धार्मिकता इसका अतिक्रमण करना एक अपवित्रीकरण है अर्थात् धर्म (मज़हब) की मर्यादा का उल्लंघन करना।
6. एक वस्तु को 'पवित्र' क्यों बनाया जाता है? प्रश्न के क्षेत्र को विषय तक सीमित रखने के लिये पूछा जा सकता है, नैतिकता को 'पवित्र' क्यों बना दिया गया?
7. ऐसा प्रतीत होता है कि नैतिकता को पवित्र बनाने में तीन बातों ने अपनी भूमिका निभाई है।
8. पहली बात तो यह है कि जो श्रेष्ठ है, सामाजिक हित की दृष्टि से उसे सुरक्षित रखना चाहिए।
9. इस प्रश्न की पृष्ठभूमि इस बात में अन्तर्निहित है, जिसे 'जीवन-संघर्ष' और उसमें 'योग्यतात्मक जीवित बने रहना' कहते हैं।
10. यह प्रश्न 'विकासवाद के सिद्धान्त' से उत्पन्न होता है। यह सामान्य ज्ञान है कि मानव-समाज में जो विकास हुआ है, वह 'जीवन-संघर्ष' के द्वारा हुआ है क्योंकि आरम्भिक युग में भोजन-सामग्री बड़ी सीमित मात्रा में प्राप्त थी।
11. संघर्ष भयानक व दुखद रहा है। प्रकृति के पंजे और दाँत रक्त-रंजित रहे हैं।
12. ऐसे 'जीवन संघर्ष' में जो भयानक और दुखद रहा है, उसमें केवल योग्यतम ही जीवित बचा है।
13. समाज की मूल-अवस्था ऐसी ही रही है।

14. बहुत प्राचीन काल के दौरान किसी न किसी ने अवश्य यह प्रश्न उठाया होगा कि क्या योग्यतम (सबसे सशक्त) ही सर्वश्रेष्ठ है? क्या जो निर्बलतम है, यदि उसे भी संरक्षण देकर यदि बचाया जाए, तो क्या आगे चलकर समाज के कल्याण की दृष्टि से आगे बढ़ाने में वह श्रेष्ठ नहीं हो सकता?
15. प्रतीत होता है कि समाज की उस समय की प्रचलित अवस्था ने सकारात्मक उत्तर अवश्य दिया होगा।
16. तब प्रश्न उठता है निर्बल के संरक्षण का क्या उपाय है?
17. जो योग्यतम (सबसे अधिक शक्तिशाली) हो, उस पर कुछ प्रतिबन्ध लगाने से काम नहीं चल सकता था।
18. इसी स्थिति में नैतिकता की उत्पत्ति और आवश्यकता छिपी हुई है।
19. इसमें नैतिकता को पवित्र बनाया जाना ही आवश्यक था, क्योंकि वे पाँबंदियाँ (प्रतिबंध) मूलतः योग्यतम्, (सर्वाधिक शक्तिशाली) अर्थात् सबसे सशक्त व्यक्तियों पर लगाई गयी थीं।
20. इसके अत्यन्त गम्भीर परिणाम हो सकते थे।
21. पहला, क्या नैतिकता सामाजिक बनने के बजाए, वह असामाजिक तो नहीं बन जाती है?
22. ऐसा नहीं है कि चोरों के बीच कोई नैतिकता नहीं होती। व्यापारियों के मध्य भी नैतिकता होती है। एक जाति के लोगों में भी नैतिकता होती है, तथा डाकुओं के एक दल के मध्य भी नैतिकता होती है।
23. किन्तु यह नैतिकता अलगाव और अपने में ही सीमित रहने की भावना द्वारा व्यक्त है। जब यह नैतिकता ''दल विशेष के स्वार्थों'' के संरक्षण के लिये होती है, तब यह असामाजिक होती है।
24. इस प्रकार की नैतिकता का अलगाव और अपने तक सीमित रहने की भावना ही है, जो इसकी असामाजिक भावना को मुक्ति प्रदान करती है।
25. यही बात वहाँ भी सत्य है कि जहाँ एक समूह स्वयं अपने स्वार्थ-संरक्षण के लिये नैतिकता का पालन करता है।
26. समाज के इस समूह-संगठन के परिणाम दूरगामी होते हैं।
27. यदि समाज असामाजिक समूहों में बना रहेगा, तो समाज एक असंगठित और दलगत समाज ही बनकर रह जायेगा।
28. एक असंगठित और दलगत अवस्था के समाज का खतरा यही है कि यह अनेक विभिन्न आदर्श और मानदण्ड निर्धारित कर लेता है।

29. सामान्य आदर्शों और सामान्य मानदण्डों के अभाव में समाज पूर्णतया सुव्यवस्थित नहीं हो सकता।
30. इतने विभिन्न आदर्शों और मानदण्डों के होते हुए एक व्यक्ति के लिये मानसिक सामंजस्य बनाए रखना असम्भव होगा।
31. जब एक समूह की दूसरे समूहों पर प्रभुता उसके विवेकपूर्ण और आनुपातिक दावों का ध्यान रखने पर आधारित होती है तो वह समाज को अपरिहार्य रूप से संघर्ष की ओर ले जाती है।
32. संघर्ष को रोकने का एकमात्र तरीका यही है कि सभी के लिए नैतिकता के सामान्य नियम समान हों जो सभी के लिये पवित्र हों।
33. एक तीसरा कारण यह भी है, जो नैतिकता को पवित्र और सर्वव्यापक बनाने की अपेक्षा रखता है। वह है व्यक्ति के विकास को सुरक्षित रखने के लिये।
34. 'जीवन-संघर्ष' या वर्ग-विशेष के शासन के अधीन व्यक्तियों के हित सुरक्षित नहीं हैं।
35. दलगत व्यवस्था व्यक्ति को अविरोधी-भावना प्राप्त करने से रोकती है, जो केवल तभी सम्भव है, जब समाज के पास सामान्य आदर्श, सामान्य जीवन-माप हों। उसके विचार भटक जाते हैं और वह एकता को देखने के लिये मानसिक तौर पर बलात् और विकृत हो जाता है।
36. दूसरे, दलगत व्यवस्था पक्षपात और न्याय की अस्वीकृति की ओर ले जाती है।
37. दलगत व्यवस्था वर्गों के स्तर-विन्यास की ओर ले जाती है। वे जो स्वामी हैं, स्वामी ही बने रहते हैं और वे जो दासता में जन्में हैं, दास ही बने रहते हैं। मालिक सदैव मालिक बने रहते हैं और मजदूर सदैव मजदूर बने रहते हैं। विशिष्ट अधिकारी सदैव विशिष्ट अधिकारी बने रहते हैं और दास सदैव दास बने रहते हैं।
38. इसका तात्पर्य यह है कि कुछ लोगों के लिये ही स्वतन्त्रता हो सकती है, किन्तु सभी के लिये नहीं। इसका तात्पर्य है कि कुछ लोगों के लिये समानता हो सकती है किन्तु अधिकांश लोगों के लिये बिल्कुल नहीं।
39. इसका उपचार क्या है? इसका एकमात्र उपचार है कि भ्रातृ-भावना को सार्वभौमिक रूप से प्रभावशाली बनाया जाये।
40. भ्रातृ-भावना क्या है? यह कुछ नहीं है, बल्कि मनुष्यों के भाईचारे का दूसरा नाम है, जो नैतिकता का दूसरा नाम है।
41. इसीलिए बुद्ध ने उपदेश दिया है कि 'धम्म' नैतिकता है और जिस प्रकार 'धम्म' पवित्र है उसी प्रकार 'नैतिकता' भी पवित्र है।

दूसरा भाग

किस प्रकार शाब्दिक समानता तात्विक भेद को छिपाये रखती है

1. प्रारम्भिक
2. पूनर्जन्म किस (चीज) का?
3. पुनर्जन्म किस (व्यक्ति) का?

दूसरा भाग

किस प्रकार शाब्दिक समानता मूलभूत अर्थभेद छिपाए रखती है

विभाग - 1

विभाग-1 पुनर्जन्म

1. प्रारम्भिक
2. पुनर्जन्म किस (चीज) का?
3. पुनर्जन्म किस (व्यक्ति) का?

विभाग - दो

कर्म

1. क्या बौद्धों का 'कर्म-सिद्धांत' ब्राह्मणवादी-सिद्धांत के समान ही है?
2. क्या भगवान बुद्ध यह मानते थे कि अतीत कर्म भावी जीवन को प्रभावित करते हैं?
3. क्या भगवान बुद्ध यह मानते थे कि अतीत कर्म भावी जीवन को प्रभावित करते हैं?

विभाग -तीन

अहिंसा

1. अहिंसा के भिन्न-भिन्न अर्थ और व्यवहार
2. 'अहिंसा' का वास्तविक अर्थ

विभाग -चार

संसरण

(आत्मा का एक शरीर से दूसरे शरीर में प्रवेश करना)

विभाग - पांच

भ्रम के कारण

विभाग - 1

पुनर्जन्म

1. प्रारम्भिक

1. प्राय: ऐसा प्रश्न है ? पूछा जाता है कि मरणोपरान्त क्या होता है?
2. इस सन्दर्भ में बुद्ध के समकालीन आचार्य दो भिन्न दृष्टिकोण रखते थे। एक वर्ग शाश्वतवादी कहलाता था और दूसरा उच्छेदवादी कहलाता था।
3. शाश्वतवादी कहते थे कि आत्मा कभी मरती ही नहीं, इसलिए वह शाश्वत है। पुनर्जन्म द्वारा इसका नवीकरण हो जाता है।
4. उच्छेदवादियों का सिद्धांत केवल उच्छेदवाद शब्द से समझा जा सकता था, जिसका अर्थ था कि प्रत्येक वस्तु का अन्त है। मरणोपरान्त कुछ भी शेष नहीं रहता।
5. भगवान बुद्ध शाश्वतवादी नहीं थे, क्योंकि इसका तात्पर्य यह था कि वे एक पृथक नित्य आत्मा के अस्तित्व में विश्वास नहीं करते थे, जो विश्वास करते थे, जिसके वे विरोधी थे।
6. तो क्या बुद्ध उच्छेदवादी थे? जब वे आत्मा के अस्तित्व पर विश्वास करते थे, तो बुद्ध स्वाभाविक रूप से एक उच्छेदवादी कहलाए जाएंगे।
7. किन्तु अलगद्दुपम-सुत्त में बुद्ध शिकायत करते हैं कि वे एक उच्छेदवादी कहे जाते हैं, जबकि वास्तव में वे नहीं हैं।
8. इस सन्दर्भ में उन्होंने कहा है, "यद्यपि यही मत है, जिसे मैं दृढ़तापूर्वक कहता हूँ और जिसका मैं उपदेश देता हूँ, फिर भी कुछ श्रमण और ब्राह्मण, गलत ढंग से, भ्रांतिवश और झूठ-मूठ मुझ पर तथ्यों को चुनौती देते हुए आरोप लगाते हैं कि मैं एक उच्छेदवादी हूँ और मनुष्यों के विघटन, विनाश और विध्वंस का उपेदश देता हूँ।"
9. "यह ऐसा मत, जो मेरा नहीं है, और मैं दृढ़तापूर्वक इनकार करता हूँ, यह गलत ढंग से, भ्रांतिवश और झूठ-मूठ मुझ पर आरोप लगाये गए हैं, उन भले लोगों द्वारा जो मुझे एक उच्छेदवादी सिद्ध करना चाहते हैं।"
10. यदि यह कथन यथार्थ है और ऐसे लोगों के द्वारा प्रक्षिप्त नहीं है, जो बौद्ध धम्म पर एक ब्राह्मणवादी सिद्धान्त थोप देना चाहते हैं, तो इस कथन से मन में गम्भीर दुविधा उत्पन्न हो जाती है।

11. यह कैसे हो सकता है कि 'बुद्ध आत्मा' के अस्तित्व पर विश्वास नहीं करें और फिर भी कहें कि वे एक उच्छेदवादी नहीं हैं?
12. इससे प्रश्न उठता है, क्या बुद्ध पुनर्जन्म में विश्वास करते थे?

2. पुनर्जन्म किस (चीज) का?

1. क्या बुद्ध पुनर्जन्म में विश्वास करते थे?
2. उत्तर सकारात्मक 'हाँ' में है।
3. यह अच्छा होगा कि इस प्रश्न को आगे दो भागों में बाँट दिया जाये; (1) पुनर्जन्म किस (चीज) का? और (2) पुनर्जन्म किस (व्यक्ति) का?
4. यह अच्छा होगा कि इन दो प्रश्नों में से प्रत्येक को पृथक-पृथक करके लिया जाये।
5. यहाँ हम पहले प्रश्न को ही लें, पुनर्जन्म किस (चीज) का? पर विचार करेंगे।
6. यह प्रश्न लगभग सदैव उपेक्षित रहा है। यह दोनों प्रश्नों के सम्मिश्रण के कारण इसमें इतना अधिक भ्रम उत्पन्न हो गया है।
7. भगवान बुद्ध के अनुसार चार भौतिक पदार्थ होते हैं जो शरीर को विकसित करते हैं। वे हैं (1) पृथ्वी, (2) जल, (3) तेज (अग्नि) और (4) वायु।
8. प्रश्न है जब शरीर मर जाता है तो इन चार महाभूतों (अवयवों) का क्या होता है? क्या वे भी शरीर के साथ मर जाते हैं? कुछ कहते हैं कि वे भी मर जाते हैं।
9. भगवान बुद्ध कहते हैं 'नहीं'। वे आकाश में तैरते हुए समान महाभूतों (अवयवों) के पुंज के साथ मिल जाते हैं।
10. जब इस तैरते हुए पुंज से चार अवयव एक साथ पुनः मिल जाते हैं, तो एक नया जन्म हो जाता है।
11. भगवान बुद्ध का पुनर्जन्म से यही अभिप्राय था।
12. अवयवों के लिये यह आवश्यक और अनिवार्य नहीं है कि वे उसी मृत शरीर के हों। वे विभिन्न मृत शरीरों के अंग हो सकते हैं।
13. यही बात ध्यान देने की है कि शरीर मरता है। किन्तु भौतिक पदार्थ (अवयव) सदैव बने रहते हैं।

14. भगवान बुद्ध इसी प्रकार के पुनर्भव अर्थात् पुनर्जन्म पर विश्वास करते थे।

15. सारिपुत्त ने महा-कोट्ठित के साथ जो बातचीत की, उसमें इस विषय पर काफी प्रकाश डाला गया है।

16. इस सन्दर्भ में ऐसा मिलता है कि एक बार जब भगवान श्रावस्ती में जेतवन के अनाथपिण्डिकाराम में ठहरे हुए थे, तो महाकोट्ठित अपने ध्यान से उठने के बाद, सारिपुत्त के पास गये और उनसे कुछ ऐसे प्रश्नों को स्पष्ट करने का निवेदन किया, जो उन्हें परेशान कर रहे थे।

17. उनमें से एक निम्नलिखित था।

18. महाकोट्ठित ने पूछा, "प्रथम-ध्यान की प्राप्ति होने पर कितने संयोजनों का प्रहाण होता है और कितने शेष रह जाते हैं?"

19. सारिपुत्र ने उत्तर दिया, "प्रत्येक के पांच-पांच। कामच्छन्द, व्यापाद, थीनमिद्ध (आलस्य), उद्धच्च-कौंकृत्य तथा विचिकित्सा का प्रहाण हो जाता है। वितर्क, विचार, प्रीति, सुख तथा एकाग्रता शेष रहते हैं।

20. महाकोट्ठित ने पूछा, "चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा और स्पर्श, इन पाँचों इन्द्रियों को लें, प्रत्येक का अपना विषय और कार्य-क्षेत्र पृथक है तथा प्रत्येक एक-दूसरे से पृथक और परस्पर भिन्न हैं। इनका अन्तिम आधार क्या है? कौन इन पाँचों इन्द्रियों के विषयों और क्षेत्रों का उपभोग करता है?"

21. सारिपुत्त ने उत्तर दिय, "मन।"

22. महाकोट्ठित ने पूछा, "ये पांच इन्द्रियाँ किस पर निर्भर करती हैं?"

23. सारिपुत्त ने उत्तर दिया, "चेतना (जीवितेन्द्रिय) पर।"

24. महाकोट्ठित ने पूछा, "चेतना किस पर निर्भर करती है?"

25. सारिपुत्त, "ऊष्णता पर।"

26. महाकोट्ठित ने पूछा, "ऊष्णता किस पर निर्भर करती है?"

27. सारितपुत्त ने उत्तर दिया, "चेतना पर।"

28. महाकोट्ठित ने पूछा, "आप कहते हैं कि चेतना ऊष्णता पर निर्भर करती है, आप यह भी कहते हैं कि ऊष्णता चेतना पर निर्भर करती है। इसका ठीक-ठीक क्या अर्थ समझा जाये?"

29. सारिपुत्त ने उत्तर दिया, "मैं आपको एक उदाहरण देकर समझाता हूं जिस प्रकार एक दीपक के प्रकाश से लौ प्रकट होती है और लौ से प्रकाश, उसी प्रकार

चेतना ऊष्णता पर निर्भर करती है और ऊष्णता चेतना पर।''

30. महाकोट्ठित ने पूछा, ''ऐसी कितनी चीजें हैं, जिनके मुक्त होने पर ही शरीर को मरा हुआ समझकर निर्जीव काठ की तरह एक ओर रख दिया या मरा हुआ फेंक दिया जाता है।''

31. सारिपुत्त ने उत्तर दिया, ''चेतना (जीवितेन्द्रिय), ऊष्णता और विज्ञान।''

32. महाकोट्ठित ने पूछा, ''एक मृत शरीर और एक समाधिस्थ भिक्षु में, जिसमें संज्ञा और वेदना का निरोध हो चुका है, क्या अन्तर है?''

33. सारिपुत्त ने उत्तर दिया, ''मृत शरीर में न केवल शरीर, वाणी और मन की क्रिया-शक्ति स्थिर और शांत हो जाती है, बल्कि चेतना भी निःशक्त, ऊष्णता भी शमित और इन्द्रियाँ भी छिन्न-भिन्न हो जाती हैं, जबकि समाधिस्थ भिक्षु में चेतना बनी रहती है, ऊष्णता बनी रहती है और इन्द्रियाँ निर्दोष बनी रहती हैं। हाँ श्वास-प्रश्वास, अवलोकन और संज्ञा स्थिर और शान्त हो जाती हैं।''

34. यह सम्भवतः मृत्यु या उच्छेद की सर्वश्रेष्ठ तथा सर्वाधिक सम्पूर्ण व्याख्या है।

35. इस संवाद में केवल एक कमी है। महाकोट्ठित को सारिपुत्त से एक प्रश्न और पूछना चाहिये था कि 'ऊष्णता' क्या है?

36. तो सारिपुत्त ने इसका क्या उत्तर दिया होता, इसकी कल्पना करना सरल नहीं है, किन्तु इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि 'ऊष्णता' का अर्थ है 'शक्ति'।

37. इस तरह से यदि इस प्रश्न के उत्तर को थोड़ा अधिक स्पष्ट कर दिया जाये कि मरने पर क्या होता है? तो यथार्थ उत्तर होगा कि शरीर शक्ति उत्पन्न करना बन्द कर देता है।

38. किन्तु यह तो केवल उत्तर का एक अंश ही है। क्योंकि मृत्यु का अर्थ यह भी है कि जो कुछ भी शरीर से शक्ति निकल गयी है। आकाश में संचरित शक्ति के सामूहिक पुंज के साथ मिल जाती है।

39. अतः उच्छेद या मृत्यु के दो पहलू हैं। अपने पहलुओं में से एक में इसका अर्थ शक्ति की उत्पत्ति का निरोध है। दूसरे पहलू में इसका अर्थ शक्ति के सामूहिक संचरित पुंज में कुछ नई वृद्धि हो जाना है।

40. सम्भवतः उच्छेद के इन दो पहलुओं के कारण ही बुद्ध ने कहा है कि वह एक पूर्ण उच्छेदवादी नहीं हैं। जहाँ तक कि आत्मा से प्रयोजन है, तो वे एक उच्छेदवादी थे और जहाँ तक कि भौतिक तत्त्व (नाम-रूप) का प्रयोजन है, तो वे एक उच्छेदवादी नहीं थे।

41. इस प्रकार व्याख्या किये जाने से यह समझना सरल है कि भगवान बुद्ध ने क्यों कहा कि वह एक उच्छेदवादी नहीं हैं। वे भौतिक पदार्थ (नाम-रूप) की पुनरुत्पति (पुनर्भव) में विश्वास करते थे और आत्मा के पुनर्जन्म (Transmigration of sure) में नहीं।

42. इस प्रकार व्याख्या किये जाने से बुद्ध का दृष्टिकोण विज्ञान के सर्वथा अनुकूल होता है।

43. केवल इसी अर्थ में कहा जा सकता है कि बुद्ध पुनर्जन्म में अर्थात् पुनर्भव (Rebirth) विश्वास करते थे।

44. शक्ति कभी नष्ट नहीं होती। विज्ञान इसी की पुष्टि करता है। उच्छेद का यह अर्थ कि मृत्यु के उपरांत कुछ नहीं शेष रहता विज्ञान के विरुद्ध होगा। क्योंकि इसका यह अर्थ होगा कि सामूहिक रूप से शक्ति में सातत्य नहीं है।

45. यही एक मात्र ऐसा तरीका है, जिससे दुविधा को हल किया जा सकता है।

3. पुनर्जन्म किस (व्यक्ति) का?

1. सबसे कठिन प्रश्न है, पुनर्जन्म किस (व्यक्ति) का?

2. क्या वही मृत व्यक्ति एक नया जन्म ग्रहण करता है?

3. क्या बुद्ध इस सिद्धांत पर विश्वास करते थे? इसका उत्तर "इसकी सर्वाधिक असंभावना है।"

4. यदि मृत व्यक्ति के शरीर के सभी भौतिक अंश पुनः नए सिरे से मिलकर एक नये शरीर का निर्माण कर सकें, तभी यह मानना सम्भव है कि उसी आदमी का पुनर्जन्म हुआ।

5. यदि भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के मृत शरीरों के संमिश्रण या विभिन्न तत्त्वों से एक नये शरीर का निर्माण तो हुआ, किन्तु उसी सचेतन प्राणी का पुनर्जन्म नहीं।

6. यह विषय भिक्षुणी खेमा द्वारा राजा प्रसेनजित को बहुत अच्छी तरह से समझा दिया गया था।

7. एक बार तथागत श्रावस्ती के अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम विहार में ठहरे हुए थे।

8. उस अवसर पर भिक्षुणी खेमा, कोशल वासियों के मध्य अपनी चारिका करने के बाद, श्रावस्ती और साकेत के बीच तोरणवत्थु नामक स्थल पर ठहरी हुई थीं।

9. उस समय कोशल का राजा प्रसेनजित साकेत से श्रावस्ती की ओर यात्रा कर

रहे थे, और साकेत व श्रावस्ती के बीचोंबीच वे एक रात के लिये तोरणवत्थु में रुके।

10. कोशल के राजा प्रसेनजित ने एक किसी मनुष्य को बुलवाया और कहा, "अरे भले आदमी! किसी भिक्षु या ब्राह्मण का पता लगा, जिसके साथ में आज संगत कर सकूँ।"

11. "ऐसा ही होगा महाराज," उस व्यक्ति ने कोशल के राजा प्रसेनजित को उत्तर में कहा और सम्पूर्ण तोरणवत्थु में घूमने के पश्चात् उसे कोई भी श्रमण–ब्राह्मण नहीं मिला, जिसके साथ राजा प्रसेनजित् संगत कर सकें।

12. तब उस व्यक्ति ने भिक्षुणी खेमा को देखा, जो तोरणवत्थु में ठहरी हुई थीं। उनको देखने के बाद वह कोशल के राजा प्रसेनजित के पास गया और बोला–

13. "महाराज! तोरणवत्थु में कोई ब्राह्मण या श्रमण नहीं है, जिसके साथ महाराज संगत कर सकें। किन्तु, महाराज! खेमा नामक एक भिक्षुणी है, जो तथागत की शिष्या है। उसके विषय में आजकल जनश्रुति चारों ओर फैली है, कि वह अर्हत है, योग्य है, कुशल है, ज्ञानी है, एक निपुण वक्ता हैं और प्रत्युत्पन्नमति हैं। महाराज! आप उसकी संगत करें।"

14. अतः कोशल का राजा प्रसेनजित भिक्षुणी खेमा से मिलने गया और उनके पास पहुँच कर उन्हें अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। इस प्रकार बैठे हुए उसने उनसे कहा–

15. "भिक्षुणी खेमा! आप इस विषय में क्या कहती हैं? क्या तथागत मरणोपरान्त रहते हैं?"

16. "महाराज! यह तथागत द्वारा अव्याकृत है।"

17. "यह कैसे, भिक्षुणी खेमा! जब पूछा जाता है "क्या तथागत मरणोपरान्त रहते हैं?" आप उत्तर देती हैं "यह तथागत द्वारा अव्याकुल रखा गया है, और जब मैं..... अन्य प्रश्न पूछता हूँ, आप वहीं उत्तर देती हैं। कृपया! बताएं, क्या कारण हैं, क्या हेतु है, क्यों यह बात तथागत द्वारा अव्याकुल रखी गयी हैं?"

18. "महाराज! इस विषय में अब मैं आपसे एक प्रश्न पूछती हूँ। आप जैसा उचित समझें वैसा उत्तर दें। अब आप क्या कहते हैं, महाराज! क्या आपके पास कोई लेखाकार या कोई शीघ्र गणना करने वाला गणक है, जो गंगा की रेत की गणना करने में सक्षम हो, कितने सौ या इतने हजार या इतने लाख रेत के कण हैं?"

19. "निस्सन्देह, नहीं।"

20. ''तब क्या आपके पास कोई लेखाकार, शीघ्र गणना करनेवाला या गणक है, जो विशाल समुद्र के जल की गणना कर कि इसमें कितना जल है, इतने सौ या इतने हजार लाख घड़े (मेलन) जल है?''

21. ''निस्सन्देह, नहीं।''

22. ''तो ऐसा क्यों है?''

23. ''भिक्षणु खेमा! समुद्र असीम, अथाह, अन्तहीन और विशाल है।''

24. इसी प्रकार महाराज! यदि कोई तथागत को उनके शारीरिक रूप द्वारा माप करना चाहे, तो तथागत का वह शारीरिक रूप परित्यक्त है, जड़मूल से कट चुका है, एक कटे-ताड़वृक्ष की ठूँठ की तरह बन गया है, वह अभाव को प्राप्त हो गया है और अब उसकी पुनरुत्पत्ति की सम्भावना नहीं रही है। महाराज! शरीर के रूप में पहचाने जाने से तथागत मुक्त हो चुके हैं, वे गम्भीर, असीम और अथाह हैं, ठीक समुद्र के समान। तथागत मरणोपरान्त रहते हैं, यह भी नहीं कहा जा सकता है। 'तथागत मरणोपरान्त नहीं रहते हैं, यह भी कहा नहीं जा सकता है। 'तथागत मरणोपरान्त रहते हैं और नहीं रहते हैं, न रहते है और न नहीं रहते,' यह भी नहीं कहा जा सकता है।

25. ''इसी प्रकार हे महाराज! यदि कोई तथागत को वेदना द्वारा निरुपित करना चाहे, तो तथागत की वह वेदना परित्यक्त है, जड़-मूल से कट चुकी है जैसे कटे हुए ताड़-वृक्ष की तरह हो गई है.... सम्भावना नहीं रही है। महाराज! वे गम्भीर, असीम और अथाह हैं, जैसे कि महान् समुद्र, इसलिए यह भी नहीं कहा जा सकता कि 'तथागत मरणोपरान्त रहते हैं। मरणोपरान्त नहीं रहते हैं।''

26. ''इसी प्रकार यदि कोई तथागत को संज्ञा से, संस्कारों से, विज्ञान से मापना चाहे, तो तथागत का यह विज्ञान परित्यक्त है, वह जड़-मूल से कट चुका है, वह कटे हुए ताड़-वृक्ष की तरह हो गया है..... सम्भावना नहीं रही है। महाराज! तथागत के विज्ञान के रूप में पहचाने जाने से तथागत मुक्त हो चुके हैं, वे गम्भीर, असीम और अथाह हैं जैसे कि महान समुद्र। अतः यह भी नहीं कहा जा सकता है 'तथागत मरणोपरान्त रहते हैं..... मरणोपरान्त नहीं रहते हैं।'''

27. तब कोशल का राजा प्रसेनजित भिक्षुणी खेमा के वचनों से प्रसन्न हुआ और आनन्दित हुआ। और वह अपने आसन से उठा, उन्हें यथायोग्य अभिवादन किया और चला गया।

28. अब एक अन्य अवसर पर राजा प्रसेनजित् तथागत के दर्शनार्थ गया और उनके पास पहुँचने पर उन्हें अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। इसी प्रकार बैठे हुए वह तथागत से बोला :

29. ''भगवन्! कृपया बताएं क्या तथागत मरणोपरान्त रहते हैं?''

30. ''महाराज! यह विषय मेरे द्वारा अव्याकृत रखा गया है।''

31. ''भगवन्! तो क्या तथागत मरणोपरान्त नहीं रहते हैं?''

32. ''महाराज! यह भी मेरे द्वारा अव्याकृत रखा गया है।'

33. तब राजा ऐसे अन्य प्रश्नों को पूछते हैं और वही उत्तर पाते हैं।

34. ''भगवन्! यह कैसे हैं, जब मैं पूछता हूँ, 'क्या तथागत मरणोपरांत रहते हैं.......? क्या वे मरणोपरान्त नहीं रहते हें?' आप उत्तर देते हैं, यह मेरे द्वारा अव्याकृत रखा गया है। भगवन! कृपया यह बताएं क्या कारण है, क्या हेतु है, यह बात तथागत द्वारा क्यों अव्याकृत रखी गयी है?''

35. ''तो महाराज! मैं आपसे प्रश्न पूछता हूँ, जैसा आप उचित समझें वैसा उत्तर देना। तो आप क्या कहते हैं, महाराज? क्या आपके पास कोई लेखाकार है? (शेष पूर्ववत्)।''

36. ''अद्भुत है, भगवान! आश्चर्यजनक है, भगवान! किस प्रकार शास्ता और शिष्य दोनों की व्याख्या में, न भाव और न शब्द की दृष्टि से कहीं कुछ भी अन्तर नहीं है, एकदम समानता है और परस्पर-विरोध नहीं अर्थात् उच्चतम बातों के बारे में एक भी शब्द पर।''

37. ''भगवान! एक विशेष अवसर पर मैं भिक्षुणी खेमा के पास मिलने गया था, और उनसे इस विषय का अर्थ पूछा था, और उन्होंने तथागत द्वारा प्रयुक्त इन्हीं शब्दों में, इन्हीं अक्षरों में अर्थ बताया था। अद्भुत है, भगवान! यह आश्चर्यजनक है, भगवान! किस प्रकार शास्ता और शिष्य दोनों की व्याख्या में, भाव और शब्द दोनों की दृष्टि से, सहमति है, समानता है और परस्पर-विरोध नहीं है,-अर्थात् उच्चतम बातों के बारे में एक भी शब्द पर।

38. ''अच्छा, भगवान! अब हमें चलना चाहिये। हम व्यस्त लोग हैं। हमें बहुत से कार्य हैं।

39. ''महाराज, इस समय अब जो आप उचित समझते हैं, वैसा करें।''

40. तत्पश्चात् कोशल का राजा प्रसेनजित् तथागत के वचनों से प्रसन्न हुआ, उनका हार्दिक स्वागत किया। और वह अपने आसन से उठा, तथागत को यथायोग्य अभिवादन किया और चला गया।

विभाग - दो

कर्म

1. क्या बौद्धों का कर्म-सिद्धांत ब्राह्मणवादी सिद्धांत के समान ही हैं?

1. बुद्ध के धम्म में कोई भी ऐसा सिद्धान्त नहीं है, जिसने इतनी अधिक भ्रान्ति उत्पन्न की है, जितनी कर्म के इस सिद्धांत ने।
2. बुद्ध के धम्म में इसका क्या स्थान है और इसका क्या महत्व है?
3. अज्ञानी हिन्दू समझ के पूर्णतया अभाव के कारण मात्र शब्दों की समानता की तुलना करके कहते हैं कि बौद्ध धम्म और ब्राह्मणवाद या हिन्दू धर्म एक समान ही हैं।
4. ब्राह्मणों का शिक्षित और रुढ़िवादी वर्ग भी ऐसा ही कहता है। वे ऐसा जान-बूझकर अज्ञानी जनता को भ्रम में डालने के लिये करते हैं।
5. शिक्षित ब्राह्मण भली-भाँति जानते हैं कि बौद्ध-कर्म का सिद्धान्त ब्राह्मणवादी कर्म के सिद्धांत से सर्वथा भिन्न है। फिर भी वे कहने में लगे रहते हैं कि बौद्ध धर्म और ब्राह्मणवाद या हिन्दू धर्म एक समान ही हैं।
6. पारिभाषिक शब्दावली की समानता उनको अपने झूठे तथा विद्वेषपूर्ण प्रचार में आसानी पहुँचाती है।
7. अत: यह आवश्यक है कि स्थिति का ध्यानपूर्वक परीक्षण किया जाए।
8. बुद्ध का कर्म का सिद्धांत, यद्यपि शाब्दिक समानता कितनी ही क्यों न हो अपने अर्थ में ब्राह्मणवादी कर्म के सिद्धांत के समान हो ही नहीं सकता।
9. दोनों के आधार-वाक्य इतने व्यापक रूप से भिन्न हैं, निस्सन्देह इतने व्यापक, रूप से विरोधी हैं कि दोनों का परिणाम समान हो ही नहीं सकता। वे भिन्न होने ही चाहिएं।
10. हिन्दू कर्म के सिद्धांत द्वारा, आत्मा की मान्यताओं को सुविधा के लिये इस प्रकार अभिव्यक्त किया जा सकता है :-
11. हिन्दू 'कर्म' का सिद्धांत 'आत्मा' की मान्यता पर निर्भर करता है, बौद्ध नहीं। वास्तव में बौद्ध धम्म में 'आत्मा' का कोई अस्तित्व है ही नहीं।
12. ब्राह्मणवादी 'कर्म' का सिद्धांत वंशानुगत है।
13. वह एक जन्म से दूसरे जन्म तक चलता रहता है। ऐसा इसलिये है, क्योंकि आत्मा का संसरण होता है।

14. बौद्ध 'कर्म'-सिद्धांत के विषय में यह सत्य नहीं। ऐसा इसलिये भी है, क्योंकि वहाँ कोई 'आत्मा' की मान्यता नहीं है।

15. हिन्दू 'कर्म' का सिद्धांत शरीर से पृथक आत्मा के अस्तित्व पर आधारित है। जब शरीर मरता है, तो 'आत्मा' उसके साथ नहीं मरती। 'आत्मा' उड़ जाती है।

16. बौद्ध कर्म-सिद्धांत के विषय में यह सत्य नहीं है।

17. हिन्दू कर्म के सिद्धांत के अनुसार जब एक मनुष्य कार्य करता है, तो उसके कर्म के दो परिणाम होते हैं। वह कर्त्ता को प्रभावित करता है और दूसरे, यह उसकी आत्मा पर प्रभाव डालता है।

18. वह जो भी कर्म करता है, उसका आत्मा पर प्रभाव पड़ता ही है।

19. जब मनुष्य मरता है और जब उसकी आत्मा निकल भागती है, तो आत्मा ऐसे संस्कारों से प्रभावित होती है।

20. यह प्रभाव (संस्कार) ही, जो उसके भावी जन्म और स्थिति को निर्धारित करते हैं।

21. यह हिन्दू आत्मवादी सिद्धांत अनात्मवादी बौद्ध सिद्धांत से असंगत है।

22. इन कारणों से बौद्ध कर्म-सिद्धांत और हिन्दू कर्म का सिद्धांत न तो एक समान है और न समान हो सकते हैं।

23. अतः बौद्ध कर्म-सिद्धांत और ब्राह्मणवादी-कर्म के सिद्धांत एक समान बतलाना महज मूर्खता है।

24. अधिक से अधिक कोई यही कह सकता है कि इस धोखेबाजी से सावधान रहना चाहिए।

2. क्या भगवान बुद्ध यह मानते थे कि अतीत कर्म भावी जन्म को प्रभावित करते हैं?

1. कर्म का सिद्धांत भगवान बुद्ध द्वारा प्रतिपादित किया गया था। सर्वप्रथम उन्होंने ही कहा था: "जैसा बोओगे, वैसा काटोगे।"

2. वे 'कर्म' के सिद्धांत के विषय में इतने सुस्पष्ट थे कि वे मानते थे, जब तक कर्म के सिद्धांत का दृढ़तापूर्वक अनुपालन न किया जाये, तब तक नैतिक व्यवस्था नहीं हो सकती।

3. बुद्ध का 'कर्म' का सिद्धांत केवल 'कर्म' से था और वह भी वर्तमान जीवन पर उसके प्रभाव से है।

4. यद्यपि, 'कर्म' का एक विस्तृत सिद्धांत भी है। इसके अनुसार कर्म पूर्व-जन्म या जन्मों के किये गये कर्म को भी सम्मिलित करता है।

5. यदि मनुष्य एक गरीब परिवार में जन्मा है, तो यह उसके पूर्व दुष्कर्म के कारण है। यदि मनुष्य एक धनी परिवार में जन्मा है, तो यह उसके पूर्व सत्कर्म के कारण है।

6. यदि मनुष्य एक जन्म-जात दोष के साथ जन्मा है तो यह उसके पूर्व दुष्कर्म के कारण है।

7. यह एक अत्यन्त खतरनाक सिद्धांत है, क्योंकि कर्म की इस व्याख्या में मानव-प्रयास के लिये कोई गुंजाइश नहीं है। उसके लिये उसके पूर्वजन्म के कर्म द्वारा ही सब कुछ पूर्व निश्चित है।

8. यह विस्तृत सिद्धांत प्रायः भगवान बुद्ध पर आरोपित किया जाता है।

9. क्या भगवान बुद्ध ऐसे सिद्धांत पर विश्वास करते थे?

10. इस विस्तृत सिद्धांत का भली-भाँति परीक्षण करने के लिये अच्छा होगा कि जिस भाषा में इसका प्रायः उल्लेख किया जाता है, उसमें थोड़ा परिवर्तन कर दिया जाए।

11. यह कहने की बजाय कि पूर्व-जन्म के 'कर्म' का संसरण होता है, यह बेहतर होता, यदि यह कहें कि पूर्व-जन्म का 'कर्म' वंशानुगतक्रम प्राप्त होता है।

12. भाषा का यह परिवर्तन हमें वंशानुगत परम्परा द्वारा इसके परीक्षण में सक्षम बनाता है। ऐसा करने से हमें सिद्धांत में कोई हानि नहीं होती न तो कानून में और न ही वास्तविक अर्थ में।

13. यह भाषा का परिवर्तन दो प्रश्नों को उठाना सम्भव बनाता है, जो अन्यथा नहीं उठाये जा सकते हैं, जिनका उत्तर दिये बिना विषय को स्पष्ट नहीं किया जा सकता।

14. पहला प्रश्न है, पूर्व-जन्म के कर्म कैसे वंशानुगत मिलते हैं? उसकी प्रक्रिया क्या है?

15. दूसरा प्रश्न है, वंशानुगत के विषय में पूर्व-जन्म के कर्म की प्रकृति क्या है? क्या वह वंशानुगत 'गुण' है या स्वयं अर्जित 'गुण' है?

16. हम अपने माता-पिता के वंशानुगत क्या प्राप्त करते हैं?

17. विज्ञान के अनुसार सोचें तो नये प्राणी का आरम्भ उस समय होता है, जब वीर्य अण्ड में प्रवेश करता है। प्राणी को उत्पत्ति तभी होती हैं, जब वीर्य-कण, रज-कण में प्रवेश करता है।

18. प्रत्येक मनुष्य की उत्पत्ति जीवित पदार्थ के दो कणों के संयोजन से होती है-माता का रज-कण, पिता का वीर्य कण।

19. मनुष्य जन्म आनुवंशिक है, यह बुद्ध द्वारा एक यक्ष को बताया गया था, जब इस विषय में चर्चा करने के लिये यक्ष उनके पास आता था।

20. उस समय तथागत राजगृह के समीप गृध्रकूट नामक पर्वत पर ठहरे हुए थे।

21. तथागत का कथन है तब एक यक्ष तथागत के समीप आया और उन्हें इस प्रकार सम्बोधित किया, 'शारीरिक स्वरूप जीवात्मा नहीं है' तो जीव शरीरधारी कैसे होता है? जीवन को यह हड्डियों व आंतों का ढेर कैसे प्राप्त होता है? माता के गर्भ में जीव किस प्रकाट लटकता रहता है?

22. इस पर तथागत ने उत्तर दिया, "सर्वप्रथम कलल होता है, और तत्पश्चात् अर्बुद। उसमें से पेशी और आगे चलकर घन के रूप में विकसित हो जाती है। और घन में ही बाल, नाखून इत्यादि उत्पन्न होते हैं। और जो कुछ भी खाना और पीना उसकी माता लेती है, उससे बालक माता के गर्भ में जीवित रहता और बढ़ता है।

23. किन्तु हिन्दू सिद्धांत इससे सर्वथा भिन्न है।

24. इसका कहना है कि शरीर तो आनुवंशिक है, किन्तु आत्मा नहीं है। यह बाहर से शरीर में कहाँ से प्रवेश करती है? यह बात इस सिद्धांत में स्पष्ट नहीं की गई है।

25. दूसरा प्रश्न है कि पूर्व-जन्म के उस कर्म की स्थिति क्या है, यह अवश्य ही निश्चित कर लिया जाना चाहिए कि क्या यह वंशानुगत गुण है या स्वयं अर्जित किया हुआ कोई गुण है?

26. जब तक इस प्रश्न का उत्तर उपलब्ध नहीं हो जाता, तब तक वंशानुगत के वैज्ञानिक सिद्धांत के अनुसार परीक्षण नहीं किया जा सकता।

27. किन्तु मान लिया जाये कि इस प्रश्न का इधर या उधर कुछ भी उत्तर है तो भी विज्ञान से कोई सहायता लेना, कैसे सम्भव है कि यह एक बुद्धिसंगत सिद्धांत है या मूर्खतापूर्ण सिद्धांत।

28. विज्ञान के अनुसार एक बच्चा अपने माता-पिता के गुण वंशानुगत प्राप्त करता

है।

29. हिन्दू कर्म के सिद्धांत में एक बच्चा शरीर के अतिरिक्त अपने माता-पिता से कुछ नहीं प्राप्त करता है। हिन्दू कर्म के सिद्धांत में बच्चे का पूर्व कर्म, बच्चे द्वारा और बच्चे के लिये वंशानुगत है।

30. माता-पिता कुछ भी योगदान नहीं देते। बच्चा ही सब कुछ लाता है।

31. ऐसा सिद्धांत एक विसंगति से अधिक कुछ नहीं है।

32. जैसा ऊपर दिखाया गया है कि बुद्ध ऐसी विसंगति पर विश्वास नहीं करते थे। (इसकी चर्चा चलने पर कि क्या मनुष्य अपने भले-बुरे कर्मों के परिणाम से मुक्त हो जाता है, स्थविर नागसेन ने राजा मिलिन्द को उत्तर दिया था-)

33. ''हाँ, यदि उसका पुनर्जन्म नहीं होता, तो वह अपने कर्मों से मुक्त हो जाता है। यदि हो, तो नहीं।''

34. राजा मिलिन्द ने कहा, ''मुझे एक उदाहरण दें।''

35. भिक्षु नागसेन, ''राजन्! मान लें एक मनुष्य किसी के आम चुराये, तो क्या वह चोर दण्ड का भागी होगा?''

36. ''हाँ!''

37. ''किन्तु जो आम (बीजके) जमीन में बोए थें, उसने वे आम तो नहीं चुराये थे, तब वह दण्ड का भागी क्यों होगा?''

38. ''क्योंकि जो उसने चुराये थे, वे उन्हीं का परिणाम थे जो उसने रोपे थे।''

39. ''इसी प्रकार महाराज! यह नाम-रूप कर्म करता है, चाहे अच्छे या बुरे, और उस कर्म से अन्य नाम रूप पुनर्जन्य ग्रहण करता है। और इसलिये वह अपने बुरे कर्मों से मुक्त नहीं होता है?''

40. ''बहुत अच्छा, नागसेन!''

41. राजा ने नागसेन से पूछा, ''नागसेन! जब एक नाम-रूप द्वारा कर्म किये जाते हैं, तो उन कर्मों का क्या होता है?''

42. ''राजन्! वे कर्म उसका पीछा करेंगे, जैसे परछाई उसका साथ कभी नहीं छोड़ती।''

43. ''क्या कोई उन कर्मों के बारे में बता सकता है, यह कहते हुए कि वे कर्म यहाँ या वहाँ हैं?''

44. ''नहीं।''

45. ''मुझे एक उदाहरण दें।''

46. ''हे राजन्! क्या कोई किसी वृक्ष के उन फलों को दिखा सकता है, और यह बता सकता है, जिन्हें वृक्ष ने अभी तक उत्पन्न नहीं किया है, यह कहते हुए कि-

47. ''वे यहाँ हैं, या वहाँ।''

48. ''निश्चय ही नहीं, मन्ते।''

49. ''इसी प्रकार महाराज! जब तक कि जीवन-प्रवाह का उच्छेद नहीं हो जाता, तब तक उन किए हुए कर्मों को निर्दिष्ट करना असम्भव है।''

50. ''बहुत अच्छा, नागसेन।''

3. क्या भगवान बुद्ध यह मानते थे कि अतीत कर्म भावी जीवन को प्रभावित करते हैं?

(2)

1. इस प्रकार भगवान बुद्ध का पूर्व-कर्म का सिद्धांत विज्ञान से मेल खाता है।
2. भगवान बुद्ध पूर्व-जन्मों के कर्मों के वंशानुगत होने में विश्वास नहीं करते थे।
3. जब वे मानते थे कि जन्म आनुवंशिक क्रम से माता-पिता है और जो कुछ भी वंशानुगत बच्चे को प्राप्त होता है, वह उसके माता-पिता के माध्यम से ही होता है, तो वे कर्मों के वंशानुगत होने में विश्वास ही कैसे कर सकते थे?
4. तर्क के अतिरिक्त इस विषय पर अधिक सीधा प्रमाण चूल-दुक्ख-खन्द,-सूत्त' नामक सूत्त में समाहित है, जिसमें बुद्ध तथा जैनों के मध्य एक संवाद का वर्णन है।
5. इस संवाद में जो कहा वह यह है, ''निगण्ठों! तुम लोगों ने पूर्व में जो बुरे कर्म किये हैं, उन्हें इन कठोर तपस्याओं द्वारा समाप्त करते हैं। शरीर, वाणी और मन पर प्रत्येक वर्तमान संयम पूर्व के बुरे कर्मों को समाप्त कर देगा। इस प्रकार तपस्या द्वारा सभी पूर्व बुरे कर्मों को समाप्त कर देने से और नये बुरे कर्म न करने से, भविष्य स्वच्छ हो जाता है; भविष्य स्वच्छ हो जाने से पूर्व भी साफ हो जाता है; पूर्व के साफ हो जाने से दुख शेष नहीं रहता है; दुख के शेष न रहने से दुखद वेदना भी नहीं बचती; और दुखद वेदनाओं के न बचने से सभी दु:खों का ही क्षय हो जाता है-यह शिक्षा स्वयं को हमारे लिये प्रशंसित और

अनुमोदित करती है, और हम इसमें आनन्दित होते हैं।''

6. तत्पश्चात्, मैंने उन निगण्ठों के 'हां' कहने पर कहा, -''क्या तुम जानते हो कि इससे पहले तुम्हारा अस्तित्व (पूर्व-जन्म) था या ऐसा कि आपका पूर्व-जन्म नहीं था?''
7. ''नहीं जानते।'
8. ''क्या तुम जानते हो कि, अपने पूर्व-जन्म में, तुम निश्चयात्मक रूप से बुरे कर्मों के दोषी थे, और निर्दोष नहीं थे?''
9. ''नहीं।''
10. ''क्या तुम जानते हो कि उस पूर्व जन्म में तुम इस या उस विशेष बुरे कर्म के दोषी थे, और निर्दोष नहीं थे?''
11. ''नहीं।''
12. फिर भगवान बुद्ध और जोर देकर कहते हैं कि एक मनुष्य की स्थिति उसके वंशानुगत द्वारा उतनी नियन्त्रित नहीं होती, जितनी कि उसके वातावरण द्वारा।
13. देवदह सुत्त-5 में भी बुद्ध यही कहते हैं, ''कुछ श्रमण और ब्राह्मण ऐसे हैं जो समर्थन करते हैं और इस मत को मानते हैं कि व्यक्तिगत अनुभव जो कुछ भी हों चाहे वे सुखद हों या दुखद हों या दोनों में से कोई भी नहीं हों-सभी पूर्व जन्म के कर्मों का परिणाम होते हैं। अतः पूर्व जन्म के कर्मों के प्रायश्चित और शुद्धिकरण द्वारा और नये बुरे कर्मों को न करने के द्वारा, भविष्य के लिये कुछ भी नहीं प्राप्त होता है, बुरे कर्म समाप्त हो जाते हैं, जब बुरे कर्म समाप्त हो जाते हैं, दुख का क्षय हो जाता है, जब दुख का क्षय हो जाता है, वेदना का भी क्षय हो जाता है और जब वेदना का क्षय हो जाता है सभी दुख जीर्ण हो जाते हैं और नष्ट हो जाते हैं, यही है जिसकी निगण्ठ पुष्टि करते हैं।
14. यदि ऐसा है कि अपने पूर्व जन्म की परिस्थितियों के कारण प्राणी दुख और सुख भोगते हैं, तो भी निगण्ठ दोषी हैं, और वह तब भी दोषी हैं, यदि परिस्थितियों का कारण नहीं है।
15. भगवान बुद्ध के ये कथन अब अत्यन्त प्रासंगिक हैं। यदि भगवान बुद्ध पूर्व कर्म में विश्वास रखते, तो वे यहाँ इस समय पूर्व-कर्म के बारे में संदेह क्यों प्रकाशित करते? यदि भगवान बुद्ध यह मानते कि दुख और सुख पूर्व-जन्म का परिणाम है तो वे यह क्यों कहते हैं कि वर्तमान जीवन का सुख-दुख परिस्थिति का परिणाम होता है।

16. पूर्व-कर्म के कारण सुख-दुख का सिद्धांत पूर्णतया ब्राह्मणवादी सिद्धांत है। पूर्व-कर्म का वर्तमान जीवन पर प्रभाव पड़े इसका ब्राह्मणवादी आत्मा के सिद्धांत से पूर्णतया मेल बैठता है, क्योंकि वे मानते हैं कि कर्म का आत्मा पर प्रभाव पड़ता है। किन्तु यह अनात्मवादी बौद्ध सिद्धांत के प्रतिकूल है।

17. ऐसा प्रतीत होता है कि यह पूरा का पूरा किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा बाद के बौद्ध धम्म में प्रक्षिप्त कर दिया गया है, जो या तो बौद्ध धम्म को हिन्दू धर्म के सदृश बनाना चाहता था या जो यह नहीं जानता था कि बौद्ध-सिद्धांत क्या है।

18. यह एक कारण है, जिसके आधार पर यह माना जाना चाहिए कि भगवान बुद्ध ऐसे सिद्धांत की देशना कभी नहीं कर सकते।

19. एक दूसरा और भी अधिक सामान्य कारण है, जिसके आधार पर यह माना जाना चाहिये कि भगवान बुद्ध ऐसे सिद्धांत की देशना कभी नहीं कर सकते।

20. भावी जन्म के संचालक के रूप में पूर्व-कर्म को स्वीकार करने के हिन्दू सिद्धांत का आधार अन्यायपूर्ण है। ऐसे सिद्धांत के आविष्कार करने का क्या प्रयोजन हो सकता था?

21. इसका एकमात्र उद्देश्य हो सकता है कि राज्य अथवा समाज को गरीबों और दरिद्रों की दुखावस्था के उत्तरदायित्व से सर्वथा मुक्त कर दिया जाए।

22. अन्यथा ऐसे अमानवीय और निरर्थक सिद्धांत का कभी आविष्कार नहीं होता।

23. यह सोचना भी असम्भव है कि महाकारुणिक बुद्ध ने कभी ऐसे सिद्धांत का समर्थन किया होगा।

विभाग - तीन

अहिंसा

1. अहिंसा के भिन्न-भिन्न अर्थ और व्यवहार

1. अहिंसा या जीव-हिंसा न करना बुद्ध की शिक्षाओं का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण भाग है।
2. यह करुणा और मैत्री के साथ घनिष्ठता से सम्बद्ध है।
3. फिर भी यह प्रश्न उठाया गया है कि क्या भगवान बुद्ध की अहिंसा निरपेक्ष थी या केवल सापेक्ष? क्या यह एक शील मात्र थी अथवा एक नियम थी?
4. जो लोग भगवान बुद्ध की शिक्षाओं को स्वीकार करते हैं, उन्हें अहिंसा को एक निरपेक्ष कर्त्तव्य के रूप में स्वीकार करने में कठिनाई होती है। वे कहते हैं कि अहिंसा की ऐसी परिभाषा बुराई के लिये अच्छाई का बलिदान तथा दुर्गुण के लिये सद्गुण का बलिदान सम्मिलित करती है।
5. यह प्रश्न स्पष्टीकरण की अपेक्षा करता है। ऐसा कोई विषय नहीं है, जो 'अहिंसा' की तुलना में अधिक भ्रम पैदा करने वाला हो।
6. बौद्ध देशों के लोगों ने अहिंसा को किस रूप में समझा है और किस प्रकार व्यवहार किया है?
7. यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है, जिस पर अवश्य ही विचार किया जाना चाहिये।
8. सिरीलंका के भिक्षु विदेशी आक्रमणकारियों के विरुद्ध लड़े और सिरीलंका की जनता से लड़ने के लिये कहा।
9. दूसरी और बर्मा (म्यामार) के भिक्षुओं ने विदेशी आक्रमणकारियों के विरुद्ध लड़ने से इन्कार कर दिया और बर्मी लोगों से न लड़ने के लिये कहा।
10. बर्मी लोग अण्डा खाते हैं किन्तु मछली नहीं।
11. इसी प्रकार अहिंसा समझी गयी है और व्यवहार में लायी जाती है।
12. हाल ही में जर्मन बौद्ध समिति ने एक प्रस्ताव पास किया, जिस अनुसार उन्होंने पहले शील (जीव-हिंसा से विरत) अहिंसा को छोड़ कर सभी चार शीलों को स्वीकार किया है।
13. अहिंसा के सिद्धांत के विषय में यह स्थिति है।

2. 'अहिंसा' का वास्तविक अर्थ

1. 'अहिंसा' को क्या तात्पर्य हैं?
2. भगवान बुद्ध ने कहीं भी 'अहिंसा' की कोई परिभाषा नहीं की है। यदि कभी की है, तो उन्होंने यदा-कदा ही निश्चित शब्दावली में इस विषय की चर्चा की है।
3. इसलिये परिस्थितिजन्य साक्ष्य की सहायता से ही भगवान बुद्ध के अभिप्राय का परिणाम निकालना होगा।
4. इस विषय पर पहला परिस्थितिजन्य साक्ष्य है कि भगवान बुद्ध को माँस भक्षण करने पर कोई आपत्ति नहीं थी, यदि वह उन्हें उनकी भिक्षा के भाग के रूप में अर्पित किया गया हो।
5. यदि भिक्षु, भिक्षापात्र में अर्पित माँस खा सकता है, बशर्ते कि वह किसी प्रकार से भी उस पशु-वध से सम्बंधित न रहा हो।
6. भगवान बुद्ध ने देवदत्त के उस प्रस्ताव को अस्वीकार कर कि भिक्षा के तौर पर उन्हें दिये जाने पर भी भिक्षुओं को माँसाहार नहीं करना चाहिये।
7. इस विषय पर अगला साक्ष्य यह है कि वह केवल यज्ञों (बलि) में पशुओं के वध के विरोधी थी। यह उन्होंने स्वयं कहा है।
8. 'अहिंसा परमो धर्म' यह एक चरम-सीमा का सिद्धांत है। यह एक जैन सिद्धांत है, यह बौद्ध सिद्धांत नहीं है।
9. एक अन्य साक्ष्य भी है, जो परिस्थितिजन्य साक्ष्य की अपेक्षा अधिक सीधा है और जो एक प्रकार से 'अहिंसा' की परिभाषा ही है। उन्होंने कहा है, "सभी को प्रेम करो, जिससे कि तुम किसी प्राणी का वध करने की इच्छा न करो।" यह अहिंसा के सिद्धांत के कहने का एक सकारात्मक ढंग है।
10. इससे ऐसा प्रतीत होता है कि 'अहिंसा' का बौद्ध सिद्धांत यह नहीं कहता कि 'मारो नहीं', बल्कि यह कहता है कि 'सभी को प्रेम करो'।
11. इन कथनों के प्रकाश में यह समझ सकना कठिन नहीं है कि 'अहिंसा' से भगवान बुद्ध का क्या अभिप्राय था?
12. यह पर्याप्त स्पष्ट है कि बुद्ध का अभिप्राय 'जीव-हत्या करने की चेतना' और 'जीव-हत्या करने की आवश्यकता' के बीच भेद करना था।'
13. जहाँ 'जीव-हत्या' आवश्यकता,थी वहाँ उन्होंने जीव-हत्या का निषेध नहीं किया था।

14. उन्होंने वैसी जीव-हत्या करने को मना किया था जहाँ केवल जीव-हत्या करने की चेतना थी।
15. इस तरह समझ लेने पर अहिंसा के बौद्ध सिद्धांत में कहीं कोई भ्रम नहीं पड़ता।
16. यह एक पूर्णतया निर्दोष या नैतिक सिद्धांत है, जिसका प्रत्येक को आदर करना चाहिये।
17. निस्सन्देह उन्होंने निर्णय लेने का दायित्व व्यक्ति पर ही छोड़ दिया है कि क्या जीव-हत्या करने की आवश्यकता है या नहीं। व्यक्ति के अतिरिक्त किस पर यह दायित्व छोड़ा जा सकता है? मनुष्य के पास प्रज्ञा है और उसे उसका प्रयोग करना चाहिये।
18. एक नैतिक मनुष्य पर उचित बिन्दु पर विभाजक रेखा खींचने का विश्वास किया जा सकता है।
19. ब्राह्मणवाद में 'जीव-हत्या करने की चेतना' है।
20. जैन-धर्म में कभी भी जीव-हत्या न करने की चेतना है।
21. भगवान बुद्ध ही अहिंसा उनके मध्यम वर्ग के अनुरूप है।
22. इसे दूसरे शब्दों में कहा जाये तो बुद्ध ने सिद्धांत (शील) और नियम (विनय) के मध्य एक भेद किया है। उन्होंने अहिंसा को नियम नहीं बनाया है। उन्होंने इसे एक सिद्धांत या जीवन-पद्धति के रूप में प्रतिपादित किया है।
23. इसमें निस्सन्देह उन्होंने अत्यंत बुद्धिमता से कार्य किया है।
24. एक सिद्धांत (शील) तुम्हें कार्य करने की स्वतन्त्रता देता है, एक नियम नहीं। नियम या तो तुम्हें तोड़ देता है या तुम नियम को तोड़ देते हो।

विभाग - चार

संसरण

(आत्मा का एक शरीर से दूसरे शरीर में प्रवेश करना)

1. भगवान बुद्ध ने पुनर्जन्म की देशना की है, किन्तु भगवान् बुद्ध ने यह भी देशना की है कि कोई संसरण नहीं है।
2. ऐसे लोगों की कमी नहीं थी, जिन्हों भगवान बुद्ध की आलोचना यह देशना करने के कारण की थी जिसे वे दो परस्पर विरोधी सिद्धान्त मानते थे।
3. आलोचकों ने पूछा था, पुनर्जन्म कैसे हो सकता है, जब तक कि संसरण न हो?
4. वे कहते थे कि यह बिना संसरण के पुनर्जन्म का मामला है, क्या यह हो सकता है?
5. इसमें कोई अन्तर्विरोध नहीं है, यद्धपि बिना संसरण के पुनर्जन्म हो सकता है।
6. राजा मिलिन्द के प्रश्नों के अपने उत्तर में यह भलि-भांति भदन्त नागसेन द्वारा स्पष्ट किया गया है।
7. बैक्ट्रिया के राजा मिलिन्द ने नागसेन से पूछा-"क्या भगवान बुद्ध पुनर्जन्म (संसरण) में विश्वास करते थे?"
8. स्थाविर नागसेन का उत्तर था- "हाँ"?
9. "क्या यह एक अन्तर्विरोध नहीं?"
10. नागसेन ने उत्तर दिया- "नहीं।"
11. "क्या बिना आत्मा के पुनर्जन्म हो सकता है?"
12. स्थविर नागसेन ने कहा, "बेशक, हाँ, ऐसा हो सकता है।"
13. "कृपया स्पष्ट करें यह कैसे हो सकता है।"
14. राजा ने कहा, "जहाँ संसरण नहीं है, नासगेन! क्या वहाँ पुनर्जन्म हो सकता है?"
15. "हाँ, हो सकता है।"
16. "किन्तु, यह कैसे हो सकता है? मुझे एक उदाहरण देकर समझाएं।"
17. "हे राजन्! मान लो एक व्यक्ति एक दीपक से दूसरा दीया जलाये, तो क्या

यह कहा जा सकता है कि एक का संसरण दूसरे में हो गया है?''

18. ''निश्चय से नहीं।''

19. ''महाराज! ठीक इसी प्रकार पुनर्जन्म बिना संसरण के होता है।''

20. ''मुझे एक और उदाहरण दें।''

21. 'महाराज! क्या आपको कोई छन्द (कविता का चरण) याद है, जो आपने बचपन में अपने आचार्य से सीखा हो।''

22. ''हाँ, मुझे याद हैं।''

23. ''तो क्या वह छन्द आपके आचार्य से संसरण हुआ था?'' अर्थात् ''क्या आचार्य के मुँह से निकलकर आपके मुँह में आ गया?''

24. ''निश्चय से नहीं।''

25. ''महाराज! ठीक इसी प्रकार पुनर्जन्म, बिना संसरण के होता है।''

26. ''बहुत अच्छा, नागसेन!''

27. राजा ने कहा, ''नागसेन! क्या 'आत्मा' जैसी कोई चीज होती है?''

28. ''हे राजन्! यथार्थ में आत्मा जैसी कोई चीज नहीं है।''

29. ''बहुत अच्छा, नागसेन।''

विभाग - पाँच

भ्रम के कारण

1. भगवान बुद्ध ने जो उपदेश दिए थे वे उनके श्रोताओं द्वारा सुने जाते थे, जिनमें अधिकांशतः भिक्षु होते थे।
2. ये भिक्षु ही थे, जो भगवान बुद्ध के द्वारा कही गई बात को जन-साधारण तक पहुंचाते थे।
3. उस समय तक लिखने की कला विकसित नहीं हुई थी। इसलिये भिक्षु जो कुछ सुनते थे उन्हें कण्ठस्थ करना पड़ता था। प्रत्येक भिक्षु जो उसे सुनाता था उसे कण्ठस्थ करने की चिन्ता नहीं करता था किन्तु कुछ ऐसे भिक्षु थे, जिन्होंने कण्ठस्थ करना अपना काम बना लिया था। वे 'भाणक' कहलाते थे।
4. बौद्ध त्रिपिटक और उसकी अट्ठकथाएं इतनी विशाल हैं, जैसे कि समुद्र। इन सबको कण्ठस्थ करना वास्तव में एक असाधारण कार्य था।
5. एक से अधिक बार ऐसा हुआ कि भगवान बुद्ध ने जो कुछ कहा उसकी रिपोर्टिंग गलत हुई।
6. गलत रूप से प्रस्तुत किये गए अनेक मामले भगवान बुद्ध की जानकारी में लाये गये थे, जब वे जीवित थे।
7. उदाहरण के तौर पर पाँच ऐसे मामलों का उल्लेख किया जा सकता है। एक का उल्लेख अलगद्दुपम सुत्त में, दूसरा महाकम्म विभंग सुत्त में, तीसरा कण-कट्ठल सुत्त में चौथे का महातण्हा-संख्या सुत्त में और पाँचवें का जीवक सुत्त में है।
8. सम्भवतः गलत रूप से प्रस्तुत किये जाने के अन्य अनेक ऐसे मामले आए हों, जब तथागत के वचनों की ठीक 'रिपोर्ट' न हुई हो। क्योंकि हम देखते हैं कि भिक्षु भी भगवान बुद्ध के पास गए हैं और प्रश्न किया है, ऐसी परिस्थितियों में उन्हें क्या करना चाहिये?
9. 'कर्म' और 'पुनर्जन्म' के सम्बन्ध में जब-जब गलत रिपोर्ट हुई है, ऐसे मामले तो अनेक हैं।
10. इन सिद्धान्तों का ब्राह्मणवादी धर्म में भी एक स्थान है, अतः भाणकों के लिये ब्राह्मणवादी सिद्धान्तों को बौद्ध धर्म में समाविष्ट कर देना सरल था।
11. इसलिये बौद्ध-त्रिपिटक में जो कुछ भी बुद्ध-वचन के रूप में कहा गया है, उसे स्वीकार करने में अत्यन्त सावधानी की आवश्यकता है।

12. लेकिन इसके लिये एक कसौटी है जो विद्यमान है।

13. यदि कुछ भी पूर्ण विश्वास के साथ कहा जा सकता है, तो वह है यदि वे विवेकपूर्ण नहीं थे, यदि वे तार्कित नहीं थे, तो वे कुछ नहीं थे। अतः कुछ भी समान हो जो विवेकपूर्ण और तर्कसंगत है, वह बुद्ध-वचन के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

14. दूसरी बात यह है कि भगवान बुद्ध ने कभी भी ऐसी चर्चा में पड़ने की कोशिश नहीं की थी, जो मनुष्य के कल्याण के लिये लाभदायक नहीं थी। अतः कोई भी बात जो बुद्ध पर आरोपित की गयी है, किन्तु जिसका मनुष्य के कल्याण से सम्बन्ध नहीं है, वह बुद्ध-वचन के रूप में स्वीकार नहीं की जा सकती है।

15. एक तीसर कसौटी भी है कि भगवान बुद्ध ने सभी विषयों को दो वर्गों में विभाजित किया है। वे जिनके बारे में वे निश्चित थे और वे जिनके बारे में वे निश्चित नहीं थे। उन विषयों पर जो पहले वर्ग में आते हैं, उन्होंने अपने विचार निश्चित और निर्णायक रूप से व्यक्त किये थे। उन विषयों पर जो दूसरे वर्ग में आते हैं, उन्होंने अपने विचार व्यक्त किये हैं, किन्तु वे केवल सुझाव के रूप में व्यक्त किये गये विचार हैं।

16. तीन प्रश्नों के विषय में चर्चा करने में जिनके विषय में सन्देह और मतभेद है, यह निश्चित करने से पहले कि इन पर भगवान बुद्ध का क्या विचार था, उक्त परीक्षणों को ध्यान में रखना आवश्यक है।

तीसरा भाग

बौद्ध जीवन-मार्ग

1. शुभ-कर्म, अशुभ-कर्म और पाप।
2. लोभ और तृष्णा।
3. क्लेश और द्वेष।
4. क्रोध और शत्रुता।
5. मनुष्य, मन और मन का मैल।
6. स्वयं के बारे में और स्व-विजय।
7. बुद्धि, न्याय और सुसंगति।
8. चित्त की सतर्कता और एकाग्रता।
9. सावधानी, अप्रमाद और निर्भीकता।
10. दुख, सुख तथा दान और करुणा।
11. ढोंग।
12. सम्यक् मार्ग का अनुसरण।
13. सद्धम्म के साथ मिथ्या धर्म को मत मिलाओ।

1. शुभ-कर्म अशुभ-कर्म और पाप

1. शुभ कर्म करो। अशुभ कर्म में सहयोग न दो। कोई पाप-कर्म न करो।
2. यह बौद्ध जीवन-मार्ग है।
3. यदि एक मनुष्य शुभ कार्य करता है, तो उसे पुनः, पुनः करना चाहिये। उसी में चित्त लगाना चाहिये। शुभ कार्यो का संचय सुखद होता है।
4. शुभ कर्म के विषय में यह मत सोचो कि "यह मेरे पास तक नहीं आयेगा।" बूँद-बूँद पानी से घड़ा भरता है। ऐसे ही थोड़ा-थोड़ा संचय से ही शुभ कर्म बढ़ते हैं।
5. जिस काम को करके आदमी को पछताना न पड़े और जिसके फल को आनन्द और सन्तोष के साथ प्राप्त किया जा सके, उस कार्य को करना बहुत अच्छा होता है।
6. जिस काम को करके मनुष्य को पछताना न पड़े और जिसके फल को प्रफुल्लित मन से भोग सके, उस काम को करना अच्छा है।
7. यदि मनुष्य शुभ कार्य करे, तो उसे वह शुभ कार्य पुनः, पुनः करना चाहिये। उसे उसमें आनन्दित होना चाहिये। शुभ कर्म का संचय आनन्ददायक होता है।
8. यहाँ तक कि भले मनुष्य को भी बुरे दिन देखने पड़ते हैं, जब तक कि उसके शुभ कर्म फलित नहीं हो जाते। किन्तु जब उसके शुभ कर्म फलित होने लगते हैं, तब भला मनुष्य अच्छे दिन देखता है।
9. शुभ-कर्म के विषय में किसी को अपने मन में यह नहीं सोचना चाहिए कि इसका फल मेरे पास तक नहीं आयेगा। यहाँ तक कि पानी की बूँद-बूँद गिरने से भी घड़ा भर जाता है। इसी प्रकार बुद्धिमान मनुष्य शुभ-कर्मो को थोड़ा-थोड़ा एकत्रित करके भलाई में परिपूर्ण हो जाता है।
10. शील सदाचार की सुगंध चंदन या धूप या कमल या चमेली की सुगंध से बढ़कर होती है।
11. धूप और चन्दन की सुगंध कुछ ही दूर तक जाती है, किन्तु शील की सुगंध बहुत दूर-दूर तक जाती है।
12. अशुभ-कर्म के बारे में कहते हुए यह न सोचे कि यह मुझ तक नहीं पहुँच पायेगा। जिस प्रकार बूँद-बूँद करके पानी से घड़ा भरा जाता है, उसी प्रकार थोड़ा-थोड़ा करके अशुभ कर्म भी बहुत बढ़ जाते हैं।
13. कोई ऐसा कार्य करना अच्छा नहीं है, जिसको करने से पछतावा हो और जिसका फल आँसुओं और विलाप के साथ भोगना पड़े।

14. यदि कोई मनुष्य बुरे मन से बोलता या कार्य करता है, तो दुख उसका पीछा उसी प्रकार करता है, जैसे गाड़ी के पहिए गाड़ी खींचने वाले पशु के पैरों का करता है।
15. दुष्कर्म का अनुसरण न करे। प्रमाद में न रहे। मिथ्या-दृष्टि में न पड़े।
16. शुभ-कर्मों में अप्रमादी हो सभी बुरे विचारों का दमन करे। जो कोई भी शुभ-कर्म करने में पिछड़ा है, उसका मन अशुभ-कर्मों में लगता है।
17. जिसको करने के बाद पछताना पड़े, वह कार्य करना अच्छा नहीं है। उसके फल को आँसुओं और विलाप के साथ भोगना पड़ता है।
18. अशुभ-कर्म करने वाला भी तब तक सुखी रहता है, जब तक कि उसके अशुभ कर्म फलित नहीं हो जाते हैं। किन्तु जब उसके अशुभ-कर्म फलित हो जाते हैं, तब अशुभ-कर्म करने वाला दुख भोगता है।
19. अशुभ-कर्म के विषय में किसी को अपने मन में यह कहते हुए नहीं सोचना चाहिये कि, 'यह मेरे पास तक नहीं आयेगा।' पानी की बूँद-बूँद गिरने से घड़ा भर जाता है। इसी प्रकार अशुभ कर्मों को थोड़ा-थोड़ा करके मूर्ख पाप से परिपूर्ण हो जाता है।
20. मनुष्य को शुभ-कर्म करने में शीघ्रता करनी चाहिये, और अपने मन को बुराई से दूर करना चाहिये। यदि मनुष्य शुभ-कर्म करने में सुस्ती करता है तो उसका मन अशुभ-कर्मों में लिप्त हो जाता है।
21. यदि एक मनुष्य पाप करता है, तो उसे वह बार-बार नहीं करना चाहिये। उसे उसमें आनन्दित नहीं होना चाहिये, क्योंकि बुराई का संचय दुखदायी होता है।
22. शील के नियमों का पालन करो। पाप का पालन मत करो। शीलवान ही इस संसार में सुखपूर्वक रहता है।
23. कामुकता से दुख उत्पन्न होता है। कामुकता से भय उत्पन्न होता है। जो कामुकता से पूर्णतया मुक्त है, उसके लिए न तो शोक है और न ही भय है।
24. भूख सबसे बड़ा रोग है, संस्कार सबसे बड़ा दुख है। इसको यथार्थ में समझ लेने पर निर्वाण सर्वोच्च सुख बन जाता है।
25. स्वयं-कृत, स्वयं-उत्पन्न तथा स्वयं-पोषित अशुभ-कर्म करने वाले को ऐसे पीस डालता है, जैसे बज्र मूल्यावान रत्न को तोड़ देता है।
26. जो अत्यनत दु:शील होता है, वह स्वयं को उस स्थिति में पहुंचा देता है जहाँ उसका शत्रु उसे चाहता है। ठीक वैसे ही जैसे कि एक अम्बर-बेल उस पेड़ को जिसे वह घेरे रहती है।

27. बुरे और अहितकर कर्मों को करना सरल है, किन्तु हितकर और शुभ कर्मों का करना कठिन है।

2. लोभ और तृष्णा

1. न लोभ और न तृष्णा के वशीभूत हों।
2. यह बौद्ध जीवन-मार्ग है।
3. धन की वर्षा होने से भी मनुष्य की इच्छाओं की सन्तुष्टि नहीं होती है। बुद्धिमान मनुष्य भली-भांति जानता है कि इच्छायें अल्प-स्वाद और दुखद होती हैं।
4. जो सम्यक सम्बुद्ध का शिष्य है? उसे दिव्य-काम-भोगों के सुखों में भी कोई आनन्द नहीं प्राप्त होता है। उसका आनन्द तो तृष्णा के क्षय में होता है।
5. तृष्णा से दुख उत्पन्न होता है, तृष्णा से भय उत्पन्न होता है। उसके लिये जो तृष्णा से पूर्णतया मुक्त हो, उसे न तो दुख है और न भय ही है।
6. लोभ से दुख उत्पन्न होता है, लोभ से भय उत्पन्न होता है। उसके लिये जो लोभ से पूर्णतया मुक्त है, उसे न तो दुख है और न भय ही है।
7. वह जो स्वयं को मिथ्याभिमान के सुपुर्द कर देता है, वह जीवन के यथार्थ उद्देश्य को भूल कर काम-भोगों का लोभ करता है, वह अन्त में ध्यानी की ओर ईर्ष्या भरी दृष्टि से देखता है।
8. कोई मनुष्य किसी भी वस्तु के प्रति आसक्त न हो, इसकी हानि दुखदायी होती है। जिन्हें किसी से न प्रेम है और किसी से न घृणा है, वे बंधनमुक्त हैं।
9. काम-भोगों से दुख पैदा होता है, काम-भोगों से भय पैदा होता है, वह जो काम-भोगों से मुक्त है, उसे न तो दुख है और न भय ही है।
10. आसक्ति से दुख पैदा होता है, आसक्ति से भय पैदा होता है, वह जो आसक्ति से मुक्त है, उसे न तो दुख है और न भय ही है।
11. राग से दुख पैदा होता है, राग से भय पैदा होता है, वह जो राग से मुक्त है, उसे न तो दुख है और न भय ही है।
12. लोभ से दुख पैदा होता है, लोभ से भय पैदा होता है, वह जो लोभ से मुक्त है, उसे न तो दुख है और न भय ही है।
13. वह जो शील और प्रज्ञा से सम्पन्न हैं, जो न्यायी है, सत्यवादी है और जो अपने कर्त्तव्य को पूरा करता है, उसे संसार प्रिय मानता है।
14. जो मनुष्य बहुत चिरकाल के बाद दूर-दराज से सुरक्षित लौटता है उसके रिश्तेदार, मित्र और प्रियजन उसका अभिनन्दन करते हैं।

15. इसी प्रकार जिसने शुभ-कर्म किये हैं, और जो इस संसार से चल बसा है, जैसे रिश्तेदार, मित्र के लौटने पर स्वागत करते हैं, उसी प्रकार उसके शुभ-कर्म उसका स्वागत करते हैं।

3. क्लेश और द्वेष

1. किसी को क्लेश मत दो, किसी से द्वेष मत रखो।
2. यह बौद्ध जीवन-मार्ग है।
3. क्या सम्पूर्ण संसार में कोई मनुष्य इतना निर्दोष है कि उसे दोष देने का अवसर नहीं दिया जा सकता, जैसे कि एक तेजस्वी घोड़ा चाबुक की मार का कोई अवसर नहीं देता है।
4. तुम श्रद्धा शील, वीर्य, समाधि, धर्म-विजय (सत्य की खोज), ज्ञान और आचरण की पूर्णता तथा स्मृति द्वारा इस महान् दुख का अंत कर दो।
5. तपों में सबसे बड़ा तप क्षमा है, तथा निर्वाण सबसे बड़ा सुख है, ऐसा बुद्ध कहते हैं। जो दूसरों को क्लेश दे वह प्रव्रजित नहीं है। जो दूसरों को कष्ट पहुंचाने के कार्य करे वह श्रमण नहीं है।
6. वाणी से बुरे वचन न बोलना, किसी को कोई कष्ट न देना, विनयपूर्वक संयम का अभ्यास करना, यही बुद्ध की देशना है।
7. न जीव-हिंसा करो, और न जीव-हिंसा कराओ।
8. अपने लिये सुख चाहने वाला, दूसरे सुख चाहने वाले प्राणियों को न कष्ट देता है या न जीव-हिंसा ही करता है, वही सुख को प्राप्त कर सकेगा।
9. यदि, कांसे के टूटे बर्तन की तरह तुम निशब्द हो जाओ, तो तुम निर्वाण तक पहुँच गये जानो, तुम्हारा क्रोध से कोई संबंध नहीं है।
10. जो निर्दोष और अहानिकर लोगों को कष्ट पहुँचाता है, वह स्वयं शीघ्र ही दुख भोगता है।
11. जो कोई उत्तम परिधान से अलंकृत ब्रह्मचारी, शान्त है, दीक्षित है, संयमित है, ब्रह्मचारी है और जिसने अन्य सभी प्राणियों का छिद्रान्वेषण करना त्याग दिया है, वह निस्संदेह एक श्रमण, एक भिक्षु है।
12. क्या इस संसार में कोई मनुष्य लज्जा से इतना संयमित है कि वह निन्दा द्वारा उत्तेजित नहीं होता है, जैसे एक कुलीन घोड़ा चाबुक से?
13. यदि कोई मनुष्य किसी अहानिकार, शुद्ध और निर्दोष व्यक्ति को ठेस पहुँचाता

है, तो बुराई उसी मूर्ख पर वापस आ पड़ती है, जैसे हवा के विरुद्ध फेंकी हुई धूल फेंकने वाले पर ही वापस आ पड़ती है।

4. क्रोध और शत्रुता

1. क्रोध मत करो। अपने शत्रुता को भूल जाओ। प्रेम द्वारा अपने शत्रुओं को जीत लो।
2. यह बौद्ध जीवन-मार्ग है।
3. क्रोधाग्नि शान्त होनी ही चाहिये।
4. वह जो यह विचार मन में रखता है कि उसने मुझे गाली दी, उसने मेरे साथ दुर्व्यवहार किया, उसने मुझे पराजित किया, उसने मुझे लूट लिया, उसका वैर कभी शान्त नहीं होता।
5. वह जो ऐसे विचार मन में नहीं रखता, उसका वैर शान्त हो जाता है।
6. शत्रु, शत्रु के साथ बुराई करता है, घृणा करने वाला घृणा करने वाले के साथ, लेकिन यह बुराई किसकी होती है?
7. मनुष्य को चाहिए कि प्रेम द्वारा क्रोध को जीते, भलाई से बुराई को जीते, दान से लोभी को जीते।
8. सत्य बोले, क्रोध न करें, मांगने वाले को थोड़ा होने पर भी दे।
9. एक मनुष्य को चाहिए कि क्रोध का त्याग कर दे, गर्व का परित्याग कर दे, सभी बंधनों पर काबू पा ले, जो नाम रूप में आसक्त नहीं है और जो किसी अन्य व्यक्ति की चीज को अपनी नहीं समझता, उस आदमी को कोई कष्ट नहीं होता।
10. वह जो चढ़ते क्रोध को एक चलते रथ के समान रोक लेता है, उसे ही मैं (जीवन-रथ का) सच्चा सारथी मानता हूँ, दूसरे लोग तो केवल लगाम पकड़ने वाले ही हैं।
11. विजय वैर उत्पन्न करती है, पराजित आदमी दुखी रहता है। शान्त व्यक्ति जय और पराजय की चिन्ता छोड़कर सुखी रहता है।
12. कामाग्नि के समान कोई अग्नि नहीं। घृणा के समान कोई दुर्भाव नहीं है। उपादान-स्कन्धों के समान कोई दुख नहीं है, निर्वाण से बढ़कर कोई सुख नहीं है।
13. वैर से वैर कभी भी शान्त नहीं होता। वैर अवैर से ही शान्त होता है। यही सदा का नियम है।

5. मनुष्य, मन और मन का मैल

1. मनुष्य वही कुछ होता है, जो उसका मन उसे बना देता है।
2. सन्मार्ग पर आगे के लिये मन की साधना, धर्मपरायणता का पथ, पहला चरण है।
3. यह बौद्ध जीवन-मार्ग की मुख्य शिक्षा है।
4. प्रत्येक चीज में मन ही प्रमुख तत्त्व है और मन ही मुख्य है।
5. यदि कोई मनुष्य दुष्ट मन से कुछ बोलता है या करता है, तो दुःख उसका पीछा उसी प्रकार करता है, जैसे गाड़ी के पहिये गाड़ी खींचने वाले पशु के पैरों के पीछे-पीछे करते हैं।
6. यदि कोई मनुष्य मन की सच्चाई से बोलता है या कार्य करता है, तो सुख उसका उसी प्रकार पीछा करता है, जैसे कभी साथ न छोड़ने वाली परछाई आदमी के पीछे-पीछे।
7. इस चंचल, अस्थिर, दुःरक्ष्य दुःनिवार्य मन को बुद्धिमान मनुष्य ऐसे ही सीधा करता है, जैसे बाण बनाने वाला बाण को सीधा करता है।
8. जिस प्रकार पानी से बाहर जमीन पर फेंकी हुई मछली तड़फती है उसी प्रकार मन मार के बंधन से मुक्त होने के लिए तड़फड़ाता है।
9. जिसे नियंत्रण में रखना कठिन है, जो अस्थिर है, जो सदैव सुख की खोज में लगा रहता है, ऐसे मन को वश में रखना ही अच्छा है। वश में रखा हुआ मन ही सुख देने वाला होता है।
10. अपने आप को एक प्रदीप (द्वीप) बनाओ, परिश्रम करो। जब तुम्हारे चित्त मलों का नाश हो जाये और तुम दोष से मुक्त हो जाओ, तो तुम वांछित लोक में प्रवेश कर जाओगे।
11. जैसे एक सुनार, एक-एक करके, थोड़ा-थोड़ा करके, मैल को दूर करता है, उसी प्रकार बुद्धिमान आदमी को चाहिए कि क्षण-क्षण करके, थोड़ा-थोड़ा कर अपने चित्त के मैल को दूर कर दे।
12. जिस प्रकार लोहे से उत्पन्न हुआ मोर्चा, लोहे को खा जाता है, उसी प्रकार पापी अपने दुष्कर्म उसे दुर्गति तक ले जाते हैं।
13. किन्तु सभी मलों की अपेक्षा निकृष्ट एक दोष है। अविद्या सबसे बड़ा मल है। हे भिक्षुओ! इस दोष को दूर कर निर्दोष बन जाओ।
14. एक ऐसे मनुष्य का जीवन जीना सरल है, जो एक कौवे के समान निर्लज्ज है,

उसका जीवन सुखी माना जाता है, दुस्साहसी और दुष्ट व्यक्ति, उसका जीवन सुखी माना जाता है।

15. किन्तु एक विनम्र मनुष्य के लिये जीवन जीना कठिन है, जो सदैव पवित्रता की खोज में रहता हो जात अनासक्त, शान्त, निर्मल और बुद्धिमान हो, ऐसे मनुष्य का जीवन सुखी नहीं माना जाता।
16. वह जो जीवन-हिंसा करता है, जो झूठ बोलता है, जो संसार में बिना दी हुई वस्तु लेता है, जो पर-स्त्री गमन करता है।
17. और जो मनुष्य शराब आदि नशीले पेय पदार्थ का सेवन करता है, वह यहीं इस संसार में अपनी कब्र अपने आप खोदता है।
18. हे मनुष्य! यह जान लो कि असंयत की अवस्था अच्छी नहीं रहती, उससे सावधान रहो कि लोभ और पाप-कर्म तुम्हें लम्बे समय तक दुख में ही न डाले रहें।
19. संसार या तो किसी को श्रद्धा से देता है या किसी को खुशी से देता है। यदि मनुष्य दूसरे को मिलने वाले भोजन और पानी को देखकर चिढ़ता है, तो उसे न दिन को चैन मिलेगा और न ही रात को।
20. जिसके मन की ऐसी भावना नष्ट हो गयी है और जड़-मूल से उखाड़ ली गयी है, उसे दिन को भी चैन नहीं मिलेगा और न रात को भी।
21. राग के समान कोई अग्नि नहीं और लोभ के समान कोई ओघ (बाढ़) नहीं है।
22. दूसरे के दोष आसानी से दिखाई देते हैं, किन्तु अपने कठिनाई से। मनुष्य दूसरों के दोषों को भूसे के समान उड़ाता है, किन्तु आपके दोषों को वैसे ही छिपाता है, जैसे कि एक धोखेबाज जुआरी पांसे को।
23. जो मनुष्य दूसरों के दोषों को ही देखता रहता है और सदैव रुष्ट रहने की ओर प्रवृत्त रहता है, उसके आस्रव बढ़ते ही जाएंगे और वह आस्रवों के क्षय से बहुत दूर हो जाता है।
24. सभी पापों से बचो, कुशल कर्मो का पोषण करो और अपने विचारों को शुद्ध करो। यही बुद्ध की शिक्षा है।

6. स्वयं के बारे में और स्व-विजय के विषय में

1. यदि किसी में अपनापन है, तो उसे स्व-विजय का अभ्यास करना चाहिए।
2. यह बौद्ध जीवन-मार्ग है।

3. मनुष्य स्वयं ही अपना स्वामी है और दूसरा कौन स्वामी हो सकता है? जो मनुष्य भली-भांति अपने आप को संयत रखता है, वह मनुष्य दुर्लभ स्वामित्व को प्राप्त कर सकता है।

4. जो मूर्ख मनुष्य अर्हतों के, आर्यों अथवा शीलवानों शासन को तिरस्कार की दृष्टि से देखता है और मिथ्या-दृष्टि का अनुकरण करता है, वह स्वयं अपने विनाश का उसी प्रकार कारण बनता है, जैसे कि काष्ठ सरकंडे के फल।

5. मनुष्य अपने आप ही पाप-कर्म करता है, अपने आप ही कष्ट सहन करता है। अपने आप ही बुराई को छोड़ देता है, और अपने आप ही शुद्ध होता है। शुद्धि और अशुद्धि अपने आप से होती है, कोई किसी दूसरे को शुद्ध नहीं कर सकता है।

6. जो केवल सुखों की ही खोज करना पसन्द करता है, जो इन्द्रियों में असंयमित है, जो अपने भोजन में अमर्यादित है, आलसी और दुर्बल है, उस आदमी को अपने असंयत कर्म ही ऐसे पछाड़ देते हैं, जैसे वायु एक निर्बल वृक्ष को।

7. जो सुखों की खोज किये बिना जीवन जीता है, जिसकी इन्द्रियाँ भली-भाँति संयमित हैं, जो अपने भोजन में मर्यादित है, श्रद्धावान और वीर्यवान है, वह उसी प्रकार पछाड़ नहीं खा सकता, जैसे वायु से चट्टानी पर्वत।

8. यदि आदमी अपने-आप को प्रिय समझता है, तो उसे अपने आप पर कड़ी नजर रखनी चाहिये।

9. सर्वप्रथम अपने आप को उचित मार्ग पर लगाएं, तब दूसरों को उपदेश दें। बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए कि वह दूसरे को निन्दा का अवसर न दे।

10. अपने आपको नियन्त्रित करना कठिन है; जैसा वह दूसरों को उपदेश देता है, यदि कोई मनुष्य उस अनुरूप चलकर अपने को भलि-भाँति संयमित कर तो वह दूसरों पर भी नियन्त्रण रख सकेगा।

11. मनुष्य स्वयं पाप करता है और स्वयं भोगता है और स्वयं ही परिशुद्ध होता है। शुद्धि और अशुद्धि दोनों ही व्यक्तिगत हैं कोई किसी दूसरे को परिशुद्ध नहीं कर सकता।

12. यद्यपि कोई युद्ध में हजारों-लाखों लोगों को जीत सकता है, पर जो कोई स्वयं को जीत ले, वह ही योद्धाओं में महानतम है।

13. सर्वप्रथम अपने आपको उचित मार्ग पर लगाए, तब दूसरों को उपदेश दे। बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए कि वह दूसरों को निन्दा का अवसर न दे।

14. यदि कोई जैसा वह दूसरों को उपेदश देता है, स्वयं उसके अनुरूप चले, अपने आपको भली-भाँति संयमित करे, तो वह दूसरों पर भी नियंत्रण रख सकेगा।

अपने आपको नियंत्रित करना कठिन है।

15. वास्तव में मनुष्य स्वयं ही अपना संरक्षक है। दूसरे संरक्षक की वहाँ क्या आवश्यकता है? यदि आदमी अपनी रक्षा स्वयं करता है, तो वह अपने आपको ऐसा संरक्षक पाता है जिसके समान दूसरा रक्षक मिलना दुर्लभ है।

16. यदि आदमी को अपना आप प्रिय है, तो उसे अपने आप पर कड़ी नजर रखनी चाहिए।

17. मनुष्य स्वयं पाप करता है और स्वयं उसका फल को भोगता है, स्वयं ही वह परिशुद्ध होता है। अच्छाई और बुराई अलग-अलग परिशुद्ध होती हैं, कोई किसी दूसरे को परिशुद्ध नहीं कर सकता।

18. वास्तव में मनुष्य अपना आप संरक्षक है। दूसरे संरक्षक की वहाँ क्या आवश्यकता है? यदि आदमी अपनी रक्षा स्वयं करता है, तो वह अपने आपको ऐसा संरक्षक पाता है, जिसके समान दूसरा रक्षक मिलना दुर्लभ है।

7. बुद्धि, न्याय और सुसंगति

1. बुद्धिमान बनो, न्यायशील रहो और सुसंगति करो।
2. यही बौद्ध जीवन-मार्ग है।
3. यदि कोई ऐसा मनुष्य मिले, जो तुम्हारा वर्जने योग्य व्यक्ति से परिचय कराए, जो डांट-फटकार की भी करे, और बुद्धिमान हो, तो उस बुद्धिमान मनुष्य का उसी प्रकार अनुकरण करो जैसे छिपे खजाने को बताने वाले का। यह अनुकरण अच्छा ही होगा, बुरा नहीं।
4. जो उपदेश दे, उसे शिक्षा देने दो। जो अनुचित है, उसे रोकने दो। वह सज्जनों का प्रिय होगा, बुरे द्वारा उससे घृणा की जायेगी।
5. पाप-कर्म करने वालों को मित्र मत बनाओ, नीच लोगों की संगति न करें। श्रेष्ठ मनुष्यों को मित्र बनाओ, शीलवान लोगों को मित्र बनाओ।
6. वह जो धर्मामृत का पान करता है, शान्त मन के साथ सुख से जीवन व्यतीत करता है, श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा उपदेशित धम्म में सदैव सुखी रहता है।
7. कुआँ खोदने वाले (जहाँ कहीं वे चाहते हैं) पानी को ले जाते हैं। वाण बनाने वाले वाण को सीधा करते हैं, बढ़ई लकड़ी के एक लट्ठे को सीधा करते हैं, बुद्धिमान लोग अपने आप को विनीत बनाते हैं।
8. जैसे एक ठोस चट्टान वायु के झोंके से नहीं हिलती, उसी प्रकार बुद्धिमान लोग निन्दा और प्रशंसा से विचलित नहीं होते।

9. बुद्धिमान लोग, धम्म सुन लेने के पश्चात् एक गहरी, शान्त और स्थिर झील के समान शान्त हो जाते हैं।

10. सत्पुरुष निस्संदेह सभी परिस्थितियों में सावधानी से चलते रहते हैं, इच्छाओं की तृप्ति के लिए कभी मुँह नहीं खोलते हैं, भले ही सुख या दुख का अनुभव हो या बुद्धिमान लोग कभी भी खिन्न प्रतीत नहीं होते।

11. मूर्ख मनुष्य इसे जब तक शहद के समान मधुर समझता है, तब तक पाप-कर्म परिपक्व नहीं होता है। किन्तु जब पाप-कर्म परिपक्व हो जाता है, तब मूर्ख दुखी होता है।

12. जब मूर्ख आदमी पाप-कर्मों को करता है, तो वह नहीं जानता कि मैं पाप-कर्म कर रहा हूँ, किन्तु वह पापी मनुष्य बाद में आग के समान स्वयं अपने दुष्कर्मों से जलता है।

13. जागने वाले की रात लम्बी होती है;, थके हुए मनुष्य का योजन लम्बा होता है, सच्चे धम्म को न जानने वाले मूर्ख मनुष्य का जीवन लम्बा होता है।

14. यदि किसी यात्री को कोई उससे श्रेष्ठ या समान व्यक्ति न मिले तो उसे अकेला ही अपने जीवन-पथ पर दृढ़तापूर्वक चलना चाहिये। मूर्ख की संगति अच्छी नहीं।

15. "यह मेरा पुत्र है और यह मेरी सम्पत्ति है", इन्हीं विचारों के साथ मूर्ख दुखी होता रहता है। जिसका अपना आप ही अपना नहीं है; उसका कहाँ पुत्र और कहाँ सम्पत्ति?

16. जो मूर्ख अपनी मूर्खता को जानता है, कम से कम वह वहाँ तक वह पंडित है। किन्तु जो मूर्ख स्वयं को पंडित समझता है, निस्संदेह वह एक मूर्ख होता है।

17. एक मूर्ख व्यक्ति भले ही अपने पूरे जीवन भर एक बुद्धिमान मनुष्य के साथ रहे, तो भी तनिक भी सद्धर्भ को नहीं जान पाता, जैसे एक चम्मच सूप के स्वाद को।

18. लेकिन एक मेधावी मनुष्य केवल थोड़ी देर के लिये एक बुद्धिमान मनुष्य की संगति करे, तो वह शीघ्र ही सद्धर्भ को जान लेता है, जैसे जिह्वा सूप के स्वाद को जान लेती है।

19. अल्प समझ वाले मूर्ख स्वयं अपने सबसे बड़े शत्रु होते हैं, क्योंकि वे ऐसे पाप-कर्मों को करते हैं, जिनसे कड़वे फल उत्पन्न होते हैं।

20. उस कार्य का करना अच्छा नहीं, जिसके लिए आदमी को पछताना पड़े और जिसका फल रोते हुए आँसुओं से भरे मुख से भोगना पड़े।

21. वह कार्य अच्छा है, जिसके कर चुकने के बाद मनुष्य को पछताना न पड़े और जिसका फल आदमी प्रसन्नता और प्रफुल्लता से भोग सके।
22. जब तक कि पाप-कर्म फलित नहीं होता, तब तक मूर्ख आदमी उसे मधु के समान मधुर समझता रहता है, किन्तु जब यह परिपक्व होता है, तब मूर्ख दुखी होता है।
23. छिपा हुआ पाप-कर्म प्रकट होने के उपरान्त जब मूर्ख के लिये दुख का कारण बनता है, तब वह उसके उज्ज्वल भाग्य को नष्ट कर देता है, बल्कि उसके सिर के टुकड़े-टुकड़े कर देता है।
24. झूठे यश की कामना, भिक्षुओं के मध्य वरीयता, विहारों में प्रभुत्व और अन्य लोगों के मध्य पूजायमान होने की इच्छा एक मूर्ख को छोड़ देनी चाहिए।
25. मनुष्य के बाल पक जाने से ही वह 'वृद्ध' नहीं होता, उसकी आयु प्रौढ़ हो सकती है, किन्तु वह 'व्यर्थ बूढ़ा हुआ' कहलाता हैं।
26. जिसमें सत्य, शील, करुणा, संयम और नियन्त्रण है, वह जो अशुद्धि से मुक्त है और बुद्धिमान है, वह ही वास्तव में वृद्ध कहलाता है।
27. एक ईर्ष्यालु, कंजूस और धोखेबाज मनुष्य केवल अधिक बोलने कारण या अपने वर्ण की सुन्दरता द्वारा आदरणीय नहीं बन जाता है।
28. जिसमें ये सब दुर्गुण नष्ट हो गए हैं और जड़-मूल से उखाड़ दिये गये हैं, वह घृणा से मुक्त हो गया है और बुद्धिमान है, वही आदरणीय कहलाता है।
29. एक मनुष्य यदि वह किसी मसले को जोर-जबरदस्ती द्वारा पूरा करा लेता है, उससे वह न्यायशील नहीं माना जाता है, न वह उचित और अनुचित दोनों को पहचानता है, वह जो शिक्षित है और ऐसा हिंसा द्वारा नहीं, बल्कि उसी धर्मानुसार दूसरों का मार्ग-दर्शन करता है। धर्मरक्षक और प्रबुद्ध होते हुए, वही न्यायशील कहलाता है।
30. एक मनुष्य केवल इसलिये विद्वान नहीं है, क्योंकि वह बहुत बोलता है। जो धैर्यवान है, घृणा और भय से मुक्त है, वही विद्वान कहलाता है।
31. एक मनुष्य इसलिये धम्म का समर्थक नहीं है, क्योंकि वह बहुत बोलता है, यदि उस मनुष्य ने थोड़ा सीखा है, किन्तु धम्म को सांगोपांग देखा है वह धम्म का समर्थक है। वह मनुष्य कभी धम्म की उपेक्षा नहीं करता है।
32. यदि मनुष्य को एक विवेकपूर्ण एवं बुद्धिमान साथी मिलता है, जो उसके साथ यदि चले और मर्यादित जीवन व्यतीत करे, तो उस खतरे को पार करते हुए विचारशील रहते हुए वह उसके साथ सुखपूर्वक रह सकता है।

33. यदि किसी मनुष्य को कोई विवेकपूर्ण एवं बुद्धिमान साथी नहीं मिलता, जो उसके साथ चले और मर्यादित जीवन व्यतीत कर; तो वह अकेला ही एक राजा की तरह जिसने अपने विजित देश को पीछे छोड़ दिया है, जंगल में एक हाथी की तरह विचरण करे।

34. अकेले रहना अच्छा है, मूर्ख आदमी की संगति अच्छी नहीं। मनुष्य अकेला रहे, कोई पाप कर्म न करे, थोड़ी इच्छाओं वाले एक जंगली हाथी की तरह विचरण करे।

35. काम का समय पड़ने पर मित्रों का होना सुखकर है, सकारण आनन्द सुखकर है, सकारण शुभ-कर्म को करना सुखकर है, मृत्यु की घड़ी में शुभ-कर्मों का होना सुखकर है, सभी दुखों का त्याग करना सुखकर है।

36. संसार में मातृत्व सुखकर है, पितृत्व सुखकर है, श्रमणत्व सुखकर है।

37. वृद्धावस्था तक स्थायी शील सुखकर है, दृढ़तापूर्वक प्रतिष्ठित श्रद्धा सुखकर है, प्रज्ञा की प्राप्ति सुखकर है, पापों से बचना सुखकर है।

38. वह जो मूर्खों की संगति में चलता है, दीर्घकाल तक कष्ट पाता है। मूर्खों की संगति शत्रु की संगति के समान सदैव दुखद है। बुद्धिमान की संगति रिश्तेदारों के साथ मिलन के समान सुखकर है।

39. इसलिये, मनुष्य को बुद्धिमान, प्रज्ञावान, शिक्षित, क्षमाशील, कर्त्तव्यनिष्ठ और श्रेष्ठ का अनुसरण करना चाहिये, मनुष्य को ऐसे भले और बुद्धिमान मनुष्य का अनुसरण करना चाहिये, जैसे चन्द्रमा नक्षक्ष पथ का अनुसरण करता है।

40. न प्रमाद और न ही काम-भोगों का आनन्द का अनुसरण करें। जो अप्रमादी है, वही विपुल सुख प्राप्त करता है।

41. जब शिक्षित मनुष्य अप्रमाद द्वारा प्रमाद को दूर कर देता है, तो वह बुद्धिमान मनुष्य, प्रज्ञा की सीढ़ीनुमा ऊँचाइयों पर चढ़कर शोक से मुक्त हो, शोकग्रस्त मूर्ख जनता की ओर नीचे ऐसे देखता है, जैसे पर्वत पर खड़ा हुआ उन लोगों की ओर नीचे देखता है, जो समतल पर नीचे खड़े होते हैं।

42. प्रमादियों के बीच अप्रमादी, सोये हुओं के बीच जागरूक, बुद्धिमान मनुष्य मरियल टट्टू को पीछे छोड़ते हुए शानदार घोड़े के समान आगे बढ़ जाता है।

8. चित्त की सतर्कता और एकाग्रता

1. प्रत्येक कार्य में सतर्क रहो, प्रत्येक कार्य में एकाग्र रहो, सभी कार्य में अप्रमादी और निडर रहो।

2. यही बौद्ध जीवन-मार्ग है।
3. हम जो कुछ हैं, ये सब कुछ हमारे विचारों का परिणाम है। यह हमारे विचारों पर ही आधारित है, यह हमारे विचारों से ही निर्मित है। यदि मनुष्य बुरे विचार के साथ बोलता है या कर्म करता है, तो दुख उसका अनुसरण करता है। यदि मनुष्य अच्छे विचार के साथ बोलता है या अच्छा कर्म करता है तो सुख उसका अनुसरण करता है। इसलिये शुद्ध विचार महत्त्वपूर्ण हैं।
4. विचारहीन मत बनो, विचारवान बनो। स्वयं को बुरे मार्ग से बाहर निकालो, जैसे दलदल में फंसा एक हाथी निकलता है।
5. बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए वह अपने चित्त की रक्षा करे, क्योंकि उसको समझना कठिन है। वह अत्यन्त चतुर है और वह जब जहाँ चाहे झट चल देता है। सुरक्षित चित्त सुखदायक होता है।
6. जिस प्रकार ठीक से न छाई छत में वर्षा का पानी घुस जाता है, उसी तरह साधनाविहीन चित्त में राग घुस जाता है।
7. जिस प्रकार भली-भाँति छायी हुई छत में वर्षा का पानी घुस नहीं पाता, उसी प्रकार एक साधनायुक्त चित्त में भी राग नहीं घुस पाता।
8. यह मेरा चित्त पहले जैसा चाहता था, जिधर वह जाना चाहता था, उधर चला जाता था; किन्तु अब मैं इसे ठीक से वैसे ही नियन्त्रित रखूँगा, जैसे कि महावत अंकुश के माध्यम से मस्त हाथी को नियंत्रण में रखता है।
9. जहाँ चाहे वहाँ जाने वाले चित्त को साधना अच्छा है, जिसे कड़ाई से नियन्त्रण में रखना कठिन है, किन्तु सधा हुआ चित्त सुखदायक होता है।
10. जो इन दूरगामी अपने चित्त को नियन्त्रण में रखेंगे, वे मार (कामराग) के बंधनों से मुक्त रहेंगे।
11. यदि मनुष्य का चित्त अस्थिर है, यदि वह सच्चे धम्म को नहीं जानता, यदि उसका चित्त शांत नहीं है, तो उसकी प्रज्ञा कभी भी पूर्णता को प्राप्त नहीं होगी।
12. एक द्वेषी अपने द्वेषी, या एक शत्रु अपने शत्रु के साथ जितनी हानि कर सकता है, गलत रास्ते पर लगा हुआ चित्त अपेक्षाकृत अधिक हानि पहुँचा सकता है।
13. हमारा जितना अधिक हित ठीक मार्ग पर लगा श्रेष्ठ चित्त कर सकता है, उतना माता-पिता या दूसरे रिश्तेदार भी नहीं कर सकते।

9. सावधानी, अप्रमाद और निर्भीकता

1. जब बुद्धिमान मनुष्य प्रमाद को अप्रमाद से दूर कर देता है, तब वह शोक रहित हो शोकाकुल प्रज्ञा को प्रज्ञारूपी प्रसाद पर चढ़कर ऐसे देखता है जैसे कोई पर्वत शिखर पर चढ़ा हुआ बुद्धिमान आदमी नीचे तलहटी में खड़े हुए मूर्खों को देखता है।
2. प्रमादियों के मध्य अप्रमादी, सोए हुओं के मध्य जागरूक उसी प्रकार पीछे छोड़कर चला जाता है, जैसे शीघ्रगामी अश्व एक दुर्बल अश्च को पीछे छोड़ जाता है।
3. स्वयं को प्रमाद में मत फंसाओ। काम-भोगों में मत फंसो। अप्रमादी ही ध्यान लाभ करता है।
4. अप्रमाद अमृत पद है, वह वहाँ ले जाता है जहाँ मृत्यु नहीं। प्रमादी मृत्यु का मार्ग है। वे जो अप्रमाद में लगे रहते हैं, नहीं मरते, किन्तु प्रमादी पहले से ही मरे के समान होते हैं।
5. किसी दूसरे बड़े हित के लिए अपने उद्देश्य से दूर मत जाओ। जब एक बार तुमने अपना लक्ष्य देख लिया हो, तो उसे दृढ़तापूर्वक और मजबूती से पकड़े रहो
6. सावधान रहो! प्रमाद को दूर करो! सत्पथ पर चलो! जो कोई उस पर चलता है, वह संसार में सुख से जीवन व्यतीत करता है।
7. प्रमाद एक कलंक है; सतत् प्रमाद एक काला धब्बा है। निरन्तर प्रयास द्वारा और प्रज्ञा की सहायता से तुम्हें प्रमाद रूपी विषैले वाण को बाहर निकाल देना चाहिये।
8. स्वयं को प्रमाद में मत फंसाओ। काम-भोगों में मत फंसो अप्रमादी ही ध्यान लाभ करता है और असीम सुख प्राप्त करता है।
9. यदि एक गंभीर मनुष्य ने स्वयं को अप्रमादी बना लिया है, यदि वह विस्मरणशील् नहीं है, यदि उसके कर्म शुद्ध हैं, यदि वह विवेक सहित कार्य करता है, यदि वह स्वयं को संयमित रखता है और धम्म के अनुसार जीवन व्यतीत करता है, उसका यश बढ़ता है।

10. दुख, सुख तथा दान और करुणा

1. दरिद्रता दुख को बढ़ावा देती है।

2. किन्तु यह आवश्य नहीं कि दरिद्रता दूर होने से आदमी सुखी भी हो जाये।
3. जीवन का उच्च-स्तर नहीं, बल्कि आचरण का उच्च-स्तर ही है, जो सुख को बढ़ावा देता है।
4. यही बौद्ध जीवन-मार्ग है।
5. भूख सबसे बड़ा रोग है।
6. आरोग्य सबसे बड़ा लाभ है, संतोष सर्वश्रेष्ठ धन है। विश्वास सर्वश्रेष्ठ रिश्तेदार है, निर्वाण सबसे बड़ा सुख है।
7. वैरियों के बीच में भी अवैरी बनकर निस्संदेह सुखपूर्वक जीवन सीखना चाहिए।
8. रोगों से मुक्त रहते हुए, हमें रोगी मनुष्यों के मध्य निस्संदेह सुखपूर्वक जीना सीखना चाहिये।
9. लोभियों के मध्य लोभ से मुक्त रहते हुए, हमें निस्संदेह सुखपूर्वक जीना सीखना चाहिए।
10. जैसे खेत खर-पतबार द्वारा बरबाद होता है, ठीक वैसे ही मनुष्य मात्र काम-राग द्वारा बरबाद होता है, इसलिए काम-राग रहित लोगों को दिया गया दान महान फलदायी होता है।
11. जैसे खेत खर-पतवार द्वारा बरबाद होता है, ठीक वैसे ही मनुष्य मात्र प्रमाद से मुक्त है, महान फलदायी होता है।
12. जैसे खेत खर-पतवार द्वारा बरबाद होता है, ठीक वैसे ही मनुष्य तृष्णा द्वारा बरबाद होता है, इसलिए उन लोगों को दिया गया दान, जो तृष्णा से मुक्त है, महान फलदायी होता है।
13. 'धम्म' का दान सब दानों से बढ़कर है। 'धम्म' का माधुर्य सब माधुर्यों से बढ़कर है। 'धम्म' का आनन्द सब आनन्दों से बढ़कर है।
14. विजय से द्वेष उत्पन्न होता है, क्योंकि पराजित दुखी रहता है। वह जिसने विजय और पराजय दोनों का त्याग कर दिया है, वह संतोष से सुखी रहता है।
15. राग के समान कोई अग्नि नहीं, घृणा के समान कोई पराजय नहीं, इस शरीर के समान कोई दुख (का कारण) नहीं, शान्ति से बढ़कर कोई सुख नहीं है।
16. दूसरों की कमियों की ओर और दूसरों के कृत्याकृत्य को मत देखो, अपनी कमियों या कृत्याकृत की ओर देखो।
17. जो विनम्र, जो शुद्धि-गंवेषक, जो अनासक्त, जो एकान्त अभिलाषी, जो पवित्र

जीवन व्यतीत करनेवाला और जो विवेक-प्रेमी है, उसके लिये जीवन सदैव कठिन है।

18. क्या संसार में कोई ऐसा निर्दोष एक भी व्यक्ति है कि वह निन्दा के लिये कोई अवसर नहीं देता, जैसे उत्तम घोड़ा अपने सवार को कभी चाबुक के वार का कोई अवसर नहीं देता? एक उत्तम घोड़े के समान उत्तेजक व द्रुतगामी बनो, जिसे चाबुक की आवश्यकता न पड़े।
19. किसी से कठोर वचन मत बोलो, क्योंकि दूसरे भी फिर वैसा ही प्रत्युत्तर देंगे। क्रोधयुक्त वाणी दुखद है, किसी पर भी प्रहार करोगे, तो तुम पर भी प्रहार होगा।
20. स्वतन्त्रता, उदारता, सदाशयता और निस्वार्थता का संसार के लिये ये वैसे महत्त्वपूर्ण है, जैसे रथ के पहिये के लिये पहिये की धुरी।
21. यही बौद्ध जीवन-मार्ग है।

11. ढोंग

1. कोई भी झूठ न बोले। कोई भी दूसरे को झूठ बोलने की प्रेरणा न दे और न ही ऐसे व्यक्ति के कार्य का समर्थन करे, जो झूठ बोलता है। प्रत्येक प्रकार का झूठ और मिथ्या-भाषण से दूर ही रहे।
2. जैसा तथागत बोलते हैं, वैसा ही आचरण करते हैं। जैसा तथागत आचरण करते हैं, वैसा ही बोलते हैं और क्योंकि वे यथाभाषी तथाकारी हैं, इसीलिये वे तथागत कहलाते हैं।
3. यही बौद्ध जीवन-मार्ग है।

12. सम्यक् मार्ग के अनुसरण

1. सम्यक् मार्ग को चुनो। इससे विचलित मत होओ।
2. यों तो अनेक पथ हैं, किन्तु सभी सम्यक् मार्ग की ओर नहीं जाते।
3. सम्यक् मार्ग केवल कुछ लोगों के सुख के लिये नहीं, बल्कि सभी के सुख के लिए हैं।
4. यह आदि में कल्याणकारी होना चाहिये, मध्य में कल्याणकारी होना चाहिये और अन्त में कल्याणकारी होना चाहिये।
5. सम्यक् मार्ग के अनुसरण करने का अर्थ बौद्ध जीवन-मार्ग पर चलना है।
6. सर्वश्रेष्ठ मार्ग आष्टांगिक मार्ग है, सर्वश्रेष्ठ सत्य चार आर्य सत्य है, सर्वश्रेष्ठ

धर्म विराग है, सर्वश्रेष्ठ मनुष्य वह है, जो चक्षुमान (बुद्ध) है।

7. यह ही एक मार्ग है, कोई दूसरा मार्ग नहीं है, जो प्रज्ञा की विशुद्धि की ओर ले जाता है। इसी मार्ग पर चलो।
8. यदि तुम इस मार्ग पर चलोगे, तो तुम दुख का अन्त कर सकोगे। जीवन में मैंने दुखदायी कांटों को निकालने का जब यह मार्ग समझ लिया था तभी मेरे द्वारा उपदेशित किया गया था।
9. तुम्हें स्वयं ही प्रयास करना होगा। तथागत तो केवल पथ-प्रदर्शक हैं।
10. 'सभी संस्कार अनित्य हैं।' जब प्रज्ञा की आंख से देखता है तो दुख से मुक्ति मिल जाती है।
11. 'सभी धर्म अकाल, हैं', जब कोई यह प्रज्ञा से देखता है, वह दुख से मुक्ति प्राप्त कर लेता है।
12. जब वह उन्नति करने के समय स्वयं को क्रियाशील नहीं करता, जो युवा और शक्तिशाली होने पर भी आलस्य से परिपूर्ण है, जिसकी संकल्प-शक्ति और विचार दुर्बल है, ऐसा आलसी और सुस्त मनुष्य कभी भी प्रज्ञावान नहीं हो सकता।
13. अपनी वाणी पर नजर रखते हुए, मन से भली-भाँति संयत, एक मनुष्य को अपने शरीर से कभी कोई बुरा कर्म नहीं करने देना चाहिये। मनुष्य यदि केवल इन तीन कर्म-पंथों को निर्मल रखे, तो वह उस मार्ग को प्राप्त कर लेगा जो तथागत द्वारा सिखाया गया है।
14. यद्यपि वास्तविक ज्ञान लाभ है, ज्ञान का अभाव हानि है, मनुष्य इस दोहरे लाभ और हानि के मार्ग को जानकर अपने को ऐसे मार्ग में लगाये कि ज्ञान वृद्धि हो सके।
15. अपने ही हाथों से एक शरद्कालीन कमल की भाँति आत्म-प्रेम को काट डालो। शान्ति के पथ को हृदय में संजोए रखो। सुगत द्वारा उपदिष्ट शान्ति-मार्ग निर्वाण का आश्रय लो।
16. अधम्म का अनुसरण मत करो! विचारहीनता में मत जियो! मिथ्या सिद्धान्त का अनुसरण मत करो!
17. स्वयं को क्रियाशील करो! प्रमाद मत करो! शील के नियम का अनुसरण करो! शीलवान ही संसार में सुखी रहता है।
18. जो पहले भले ही प्रमादी रहा हो, किंतु बाद में वह संयमी बनकर बादलों से मुक्त चन्द्रमा की तरह इस संसार को प्रकाशित कर देता है।

19. जिसके अशुभ कर्म-शुभ-कर्मों द्वारा ढँक दिये गये हैं, वे बादलों से मुक्त चन्द्रमा की तरह इस संसार को प्रकाशित कर देता है।
20. यदि एक मनुष्य सत्य धम्म का उल्लंघन कर झूठ बोलता है, तो उसके लिए कोई ऐसा पाप नहीं, जो वह नहीं कर सकता।
21. जो सदैव जागरूक रहते हैं, जो दिन और रात अध्ययन करते हैं और जो निर्वाण के लिये प्रयासरत हैं, उनके आस्रव अस्त हो जाते हैं।
22. यह पुरानी बात है। लोग उसकी निन्दा करते हैं, जो शान्त बैठा रहता है। वे उसकी भी निन्दा करते हैं, जो बहुत अधिक बोलता है। वे उसकी भी निन्दा करते हैं, जो कम बोलता है। पृथ्वी पर ऐसा कोई नहीं है, जिसकी निन्दा न की जाती हो।
23. ऐसा मनुष्य न तो कभी था और न कभी होगा और न अब कहीं है जिसकी सदैव निन्दा ही निन्दा होती हो या जिसकी सदैव प्रशंसा ही प्रशंसा होती हो।
24. वाणी के क्रोध से सावधान रहो और अपनी जिह्वा पर नियन्त्रण रखें। मन के पापों का त्याग कर दो और अपने मन से शील का अभ्यास करो।
25. अप्रमाद निर्वाण का मार्ग है, प्रमाद मृत्यु का मार्ग है। जो अप्रमादी हैं, वे नहीं मरते। जो प्रमादी हैं, वे पहले से ही मरे के समान हैं।

13. सद्धम्म के साथ मिथ्या धम्म को मत मिलाओ

1. वे जो मिथ्या को सत्य और सत्य को मिथ्या समझ बैठते हैं, ऐसे मिथ्या दृष्टि सम्पन्न लोग कभी सत्य तक नहीं पहुँच पाते।
2. वे जो सत्य को सत्य और मिथ्या को मिथ्या समझते हैं, वे ही सम्यक् दृष्टि सम्पन्न सत्य तक पहुँचते हैं।
3. जिस प्रकार ठीक से न छाये मकान में वर्षा जल प्रवेश कर जाता है, उसी प्रकार साधना-रहित चित्त में राग प्रवेश कर जाता है।
4. जिस प्रकार भली-भाँति छाये मकान में वर्षा जल प्रवेश नहीं कर पाता, उसी प्रकार साधना युक्त चित्त में राग प्रवेश नहीं कर पाता।
5. उठो! प्रमादी मत बनो! सन्मार्ग पर चलो। जो सन्मार्ग पर चलता है, वह इस लोक में और दूसरे सभी लोकों में सुखी रहता है।
6. सन्मार्ग पर चलो! ऐसे मार्गों पर मत चलो, जो कुमार्ग हैं। जो सन्मार्ग पर चलता है वह इस लोक तथा दूसरे सभी लोकों में सुखी रहता है।

चौथा भाग

तथागत की देशनाएं

परिच्छेद-एक

गृहस्थों के लिए प्रवचन

1. सुखी-गृहस्थ
2. पुत्री पुत्र से अच्छी हो सकती है
3. पति और पत्नी

परिच्छेद-दो

सुचरित्र बने रहने के लिए प्रवचन

1. मनुष्य का पतन कैसे होता है?
2. दुष्ट मनुष्य
3. सर्वश्रेष्ठ मनुष्य
4. प्रबुद्ध मनुष्य
5. न्यायी और सज्जन मनुष्य
6. शुभ-कर्म करने की आवश्यकता
7. शुभ संकल्प करने की आवश्यकता

परिच्छेद-तीन

सदाचरण सम्बन्धी प्रवचन

1. सदाचरण क्या है?
2. सदाचरण की आवश्यकता
3. सदाचरण और संसार की जिम्मेदारियाँ
4. सदाचरण में सम्पूर्णता कैसे प्राप्त की जाए?
5. सदाचरण के पथ पर चलने के लिए साथी की प्रतीक्षा अनावश्यक

परिच्छेद-चार

निर्वाण सम्बन्धी प्रवचन

1. निर्वाण क्या है?
2. निर्वाण के मूलाधार

परिच्छेद-पाँच

धम्म सम्बन्धी प्रवचन

1. सम्यक्-दृष्टि का पहला स्थान क्यों हैं?
2. मरणोपरान्त जीवन की चिन्ता व्यर्थ
3. 'ईश्वर' से प्रार्थनाएं और याचनाएं करना व्यर्थ
4. मनुष्य का भोजन उसे 'पवित्र' नहीं बनाता
5. भोजन नहीं, कुशल कर्मों का महत्त्व है
6. बाह्य-शुद्धि अपर्याप्त है
7. पवित्र जीवन क्या है?

परिच्छेद-छह

सामाजिक-राजनैतिक प्रश्नों पर प्रवचन

1. राजाओं के अनुग्रह पर निर्भर मत रहो
2. यदि राजा सदाचारी होगा, तो उसकी प्रजा भी सदाचारी होगी
3. राजनैतिक और सामरिक शक्ति सामाजिक व्यवस्था पर निर्भर करती है
4. युद्ध अनुचित है
5. युद्ध विजेता के कर्त्तव्य

परिच्छेद-एक

गृहस्थों के लिए प्रवचन

1. सुखी-गृहस्थ

1. एक बार अनाथपिण्डिक जहाँ तथागत थे, वहाँ आया। तथागत को प्रणाम किया और आसन ग्रहण कर बैठ गया।
2. अनाथपिण्डिक यह जानने का इच्छुक था कि एक गृहस्थ कैसे सुखी रह सकता है।
3. तदनुसार अनाथपिण्डिक ने तथागत से प्रार्थना कि वे उसे गृहस्थ-जीवन के सुख का रहस्य समझाएँ।
4. तथागत ने कहा, कि गृहस्थ पहला सुख सम्पत्ति का मालिक होना होता है। एक गृहस्थ बड़े परिश्रम से न्यायोचित और धार्मिक तरीके से अर्जित, बाहुबल से संचित तथा (माथे का) पसीना बहाकर उपार्जित सम्पत्ति का मालिक होता है। मैं 'न्यायोचित रूप से अर्जित सम्पत्ति का स्वामी हूँ' इस प्रकार विचार करके वह सुख पाता है।
5. दूसरा सुख सम्पत्ति भोगने का सुख है। एक गृहस्थ बड़े परिश्रम से न्यायोजित और धार्मिक तरीके से अर्जित, बाहुबल से संचित तथा (माथे का) पसीना बहाकर उपार्जित सम्पंत्ति का स्वामी होता है, अपनी सम्पत्ति का उपभोग करता है और पुण्य के कर्म करता है। अत: इस विचार से कि मैं न्यायोजित रूप से अर्जित अपनी सम्पत्ति से पुण्य-कर्म कर रहा हूँ, इसके परिणामस्वरूप वह सुख पाता है।
6. तीसरा सुख 'ऋण' से ग्रस्त न होने का है। एक गृहस्थ के सिर पर किसी का भी कम या अधिक ऋण नहीं है, इसलिये सुख पाता है। इसलिये वह इस विचार से कि 'मैं किसी भी व्यक्ति का ऋणी नहीं हूँ' वह इसके परिणामस्वरूप सुख पाता है।
7. चौथा सुख निर्दोषता है। एक गृहस्थ जो शरीर के कर्मों से निर्दोष, वाणी से निर्दोष है और विचार से निर्दोष है, तो उसे निर्दोषता का सुख प्राप्त होता है।
8. अनाथपिण्डिक! वस्तुत: ये चार प्रकार के सुख गृहस्थ द्वारा निरन्तर प्राप्त करने योग्य हैं, यदि वह उनके लिये प्रयास करता है।

2. पुत्री पुत्र से अच्छी हो सकती है

1. जब तथागत एक बार श्रावस्ती में ठहरे हुए थे, कोशल नरेश प्रसेनजित् उनसे मिलने आया था।

2. जिस समय राजा तथागत के साथ बातचीत करने में व्यस्त थे, उस समय राजमहल से एक सन्देशवाहक आया और राजा के निकट जाकर, उनके कान में चुपके से सूचित किया कि रानी मल्लिका ने एक पुत्री को जन्म दिया है।
3. राजा अत्यन्त दुखी और खिन्न मन हो गया। तथागत ने राजा से उनकी उदासी का कारण पूछा।
4. राजा ने उत्तर दिया कि उन्होंने अभी-अभी एक दुखद समाचार प्राप्त किया है कि रानी मल्लिका ने एक पुत्री को जन्म दिया है।
5. तत्पश्चात् तथागत ने विषय को देखते हुए कहा, "हे महाराज! एक पुत्री एक पुत्र की तुलना में अच्छी सन्तान सिद्ध हो सकती है, क्योंकि बुद्धिमति और सुशीला हो, अपने पति के माता-पिता का आदर करने वाली, सच्ची पत्नी, एक लड़की ही बन सकती है।"
6. जिस पुत्र को वह जन्म दे सम्भवतः वह महान कार्य करे और विशाल क्षेत्रों पर राज्य करे। हाँ, एक श्रेष्ठ पत्नी का ऐसा पुत्र अपने राष्ट्र का पथ-प्रदर्शक बन सकता है।

3. पति और पत्नी

1. एक समय तथागत मथुरा और वैरुंज्जा के मध्य महापथ पर जा रहे थे। साथ ही अनेक गृहस्थ और उनकी पत्नियाँ भी मथुरा और वैरुज्जा के मध्य महापथ पर मिल गये थे।
2. तब तथागत मार्ग को छोड़कर एक वृक्ष के नीचे आसन लगाकर बैठ गए और इन गृहस्थों और उनकी पत्नियों ने तथागत को वृक्ष के नीचे बैठा देखा।
3. इस प्रकार देखकर वे वहाँ आये जहाँ तथागत बैठे थे। आकर उन्होंने तथागत को प्रणाम किया और एक ओर बैठ गये तथा तथागत से पूछा कि पति और पत्नी के मध्य उचित सम्बन्ध कैसे होने चाहिये। इस प्रकार बैठे गृहस्थों और उनकी पत्नियों से तथागत इस प्रकार बोले :
4. "गृहस्थो! पति और पत्नी के इकट्ठे रहने के चार तरीके हैं। एक दुष्ट मनुष्य एक दुष्ट स्त्री के साथ रहता है, एक दुष्ट मनुष्य एक देवी के साथ रहता है, एक देवता एक दुष्ट स्त्री के साथ रहता है और एक देवता एक देवी के साथ रहता है।"
5. "गृहस्थो! एक पति हत्या करता है, चोरी करता है, व्यभिचार करता है, झूठ

बोलता है और नशीले द्रव्यों का सेवन करता है, दुष्ट और पापी है, कृपणता से ग्रस्त मन से वह एक गृहस्थ का जीवन जीता है और सदाचारी लोगों को गाली देता है और निन्दा करता है। उसकी पत्नी भी हत्या करती है, चोरी करती है, व्यभिचार करती है, झूठ बोलती है और नशीले पदार्थ का सेवन करती है, दुष्ट और पापी है। कृपणता से ग्रस्त मन से वह पारिवारिक जीवन व्यतीत करती है तथा सदाचारी लोगों को गाली देती है और निन्दा करती है। इस प्रकार निस्संदेह, गृहस्थ! एक दुष्ट मनुष्य एक दुष्ट स्त्री के साथ रहता है।''

6. ''गृहस्थो! एक पति हत्या करता है, चोरी करता है, व्यभिचार करता है, झूठ बोलता है और नशीले द्रव्यों का सेवन करता है, दुष्ट और पापी है, कृपणता से ग्रस्त मन से वह एक गृहस्थ का जीवन व्यतीत करता है और सदाचारी लोगों को गाली देता है और निन्दा करता है। किन्तु उसकी पत्नी हत्या करने, चोरी करने, व्यभिचार करने, झूठ बोलने और नशीले द्रव्यों का सेवन करने से दूर रहती है। उसकी पत्नी सुशील और अच्छे स्वभाव की है, कृपणता के दोष से मुक्त मन के साथ, वह परिवारिक जीवन व्यतीक करती है और सदाचारी लोगों को न तो गाली देती है और न ही निन्दा करती है। इस प्रकार निस्संदेह, गृहस्थो, एक दुष्ट मनुष्य एक देवी के साथ रहता है।''

7. ''गृहस्थो! एक पति हत्या करने, चोरी करने, व्यभिचार करने, झूठ बोलने और नशीले द्रव्यों का सेवन करने से दूर रहता है, सुशील और अच्छे स्वभाव का है, कृपणता के कलंकों से मुक्त मन के साथ वह एक परिवारिक जीवन व्यतीत करता है, और सदाचारी लोगों को न तो गाली देता है और न ही निन्दा करता है। किन्तु उसकी पत्नी हत्या करती है, चोरी करती है, व्यभिचार करती है। झूठ बोलती है और नशीले द्रव्यों का सेवन करती है, दुष्ट और पापी है। कृपणता से ग्रस्त मन के साथ वह पारिवारिक जीवन व्यतीत करती है और सदाचारी लोगों को गाली देती है और निन्दा करती है। इस प्रकार निस्संदेह, गृहस्थो! एक देवता एक दुष्ट स्त्री के साथ रहता है।''

8. ''गृहस्थो! इसमें, एक पति और एक पत्नी दोनों हत्या करने, चोरी करने, व्यभिचार करने, झूठ बोलने और नशीले द्रव्यों का सेवन करने से दूर रहते हैं, सुशील और अच्छे स्वभाव के हैं, कृपणता के दोषों से मुक्त मन के साथ वे पारिवारिक जीवन व्यतीत करते हैं, सदाचारी लोगों को न तो गाली देते हैं और न ही निन्दा करते हैं। इस प्रकार निःसंदेह, गृहस्थो! एक देवता एक देवी के साथ रहता है।''

9. ''गृहस्थो! ये इकट्ठे रहने के चार तरीके हैं।''

परिच्छेद - दो

सुचरित्र बने रहने के लिये प्रवचन

1. मनुष्य का पतन कैसे होता है?

1. एक अवसर पर तथागत श्रावस्ती के निकट अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में निवास कर रहे थे।

2. अब जब रात पर्याप्त बीत चुकी थी तो एक देवता जिसने प्रकाश ने सारे जेतवन को प्रकाशित कर दिया था, तथागत के पास आया और समीप पहुँचकर, आदरपूर्वक उनका अभिवादन किया और एक ओर खड़ा हो गया। इस प्रकार खड़े होकर उसने तथागत को सम्बोधित किया।

3. "तथागत! मैं आपकी सेवा में प्रश्न पूछने के लिये आया हूँ, हे गौतम! कृपया मुझे मनुष्य के पतन का कारण बतायें?" तथागत ने मनुष्य के पतन के कारणों की व्याख्या करना स्वीकार किया।

4. "उन्नतिशील मनुष्य सरलता से जाने जाते हैं, पतनोन्मुख मनुष्य भी सरलता से जाने जाते हैं। धम्म से प्रेम करने वाले उन्नतिशील मनुष्य होते हैं, धम्म से घृणा करने वाला पतनोन्मुख मनुष्य।"

5. "दुष्ट उसे प्रिय लगते हैं, सदाचारियों में वह रुचि नहीं रखता। उसे दुष्टों के मत अच्छे लगते हैं - यह मनुष्य के पतन का दूसरा कारण है।"

6. "जो मनुष्य निद्रालु, भीड़-भाड़ में मस्त रहने वाला, अपरिश्रमी, प्रमादी और जो क्रोध को व्यक्त करता है - यह मनुष्य के पतन का तीसरा कारण है।"

7. "जो कोई धनी होते हुए भी अपने वृद्ध माता और पिता को सहारा नहीं देता, जिन्होंने अपना यौवन व्यतीत कर दिया है - यह मनुष्य के पतन का चौथा कारण है।"

8. "वह जो झूठ बोलकर किसी भले आदमी (ब्राह्मण) या श्रमण या किसी अन्य साधु (श्रेष्ठ व्यक्ति) को ठगता है - यह मनुष्य के पतन का पाँचवा कारण है।"

9. "वह जो बहुत सम्पत्ति का स्वामी है, जिसके पास बहुत धन-धान्य पदार्थ हैं, किन्तु अकेला ही खाद्यों का उपभोग करता है - यह मनुष्य के पतन का छठा कारण है।"

10. ''जो मनुष्य जन्म या सम्पत्ति या जाति या वंश का अभिमान करता है और स्वयं अपने सम्बन्धियों की उपेक्षा करता है – यह मनुष्य के पतन का सातवाँ कारण है।''

11. ''जो मनुष्य एक व्यभिचारी, शराबी, जुआरी है, जो कुछ भी उसके पास में है, उसे ऐशोआराम से उड़ा देता है – यह मनुष्य के पतन का आठवाँ कारण है।''

12. ''अपनी पत्नी से सन्तुष्ट न होकर, यदि कोई मनुष्य वेश्याओं तथा दूसरों की पत्नियों के मध्य देखा जाता है – यह मनुष्य के पतन का नौवाँ कारण है।''

13. ''वह जो एक असंयमी, फिजूल खर्च वाली स्त्री या समान प्रवृत्ति के मनुष्य को अधिकारी बनाता है – यह मनुष्य के पतन का दसवाँ कारण है।''

14. ''वह जो, अल्प साधनयुक्त होते हुए विशाल महत्वाकांक्षा के कारण, क्षत्रिय कुल का होकर, राजा बनने की आकांक्षा करता है – यह मनुष्य के पतन का ग्यारहवां कारण है।''

15. ''हे कुलीन देव! पतन के इन कारणों को जान लो और यदि तुम इनसे बचे रहे तो तुम सुरक्षित बच जाओगे।''

2. दुष्ट मनुष्य

1. चारिका करते समय तथागत ने अपनी सामान्य आदत के अनुसार, साथ चल रहे भिक्षुओं को निम्नलिखित उपदेश दिया :-

2. भिक्षुओं को सम्बोधित करते हुए तथागत ने कहा, ''क्या तुम जानते हो कि दुष्ट मनुष्य की पहचान क्या होती है?'' ''नहीं, भगवन्!'' भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

3. ''मैं तुम्हें एक दुष्ट मनुष्य के लक्षण बतलाऊँगा।''

4. ''कोई-कोई मनुष्य होता है, जो पूछे जाने पर तो कहना ही क्या, बिना पूछे ही अन्य लोगों की दुर्गुणों का वर्णन करता है। निस्संदेह पूछे जाने पर, बार-बार प्रश्न किए जाने पर, वह अन्य लोगों के विषय में बिना ढके या छिपाये, बल्कि पूर्ण विस्तार से बुरा कहता है। भिक्षुओं! ऐसा मनुष्य दुष्ट मनुष्य होता है।''

5. ''कोई-कोई मनुष्य ऐसा होता है जो न पूछे जाने की बात का कहना ही, पूछे जाने पर भी अन्य लोगों के अच्छे गुणों को नहीं कहता है। निस्संदेह पूछे जाने पर और बार-बार प्रश्न किए जाने पर, वह अन्य लोगों के विषय में अच्छा कहता है।''

6. ''कोई-कोई मनुष्य ऐसा होता है जो न पूछे जाने की बात क्या कहें, पूछे जाने पर भी स्वयं अपने अवगुणों को प्रकट नहीं करता। निस्संदेह पूछे जाने पर और बार-बार प्रश्न किए जाने पर, वह स्वयं अपने अवगुणों को कहता है, ऐसा मनुष्य एक दुष्ट मनुष्य होता है।''
7. ''तत्पश्चात् पुनः भिक्षुओ! एक ऐसा मनुष्य है, जो पूछे जाने की बात क्या कहें बिना पूछे ही अपने अच्छे गुणों को प्रकट करता है। भिक्षुओ! पूछे जाने पर और बार-बार प्रश्न किए जाने पर वह बिना ढके या छिपाये और पूर्ण विवरण देते हुए स्वयं अपने अच्छे गुणों को कहता है। भिक्षुओ! ऐसा मनुष्य भी एक दुष्ट मनुष्य होता है।''

3. सर्वश्रेष्ठ मनुष्य

1. चारिका करते समय तथागत ने अपनी सामान्य आदत के अनुसार साथ चल रहे भिक्खुओं को निम्नलिखित उपदेश दिया :
2. भिक्षुओं को सम्बोधित करते हुए तथागत ने कहा, ''भिक्षुओ! इस संसार में चार प्रकार के लोग पाये जाते हैं।''
3. ''(1) वह जिसने न तो अपने कल्याण के लिये प्रयास किया और न ही किसी दूसरे के लिये। (2) वह जिसने दूसरों के कल्याण के लिये प्रयास किया, किन्तु अपने लिये नहीं। (3) वह जिसने अपने कल्याण के लिए प्रयास किया, किन्तु दूसरों के लिए नहीं। (4) वह जिसने अपने और दूसरों के कल्याण के लिये प्रयास किया।''
4. ''वह जिसने न तो अपने कल्याण के लिये प्रयास किया और न ही किसी दूसरे के लिये किया, वह श्मशान की लकड़ी की तरह है, जो दोनों सिरों से जलती हुई, और मध्य से गोबर से पुती हुई है। वह न तो गाँव में और न ही जंगल में जलावन के काम आती है। वह संसार कि लिये अनुपयोगी है और अपने लिये भी अनुपयोगी है।''
5. ''जिसने अपनी हानि करके दूसरों के कल्याण के लिये प्रयास किया है, वह दोनों में श्रेष्ठ और उत्कृष्ट दोनों ही है।''
6. ''लेकिन भिक्षुओ! जिसने अपने कल्याण के लिये और दूसरों के कल्याण के लिये प्रयास किया है, इन चारों व्यक्तियों में से वही सर्वश्रेष्ठ, प्रमुख, सर्वोच्च, उच्चतम और सर्वोत्तम है।''

4. प्रबुद्ध मनुष्य

1. एक समय तथागत उक्कट्ठ और सेतब्बय नामक दो नगरों के मध्य महापरि पर पहुंचे थे। उसी समय द्रोण नामक ब्राह्मण भी उक्कट्ठ और सेतब्बय नामक दो नगरों के मध्य महापथ पर भी पहुंचे थे।

2. उस समय तथागत ने सड़क छोड़ दी और एक वृक्ष के नीचे पद्मासन लगाकर बैठ गये। तब द्रोण ब्राह्मण भी तथागत के पदचिन्हों पर चलते हुए वहाँ जा पहुँचा तथा तथागत उस वृक्ष के नीचे देदीप्यमान और एक मनोरम रूप में संयतेन्द्रिय, एकाग्रचित नियंत्रित, शक्तिशाली और शान्त मुद्रा में बैठे थे। यह देख द्रोण ब्राह्मण तथागत के पास पहुंचा।

3. पास जाकर वह उनसे इस प्रकार बोला :

"क्या आदरणीय आप एक देवता तो नहीं हैं?"

"ब्राह्मण, मैं निस्सन्देह एक देवता नहीं हूँ।"

"क्या आदरणीय आप एक गन्धर्व तो नहीं हैं?"

"ब्राह्मण, मैं निस्सन्देह गन्धर्व नहीं हूँ।"

"क्या आदरणीय आप तब एक यक्ष तो नहीं हैं?"

"ब्राह्मण, मैं निस्सन्देह यक्ष नहीं हूँ।"

"क्या आदरणीय आप तब एक सामान्य मनुष्य तो नहीं हैं?"

"ब्राह्मण, मैं निस्सन्देह एक सामान्य मनुष्य नहीं हूँ।"

4. तथागत का इस प्रकार का उत्तर सुनकर द्रोण ब्राह्मण ने कहा : "जब आपसे पूछा गया : क्या आप एक देवता हैं? आपने कहा : 'नहीं'।

"जब आपसे पूछा गया : क्या आप एक गन्धर्व हैं? आपने कहा नहीं।

"जब आपसे पूछा गया : क्या आप एक यक्ष हैं? आपने कहा : नहीं।

"जब आपसे प्रश्न किया गया : क्या आप तब एक सामान्य मनुष्य हैं? आपने कहा नहीं? आप आदरणीय तब क्या हो सकते हैं?"

5. "ब्राह्मण, वस्तुतः मैं एक देवता, एक गन्धर्व, एक यक्ष और एक सामान्य मनुष्य था, जब तक कि मैंने स्वयं को आसवों से शुद्ध नहीं कर लिया। इन्हीं आस्रवों से अब मैं मुक्त हो गया हूँ, ये एक कटे हुए ताड़ वृक्ष के समान हो गये हैं, अपने आधार के नष्ट होने के बाद अब इनकी पुररुत्पत्ति की सम्भावना नहीं है।"

414/367 पेज नं. Miss Page, Pl. See

6. ''जैसे कि एक कमल या एक कुमुदिनी पानी में उत्पन्न होते हैं, पानी में बढ़ते हैं, पानी से ऊपर निकल आते हैं, फिर भी पानी से अछूते बनकर रहते हैं, उसी प्रकार हे ब्राह्मण! संसार में जन्म लेने पर भी, संसार में बढ़ने पर भी, संसार को जीत लेने के बाद अब मैं संसार से अछूता बन गया हूँ।''
7. ''इसलिये, हे ब्राह्मण! अब तुम मुझको प्रबुद्ध मनुष्य (बुद्ध) जानो।''

5. न्यायी और सज्जन मनुष्य

1. भिक्षुओं को सम्बोधित करते हुए तथागत ने कहा, ''मनुष्यों के चार वर्ग हैं। यदि तुम जानना चाहते हो कि कौन सज्जन और न्यायी मनुष्य है, तो तुम्हें उनकी पहचान करना सीखना चाहिए।''
2. ''भिक्षुओ! मनुष्यों का एक वर्ग ऐसा है, जो अपने कल्याण के लिये प्रयास करता है, किन्तु दूसरों के लिए नहीं।''
3. ''भिक्षुओ! इसमें एक मनुष्य अपने भीतर के कामच्छन्द के उन्मूलन का अभ्यास करता है, किन्तु दूसरों के भीतर के कामच्छन्द के उन्मूलन को प्रेरित नहीं करता। अपने भीतर के व्यापाद के उन्मूलन का अभ्यास करता है, किन्तु दूसरों के भीतर के व्यापाद के उन्मूलन को प्रेरित नहीं करता है। और साथ ही अपने भीतर की अविद्या के उन्मूलन का अभ्यास करता है किन्तु दूसरों के भीतर की अविद्या के उन्मूलन को प्रेरित नहीं करता है।''
4. ''भिक्षुओ! निःसंदेह, यह ऐसा मनुष्य है, जो अपना कल्याण करने का प्रयास करता है, किन्तु दूसरों के कल्याण का नहीं।''
5. ''भिक्षुओ! मनुष्यों का एक वर्ग ऐसा है, जिसने दूसरों के कल्याण के लिये प्रयास किया है, किन्तु अपने लिये नहीं।''
6. ''भिक्षुओ! इसमें एक मनुष्य अपने भीतर के कामच्छन्द, व्यापाद और अविद्या के उन्मूलन के लिये ही अभ्यास नहीं करता, बल्कि दूसरों के भीतर कामच्छन्द व्यापाद और अविद्या के उन्मूलन को प्रेरित करता है।''
7. ''भिक्षुओ! निस्सन्देह यह मनुष्य ऐसा है, जिसने दूसरों के कल्याण के लिये प्रयास किया है, किन्तु अपने लिये नहीं।''
8. ''भिक्षुओ! मनुष्य का एक वर्ग ऐसा है जो न तो स्वयं अपने कल्याण के लिये और न ही दूसरों के कल्याण के लिये प्रयास करता है।''

9. ''भिक्षुओ! इसमें एक मनुष्य न तो अपने भीतर कामच्छन्द, व्यापाद और अविद्या के उन्मूलन का अभ्यास करता है और न ही दूसरों के भीतर कामच्छन्द, व्यापाद और अविद्या के उन्मूलन को प्रेरित करता है।''

10. ''भिक्षुओ! यह मनुष्य ऐसा है, जिसने न तो स्वयं अपने कल्याण के लिये प्रयास किया है और न दूसरों के कल्याण के लिये।''

11. ''भिक्षुओ! मनुष्यों का एक वर्ग ऐसा है, जो स्वयं अपने कल्याण के लिये प्रयास करता है और साथ ही साथ दूसरों के कल्याण के लिये भी।''

12. ''भिक्षुओ! इसमें मनुष्य अपने भीतर कामच्छन्द, व्यापाद और अविद्या के उन्मूलन का अभ्यास करता है और साथ ही साथ दूसरों के भीतर कामच्छन्द, व्यापाद और अविद्या के उन्मूलन को प्रेरित करता है।''

13. ''भिक्षुओं! यह मनुष्य ऐसा है, जिसने स्वयं अपने कल्याण के लिये प्रयास किया है और साथ ही साथ दूसरों के कल्याण के लिये भी।''

14. ''यह अन्तिम मनुष्य ही न्यायी और सज्जन माना जाना चाहिये।''

6. शुभ-कर्म करने की आवश्यकता

1. एक अवसर पर तथागत भिक्खुओं से इस प्रकार बोले :

2. ''भिक्षुओ! कुशल-कर्मों को करने से मत डरो। यह जो 'कुशल-कर्म' शब्द है, यह एक प्रकार के 'सुख' का या जिसकी हम इच्छा करते हैं उसका या जो कुछ हमको प्रिय है उसका, अथवा जो कुछ हमें आनन्दप्रद है उसका ही पर्याय है। भिक्खुओ! मैं स्वयं साक्षी हूँ कि मैंने चिरकाल तक कुशल-कर्मों के इच्छित, रुचिकर, प्रिय और आनन्दप्रद फल का उपभोग किया है।''

3. ''मैं प्रायः अपने आप से पूछता हूँ, 'यह सब किन कुशल-कर्मों का परिणाम हैं? किन कुशल-कर्मों का फल है कि जिनमें मैं अब इस प्रकार सुखी और संतुष्ट हूँ।''

4. उत्तर जो मिलता है वह यह है : ''तीन कुशल-कर्मों का यह परिणाम है। तीन कुशल-कर्म - दान, शील और सयंम।''

5. ''वह मंगल घड़ी है, यह घड़ी उत्सव मनाने की घड़ी है, यह घड़ी आनन्द मनाने की घड़ी है और घड़ी मंगलमय-समय है, मनोरम दिन, सुहावना समय है, जब दान देने वाले लोगों को दान दिया जाता है। जब शुभ-कर्म, शुभ-वचन तथा शुभ-विचार के परिणामस्वरूप इनका अभ्यास करने वालों को शुभ-फल

की प्राप्ति होती है।''

6. ''धन्य हैं, वे जिन्हें ऐसे लाभ की प्राप्ति होती है और जिन्हें इस समृद्धि की प्राप्ति होती है। इस प्रकार तुम भी अपने सगे संबंधियों सहित निरोगी और सुखी रहते हुए सत्पथ की समृद्धियों को प्राप्त करो।''

7. शुभ संकल्प करने की आवश्यकता

1. एक बार श्रावस्ती के जेतवन में विहार करते समय तथागत ने भिक्खुओं से कहा :
2. ''भिक्षुओ! पवित्र और सुखी जीवन व्यतीत करने के लिये शुभ संकल्पों को करने और उनका पालन करने की अत्यन्त आवश्यकता है। ''
3. ''मैं तुम्हें बताऊँगा कि तुम्हारे संकल्प क्या होने चाहिये।''
4. ''संकल्प होना चाहिए कि मैं जीवनपर्यन्त अपने माता-पिता की सहायता करूँगा। मैं अपने वंश के मुखिया का आदर करूँगा। मैं मधुर-भाषी बनकर रहूँगा। मैं किसी के विषय में बुरा नहीं बोलूँगा। स्वार्थपरता के कलंक से अपने हृदय को शुद्ध कर, मैं शुद्ध-हाथों से दानशील होकर रहूँगा, दान देने में आनन्द प्राप्त करते हुए मैं घर में निवास करूंगा। जो कुछ मुझे प्राप्त होगा, उसमें से दूसरे उचित मांगने वालों को भी देकर ग्रहण करूंगा।''
5. ''अपने पूरे जीवन-पर्यन्त, मैं क्रोधरहित रहूँगा और यदि क्रोध उत्पन्न होगा, तो मैं शीघ्रता से उसे नियन्त्रित करूँगा।''
6. ''हे भिक्षुओ! ये सात संकल्प हैं, जिनको अपने मन में जगह देने से और जिनके अनुसार आचरण करने से तुम सुख और पवित्रता की अवस्था को प्राप्त कर सकोगे।''

परिच्छेद - तीन

सदाचरण संबंधी प्रवचन

1. सदाचरण क्या है?

1. एक बार जब विशाल संघ के साथ भगवान बुद्धि चारिका कर रहे थे, वे कोसल जनपद के शाला नामक एक ब्राह्मण गाँव में पहुंचे।
2. शाला ग्राम के ब्राह्मण मुखियों के कानों तक यह बात पहुंची कि तथागत चारिका करते-करते कोसल-जनपद में स्थित उनके गांव में आये हैं।
3. उन्होंने अनुभव किया कि दर्शनार्थ जाकर उनसे मिलना अच्छा है। अतः शाला ग्राम के ब्राह्मण तथागत के पास गये और कुशल-क्षेम पूछकर एक ओर अपने आसनों पर बैठ गये।
4. उन्होंने तथागत से पूछा कि क्या वे उनको बता सकेंगे कि सदाचरण से उनका क्या अभिप्राय है।
5. अतः सुनने के लिए उद्धत ब्राह्मणों से तथागत ने कहा, ''शरीर के तीन दुराचरण और दुष्टताएँ होती हैं, वाणी के चार दुराचरण होते हैं और तन के तीन दुराचरण होते हैं।''
6. ''जहाँ तक शारीरिक दुराचरण का संबंध है, एक मनुष्य (i) रक्त-रंजित हाथों से, शिकारी के रूप में, हत्या और वध करने का आदी होने के कारण सजीव प्राणियों के प्रति निर्दयी होने के कारण हत्याएँ करता है; या (ii) गांव और जंगल में अन्य लोगों की वस्तुएँ चोरी की नीयत से बिना दिए हुए ही ले सकता है जो उसकी नहीं हैं; या (iii) माँ या पिता या भाई या बहन या संबंधियों की निगरानी में रहने वाली लड़कियों से व्यभिचार करता है, हाँ, मँगनी हुई लड़कियों के साथ, और यहां तक कि मंगली की मालायें पहनी हुई लड़कियों के साथ भी संसर्ग करता है।''
7. ''जहाँ तक वाणी के दुराचारण का सबंध है, एक मनुष्य (i) एक झूठ बोल सकता है, जब सभा या ग्राम-पंचायक या पारिवारिक-परिषद या राजकीय-परिषद या अपने संघ में साक्ष्य देने के लिये बुलाया जाये, तो वह कह सकता है कि वह जानता है, जबकि वह नहीं जानता या कि वह नहीं जानता, जबकि वह जानता है, या कि उसने देखा है जबकि उसने नहीं देखा है, जबकि उसने देखा है तो वह अपने या अन्य लोगों के हित या किसी तुच्छ लाभ के लिये जान-बूझ

कर झूठ बोलता है या (ii) वह एक चुगलखोर हो सकता है। यहाँ सुनी और वहां जाकर कह दी जिससे कि लोगों के बीच कानों सुनी बातों से झगड़ा हो सके, या वहाँ सुनी और यहाँ कह दी ताकि वहाँ के लोगों और यहां के लोगों में झगड़ा हो जाए। वह शांति को समाप्त करनेवाला और अशांति को उकसाने वाला है। मतभेद उसके कथनों को प्रेरित करते हैं, मतभेद करना उसका आनंद, उसकी प्रसन्नता और उसका सुख है। या (iii) वह जबान का कड़वा हो सकता है; जो कुछ वह कहता है वह कठोर और अप्रिय होता है, दूसरों के लिये दुखदायी और दिलों को जख्मी करने वाला क्रोध को उत्तेजित करने वाला और चित-विक्षेप की ओर ले जाने वाला है। या (iv) वह एक गप्पी हो सकता है; बेमौ के बात करने वाला, तथ्यों पर बिना ध्यान दिये, सदैव हानिकारक बातें करने वाला, कभी धर्म की बात न करने वाला, कभी नीति की बात न करने वाला, किन्तु सदैव तुच्छ, असामयिक, क्षुद्र, निष्प्रयोजन और हानिकारक बातें करने वाला होता है।''

8. ''जहां तक मन के दुराचरण का संबंध है, एक मनुष्य (i) लोभी हो सकता है, दूसरे लोगों की सम्पत्ति उसी की हो इस प्रकार वह इच्छा कर सकता है या (ii) वह द्वेषी तथा हृदय से दुष्ट हो सकता है, वह यह इच्छा कर सकता है कि उसके आस-पास के प्राणी मर जायें, नष्ट हो जायें, मिट जायें, या किसी तरह न रहें। या (iii) वह मित्या-दृष्टि तथा अवधारणाओं में भ्रान्तिपूर्ण हो सकता है। वह सोच सकता है कि ऐसी कोई चीज नहीं है जैसे कि दान या त्याग या समर्पण, कि ऐसी चीज नहीं है जैसे कि शुभ और अशुभ कर्मों के फल और परिणाम, कि ऐसी कोई चीज नहीं है जैसे कि यह लोक या परलोक, कि ऐसी कोई चीज नहीं है जैसे कि माता-पिता या और कई सगे-सम्बन्धी, कि संसार में ऐसी कोई चीज नहीं है जैसे कि श्रमण और ब्राह्मण जिन्होंने, सम्यक्, मार्ग बहुगत किया है और उस पर स्वयं ठीक से चलें तथा इस लोक व परलोकों को समझा और स्पष्ट अनुभव किया और यह सम्पूर्ण रूप से दूसरों को भी कराया।''

9. ''इसके विपरीत शरीर के तीन सदाचरण और तीन मन के सदाचरण हैं।''

10. ''जहाँ तक शारीरिक सदाचरण का सम्बन्ध है, एक मनुष्य (i) सभी जीव-हत्याओं से दूर रहता है और किसी भी प्राणी की हत्या से विरत रहता है; दण्ड और तलवार को एक ओर रखकर, वह निष्कपटता और दयालुता से पूर्ण होता है, प्रत्येक सजीव प्राणी के लिये करुणा और अनुकम्पा से परिपूर्ण जीवन व्यतीत करता है। (ii) चोरी को वह स्वयं से दूर रखता है और दूसरों की किसी ऐसी

चीज को ग्रहण नहीं करता जो उसे दी न गई हो। वह एक ईमानदार का जीवन व्यतीत करता है। (iii) वह काम-भोग संबंधी मिथ्याचार से दूर रहते हुए व्यभिचार से विरत रहता है। वह माँ या पिता या भाई या बहन या सम्बन्धियों की निगरानी में रहने वाली लड़कियों के साथ कोई संसर्ग नहीं करता और मँगनी की हुई या मँगनी की मालायें पहने हुई लड़कियों के साथ भी कोई संसर्ग नहीं करता।''

11. ''जहाँ तक वाणी के सदाचरण का सम्बन्ध हैं, (i) एक मनुष्य झूठ बोलने से दूर रहता है और मृषावाद से विरत रहता है। जब सभा या ग्राम-पंचायत या पारिवारिक परिषद या राजकीय-परिषद या अपने संघ के समक्ष साक्षी देने के लिये बुलाया जाता है, तो वह न जानते हुए कहता है कि मैं नहीं जानता, जानते हुए कहता है कि मैं जानता हूँ, न देखते हुए कहता है कि मैंने नहीं देखा, देखते हुए कहता है कि मैंने देखा है। (ii) वह चुगलखोरी नहीं करता, यहाँ सुनी और वहाँ कह दी, ताकि यहाँ के लोगों और वहाँ के लोगों का झगड़ा हो जाये, या वहाँ सुनी और वहाँ कह दी ताकि वहाँ के लोगों और यहाँ के लोगों का झगड़ा हो जाए। वह शांति को भंग करने वाला और अशान्ति को उत्तेजित करने वाला नहीं होता, शान्ति कराने की नीयत से बोलता है, मेल-मिलाप कराने में ही उसे आनन्द आता है, या प्रसन्नता होती है। स्वयं अपने या दूसरे लोगों के हित में या किसी तुच्छ के लिये वह कभी भी जान-बूझकर झूठ नहीं बोलता। (iii) उसकी जबान में कोई कड़वाहट नहीं होती और वह कटु वाणी से विरत रहता है। वह जो कहता है वह बिना कटुता के, प्रीतिकर मैत्रीपूर्ण हार्दिक, सौम्य, सुखद और सबके द्वारा स्वागत के योग्य होता है। (iv) गप्पी नहीं होता, वह गप्प से विरत रहता है, मौके पर बात करने वाला, तथ्यों के अनुरूप, सदैव लाभप्रद बातें करने वाला, धर्म और नीति की बातें करने वाला, ऐसी वाणी बोलने वाला जो समयानुकूल और याद रखने योग्य प्रबद्ध करने वाली, सुव्यवस्थित और अत्यन्त लाभदायक हो।

12. ''जहाँ तक मन के सदाचरण का सम्बन्ध है (i) एक मनुष्य लोलुपता से रहित है, वह कभी नहीं चाहता कि दूसरे लोगों की सम्पत्ति का अधिकार उसे मिल जाए, अर्थात् कभी भी लोभ नहीं करता। (ii) वह अपने मन में कोई दुर्भावना नहीं रखता, उसकी सदैव इच्छा होती है कि उसके आस-पास के सभी प्राणी शान्ति और सुख के साथ रहें, सभी प्रकार की शत्रुता और अत्याचार से सुरक्षित रहें। (iii) उसकी दृष्टि सम्यक् होती है और उसकी अवधारणाएँ सही होती हैं।''

13. ''सदाचरण और दुराचरण में मेरा यही अभिप्राय है।''

2. सदाचरण की आवश्यकता

1. तब तथागत ने पाटलिग्राम के उपासकों को सम्बोधित किया :
2. ''गृहस्थो! जो दुष्ट और दुश्शील मनुष्य है उस को दुष्परिणाम भुगतने पड़ते हैं।''
3. ''दुष्ट और अनैतिक मनुष्य, प्रमाद के कारण धन की बहुत हानि उठाता है।''
4. ''तब उसका अपयश होता है, जिससे वह दुनिया की नजरों में गिर जाता है।''
5. ''वह जिस किसी की भी संगति में जाए, भले ही वह क्षत्रियों की संगति हो या ब्राह्मणों की या गृहपतियों की या श्रमणों की संगति हो, वह हर जगह संकोचपूर्वक जाता है और दिग्भ्रमित हो जाता है। वह निर्भय नहीं रहता, यह तीसरी हानि है।''
6. ''पुनः जब उसकी मृत्यु होती है, तो उसे मन में शान्ति नहीं होती और वह मन से परेशान रहता है, यह चौथी हानि है।''
7. ''गृहस्थो! ये ऐसी हानियाँ हैं जो दुष्ट और अनैतिक मनुष्यों को भुगतनी पड़ती हैं।''
8. ''अब उन लाभों पर विचार करो, जो सज्जन मनुष्य को प्राप्त होते हैं, जो ईमानदारी से जीवन व्यतीत करता है।''
9. ''सज्जन मनुष्य, जो ईमानदारी से जीवन व्यतीत करता है, वह अपने प्रयासों से बहुत धन-संग्रह कर लेता है।''
10. ''तब, पुनः उसके विषय में अच्छी ख्याति प्रचलित हो जाती है जिससे वह हर जगह सम्मान पाता है।''
11. ''जिस किसी की भी संगति में जाता है, भले ही वह कुलीनों की हो या ब्राह्मणों की या गृहपतियों की या श्रमणों की, वह निर्भीक और निस्संकोच के साथ प्रवेश करता है।''
12. ''पुनः वह मन की शान्ति का आनन्द लेता है और मरते समय शान्त मन होता है।''
13. ''मूर्ख पाप करते समय अपनी मूर्खता को नहीं जानता। उसके अपने दुष्कर्म ही अग्नि के समान उसे जला देते हैं।''

14. वह जो हानि रहित और निर्दोष को ठेस पहुँचाता है शीघ्र ही घोर दुर्घटना या चित्तविक्षिप्तता, सम्बन्धियों की हानि, अपनी सम्पूर्ण संपत्ति की हानि को प्राप्त होता है।''

3. सदाचरण और संसार की जिम्मेदारियाँ

1. एक बार जब तथागत राजगृह के वेणुवनाराम में ठहरे हुए थे, जहाँ गिलहरियों को दाना चुगाया जाता था, उसी समय भदन्त सारिपुत्त दक्षिणी पहाड़ियों के मध्य भिक्षुओं के एक विशाल संघ के साथ भिक्षाटन कर रहे थे।
2. अपने मार्ग में उनकी भेंट एक भिक्षु से हुई जिसने राजगृह में वर्षावास व्यतीत किया था। मैत्री और शिष्टाचार के अभिवादन के आदान-प्रदान के उपरान्त, सारिपुत्त ने शास्ता के स्वास्थ्य के विषय में पूछा और उन्हें बताया गया कि वे ठीक हैं। ऐसा ही संघ के विषय में है, और राजगृह में तण्डुलपाल, द्वार के धनंजानी ब्राह्मण के स्वास्थ्य के विषय में भी सारिपुत्त ने पूछताछ की तो उन्हें बताया गया कि वह भी अच्छी तरह है।
3. क्या धनंजानी ब्राह्मण धर्मोत्साही और अप्रमादी हैं? सरिपुत्त ने आगे भिक्षु से पूछा।
4. भिक्षु का उत्तर था, ''धनंजानी ब्राह्मण कैसे अप्रमादी धर्मोत्साही रह सकता है?'' भिक्षु ने उत्तर दिया। वह ब्राह्मणों और गृहस्थों को लूटने के लिये राजा का उपयोग करता है और राजा को लूटने के लिये उनका उपयोग करता है। साथ ही उसकी धर्मनिष्ठ पत्नी, जो धर्मनिष्ठ कुल से आयी थी, अब मर चुकी है। और उसने दूसरी पत्नी कर ली है, जो धर्मनिष्ठ नहीं है और धर्मनिष्ठ कुल से नहीं आयी है।
5. सारिपुत्र बोले, ''यह बुरा समाचार है, धनंजानी के धर्मोत्साह की कमी के विषय में सुनना अत्यन्त बुरा समाचार है'' सारिपुत्र ने कहा, ''सम्भवत्; फिर भी, किसी समय और स्थान पर मेरी उसकी भेंट हो सके तो मैं उससे बातचीत करना चाहूँगा।
6. दक्षिणी पहाड़ियों में यथेच्छ रहने के उपरान्त, सारिपुत्त चारिका करते-करते राजगृह पहुँच गये, जहाँ उन्होंने वेणुवनाराम में निवास किया।
7. प्रातः काल जल्दी ही चीवर पहन और हाथ में भिक्षा का पात्र ले, वे राजगृह में भिक्षाटन के लिये गये। ऐसे समय में जब धनंजानी ब्राह्मण नगर के बाहर अपनी गौशाला में गायों को दुहा जाना देख रहा था।

8. अपनी चारिका और भोजन के उपरान्त अपनी वापसी पर सारिपुत्त ने उस ब्राह्मण को ढूंढ़ लिया। उनको आता देख, ब्राह्मण उनसे मिलने आया और आते ही दूध पीने का निमंत्रण दिया।

9. "ऐसा नहीं, ब्राह्मण! मैं आज का अपना भोजन कर चुका हूँ, और मध्याह्न के समय एक वृक्ष की छाया के नीचे विश्राम करूँगा। मुझसे मिलने वहाँ आओ।"

10. धनंजानी मान गया और स्वयं अपने भोजन के उपरान्त सारिपुत्त के पास आकर मैत्रीपूर्ण अभिवादन के बाद वहाँ बैठ गया जहाँ वे बैठे हुए थे।

11. सारिपुत्त ने कहा : "धनंजानी! क्या मैं पूर्ण विश्वास कर सकता हूँ कि तुम धर्मोत्साही, अप्रमादी और सदाचरण वाले हो।"

12. "ऐसा कैसे हो सकता है जबकि अपने मांस-दूध खाने-पीने की चिन्ता के अतिरिक्त मुझे अपने माता-पिता, अपनी पत्नी और परिवार के अपने दासों और नौकर-चाकरों का भरण-पोषण करना पड़ता है और अपने परिचितों व मित्रों, अपने सगे-सम्बन्धी और अतिथियों का आतिथ्य करना पड़ता है, और साथ ही अपने पितरों के श्राद्ध के लिये, देवताओं को भी बलि देनी पड़ती है, और राजा के लिये कर का प्रबन्ध करना पड़ता है।"

13. "धनंजानी तुम क्या सोचते हो? यदि मान लें कि एक मनुष्य ने अपने माता-पिता के कारण सदाचरण और औचित्य का मार्ग छोड़ दिया है और जब वह पकड़ा जा रहा हो, तो यदि वह अपनी ओर से निवेदन करे कि उसने माता-पिता के कारण सदाचरण और औचित्य के मार्ग को छोड़ दिया और इसलिये उसको पकड़ा नहीं जाना चाहिए, तो क्या यह उसके लिये लाभकारी होगा?"

14. "नहीं; सभी प्रार्थनाओं के बावजूद संतरी उसे कारागार में डाल देंगे।"

15. "यदि वह स्वयं अपनी और परिवार के 'सदस्यों की ओर से निवेदन करे कि उसने उनकी खातिर सदाचरण और औचित्य का मार्ग छोड़ दिया था तो क्या उससे उसे लाभ होगा?"

16. "नहीं।"

17. "यदि उसके दास और नौकर-चाकर उसकी ओर से निवेदन करें, तो क्या यह उसके लिये लाभप्रद होगा?"

18. "बिल्कुल नहीं।"

19. "या यदि उसके मित्र और परिचित उसकी ओर से निवेदन करें?"

20. "बिल्कुल नहीं।"

21. "या यदि उसके परिचित व सम्बन्धी या उसके अतिथि उसकी ओर से निवेदन करें?"

22. "बिल्कुल नहीं।"

23. "या उसके मृत-पितरों ने भी उसकी वकालत की हो कि इसने देवताओं को बलि देने के लिए या उसको राजा को कर देने के आधार पर उसकी ओर से निवेदन करें?"

24. "बिल्कुल नहीं।"

25. "यदि स्वयं अपनी ओर से निवेदन करे या उसके लिये दूसरे निवेदन करें कि उसने मांस और दूध के अपने भोजन की चिन्ता करने के कारण सदाचरण और औचित्य का मार्ग छोड़ा है, तो क्या यह उसके लिये लाभप्रद होगा?"

26. "नहीं।"

27. "धनंजानी तुम क्या सोचते हो? कौन श्रेष्ठ मनुष्य है? वह जो अपने माता-पिता के कारण सदाचरण और औचित्य का मार्ग छोड़ देता है या वह जो उनकी कुछ भी परवाह न कर सदाचरण और औचित्य के मार्ग पर चलता है।"

28. धनंजानी ने उत्तर दिया-"दूसरा, क्योंकि सदाचरण और औचित्य के मार्ग पर चलना उससे हट जाने से बेहतर है।"

29. "इसके अतिरिक्त, धनंजानी ऐसे दूसरे रास्ते भी हैं, जो स्वयं में न्यायोचित और सदाचारी हैं, जिनके द्वारा वह अपने माता-पिता का भरण-पोषण कर सकता है और फिर भी बुरा करने से बच सकता है, और ईमानदारी से चल सकता है। अब, क्या यही शर्त पत्नी, परिवार और शेष सभी लोगों पर लागू नहीं होती है?"

30. "यह होती है, सारिपुत्त।"

31. इस पर सारिपुत्त के कथन से प्रसन्न होकर ब्राह्मण ने उनको धन्यवाद दिया और वह उठकर अपने मार्ग पर चला गया।

4. सदाचरण में सम्पूर्णता कैसे प्राप्त की जाए?

1. एक बार जब भगवान बुद्ध श्रावस्ती में जेतवनाराम में ठहरे हुए थे, तब उनके पास पाँच सौ उपासक आये। उनमें से एक का नाम धम्मिक था।

2. धम्मिक ने तथागत से पूछा, ''सदाचरण में सम्पूर्णता प्राप्त करने के लिए कौन से सिद्धान्त आपके अनुयायियों के लिए सहायक होते हैं?''
3. ''मैं आपसे यह प्रश्न इसलिए पूछता हूँ कि क्योंकि आप मानव-कल्याण के अनुपम निर्णायक हैं।''
4. ''प्रशिक्षित जैन और परिव्राजक सभी आपको पराजित करने में असफल हो चुके हैं। प्रशिक्षित ब्राह्मण, आयु में परिपक्व अन्य लोगों के साथ जो अपने दृष्टिकोण को व्यस्त करने को उत्सुक होते हैं - आपके उद्धारक सत्य को ग्रहण कर लेते हैं। क्योंकि यह आपका उपदिष्ट सत्य बड़ा सूक्ष्म है, किन्तु बड़ा सु-आख्यात है कि उसके लिए सब तरसते हैं। भगवान! कृपापूर्वक हमें इसका उत्तर दें।''
5. ''उपासकों को अपने मुखारविन्द से आपका निर्मल धर्म सीखने को मिले!''
6. तथागत ने अपने उपासकों के प्रति अनुकम्पा करते हुए कहा, ''ध्यान से सुनो। मैं सदाचरण के सिद्धान्तों की व्याख्या करूँगा। सुनो और उनका अनुसरण करो।''
7. ''वध मत करो, न मृत्यु-दण्ड दो, और न बलि का अनुमोदन करो। सबल या दुर्बल कैसा भी प्राणी हो उसकी हिंसा न करो।''
8. ''कोई भी उपासक, जान-बूझ कर, न चोरी करे, न चोरी कराए, या न किसी चोरी का अनुमोदन करें - केवल वही ले जो दूसरे दें।'' ''व्यभिचार से दूर रहे, जैसे वह अग्नि का कुण्ड है, या संयम के अभाव में भी किसी विवाहित पत्नी से संसर्ग न करे।''
10. ''सभाओं, न्यायालयों, या बात-चीत में झूठ न बोले, न झूठ बोलने के लिये प्रेरित या अनुमोदन करें - वह झूठ का परित्याग कर दे।''
11. ''गृहस्थों! इस नियमों का पालन करो : नशीले द्रव्य से बचकर रहो; किसी को नशीले द्रव्य पीने मत दो, नशीले द्रव्य पीने का अनुमोदन मत करो। देखो कि नशीले द्रव्य पागलपन की ओर कैसे ले जाते हैं।''
12. ''नशीले द्रव्य के द्वारा मूर्ख पाप करते हैं और लापरवाह लोगों को पाप के लिये उकसाते हैं। अतः इस पागल बनाने वाले व्यसन का, इस मूर्खता का, इस मूर्खों के स्वर्ग का परित्याग करें।''
13. ''न प्राणि हिंसा करो, न चोरी करो, न झूठ बोलो, नशीले द्रव्यों से दूर रहो, विषयासक्ति से विरत रहो, रात में विकाल भोजन न करो।''
14. ''सुगन्धों और फूल-मालाओं से दूर रहें, अपनी शैय्या ऊंची शुद्ध मन से इस आष्टांगिक व्रत का पालन करें''

15. ''प्रातः काल इन व्रतों को ग्रहण करें, शुद्ध और श्रद्धायुक्त चित्त से सामर्थ्य भर भिक्षुओं को भोजन व पेय पदार्थ दान करें।''

16. ''अपने माता-पिता की भली-भाँति सेवा करें, सदाचारी व्यवस्था अपनायें। इस प्रकार निष्ठावान उपासक ऊंचे पद तक पहुँच सकेगा।''

5. सदाचरण के पथ पर चलने के लिये साथी की प्रतीक्षा अनावश्यक

1. ''जिस प्रकार हाथी युद्ध में फेंके गये वाण को सहन करता है, उसी प्रकार संसार में प्रत्येक बुराई से लिप्त लोगों के दुर्वचनों को मुझे भी सहन करना चाहिये।''

2. ''सधे होने पर वे उस हाथी को युद्ध में ले जाते हैं; सधे होने पर राजा उसकी पीठ पर बैठता है; सधे होने पर वह प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ है जिसे कोई दुर्वचन उसे विचलित नहीं करते।''

3. अच्छी तरह सधे खच्चर अच्छे होते हैं और प्रसिद्ध कुल के सिन्ध के अश्व अच्छे होते हैं, निस्सन्देह बलवान हाथी अच्छा होता है; मनुष्यों में स्व-संयमित सबसे अच्छा होता है।

4. फिर भी ऐसे श्रेष्ठ वाहन भी हमें निर्वाण-पथ पर आगे नहीं ले जा सकते। हम स्वयं निर्वाण-पथ तक केवल स्व-निर्भर, स्व-संयम द्वारा पहुँच सकते हैं।

5. अप्रमाद में आनन्द मनाओ। अपने विचारों में स्मृति-सम्प्रजन्य युक्त रहो, कभी प्रमाद न करो। अपने को कुमार्ग से हटाओ, हाथी को दलदल से बाहर निकालो।

6. यदि तुम्हें कोई श्रेष्ठ, दृढ़, बुद्धिमान सह-यात्री मिला है, तो अपनी सम्पूर्ण चिन्ताओं को छोड़कर एकाग्र हो, उसके साथ प्रसन्नतापूर्वक विचरण करो।

7. यदि तुम्हें सच्चा, बुद्धिमान सह-यात्री नहीं मिला, तो जैसे एक राजा शत्रु के आगे बढ़ने पर अपनी सीमाओं को छोड़कर जंगल में अकेले हाथी के समान अकेला ही घूमता है, इसी प्रकार तुम भी अकेले ही अपने मार्ग पर विचरण करो।

8. एकान्त जीवन बेहतर है, क्योंकि मूर्ख साथी अच्छा नहीं हो सकता। अकेले रहो और कोई पाप-कर्म मत करो, अल्प आवश्यकताओं के साथ अकेले रहो, एकान्त में रहो, जैसे बलवान हाथी जंगल में एकान्त में भोजन करता है।

9. सभी अकुशल-चेतनाओं का त्याग करें।

10. अकुशल चेतनाओं को मिटाने की विधि यह है।
11. इस संकल्प द्वारा तुम्हें उन्हें मिटाना है, चाहे दूसरे लोग हानिकारक हों, तुम किसी को हानि नहीं पहुंचाओगे।
12. भले ही अन्य लोग हत्या करें, तुम कभी भी हत्या नहीं करोगे।
13. भले ही अन्य लोग चोरी करें, तुम नहीं करोगे।
14. भले ही अन्य लोग पवित्र-जीवन व्यतीत न करें, तुम करोगे।
15. भले ही अन्य लोग झूठ बोलें, निन्दा करें, दोषारोपण करें या बकबक करें, तुम नहीं करोगे।
16. भले ही अन्य लोग लोभी हों, तुम लोभ नहीं करोगे।
17. भले ही अन्य लोग द्वेषी हो, तुम दयालु रहोगे।
18. भले ही अन्य लोग मिथ्या-दृष्टि, मिथ्या-संकल्प, मिथ्या-वाणी, मिथ्या-कर्म, मिथ्या-आजीविका, मिथ्या-व्यायाम, मिथ्या-स्मृति और मिथ्या-समाधि का पालन करें, तुम सम्यक्-दृष्टि, सम्यक्-संकल्प, सम्यक्-वाणी, सम्यक्-कर्म, सम्यक्-आजीविका, सम्यक्-व्यायाम, सम्यक्-स्मृति और सम्यक्-समाधि, के आर्य आष्टांगिक मार्ग का अनुसरण करोगे।
19. भले ही अन्य लोग (आर्य) सत्यों और मुक्ति के विषय में गलत हों, तुम आर्य सत्यों और मुक्ति के विषय में उचित रहोगे।
20. भले ही अन्य लोग आलस्य और निष्क्रियता से ग्रस्त हों, तुम अपने को उनसे मुक्त करोगे।
21. भले ही अन्य लोग अति प्रशंसा से फूले हों, तुम विनम्र रहोगे।
22. भले ही अन्य लोग विचिकित्सा-युक्त या भ्रान्तियों से किंकर्त्तव्यविमूढ़ हों, तुम उनसे मुक्त रहोगे।
23. भले ही अन्य लोग क्रोध, द्वेष, ईर्ष्या, जलन, कृपणता, धनलोलुपता, ढ़ोंग धोखा, उद्दण्डता, घमण्ड, ढिठाई, अनैतिकता, अशिक्षा, अकर्मन्यता, किंकत्तव्यविमूढ़ता और मूर्खता को मन में रखें-तुम इन सभी बातों के विपरीत रहोगे।

परिच्छेद - चार

निर्वाण सम्बन्धी प्रवचन

1. निर्वाण क्या है?

1. एक बार तथागत श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में ठहरे हुए थे, सारिपुत्र भी वहीं ठहरे हुए थे।
2. तथागत ने भिक्षुओं को सम्बोधित करते हुए कहा, ''भिक्षुओं! तुम सांसारिक वस्तुओं के दायात (उत्तराधिकारी) मत बनो, बल्कि मेरे धम्म के बनो, क्योंकि मेरे मन में तुम सभी के लिये अनुकम्पा है। इसलिए मैं तुम्हें यह कहता हूँ।''
3. इस प्रकार बोलकर तथागत उठे और व्याख्या कर अपनी कुटी में चले गये।
4. सारिपुत्र पीछे रह गये। तब भिक्षुओं ने उनसे निवेदन किया कि वे बताएँ कि निर्वाण क्या हैं?
5. तब सारिपुत्र ने भिक्षुओं के प्रत्युत्तर में कहा, ''भिक्षुओ! तुम जानते हो कि लोभ अकुशल-धर्म है और द्वेष अकुशल-धर्म है।''
6. ''इस लोभ और विद्वेष से अलग होने के लिये मध्यम-मार्ग है, जो हमें देखने के लिये आँखे देता है और हमें ज्ञान करवाता है, तथा हमें शान्ति, प्रज्ञा, बोधि और निर्वाण की ओर ले जाने वाला है।''
7. ''यह मध्यम-मार्ग क्या हैं? यह और कुछ नहीं, बल्कि सम्यक्-दृष्टि, सम्यक्-संकल्प, सम्यक्-वाणी, सम्यक्-आजीविका, सम्यक्-व्यायाम, सम्यक्-स्मृति, सम्यक्-समाधि ही आर्य आष्टांगिक मार्ग है। भिक्षुओ! यही मध्यम-मार्ग है।''
8. ''हाँ'', भिक्षुओ! क्रोध घृणित धर्म है और विद्वेष घृणित धर्म है, ईर्ष्या और जलन घृणित धर्म हैं, कृपणता और धनलोलुपता घृणित धर्म हैं, और ढोंग, धोखा और घमण्ड घृणित धर्म हैं, गर्व घृणित धर्म और प्रमाद घृणित धर्म है।''
9. ''गर्व और प्रमाद से अलग होने के लिये मध्यम-मार्ग है - यह देखने के लिये आँखें देने वाला हैं, हमें ज्ञान करवाने वाला है और हमें शान्ति, प्रज्ञा और बोधि की ओर ले जाने वाला है।''
10. ''निर्वाण और कुछ नहीं, बल्कि वही आर्य आष्टांगिक मार्ग हैं।''
11. इस प्रकार भदन्त सारिपुत्र ने कहा तो मन से प्रसन्न भिक्षुओं ने आनन्दित हो उनका अनुमोदन किया।

2. निर्वाण के मूलाधार

1. एक बार भदन्त राध स्थविर तथागत के पास आये। आकर उन्होंने तथागत का अभिवादन किया और एक ओर बैठ गये। इस प्रकार बैठे हुए भदन्त राध ने तथागत को इस प्रकार सम्बोधित किया, "भगवान! निर्वाण किस लिये है।"

2. भगवान बुद्ध ने उत्तर दिया, "निर्वाण का तात्पर्य राग-द्वेष से मुक्ति।"

3. "किन्तु भगवान्, निर्वाण का क्या उद्देश्य है?"

4. "राध! निर्वाण में सुस्थित हो, सदाचरण का जीवन व्यतीत किया जाता है। निर्वाण ही इसका लक्ष्य है। निर्वाण ही इसका साध्य है।"

(ii)

1. एक बार तथागत श्रावस्ती ने अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में विहार कर रहे थे। तब तथागत ने यह कहते हुए, भिक्षुओं को बुलाया, 'भिक्षुओ!'हाँ' भगवान!' उन भिक्षुओं ने तथागत को प्रत्युत्तर दिया। तब तथागत ने इस प्रकार कहा:

2. "भिक्षुओ! क्या तुम्हें मेरे द्वारा उपदेशित उन पाँच बन्धनों का ध्यान है, जो आदमी को नीचे की ओर घसीट ले जाते हैं।"

3. इस पर भदन्त मालुंक्य-पुत्र ने यह कहा :

4. "भगवान्! मुझे उन पाँच बन्धनों का ध्यान है।"

5. "मालुंक्य-पुत्र! तुम्हें उनका ध्यान कैसे हैं?"

6. "मुझे ध्यान है भगवान्! जैसा कि तथागत द्वारा उपदेशित किया गया है, कि (छोटे बालक को) सक्काय-दिट्ठि (शरीरात्मक-दृष्टि), विचिकित्सा, शील-व्रतों पर निर्भर रहने की दृष्टि और अनुष्कार पर आधारित मानसिक, विकृति, काम-भोगों की उत्तेजना ओर विद्वेष-तथागत द्वारा उपदेशित बंधन हैं, जो नीचे की ओर घसीट ले जाते हैं। भगवान् इन पाँच बन्धनों का मुझे ध्यान है।"

7. "किसके लिये मालुक्य-पुत्र! उपदेशित पाँच बंन्धन हैं जिनका तुम्हें ध्यान है? क्या अन्य मतों के परिव्राजक एक छोटे बच्चे के दृष्टान्त का उपयोग करते हुए और इस प्रकार कहते हुए तुम्हारी निन्दा नहीं करेंगे।"

8. "किन्तु, मालुंक्य-पुत्र! अबोध और पीठ के बल लेटे हुए बालक की काया भी अभी अविकसित है। तब, उसके भीतर सक्काय-दिट्ठी उत्पन्न कैसे हो सकती हैं? फिर भी निस्सन्देह उसमें सक्काय-दिट्ठी का अंकुर तो निहित है।"

9. "इसी प्रकार मालुंक्य-पुत्र! अबोध और पीठ के बल लेटे हुए एक छोटे बालक

की मानसिक अवस्थायें ही अविकसित हैं। तब, उसके भीतर मानसिक अवस्थाओं की विचिकित्सा कैसे हो सकती है? फिर भी उसके भीतर विचिकित्सा का अंकुर निहित है।"

10. "इसी प्रकार, मालुंक्य-पुत्र! अभी उसकी मानसिक क्रिया ही नहीं हो सकती है। तब उसके भीतर धार्मिक कृत्य और अनुष्ठान पर आधारित मानसिक विकृति कैसे हो सकती है? फिर भी वहाँ उसमें यह प्रवृत्ति निहित है।"

11. "आगे भी मालुंक्य-पुत्र! उस अबोध बालक में इन्द्रियजन्य राग ही नहीं हैं। तब, काम-भोगों की उत्तेजना कैसे जानी जा सकती है? किन्तु वहाँ प्रवृत्ति निहित है।"

12. "अन्त में, मालुंक्य-पुत्र! इस अबोध बालक के लिये प्राणियों का कोई अस्तित्व ही नहीं है। तब वह प्राणियों के विरुद्ध विद्वेष मन में कैसे रख सकता है, फिर भी इस प्रवृत्ति का अंकुर तो उसके भीतर है।"

13. "अब, मालुंक्य-पुत्र! क्या अन्य मतों के वे परिव्राजक एक छोटे बालक के दृष्टान्त का उपयोग करते हुए इस प्रकार तुम्हारी निन्दा नहीं करेंगे।"

14. जब यह कहा जा चुका, तब भदन्त आनन्द ने इस प्रकार तथागत को सम्बोधित किया, "अब समय है, तथागत! हे सुगत! अब तथागत के लिये विश्राम करने का समय है।"

परिच्छेद - पाँच

धम्म सम्बन्धी प्रवचन

1. सम्यक् - दृष्टि का पहला स्थान क्यों हैं?

1. आर्य आष्टांगिक मार्ग में सम्यक्-दृष्टि श्रेष्ठतम है।
2. सम्यक्-दृष्टि, श्रेष्ठ जीवन की सभी बातों की भूमिका है और कूंजी है।
3. विवेकहीनता सभी बुराइयों की जड़ है।
4. सम्यक्-दृष्टि के विकास के लिये आवश्यक है कि मनुष्य को जीवन की प्रत्येक घटना को प्रतीत्य समुत्पाद के सिद्धांत की प्रक्रिया के रूप में देखना चाहिए। सम्यक-दृष्टि रखने का तात्पर्य है कि कारण-कार्य के सिद्धांत के आधार समझना।
5. "भिक्षुओ! जो कोई भी मनुष्य मिथ्या-दृष्टि, मिथ्या-संकल्प, मिथ्या-वाणी, मिथ्या-कर्म, मिथ्या-आजीविका, मिथ्या-व्यायाम, मिथ्या-स्मृति और मिथ्या-समाधि का अनुसरण करता है, उसका ज्ञान और विमुक्ति मिथ्या रहती है। ऐसी मिथ्या दृष्टि के अनुरूप किये जाने या प्राप्त किये जाने के कारण; उसके प्रत्येक कर्म, वचन या विचार, प्रत्येक चेतना, प्रत्येक आकांक्षा, प्रत्येक निश्चय, उसकी प्रत्येक प्रक्रियाएँ, ये सभी बातें उसे ऐसी स्थिति की ओर ले जाती हैं, जो अरुचिकर, अप्रीतिकर, घृणास्पद, अलाभप्रद और दुखद होती हैं। ऐसा क्यों? उसकी मिथ्या-दृष्टि के कारण।"
6. ठीक आचरण होना ही पर्याप्त नहीं है। एक बच्चा ठीक हो सकता है, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि वह बच्चा जानता है, क्या ठीक है। ठीक होने के लिये मनुष्य को इसका ज्ञान होना चाहिये कि क्या ठीक है?
7. "आनन्द! यथार्थ भिक्षु किसको कहते हैं? यथार्थ भिक्षु के रूप में किसे व्याख्यित किया जा सकता है? केवल उसी को जिसने इसमें प्रवीणता पा ली हो कि क्या विवेकपूर्ण संभव है और क्या अविवेकपूर्ण असंभव है।"

2. मरणोपरान्त जीवन की चिन्ता क्यों?

1. एक समय भदन्त महाकाश्यप और भदन्त सारिपुत्र बनारस के समीप इसिपतन के मृगदाव में ठहरे हुए थे।

2. तब भदन्त सारिपुत्र शाम की ध्यानावस्था से उठकर भदन्त महाकाश्यप के पास गए और एक ओर बैठ गए।
3. इस प्रकार बैठे हुए भदन्त सारिपुत्र ने भदन्त महाकाश्यप से कहा, ''आप तथागत मरणोपरान्त रहते हैं?
4. ''मित्र! तथागत द्वारा यह अव्याकृत है कि तथागत मरणोपरान्त रहते हैं।''
5. ''तब क्या मित्र? क्या तथागत मरणोपरान्त रहते हैं और नहीं भी रहते हैं अर्थात् दोनों हैं?''
6. ''यह भी, मित्र! तथागत द्वारा अव्याकृत है।''
7. ''तब कैसे, मित्र! क्या तथागत मरणोपरान्त नहीं भी रहते हैं? यह भी मित्र! तथागत द्वारा व्याकृत नहीं किया गया है।''
8. मित्र! किंतु यह तथागत द्वारा व्याकृत क्यों नहीं किया गया है?
9. ''यह एक ऐसा प्रश्न है, जिसका संबंध मानवता के साथ या पवित्र-जीवन के मूल सिद्धांतों से नहीं है। यह न तो प्रज्ञा की प्राप्ति और न ही निर्वाण की ओर ले जाता है। मित्र! यही कारण है कि यह तथागत द्वारा व्याकृत नहीं किया गया है।''

3. ईश्वर से प्रार्थनाएं और याचनाएं करना व्यर्थ

1. एक बार भगवान बुद्ध ने वासेट्ठ से बातचीत करते हुए कहा:-
2. ''यदि वह अचिरवती नदी पानी से किनारे तक लबालब भरी उमड़ रही हो, और एक मनुष्य जिसके इसके दूसरे किनारे पर कार्य हो और पार करना चाहे।''
3. ''और किनारे खड़े होकर, वह दूसरे किनारे को याचना करे और कहे, ''हे उधर के किनारे! इधर आओ, इस ओर आओ!''
4. ''अब क्या तुम जानते हो? वासेट्ठ! अचिरवती नदी का दूसरा किनारा उस मनुष्य के आह्वान करने से, प्रार्थना करने से, आशा करने से और स्तुति करने से क्या इस ओर चला आयेगा?''
5. ''ठीक इसी तरह से, वासेट्ठ! क्या तीन वेदों के ज्ञाता ब्राह्मण, उन गुणों को पालन को छोड़कर, जो वास्तव में एक मनुष्य को सच्चा ब्राह्मण बनाते हैं, और उन दुर्गुणों के पालन को स्वीकार कर जो वास्तव में मनुष्यों को अब्राह्मण बनाते हैं,'' इस प्रकार कहें :
6. ''इन्द्र! हम तेरा आह्वान करते हैं, ब्रह्म हम तेरा आह्वान करते हैं ईशान, हम तेरा आह्वान करते हैं, प्रजापति हम तेरा आह्वान करते हैं, ब्रह्म हम तेरा आह्वान करते हैं, हम आह्वान करते हैं।''

7. ''वासेट्ठ! यह निश्चित है कि ऐसा हो नहीं सकता कि प्रार्थनाओं, याचनाओं करने, आशाओं करने और स्तुति करने के कारण ये ब्राह्मण अपनी मृत्यु के बाद ब्रह्म में लीन हो जायें। वस्तुओं की ऐसी अवस्था किसी भी तरह के निश्चय से नहीं हो सकती।''

4. मनुष्य का भोजन उसे 'पवित्र' नहीं बनाता

1. एक ब्राह्मण संयोग से तथागत से मिला और उसने प्रश्न उठाया कि क्या भोजन का प्रभाव एक मनुष्य के चरित्र पर पड़ता है या नहीं?
2. ब्राह्मण ने कहा, ''जौ, गिरी, दालें, कंद, और कोपलें-यदि यह भोजन ठीक से मिले, सदैव अच्छे जीवन को प्रोत्साहित करता है। 'मुर्दार माँस' पर खाना खराब है?''
3. ''भगवान्! यद्यपि आप कहते हैं कि आप सड़े-गले माँस को छूते नहीं, फिर भी आप पक्षियों के माँस का बना एक से एक अच्छा भोजन लेते हैं-मैं पूछता हूँ आप 'मुर्दा माँस' किसे कहते हैं।''
4. तथागत ने उत्तर दिया, ''प्राणी की हत्या करना और अंग-भंग करना, कोड़े मारना, बाँधना, चोरी, झूठ, ठगी, धोखा और व्यभिचार करना ये माँस-भोजन नहीं, बल्कि ये मुर्दा-माँस के समान हैं।''
5. ''काम-भोगों का पीछा करना, खाने का लोभ, अपवित्र जीवन, वैर-विरोध करना, ये माँस भोजन नहीं, बल्कि ये मुर्दा माँस के समान हैं।''
6. ''चुगलखोरी, क्रूरता, विश्वासपात, निष्ठुर अभिमान, नीच संतप्तता ये माँस नहीं, बल्कि ये मुर्दा माँस के समान हैं।''
7. ''क्रोध, अहंकार, विद्रोह, विश्वासघात, ईर्ष्या, डींग मारना, अभिमान, कुसंगति ये माँस भोजन नहीं, बल्कि ये मुर्दा-माँस के समान हैं।''
8. ''नीच-जीवन, निन्दा करना, धोखा, बेईमानी, धूर्त के दाँव-पेंच, अनुचित बदनामी माँस भोजन नहीं, बल्कि ये मुर्दा-माँस हैं।''
9. ''ये वध करने और चोरी करने का व्यसन, ये अपराध, ये खतरों भरे नरक के द्वार हैं- ये सब मुर्दा-मांस नहीं-मांस भोजन नहीं परिपूर्ण है।''
10. ''जो आदमी शक्की है, उसका शक माँस और मछली से विरत नहीं किया जा सकता है, न नग्न रहना, न जटायें, न मुंडे सिर या छाल-वस्त्र, न पवित्र अग्नि-पूजा, न भावी सुख पाने के लिये की गई कठोर तपस्याएँ, न जल द्वारा

सफाई, न यज्ञ-हवन और न कोई अनुष्ठान ही।''

11. ''अपनी इन्द्रियों को संयत करो, अपने ऊपर नियन्त्रण रखो, सत्य का आग्रह रखो और दयावान रहो। जो शान्त पुरुष सभी बन्धनों को तोड़ देता है और सभी बुराइयों को परास्त करता है, वह भले ही देखे या सुने किसी के द्वारा भी कलंकित नहीं होता, निर्मल रहता है।''

12. तथागत के इन ऊँचे, सत्य की रक्षा करने, मुर्दा-माँस की निन्दा करने और बुराइयों को समाप्त करने वाले उपदेश को सुन कर, ब्राह्मण ने विनम्रतापूर्वक वंदना की और वहीं पर भिक्षु के रूप में प्रव्रजित किये जाने की याचना की।

5. भोजन नहीं, बल्कि कुशल कर्मों का महत्त्व

1. आमगन्ध नामक एक ब्राह्मण तपस्वी अपने शिष्यों के साथ हिमालय क्षेत्र में रहता था।

2. वे न तो मछली और न ही माँस खाते थे। प्रत्येक वर्ष वे नमक और खटाई की तलाश में अपने आश्रम से नीचे उतर आते थे। गाँव के निवासी आदर से उनका स्वागत करते थे और चार महीने तक उन्हें आतिथ्य प्रदान करते थे।

3. तब तथागत अपने भिक्षुओं सहित उसी गाँव में पहुँचे। लोगों ने तथागत को धर्मोपदेश देते सुना, तो वे उनके अनुयायी बन गये।

4. उस वर्ष भी आमगन्ध और उनके शिष्य सदा की भाँति गाँव-वासियों के पास गये, किन्तु गाँव-वासियों ने कोई उत्साह नहीं दिखलाया।

5. आमगन्ध को जानकर यह निराशा हुई कि तथागत ने मछली-माँस खाने का निषेध नहीं किया है। इस विषय को निश्चित करने की इच्छा से, जहाँ तथागत ठहरे हुए थे, वह श्रावस्ती के जेतवन विहार पहुंचे और कहा :

6. ''जौ, फलियाँ और फल, भोज्य पत्ते और कंद, किसी भी लता पर लगने वाले फल; न्यायोचित रूप से प्राप्त किये गये इन पदार्थों को जो सदाचरण से खाता है, वह सुख भोगों की खातिर झूठ नहीं बोलता।''

7. ''आप दूसरों के द्वारा दिया गया भोजन खाते हैं, जो भली-भाँति तैयार किया हुआ, अच्छी तरह सजाया; शुद्ध और उत्तम होता है। वह जो चावल से बने ऐसे भोजन का आनन्द लेता है, वह 'आम-गन्ध' खाता है। आप भली-भाँति तैयार पक्षी के माँस के साथ चावल खाते हैं और कहते हैं कि आ-मगन्ध का आरोप, मुझ पर लागू नहीं होता।

8. ''मैं इसका अर्थ आपसे जानना चाहता हूँ, आपका 'आम-गन्ध' किस प्रकार का है?''

9. तथागत ने उत्तर दिया, ''जीव हिंसा करना, पीटना, काटना, बाँधना, चुराना, झूठ बोलना, ठगना, धोखा देना, निरर्थक ज्ञान, व्यभिचार; ये 'आम-गन्ध' है, माँस खाना नहीं।

10. ''इस संसार में जो मनुष्य इन्द्रियजनित काम-भोगों के असंयत हैं, जो मधुर वस्तुओं के लालची हैं, जो अपवित्र कर्मों से सम्बन्धित हैं, जो मिथ्या दृष्टि के हैं, धूर्त, अनुसरण करने में कठिन हैं; ये 'आम-गन्ध' हैं, माँस खाना नहीं।''

11. ''इस संसार में जो क्रूर, कठोर, चुगलखोर, विश्वासघाती, निष्ठुर, अत्यधिक अहंकारी और अनुदार हैं, तथा किसी को कुछ भी नहीं देते हैं, ये 'आम-गन्ध' हैं, माँस खाना नहीं।''

12. ''क्रोध, अभिमान, हठ, विरोध, ठगी, ईर्ष्या, डींग मारना, अत्यधिक अहंभाव, कुकर्मी से संबंध; ये 'आम-गंध' हैं, माँस खाना नहीं।''

13. ''जो दुश्शील के हैं, अपने ऋण को चुकाने से मना करते हैं, झूठी निंदा करने वाले हैं, अपने व्यवहार में कपटी हैं, धोखेबाज हैं, वे जो इस संसार में मनुष्यों में निकृष्टतम हैं, ऐसे कुकर्म करते हैं, ये 'आम-गन्ध' हैं और माँस खाना नहीं।''

14. इस संसार में जो मनुष्य सजीव प्राणियों के प्रति असंयत हैं, जो दूसरों को संकट पहुँचाने पर, उनकी वस्तुयें छीन लेने पर तुले हैं; अनैतिक, क्रूर, कठोर और अशिष्ट हैं, ये 'आम-गन्ध' हैं, माँस खाना नहीं।

15. ''वे जो इन सजीव प्राणियों पर आक्रमण करते हैं या तो लोभ या द्वेष वश, और सदैव बुरा करने पर तुले रहते हैं, वे मरणोपरान्त अन्धकार में चले जाते हैं और सिर के बल नरक में गिरते हैं; ये 'आम-गन्ध' हैं, माँस खाना नहीं।''

16. ''मछली-माँस से विरत रहने से, न नग्नता से, न सिर मुँडाने से, न जटा जैसे केश रखने से, न भभूत रमाने से, न खुरदरी मृग-छाल धारण करने से, न यज्ञाग्नि की पूजा करने से, न ही अमृत प्राप्ति के निमित्त तमाम तपस्याएं करने से, न बलियों के देने से, न मंत्र जाप से यज्ञों से और न ही भिन्न-भिन्न यज्ञ करने से वह मनुष्य शुद्ध हो सकता है, जिनके अपने संदेह दूर नहीं हुए हैं।''

17. ''वह जो संयतेन्द्रिय और विजितेन्द्रिय जीवन व्यतीत करता हुआ धम्म में स्थित है, जिसे सच्चाई और शीलपालन में आनन्द होता है, जो आसक्ति से परे जा चुका है और सभी दुखों को पराजित कर चुका है; वह बुद्धिमान मनुष्य जो

देखी और सुनी बातों पर आसक्त नहीं होता।''

18. ''यह अकुशल-कर्म ही हैं, जो 'आम-गन्ध' को संघटित करते हैं, मछली और माँस खाना नहीं।''

6. बाह्य शुद्धि अपर्याप्त है

1. एक बार तथागत श्रावस्ती में विहार कर रहे थे। उस समय संगारव ब्राह्मण भी वहीं रहता था। वह जल द्वारा शुद्धि मानने वाला था और जल-शुद्धि की प्रक्रिया करता था। रात-दिन वह प्रायः स्नान करने में ही लगा रहता था।
2. भदन्त आनन्द, प्रातः काल चीवर धारण कर और चीवर व भिक्षा-पात्र लेकर, भिक्षाटन के लिये श्रावस्ती की ओर निकले। जब उन्होंने श्रावस्ती में अपना भिक्षाटन कर अपना भोजन ग्रहण कर लिया, अपनी वापसी में, वे तथागत के पास गये, उनका अभिवादन किया और एक ओर बैठ गये। इस प्रकार बैठे हुए, भदन्त आनन्द ने कहा :
3. ''भगवान्, यहाँ श्रावस्ती में एक संगारव ब्राह्मण रहता है, जो जल द्वारा शुद्धि करने वाला है, जल द्वारा शुद्धि की क्रिया करता है। रात और दिन वह स्नान करने में लगा रहता है। भगवान्! यह अच्छा होगा, यदि आप संगारव ब्राह्मण पर दया कर उससे भेंट करने चलें।''
4. और तथागत ने अपने मौन रहकर स्वीकार किया।
5. अतः दूसरे दिन प्रातः काल, तथागत ने चीवर धारण किया और चीवर व भिक्षा-पात्र लेकर संगारव ब्राह्मण के निवास पर गये, और जब वे वहाँ पहुँचे, वे एक बिछे आसन पर बैठ गये।
6. तब संगारव ब्राह्मण तथागत के पास आया और उनका अभिवादन किया, और परस्पर शिष्टाचार के आदान-प्रदान के उपरान्त एक ओर बैठ गया।
7. जब वह इस प्रकार बैठ गया, तथागत ने संगारव ब्राह्मण से यह पूछा, ब्राह्मण! ''क्या यह सत्य है, ब्राह्मण जैसा कि कहते हैं, कि तुम जल द्वारा शुद्धि करने पर विश्वास करते हो, कि तुम जल द्वारा शुद्धि की क्रिया करते हो, रात और दिन स्नान करने में लगे रहते हो।''
8. ''यह सत्य है, श्रमण गौतम!''
9. ''ब्राह्मण! अब इस प्रकार रात-दिन स्नान करने से तुम क्या लाभ प्राप्त करते हो?''
10. ''श्रमण गौतम! यह इस तरह है कि जो कुछ भी मैं दिन में पाप करता हूँ,

उसी शाम को अपने स्नान द्वारा मैं उसे धो डालता हूँ। जो कुछ भी पाप मैं रात में करता हूँ, सुबह को अपने स्नान द्वारा उसे धो डालता हूँ। यही लाभ दिखाई देता है, जो मैं जल द्वारा शुद्धि करने में लगा रहता हूँ।''

11. तब तथागत ने कहा:

12. ''धम्म ही वह जल-स्रोत है, जो स्वच्छ है और निर्मल है।''

13. ''यहाँ पर जब शास्त्रों के ज्ञाता स्नान करने आते हैं, तो उनका प्रत्येक अंग शुद्ध हो जाता है और वे दूसरे तट की ओर चले जाते हैं।''

14. तत्पश्चात् तथागत के ऐसा कहने पर संगारव ब्राह्मण बोला, ''यह अद्‌भुत है, श्रमण गौतम! कृपया आज से जीवनपर्यन्त मुझे अपना अनुयायी स्वीकार कर लें। मुझे अपना शरणागत उपासक जानें।''

7. पवित्र जीवन क्या है?

1. एक बार भगवान बुद्ध ने चारिका करते समय भिक्षुओं को निम्नलिखित उपदेश दिया-

2. भिक्षुओं को सम्बोधित करते हुए तथागत ने कहा, ''हे भिक्षुओं! पवित्र जीवन का पालन न तो लोगों को ठगने की दृष्टि से, न तो उनसे कुछ पाने के लिये, न तो लाभ, हित या यश प्राप्ति के उद्देश्य से, न तो विवादों में कठिनाइयों से बाहर निकलने की मंशा से, न इसलिए कि लोग जान जायें कि यह अमुक हैं, किया जाता है। निस्सन्देह, भिक्षुओ! इस पवित्र जीवन का पालन शरीर व वाणी पर संयम रखने के लिये, आस्रवों को शुद्ध करने के लिये और चित्त की विमुक्ति और तृष्णा के निरोध के लिये किया जाता है।''

परिच्छेद - छह

सामाजिक-राजनैतिक प्रश्नों पर प्रवचन

1. राजाओं के अनुग्रह पर निर्भर मत रहो

1. एक बार तथागत राजगृह के वेणुवनाराम के कलन्दक-निवास में ठहरे हुए थे।
2. उस समय राजकुमार अजातशत्रु देवदत्त का सहायक बना हुआ था, जो भगवान बुद्ध का विरोधी बन गया था।
3. वह पाँच सौ गाड़ियों में पाँच सौ खाने के बर्तनों में सुबह और शाम भोजन पहुँचाकर देवदत्त के समर्थकों का भरण-पोषण कर रहा था।
4. तब कुछ भिक्षु तथागत के समक्ष आये, उनका अभिवादन किया और एक ओर बैठे हुए भिक्षुओं ने तथागत को सभी बातें बताईं।
5. तब, तथागत ने भिक्षुओं को सम्बोधित करते हुए कहा, ''आप राजाओं से लाभ, अनुग्रह और खुशामद के लिये लालायित मत हों। जब तक, भिक्षुओ! राजकुमार अजातशत्रु इस प्रकार पाँच सौ गाड़ियों में पाँच सौ खाने के बर्तनों में लाया गया भोजन सुबह और शाम पहुँचाकर देवदत्त की सहायता करता है, भिक्षुओ! तब तक देवदत्त के विषय में यह हानि ही है और स्थिति में लाभ नहीं।''
6. ''भिक्षुओ! ठीक जैसे यदि कोई एक पागल कुत्ते की नाक पर कलेजी के टुकड़े ले जाता है तो कुत्ता और अधिक पागल हो जायेगा, इसी प्रकार, भिक्षुओं, जब तक राजकुमार अजातशत्रु इस प्रकार देवदत्त की सहायता करता है, देवदत्त के विषय में अनुमान किया जा सकता है, कि उसकी हानि है, अच्छी स्थिति का लाभ नहीं। इस प्रकार, भिक्खुओ! राजकुमारों से प्राप्त होने वाले लाभ, अनुग्रह और खुशामद भयंकर होते हैं।''
7. ''वे निश्चय ही शान्ति-प्राप्ति के मार्ग की बड़ी कटु और दुखद बाधाएं हैं।''
8. ''इसलिए भिक्खुओ! आपको ऐसा अभ्यास डालना चाहिये कि जब हमें राजाओं से लाभ, अनुग्रह और भेटें मिलेंगी, हम उन्हें अस्वीकार कर देंगे, और जब वे हम पर आ पड़ेंगे, तो वे हमें जकड़ नहीं पायेंगे और हमारे हृदयों में स्थापित नहीं हो पायेंगे और हमें राजकुमार के गुलाम नहीं बना पायेंगे।''

2. यदि राजा सदाचारी होगा, तो उसकी प्रजा भी सदाचारी होगी

1. एक बार तथागत ने भिक्षुओं को सम्बोधित करते हुए कहा:

2. ''भिक्षुओ! ऐसे समय में जब राजा अधार्मिक हो जाते हैं, तो उनके मन्त्री और अधिकारी भी अधार्मिक बन जाते हैं। मंत्रियों और अधिकारियों के असदाचारी हो जाने पर, ब्राह्मण और गृहस्थ भी असदाचारी बन जाते हैं। ब्राह्मणों और गृहस्थों के, अधार्मिक हो जाने पर, नगरवासी और ग्रामवासी अधार्मिक बन जाते हैं।''

3. ''किन्तु भिक्षुओ! जिस-जिस समय राजा धार्मिक होते हैं, तब राजा के मंत्री और अधिकारी भी धार्मिक बन जाते हैं। जिस-जिस समय राजा के मंत्री और अधिकारी सदाचारी बन जाते हैं, तो ब्राह्मण और गृहस्थ भी धार्मिक बन जाते हैं। जिस-जिस समय ब्राह्मण और गृहस्थ धार्मिक बन जाते हैं, तो नगरवासी और ग्रामवासी भी सदाचारी बन जाते हैं।''

4. ''जब गायें नदी पार जा रही हों, यदि बूढ़ा बैल गलत रास्ते को मुड़ जाता है, तो उसका अनुसरण करते हुए वे सभी गलत रास्ते को मुड़ जाती हैं। इसी प्रकार मनुष्यों के मध्य, यदि किसी को मुखिया मान लिया जाता है तब वह कुटिलता से चलता है तो दूसरे भी कुटिलता से चलेंगे।''

5. ''इसी प्रकार जब राजा पथभ्रष्ट हो जाता है, तो समस्त राज्य कष्ट पाता है। जब गायें नदी पार कर रही हों, यदि बूढ़ा बैल सीधे जाता है, वे सभी सीधे जाती हैं, क्योंकि उसका रास्ता सीधा है। इसी प्रकार मनुष्यों के मध्य, यदि किसी को मुखिया मान लिया गया है, जब वह सदाचरण से चलता है, तो दूसरे भी ठीक से जीवन व्यतीत करते हैं। जब राजा अच्छा (सदाचारी) होता है, तो उनका सम्पूर्ण राज्य सुखी जीवन बिताता है।''

3. राजनैतिक और सामरिक शक्ति सामाजिक व्यवस्था पर निर्भर करती है।

1. एक बार तथागत राजगृह में गृध्रकूट पर्वत पर निवास कर रहे थे।

2. उस समय मगध राज वैदेही-पुत्र अजातशत्रु, वज्जियों पर आक्रमण करना चाहता था, और वह स्वयं से बोला, ''भले ही वे कितने ही शक्तिशाली और ताकतवर हों मैं इन वज्जियों को जड़ से उखाड़ फैंकूँगा, मैं इन वज्जियों को नष्ट कर डालूँगा, मैं इन वज्जियों का सर्वनाश का डालूँगा।''

3. तब उसने मगध के प्रधानमंत्री वर्षकार ब्राह्मण को बुलाया और कहा:

4. ''हे ब्राह्मण! आओ और तथागत के पास जाओ और मेरी तरफ से श्रद्धापूर्वक उनके चरणों में नमन करो। तब मेरी तरफ से उनका कुशल समाचार पूछो कि वे बीमार और दुख से मुक्त हैं और आराम है सुखी हैं और स्वास्थ्य का आनन्द ले रहे हैं।''

5. ''तब उनसे कहना कि मगध राजा वैदेही-पुत्र अजातशत्रु, वज्जियों पर आक्रमण करना चाहता है। उनका कहना है कि भले ही वे कितने ही शक्तिशाली और ताकतवर हों, मैं इन वज्जियों को नष्ट कर डालूँगा, और वज्जियों को सर्वनाश तक पहुँचा दूँगा।''

6. ''और जो कुछ भी तथागत भविष्यवाणी करें, उसे ध्यानपूर्वक मन में रखना और मेरे सामने दोहराना, क्योंकि बुद्ध कुछ भी असत्य नहीं बोलते हैं।''

7. तब वर्षकार ब्राह्मण राजा के वचनों को सुनकर बोला, ''वैसे ही होगा जैसा आप कहते हैं।'' और राजश्री रथों को तैयार कराकर, वह गृध्रकूट पर्वत गया।

8. तब वहाँ पहुँचने पर उसने तथागत से अभिवादनों और कुशल-समाचारों का आदान-प्रदान किया और तब उन्हें सन्देश दिया, जैसा कि राजा ने आदेश दिया था।

9. उस समय भदन्त आनन्द तथागत के पीछे खड़े थे, और तथागत ने उनसे कहा, ''क्या तुमने सुना है, आनन्द! कि वज्जीगण पूर्णरूप से प्रायः सार्वजनिक सभाओं की बैठक करते रहते हैं।''

10. ''भगवान्! मैंने सुना है, ऐसा है,'' उन्होंने उत्तर दिया।

11. तब तथागत ने कहा, ''जब तक आनन्द! इसी तरह वज्जी इन परिपूर्ण और प्रायः सार्वजनिक सभाओं की बैठक करते रहेंगे, तब तक उन्हें पतन की आशा नहीं करनी चाहिए, बल्कि उन्नति ही होगी।''

12. ''आनन्द! जब तक इसी तरह वज्जीगण मिल-जुलकर एक साथ मिलेंगे, और मिल-जुलकर उठेंगे और अपने निर्णयों को मिलकर कार्यरूप में परिणत करेंगे, तब तक उनके पतन की आशा नहीं करनी चाहिए, बल्कि उनकी उन्नति होगी?''

13. ''आनन्द! जब तक इसी तरह वे पूर्व निश्चित नियम के बिना कोई कार्यवाही नहीं करेंगे, जो पूर्व में नियम बन चुके हैं किसी भी तरह उनका उल्लंघन नहीं करेंगे और पुराने समय से चली आई वज्जियों की परम्परा के अनुरूप कार्य करेंगे, तब तक उनके पतन की आशा नहीं करनी चाहिए, बल्कि उनकी उन्नति होगी।''

14. ''जब तक इसी तरह वे ज्येष्ठ वज्जिओं का आदर-सम्मान, सत्कार और सहायता करते रहेंगे, और उनके वचनों को महत्व देते रहेंगे, तब तक उनके पतन की आशा नहीं करनी चाहिए बलिक उनकी उन्नति होगी।''

15. ''जब तक वज्जी किसी स्त्री या लड़की को अपमान से बलपूर्वक या अपहरण

करके अपने घर लाकर नहीं रखेंगे, तब तक उनके पतन की आशा नहीं करनी चाहिए, बल्कि उनकी उन्नति होगी। "

16. "जब तक इसी तरह वज्जीगण धर्म का आदर और अनुसरण करते रहेंगे, तब तक उनके पतन की आशा नहीं करनी चाहिए, बल्कि उनकी उन्नति होगी।"

17. "आनन्द! जब तक वज्जिगण ये बातें करते रहेंगे, तब तक उन्हें पतन की आशा नहीं करनी चाहिए, बल्कि उन्नति ही होगी और कोई उनका नाश नहीं कर सकता।"

18. संक्षेप में, भगवान बुद्ध ने घोषित किया कि जब तक इसी तरह वज्जीगण प्रजातन्त्र में विश्वास करते रहेंगे और प्रजातन्त्र का पालन करते रहेंगे, तब तक उनके राज्य को कोई खतरा नहीं।

19. तब तथागत ने वर्षकार को सम्बोधित किया और कहा:

20. "हे ब्राह्मण! जब मैं एक बार वैशाली में ठहरा हुआ था, तब मैंने वज्जियों को कल्याण की ये बातें सिखलाई थीं।"

21. ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "जब तक इसी तरह वे बातों का पालन करते रहेंगे, तब तक हम वज्जियों के कल्याण की आशा कर सकते हैं न कि उनके पतन की। अत: वज्जीगण मगध के राजा द्वारा पराजित नहीं हो सकते।"

22. इस प्रकार वर्षकार ने तथागत के वचनों को सुना, अपने आसन से उठा और राजगृह वापस लौटकर मगध–सम्राट को वह सब कह सुनाया जो उसने तथागत से सुना था।

4. युद्ध अनुचित है

1. ऐसा हुआ कि मगध के राजा अजातशत्रु ने घुड़सवारों और पैदलों की एक सेना एकत्रित कर, राजा प्रसेनजित् के राज्य के एक भाग काशी पर आक्रमण कर दिया और आक्रमण की सूचना पाकर प्रसेनजित् ने भी उसी समय एक सेना एकत्रित की और उसका मुकाबला करने के लिए गया।

2. वे दोनों एक दूसरे से लड़े और अजातशत्रु ने राजा प्रसेनजित् को पराजित कर दिया, प्रसेनजित् अपनी राजधानी श्रावस्ती को वापस लौट गया।

3. जो भिक्षु श्रावस्ती से भिक्षाटन करके लौट रहे थे, उन्होंने आकर तथागत को युद्ध से हारकर प्रसेनजित् के पीछे वापस लौटने के विषय में बताया।

4. "भिक्षुओ! मगध का राजा अजातशत्रु अकुशल पथ पक्ष का साथी है।

कोसल का राजा प्रसेनजित् कुशल धम्म का साथी है। अब पराजित होने के कारण प्रसनेजिंत् रात भर दुखी रहेगा।''

5. ''विजय वैर उत्पन्न करती है; पराजित् दुखी जीवन व्यतीत करता है, किन्तु जो कोई भी उपशान्त और रामरहित है वह विजय और पराजय की चिन्ता नहीं, वह सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करता है।''

6. पुनः ऐसा हुआ ये दोनों राजा दूसरी बार युद्ध-भूमि में भिड़े किन्तु इस युद्ध में कोशल राजा प्रसेनजित् ने अजातशत्रु को पराजित कर दिया और उसे जीवित पकड़ लिया। तब राजा प्रसेनजित् ने सोचा, ''यद्यपि अजातशत्रु, ने मुझे क्षति पहुँचाई है, जबकि मैं उसको क्षति नहीं पहुँचा रहा था, फिर भी वह मेरा भानजा है। कैसा हो यदि उसे अकेला जीवित छोड़ दूँ किन्तु मैं उसकी सम्पूर्ण सेना, हाथी, घोड़े, रथ और पैदल जब्त कर लूँ'' और उसने वैसा ही किया।

7. श्रावस्ती ने भिक्षाटन करके लौटते हुए भिक्षुओं ने तथागत को इस विषय में अवगत कराया। उस पर तथागत ने कहा, ''एक मनुष्य अपने स्वार्थ के लिए दूसरे की हानि कर सकता है, ठीक वहाँ तक, जब तक कि उससे उसका लाभ होता है, किन्तु जब उसकी दूसरों द्वारा हानि पहुँचाई जाती है, वह हानि प्राप्त हुआ, फिर भी पुनः हानि पहुँचाता है।''

8. ''जब तक पाप-कर्म के फल नहीं देते हैं, तब एक मूर्ख आनन्द मना सकता है, किन्तु जब पाप-कर्म फल देने लगते हैं, तब वह दुखी होता है।''

9. हत्यारे को हत्यारा मिल जाता है। विजेता को पराजित करने वाला मिल जाता है, गाली देने वाले को दूसरा गाली देने वाला मिल जाता है।

10. ''इस प्रकार कर्म के विकास के द्वारा, एक मनुष्य जो लूटता है वह अपनी बारी में लुट भी जाता है।''

5. युद्ध-विजेता के कर्त्तव्य

1. जब युद्ध में विजेता व्यक्ति शान्ति स्थापित कर लेता है, तो फिर भी वह पराजित मनुष्य को दास न भी बनाये, तो भी उसे आगे अपमानित करने के अधिकार का दावा करता है। भगवान् बुद्ध का इस विषय पर पूर्णतया भिन्न दृष्टिकोण था। उनके दृष्टिकोण से यदि शान्ति का कोई अर्थ है, तो वह है कि विजेता का कर्त्तव्य है कि वह अपनी विजय का उपयोग पराजित की सेवा के लिये करे। भिक्षुओं को उन्होंने यह भी कहा:

2. ''जब शान्ति-प्राप्ति कर ली गयी हो, युद्ध-कौशल में निपुर्ण मनुष्य को एक

योग्य, सच्चा मनुष्य, मृदुभाषी, दयालु स्वभाव, अहंकार से रहित, एक सरल, कृतज्ञ अतिथि, सन्तुष्ट रहने वाला, अल्पकृत्य इन्द्रिय विजयी, बुद्धिमान, इन्द्रियसंयत, प्रत्युत्पन्नमतित्व, अप्रगल्भ कभी हठी नहीं, सिद्ध करने की आवश्यकता है। और वह कभी नीचा या निम्न आचरण की ओर न झुके, जिसकी गंभीर लोग भर्त्सना कर सकें।''

3. ''सभी प्राणियों का कल्याण हो और शान्ति से परिपूर्ण रहें, सभी सदैव शान्ति से धन्य रहें, सभी प्राणी दुर्बल हों या सबल, सभी प्राणी बड़े हों या छोटे; प्राणी दृश्य हों या अदृश्य, पास हों या दूर रहने वाले जन्में हो या जन्म की प्रतीक्षारत सभी शान्त हों।''
4. ''कोई भी अपने साथियों का कहीं भी निरादर न करें; कोई भी क्रोध या घृणा में दूसरों की हानि न चाहे।''
5. ''जिस तरह एक माँ अपने प्राण न्यौछावर करके भी अपने इकलौते बच्चे की चोट से रक्षा करती है, ठीक वैसी ही अपनी भावना सभी सजीव प्राणियों के लिये करें। ऊपर, नीचे चारों ओर पूरे ब्राह्माण्ड में सभी के लिए प्रेम, मैत्री भावना रखें, जिसमें घृणा का लवलेश न हो, शत्रुता को प्रोत्साहन न मिले।''
6. ''अतः खड़े होते समय, चलते समय या बैठे रहते समय या लेटे रहते समय अपने पूर्व सामर्थ्य से यही भावना रखें। यही 'ब्रह्म-विहार' माना गया है।

अध्याय - पाँच

संघ

पहला भाग	-	संघ
दूसरा भाग	-	बुद्ध द्वारा भिक्षु की संकल्पना
तीसरा भाग	-	भिक्षु के कर्त्तव्य
चौथा भाग	-	भिक्षु और उपासक (गृहस्थ)
पाँचवाँ भाग	-	उपासकों (गृहस्थों) के लिए विनय (जीवन-नियम)

पहला भाग

संघ

1. संघ और उसका संगठन
2. संघ में प्रवेश
3. भिक्षु और उसके व्रत
4. भिक्षु और सांघिक नियम संबंधी अपराध
5. भिक्षु और संयम (प्रतिबन्ध)
6. भिक्षु और शिष्टाचार के नियम
7. भिक्षु और अपराध–परीक्षण
8. भिक्षु और अपराध–स्वीकरण

1. संघ और उसका संगठन

1. भगवान बुद्ध के अनुयायी दो वर्गों में विभक्त थे, भिक्षु और गृहस्थ अनुयायी, जो उपासक कहलाते थे।
2. भिक्षु एक संघ में संगठित थे, जबकि गृहस्थ नहीं थे।
3. बौद्ध भिक्षु मुख्यत: एक परिव्राजक होता है। यह परिव्राजक संस्था बौद्ध भिक्षु की अपेक्षा प्राचीन है।
4. प्राचीन परिव्राजक ऐसे लोग थे, जिन्होंने पारिवारिक जीवन का त्याग कर दिया था और धुमन्तुओं का एक मात्र अस्थायी समूह थे।
5. वे विभिन्न आचार्यों और दार्शनिकों के सम्पर्क में आकर, उनके प्रवचनों को सुनकर, नैतिकता, दर्शन, प्रकृति, रहस्यवाद, इत्यादि विषयों पर परिचर्चा में प्रवेश कर सत्य को जान लेने के उद्देश्य से इधर-उधर घूमा करते थे।
6. पुराने प्रकार के परिव्राजकों में से कुछ ऐसे थे, जो जब तक उन्हें कोई दूसरा गुरु नहीं मिले, तब तक किसी एक आचार्य के अधीन रहते थे। कुछ दूसरे थे बिना किसी को अपना गुरु माने अकेले ही रहते थे।
7. इस पुराने प्रकार के परिव्राजकों के मध्य स्त्री घुमन्तु भी होती थी। स्त्री परिव्राजकाएँ कभी-कभी पुरुष परिव्राजकों के साथ रहती थीं, कभी-कभी वे स्वयं ही अकेले रहती थीं।
8. इन पुराने प्रकार के परिव्राजकों का कोई संघ नहीं था, अनुशासन के कोई नियम नहीं थे और प्रयास करने के लिये कोई आदर्श नहीं था।
9. ऐसा पहली बार हुआ था कि तथागत ने अपने अनुयायियों को एक संघ या भ्रातृत्व में संगठित किया था, और उन्हें अनुशासन के नियम दिये और उनके समक्ष आगे बढ़ने और कार्यान्वित करने के लिये एक आदर्श प्रस्तुत किया था।

2. संघ में प्रवेश

1. संघ सभी के लिये खुला था।
2. संघ में प्रवेश के लिए जाति-पाँति की कोई बाधा नहीं थी।
3. लिंग की भी कोई बाधा नहीं थी। स्त्री पुरुष की भी कोई बाधा नहीं थी।
4. हैसियत की कोई बाधा नहीं थी।

5. जाति-पाँति का संघ में कोई स्थान नहीं था।
6. सामाजिक-स्थिति का संघ में कोई स्थान नहीं था।
7. संघ के भीतर सभी सदस्य समान थे।
8. संघ के भीतर छोटे-बड़े का निर्धारण, योग्यता द्वारा नियंत्रित होता था जन्म द्वारा नहीं।
9. जैसा कि तथागत ने कहा था कि संघ समुद्र के समान है और भिक्षु उन नदियों के समान हैं, जो समुद्र में गिरकर विलीन हो जाती हैं।
10. नदी का अपना पृथक नाम और पृथक अस्तित्व होता है।
11. किन्तु एक बार जब नदी समुद्र में प्रवेश कर जाती है वह अपना पृथक नाम और पृथक अस्तित्व खो देती है।
12. वह सब के साथ एक हो जाती हैं।
13. ऐसी ही स्थिति संघ के साथ है। जब एक भिक्षु संघ में प्रवेश करता है, वह सब के साथ एक हो जाता है, समुद्र के जल के समान।
14. वह अपनी जाति खो देता है। वह अपनी स्थिति खो देता है। ऐसा तथागत ने कहा था।
15. संघ के भीतर जो एकमात्र भिन्नता मानी जाती थी, वह लिंग की थी। अपने संगठन में भिक्षु संघ, भिक्षुनी संघ से पृथक था।
16. संघ में प्रवेशक दो वर्गों में विभाजित थे: श्रामणेर और भिक्षु।
17. बीस वर्ष से कम कोई भी श्रामणेर बन सकता था।
18. त्रिशरण और दस शीलों को ग्रहण कर एक लड़का एक श्रामणेर बन सकता है।
19. ''मैं बुद्ध की शरण जाता हूँ, मैं धम्म की शरण जाता हूँ; और मैं संघ की शरण जाता हूँ''-ये त्रिशरण हैं।
20. ''मैं प्राणी हिंसा से विरत रहूँगा; मैं चोरी नहीं करूँगा; मैं ब्रह्मचर्य का पालन करूँगा; मैं झूठ नहीं बोलूँगा; मैं नशीले पेय-पदार्थों से विरत रहूँगा।''
21. ''मैं विकाल-भोजन से विरत रहूँगा; मैं अनुचित और अनैतिक कार्यों से विरत रहूँगा; मैं स्वयं को विभूषित और अलंकृत करने से विरत रहूँगा; मैं विलासिता से विरत रहूँगा; मैं स्वर्ण व रजत के प्रति अनुराग से विरत रहूँगा।''
22. ये दस शील हैं।

23. कोई भी एक श्रामणेर किसी भी समय संघ को छोड़ सकता है और एक गृहस्थ बन सकता है। एक श्रामणेर एक भिक्षु के सानिध्य रहता है और अपना समय भिक्षु की सेवा में व्यतीत करता है। वह ऐसा मनुष्य नहीं है, जिसने परिव्रजा ली है।

24. एक भिक्षु का पद दो चरणों के उपरान्त प्राप्त होता है। पहला चरण परिव्रजा कहलाता है और दूसरा चरण उपसम्पदा कहलाता है। उपसम्पदा के पश्चात् ही वह एक भिक्षु बनता है।

25. जो प्रार्थी अन्ततोगत्वा एक भिक्षु बनने की दृष्टि से परिव्रजा ग्रहण करने की इच्छा रखता है, उसे एक ऐसे भिक्षु की खोज करनी होती है, जिसे एक उपाध्याय के रूप में कार्य करने का अधिकार हो। एक भिक्षु केवल तभी एक उपाध्याय बन सकता है, जब उसने कम से कम दस वर्ष एक भिक्षु के रूप में व्यतीत किए हों।

26. ऐसा प्रार्थी यदि उपाध्याय द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है, तो वह परिव्राजक कहलाता है और उसे उपाध्याय की सेवा और संरक्षण में रहना पड़ता है।

27. जब संरक्षण का समय समाप्त होता है, उसके उपाध्याय को ही उपसम्पदा के उद्देश्य से विशेष तौर पर आयोजित संघ की एक सभा में अपने शिष्य का नाम प्रस्तावित करना पड़ता है और उपसम्पदा के लिये शिष्य को संघ से निवेदन करना होता है।

28. संघ को संतुष्ट करना पड़ता है कि वह एक भिक्षु बनाये जाने के लिये योग्य और उपयुक्त व्यक्ति है। इस प्रयोजन के लिए कुछ निश्चित प्रश्न हैं, जिनका प्राथी को उत्तर देना पड़ता है।

29. जब संघ अनुमति प्रदान करता है केवल, तभी उपसम्पदा दी जाती है और व्यक्ति एक भिक्षु बनता है।

30. भिक्षुणी संघ के प्रवेश नियम भी कुछ उनके ही समान हैं जैसे कि भिक्षु संघ में प्रवेश नियम है।

3. भिक्षु और उसके व्रत

1. एक गृहस्थ (उपासक) या एक श्रामणेर शील ग्रहण करता है, उनका पालन करना उसका कर्त्तव्य है।

2. एक भिक्षु शीलों को ग्रहण करने के अलावा उन्हें व्रत के रूप में भी ग्रहण

करता है, जिन्हें उसे भंग नहीं करना चाहिए। यदि वह उन्हें भंग करता है, तो वह दण्ड का भागी बन जाता है।

3. एक भिक्षु ब्रह्मचारी रहने का व्रत लेता है।
4. एक भिक्षु चोरी न करने का व्रत लेता है।
5. एक भिक्षु डींग न मारने का व्रत लेता है।
6. एक भिक्षु हिंसा न करने का व्रत लेता है।
7. एक भिक्षु किसी भी नियम-ब्राह्य वस्तु का स्वामित्व न ग्रहण करने का व्रत लेता है।
8. किसी भी भिक्षु के पास निम्नलिखित आठ वस्तुओं के अतिरिक्त कुछ भी नहीं होना चाहियेः-

   (1) अपने शरीर को ढँकने के लिये तीन चीवर :-

   (i) अन्दरूनी वस्त्र जो अन्तर-वासक कहलाते हैं।

   (ii) ऊपरी वस्त्र जो उत्तरासंघ कहलाता है।

   (iii) शीतादि से बचाव के ढंकने वाला वस्त्र जो संघाटी कहलाता है।

   (2) कमर कसने के लिए एक पेटी।

   (3) एक भिक्षा-पात्र।

   (4) एक उस्तरा।

   (5) एक सुई।

   (6) पानी छानने का वस्त्र।

9. एक भिक्षु अभाव (निर्धनता) का व्रत लेता है। उसे अपने भोजन के लिये भिक्षा अवश्य मांगनी चाहिये। उसे भिक्षाटन पर जीवन व्यतीत करना चाहिए। उसे स्वयं को एक दिन में केवल एक ही आहार पर जीवित रखना चाहिए। जहाँ संघ के लिये कोई विहार निर्मित नहीं है, वहां उसे एक वृक्ष के नीचे रहना चाहिए।
10. एक भिक्षु किसी भी व्यक्ति की आज्ञा मानने का व्रत नहीं लेता है। एक श्रामणेर से अपने वरिष्ठ लोगों के प्रति बाह्य सम्मान और शिष्टता की अपेक्षा की जाती है। उसकी अपनी मुक्ति और एक आचार्य के रूप में उसकी उपयोगिता उसकी अपनी साधना पर निर्भर करती है। उसे अपने वरिष्ठ भिक्षुओं की नहीं, बल्कि धम्म की आज्ञा का पालन करना चाहिये। उसके वरिष्ठों के पास न कोई

अलौकिक प्रज्ञा या क्षमादान का वरदान है। उसका उत्थान या पतन स्वयं अपने द्वारा होना चाहिए। उसके लिये उसे सोचने की स्वतन्त्रता होनी चाहिये।

11. किसी भिक्षु द्वारा किये गये एक भी व्रत (चार-विशेष व्रत) भंग के कारण वह पाराजिक का अपराधी बन जाता है। पाराजिक का दण्ड संघ से निष्कासन है।

4. भिक्षु और सांघिक नियम सम्बन्धी अपराध

1. किसी भिक्षु द्वारा लिये गये व्रतों को भंग करना 'धम्म' के विरुद्ध एक अपराध है।
2. इन अपराधों के अतिरिक्त कुछ अन्य अपराध थे, जिनके प्रति भी वह उत्तरदायी था, वे संघादिसेस कहलाते थे-सांघिक नियम सम्बन्धी अपराध।
3. विनय-पिटक के अनुसार ऐसे अपराधों की सूची में तेरह अपराध हैं।
4. संघादिसेसों का क्रम वे पाराजिक के बाद है।

5. भिक्षु और सयंम (प्रतिबन्ध)

1. इन अपराधों से साफ-साफ बचते हुए चलने के अतिरिक्त भिक्षु को कुछ प्रतिबन्धों का पालन करना चाहिये और वह दूसरे गृहस्थों के समान स्वतन्त्र नहीं हो सकता।
2. ऐसे प्रतिबन्धों का समूह 'निस्सगगीय-पाचित्तिय' कहलाते हैं। इसमें भिक्षु द्वारा पालन किये जाने वाले 26 प्रतिबन्ध समाहित हैं।
3. वे चीवरों, ऊनी बिछावनों, भिक्षा-पात्र और चिकित्सा-सम्बन्धी आवश्यकताओं की भेंट स्वीकारने से सम्बन्धित हैं।
4. वे स्वर्ण व रजत स्वीकार करने से भी सम्बन्धित हैं। वे एक भिक्षु के क्रय-विक्रय में संलग्न रहने तथा संघ को दी गयी सम्पत्ति को अपना बना लेने से भी संबंधित हैं।
5. इन प्रतिबन्धों को भंग करने का दण्ड 'निस्सगगीय' (नैसर्गिक) और 'पाचित्तिय' (पश्चाताप) होता है।
6. इन प्रतिबन्धों के अतिरिक्त कुछ दूसरे प्रतिबन्ध भी हैं, जिनका भिक्षु को पालन करना होता है। वे 'पाचित्त्यि' कहलाते हैं। उनकी संख्या बानवे है।

6. भिक्षु और शिष्टाचार के नियम

1. एक भिक्षु को अच्छा और शिष्टाचार का व्यवहार करना चाहिये। उसे अपने आचरण की रीति और व्यवहार में एक आदर्श मनुष्य होना चाहिये।
2. इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये तथागत ने शिष्टाचार सम्बंधी कुछ नियम बनाये थे।
3. ये शिष्टाचार के नियम 'सेखिय-धम्म' कहलाते थे। उनकी संख्या पिचहत्तर है।

7. भिक्षु और अपराध-परीक्षण

1. इन नियम मात्र 'विधान' बनाकर एक औपचारिकता ही नहीं थी। वे वास्तविक अर्थ में कानून ही थे, जिनमें निश्चित आरोप, परीक्षण और दण्ड समाहित रहते थे।
2. कोई भी भिक्षु एक विधिवत संघटित न्यायालय के परीक्षण के बिना दण्डित नहीं किया जा सकता था।
3. न्यायालय उन भिक्षुओं द्वारा संघटित किया जाता था, जो उस स्थल के निवासी होते थे जहाँ एक अपराध घटित हुआ होता था।
4. न्यायालय को संघटित करने के लिये आवश्यक भिक्खुओं की उचित संख्या के बिना कोई भी परीक्षण नहीं हो सकता।
5. कोई भी परीक्षण बिना किसी निश्चित आरोप के कानूनी नहीं हो सकता।
6. कोई भी परीक्षण कानूनी नहीं हो सकता। यदि वह आरोपी की उपस्थिति में नहीं घटित होता।
7. कोई भी परीक्षण कानूनी नहीं हो सकता, यदि आरोपी को अपने बचाव के लिये सम्पूर्ण अवसर न दिया गया हो।
8. एक अपराधी भिक्षु के विरुद्ध निम्नलिखित दण्ड दिये जा सकते थे :-

   (i) तर्जनीय कर्म (चेतावनी देकर छोड़ देना)

   (ii) नियस्य कर्म (विक्षिप्त-पागल घोषित करना)

   (iii) प्रजाजनीय कर्म (संघ से निष्कासन)

   (iv) उत्क्षेपनिय कर्म (बहिष्कार)

   (v) परिवास कर्म (विहार से निष्कासन)।

9. विहार से निष्कासन के उपरान्त अब्भान कर्म हो सकता था। अब्भान कर्म का अर्थ विघटन का निराकरण है। यह परिवास कर्म के उचित क्रियान्वयन से सन्तुष्ट होने और संघ द्वारा क्षमा-दान दिये जाने के उपरान्त हो सकता था।

8. भिक्षु और अपराध-स्वीकरण

1. भिक्षुओं के संगठन के सम्बन्ध में तथागत द्वारा स्थापित सबसे मौलिक और विशिष्ट अपराध-स्वीकृति संस्था थीं, जिसे उपोसथ कहते थे।
2. तथागत ने स्पष्ट अनुभव किया था कि जिन्हें उन्होंने अपराधों के रूप में प्रस्तुत किया था, उनके लागू करना सम्भव था। किन्तु कुछ दूसरे प्रतिबन्ध भी प्रस्तुत किये गए थे, जो अपराध नहीं थे। उन्होंने कहा कि चरित्र-निर्माण और चरित्र को बनाये रखने के लिए ऐसे प्रतिबंधों का होना आवश्यक है। यह भी देखना उतना ही आवश्यक है कि उनका पालन होता है या नहीं।
3. किन्तु तथागत उन्हें लागू करने के लिये कोई प्रभावशाली तरीका नहीं खोज सके थे। अतः उन्होंने खुले में अपराध-स्वीकरण को भिक्षुओं के अन्तर्मन को संगठित करने और उसे गलत या मिथ्या कदम उठाने के विरुद्ध कार्य करने वाला स्वयं की रक्षा में एक प्रहरी के रूप में साधन माना।
4. अपराध-स्वीकृति प्रतिबन्धों के उल्लंघन (जिन्हें पातिमोख कहा जाता था) तब सीमित था जिन्हें 'प्रातिमोक्ष' कहा गया था।
5. उपोसथ (अपराध-स्वीकरण) के लिये एक सीमा के भीतर भिक्षुओं की एक जगह एकत्रित का होना आवश्यक है। एक पक्ष (अर्धमास) में ऐसी तीन सभायें हो सकती थीं-चतुर्दशी, पंचदशी और अष्टमी के दिन। उस दिन भिक्षु लोग उपवास रख सकते हैं। इसलिये ही वह दिन उपोसय भी कहलाता है।
6. उपोसथ होने पर एक भिक्षु पातिमोख में समाहित "मैं समझता हूँ कि आप में से किसी ने भी इस नियम का उल्लंघन नहीं किया है, इसलिये आप चुप हैं।" वह यह बात तीन बार कहता है। अब अगले प्रतिबन्ध पर पहुँचता है।
7. भिक्षुनी संघ की भी इसी के समान उपोसथ बैठक करनी होती है।
8. अपराध-अस्वीकरण के उपरान्त 'आरोप' और परीक्षण हो सकता है।
9. यदि कोई अपराध न करे, तो कोई भी भिक्षु एक उल्लंघन की सूचना दे सकता है और यदि इसका कोई प्रत्यक्षदर्शी हो तो उसके आरोप का पुनः परीक्षण हो सकता है।

दूसरा - भाग

भगवान् बुद्ध की भिक्षु की संकल्पना

1. भगवान् बुद्ध की आदर्श भिक्षु की संकल्पना
2. भिक्षु और तपस्वी।
3. भिक्षु तथा ब्राह्मण।
4. भिक्षु और उपासक।

1. भगवान् बुद्ध की आदर्श भिक्षु की संकल्पना

1. भगवान् बुद्ध ने स्वयं ही भिक्षुओं को कहा था कि वे भिक्षुओं को किस रूप में देखना चाहते थे। यही है, जो उन्होंने कहा था–

2. ''जो बिना संयम और सत्य के एवं अपने आपको चित्तमलों से परिशुद्ध किये बिना, जो काषाय वस्त्र को धारण करता है, वह काषाय वस्त्र धारण करने के अयोग्य है।''

3. ''किन्तु जो संयम और सत्य में सम्पन्न हो, सभी शीलों में प्रतिष्ठित भली-भांति है एवं जिसने अपने आप को चित्तमलों (काषायों) से परिशुद्ध कर लिया है वह निस्सन्देह काषाय वस्त्र धारण करने के योग्य है।''

4. ''एक मनुष्य केवल इसलिये भिक्षु नहीं कहला सकता, क्योंकि वह दूसरों से भिक्षा मांग कर खाता है। जब वह सभी प्रकार से धम्म को स्वीकार करता है तभी भिक्षु कहला सकता है। वह नहीं जो केवल भिक्षाटन करता है।''

5. ''शीलवान् है, जो ब्रह्मचारी है, जो संसार में सावधानीपूर्वक गुजरता है, वह निस्सन्देह एक भिक्षु कहलाता है।''

6. ''न केवल अनुशासन और व्रतों से, न केवल पर्याप्त अध्ययन से, न केवल एक समाधि से प्रविष्ट करने से, न केवल एकान्तवास से उस विमुक्ति के सुख को अर्जित कर सकता है, जिसका आनन्द कोई भी पृथक-जन कभी नहीं उठा सकता।''

7. जो भिक्षु अपनी वाणी पर नियन्त्रण रखता है, जो बुद्धिमतापूर्वक और शान्तिपूर्वक बोलता है, जो धम्म का अनुसरण करता है, वह भिक्षु कभी भी सद्धम्म से पतित नहीं होता।

8. ''जो 'धम्म' में निवास करता है, जो 'धम्म' में आनन्दित होता है, जो 'धम्म' पर ध्यान लगाता है, जो धम्म का अनुस्मरण करता है, वह भिक्षु कभी भी सद्धम्म से पतित नहीं होता।''

9. ''जो कुछ उसने प्राप्त किया है, उसे उसको तुच्छ नहीं समझना चाहिये, और न ही कभी दूसरों से ईर्ष्या करनी चाहिये, एक भिक्षु जो दूसरों से ईर्ष्या करता है, वह चित्त की शान्ति कभी प्राप्त नहीं कर पाता।''

10. ''जो भिक्षु यद्यपि अल्प मात्रा से प्राप्त करता है, उसे तुच्छ नहीं समझता, जिस भिक्षु का जीवन पवित्र और प्रमादी नहीं है। देवता भी उसकी प्रशंसा करते हैं।''

11. ''वह जो कभी भी नाम और रूप से आसक्ति नहीं रखता है और जो किसी वस्तु या व्यक्ति के न रहने पर तनिक दुख नहीं करता। निस्सन्देह वही यथार्थ भिक्षु कहलाता है।''

12. जो भिक्षु करुणा सहित आचरण करता है, जो बुद्ध के सिद्धान्त में प्रसन्न है, वह निर्वाण-प्राकृतिक आस्रवों के क्षय से उत्पन्न होने वाले सुख तक पहुँचेगा।

13. ''हे भिक्षु, इस (जीवनरूपी) नाव को खाली कर दो! यदि खाली कर दी जायेगी, तो इसकी गति तेज हो जायेगी, राग और द्वेष के बंधन काट देने से तुम निर्वाण की ओर जाओगे।''

14. ''पाँच (बंधनों) को काट दो, पाँच का त्याग कर दो, पाँच से ऊपर उठ जाओ। एक भिक्षु जिसने पाँच बन्धनों से मुक्ति प्राप्त कर ली है, वह 'ओद्यतीर्ण' कहलाता है अर्थात् बाढ़ से सुरक्षित।''

15. हे भिक्षु! ध्यान लगाओ और सावधान रहो, ताकि तुम्हारा चित्त काम-सुखों में ही न घूमता रहे, लग सकता, जो सुख देते हैं।

16. ''बिना प्रज्ञा के कोई ध्यान नहीं, बिना ध्यान के कोई ज्ञान नहीं। वह जिसके पास ज्ञान और ध्यान है वहीं निर्वाण के समीप है।''

17. ''जो भिक्षु अपने एकान्त-वास में प्रवेश कर चुका है, और जिसका चित्त शान्त है, जब वह स्पष्टतया धम्म का साक्षात्कार करता है। उसे मनुष्येतर सुख का अनुभव होता है।''

18. ''एक बुद्धिमान भिक्षु के लिये इन्द्रिय-संयम, संतोष, धम्म के अधीन संयमित, अप्रमादी मित्रों की संगति, पवित्र जीवन, अप्रमादी होना ही श्रेष्ठ है।''

19. ''उसे भिक्षा पर जीवन व्यतीत करना चाहिये, जो अपने कर्त्तव्य-पालन में अप्रमाद नहीं करेगा, तभी सुख की पूर्णता में वह दुख का अंत करने में सफल होगा।''

20. ''हे भिक्षु! स्वयं अपने को जागरूक एवं उत्साहित कर, स्वयं अपने का परीक्षण कर, इस प्रकार जब तू स्व-सुरक्षित और एकाग्र होगा तो सुख से जिएगा।''

21. ''क्योंकि अपने आप ही अपना स्वामी है, अपने आप ही अपनी गति है, इसलिये अपने आप को उसी तरह नियंत्रण में रख, जिस प्रकार व्यापारी अच्छे घोड़े को नियंत्रण में रखता है।''

22. ''जो भिक्षु अप्रमाद में आनन्दित रहता है, जो प्रमाद को भय की दृष्टि से देखता है, वह अग्नि के समान अपने सभी छोटे या बड़े बंधनों को जलाता हुआ विचरता है।''

23. "एक भिक्षु, जो चिन्तन में आनन्दित रहता है, जो प्रमाद को भय की दृष्टि से देखता है, जो (अपनी आदर्श स्थिति से) पतित नहीं हो सकता है–वह निर्वाण के समीप ही है।"

24. गौतम (बुद्ध) के श्रावक सदैव जागरूक रहते हैं, और उनके विचार दिन और रात सदैव बुद्ध पर केन्द्रित रहते हैं।

25. गौतम (बुद्ध) के श्रावक सदैव जागरूक रहते हैं, और उनके विचार दिन और रात सदैव संघ पर केन्द्रित रहते हैं।

26. गौतम (बुद्ध) के श्रावक सदैव जागरूक रहते हैं, और उनके विचार दिन और रात सदैव धम्म पर केन्द्रित रहते हैं।

27. गौतम (बुद्ध) के श्रावक सदैव जागरूक रहते हैं, और उनके विचार दिन और रात सदैव उनके शरीर पर केन्द्रित रहते हैं।

28. गौतम (बुद्ध) के श्रावक सदैव जागरूक रहते हैं, और उनके विचार दिन और रात सदैव करुणा (अहिंसा) पर केन्द्रित रहते हैं।

29. गौतम (बुद्ध) के श्रावक सदैव जागरूक रहते हैं, और उनके विचार दिन और रात सदैव ध्यान (भावना) पर केन्द्रित रहते हैं।

30. एक भिक्षु बनने के लिये संसार को त्यागना कठिन है, संसार का भोग करना कठिन है, विहार भी दुष्कर है, घर भी कष्टकर है, प्रत्येक वस्तु को सामूहिक रूप से बाँटकर प्रयोग में लाने वाले समान लोगों के साथ निवास करना भी कष्टप्रद है, और प्रव्रजित (भिक्षुका) जीवन भी कष्टप्रद है।

31. जो मनुष्य श्रद्धायुक्त है, शील और यश से सम्पन्न है, वह जहाँ-जहाँ भी जाता है हर जगह आदर पाता है।

2. भिक्षु और तपस्वी

1. क्या भिक्षु तपस्वी होता है? उत्तर नकारात्मक में है।

2. यह स्वयं तथागत ने यह नकारात्मक उत्तर निग्रोध परिव्राजक के साथ बातचीत करते हुए दिया था।

3. एक बार तथागत राजगृह के समीप गृध्रकूट पर्वत पर ठहरे हुए थे। उसी समय रानी उदुम्बरिक के उद्यान में बहुत से परिव्राजकों के साथ निग्रोध परिव्राजक रह रहा था।

4. उस समय तथागत गृध्रकूट पर्वत से उतरते हुए सुमगधा नदी के तट पर मोरों

के चुगने के स्थान पर आये और वहाँ खुली हवा में चहल-कदमी करने लगे। तब निग्रोध ने उन्हें इस प्रकार टहलते देखा, और उन्हें देखकर उसने अपने अनुयायियों को सजग किया, और कहा, "शान्त हो जाओ! कोई ध्वनि मत करो। श्रमण गौतम सुमगधा नदी के तट पर हैं।" जब उसने ऐसा कहा, परिव्राजक शान्त हो गये।

5. तब तथागत निग्रोध परिव्राजक के समीप गये, और निग्रोध उनसे इस प्रकार बोले, हे भगवान! तथागत आयें। हे भगवान! तथागत आपका स्वागत है। चिरकाल के पश्चात् तथागत ने इधर दर्शन देने की कृपा की है। आप कृपया एक आसन ग्रहण करें। आप के लिये आसन सुसज्जित है।"

6. तथागत ने सुसज्जित आसन ग्रहण किया, और निग्रोध एक नीचा आसन लेकर, उनके बगल में बैठ गया।

7. तत्पश्चात् निग्रोध ने तथागत से कहा, "जैसा कि श्रमण गौतम हमारी सभा में पधारे हैं, हम उनसे यह प्रश्न पूछना चाहेंगे, 'भगवन्! तथागत का यह धम्म क्या है? जिसमें वे अपने शिष्यों को प्रशिक्षित करते हैं, और जिसे वे शिष्य, तथागत द्वारा इस प्रकार प्रशिक्षित होकर संतोष का अनुभव करते हैं, अपना चरम आश्रय तथा सदाचरण का मुख्य सिद्धान्त स्वीकार करते हैं?"

8. "निग्रोध, दूसरे मत वाले के लिये, दूसरी धारणा वाले के लिये, दूसरे सम्प्रदाय वाले के लिये, बिना अभ्यास और बिना शिक्षण के यह समझना कठिन है कि जिसमें मैं अपने शिष्यों को प्रशिक्षित करता हूँ और जिसे वे, इस प्रकार होकर संतोष का अनुभव करते हैं, अपना चरम आश्रय तथा सदाचरण का मुख्य सिद्धान्त स्वीकार करते हैं।"

9. "किन्तु हे निग्रोध! तू मुझसे एक प्रश्न अपने ही सिद्धान्त के विषय में, इस जीवन की कठोर नियमनिष्ठता के विषय में पूछो कि इन स्व-सन्तापनों में किस बात की पूर्ति समाहित है, और किस बात की पूर्ति समाहित नहीं?"

10. तब निग्रोध तथागत से इस प्रकार बोले, "हम स्व-सन्तापन की तपस्याओं का व्रत लेते हैं; हम उन्हें भगवन्! मानते है, हम उनसे चिपके रहते हैं। इनमें किस बात की पूर्ति समाहित है और किस बात की पूर्ति समाहित नहीं?"

11. "निग्रोध! मान लो कि एक तपस्वी नग्न रहता है, कुछ असंयत आदतों वाला है, अपने हाथ चाटता है, यदि कोई कहे कि भिक्षार्थ पधारिए, तो उसका आदर नहीं करता है, और न ही रुकता है, विशेष रूप से लाया गया कुछ भी स्वीकार नहीं करता है, और न ही विशेष रूप से तैयार किया गया कुछ लेता

है, और न किसी निमन्त्रण को स्वीकार करता है, वह पकाने के बर्तन के मुँह से निकाली गई कोई भी वस्तु स्वीकार नहीं करता, और न ही द्वार के भीतर रखी, और न ही एक ओखली के भीतर रखी और न ही लकड़ियों के भीतर रखी, और न ही चक्की के भीतर रखी, और न ही एक साथ भोजन करते दो लोगों से कोई वस्तु लेता है, और न ही एक गर्भवती स्त्री से, और न ही एक दूध पिलाने वाली माँ से, और न ही किसी पुरुष के साथ सम्भोग कर रही एक स्त्री से, और न ही सूखे (अकाल) में एकत्रित भोजन में से, और न ही वहाँ से जहाँ एक कुत्ता है, और न ही वहाँ से जहाँ मक्खियाँ भिनभिना रही हैं, और न ही वह मछली या माँस स्वीकार करेगा, और न ही तेज नशीले पेय पदार्थ पियेगा, न तो मद्य, और न ही चावल की माँड। वह या तो एक घर से भोजन माँगने वाला एक कौर खाने वाला है, या एक दो घर से भोजन माँगने वाला, एक दो कौर खाने वाला मनुष्य है, या एक सात घर से भोजन माँगने वाला, एक दो कौर खाने वाला मनुष्य है। वह स्वयं का एक भिक्षा, दो भिक्षा या सात भिक्षा से भरण-पोषण करता है। वह दिन में केवल एक बार भोजन ग्रहण करता है, या दो दिन में केवल एक बार या प्रत्येक सात दिन में केवल एक बार। अतः वह नियमानुसार भोजन ग्रहण करने की आदत का शिकार बनकर रहता है, नियमित अन्तरालों पर, यहाँ तक अर्धमास में एक बार तक। यह या तो गमलों में उगाये गये पौधों पर गुजारा करता है, या जंगली चावल पर, या निवार-बीजों पर, या चमड़े की छीलन पर, या सेवाल पर, या चावल की भूसी के आटे पर, या चावल के कचरे पर, या आटे पर या खाली पर, या घासों पर या गोबर पर, या जंगल के या हवा के झोकों से गिरे फल या कन्द-मूलों पर। वह मोटा ऊन का कपड़ा पहनता है, मोटा मिश्रित कपड़ा, कफन का फेंका हुआ कपड़ा, फेंके हुए चीथड़े, या वल्कल वस्त्र पहनता है, या पुनः वह मृग-छाल पहनता है या मृग-छाल की बनी पट्टियों की जाली, या कुश-तृण या छाल-वस्त्र, या एक मानव-बालों का कम्बल, या एक घोड़े के बालों का कम्बल, या एक उल्लू के पंखों का वस्त्र पहनता है। वह बाल व दाढ़ी लुंजन करने वाला है, दोनों का लुञ्जन करने वाला है, दोनों का लुञ्जन करने की आदत का शिकार है, एक सदैव खड़ा रहने वाला है, एक एड़ियों के बल चलने वाला है, इस प्रकार उकड़ूँ बैठकर आगे सरकने की आदत का शिकार है, कांटों की शैय्या पर सोने वाला मनुष्य है, अपनी शैय्या में लोहे की कीलें या काँटे गाड़कर उन पर सोता है वह लकड़ी के तख्ते का प्रयोग करता है, जमीन पर सोता है, केवल एक करवट सोता है; एक धूल-मिट्टी लपेटने वाला है और एक खुली हवा में रहने वाला मनुष्य है। एक जहाँ इच्छा को

वहीं बैठने वाला, एक मैला-खाने वाला, ऐसी वस्तुओं को खाने की आदत का शिकार है, वह एक नशीले पेय पदार्थ न पीने वाला है, केवल (ठण्डा पानी) पीने की आदत का शिकार है; और यहाँ तक कि दिन में तीन बार स्नान करने वाला मनुष्य है।''

12. इतना कहने के पश्चात्, तथागत ने निग्रोध से पूछा, ''निग्रोध! तुम क्या सोचते हो, यदि ये सब बातें ऐसी ही हों, क्या स्व-क्लेश की तपस्याएँ पूर्ण हुईं या ऐसा नहीं हैं?'' ''वास्तव में तथागत! यदि ये सब बातें ऐसी ही हों, स्व-क्लेश कारक की तपस्याओं की पूर्ति हो गयी है।''

13. ''हे निग्रोध! अब मैं निश्चयपूर्वक कहता हूँ कि इस प्रकार की गयी स्व-क्लेश की तपस्याओं की पूर्ति में विभिन्न प्रकार के द्वेष समाहित है।''

14. ''तथागत! आप किस प्रकार से निश्चयपूर्वक कहते हैं कि द्वोष समाहित हैं?''

15. ''हे निग्रोध! जब एक मामले में एक तपस्वी तपस्या करता है कि, वह उस मार्ग के द्वारा उसे झूठा संतोष हो जाता है, कि उसका उद्देश्य पूर्ण हो गया है। निग्रोध! यह तपस्वी में एक दोष बन जाता है।''

16. ''हे निग्रोध! जब एक तपस्वी तपस्या है, तो उससे वह समझता है। वह ऊंचा है और दूसरों को वह नीचा समझता है। यह भी, तपस्वी में एक दोष बन जाता है।''

17. ''हे निग्रोध! जब एक तपस्वी तपस्या करता है, तो उसे यह नशा हो जाता है और वह लापरवाह व मतवाला हो जाता है और असावधान भी हो जाता है यह भी, तपस्वी में एक दोष बन जाता है।''

18. ''हे निग्रोध! जब एक तपस्वी तपस्या करता है, तो उसके लिये भेंट, आदर-सत्कार लाभ और यश उत्पन्न होता है। उसके द्वारा उसे झूठी सन्तुष्टी हो जाती है और उसका उद्देश्य पूर्ण हो जाता है, यह भी, तपस्वी में एक दोष बन जाता है।''

19. ''हे निग्रोध! भेंट, आदर-सत्कार और यश प्राप्त कर लेने पर तपस्वी अपने को ऊंचा व महान और दूसरों को तुच्छ समझता है। यह भी तपस्वी में एक दोष बन जाता है।''

20. ''हे निग्रोध! भेंट, आदर-सत्कार और यश प्राप्त कर लेने पर, वह उससे मतवाला और मोहित बन जाता है और असावधान हो जाता है। यह भी तपस्वी में एक दोष बन जाता है।''

21. ''हे निग्रोध! जब तक तपस्वी तपस्या करने लगता है, तो वह भोजन में भेद करना शुरू कर देता है और वह कहता है यह मेरे लिये अनुकूल है, यह मेरे लिये प्रतिकूल है, यह मेरे लिये उपयुक्त नहीं है। जिन भोजनों को प्रतिकूल समझता है, वह उन्हें जानबूझकर त्यागता है। जो उसके अनुकूल होते हैं, उनके लिए वह लोभी और मुग्ध हो जाता है, और उनमें खतरा न देखकर, उन्हें असुरक्षित न समझ कर उनसे चिपका रहता है और इस प्रकार उनका आनन्द लेता है। यह भी तपस्वी में एक दोष बन जाता है।''

22. ''हे निग्रोध! एक भेंट, आदर-सत्कार और यश के प्रति अपनी लालसा के कारण, वह सोचता है: 'राजा मुझे आदर-सत्कार देंगे और इसलिये उनके मंत्री, अधिकारी भी देंगे, इसलिए ही, कुलीन, ब्राह्मण, गृहस्थ और संप्रदायों के संस्थापक भी देंगे।' यह भी तपस्वी में एक दोष बन जाता है।''

23. ''हे निग्रोध! एक तपस्वी किसी दूसरे तपस्वी या ब्राह्मण पर बड़बड़ाने लगता है, यह कहते हुए, 'वह मनुष्य सभी प्रकार की वस्तुओं पर गुजारा करता है, कन्द-मूल, या शाखाओं पर लगने वाले फल, या बेर या गाँठें, या बीज उस सभी को जबड़ों के वर्ष से पीस डालता है-और तब भी लोग उसे धर्मात्मा कहते हैं। यह भी तपस्वी में एक दोष हो जाता है।''

24. ''हे निग्रोध! एक तपस्वी देखता है कि किसी दूसरे श्रमण या ब्राह्मण का बहुत आदर-सत्कार और लाभ प्राप्त हो रहा है, पूजा जा रहा है, सम्मानित हो रहा है। और नागरिकों द्वारा भेंट दिये जाते देखता है। यह देखकर वह सोचता है: 'नागरिक इस मनुष्य को इतना आदर-सत्कार देते हैं, इसलिए वह विलासिता का जीवन व्यतीत करता है, वे उसे पूजते और सम्मान देते हैं, और उसे भेंट प्रस्तुत करते हैं, जबकि मुझे, जो मैं एक तपस्वी के रूप में, वास्तव में एक कठोर तपस्वी का जीवन जीता हूँ, वे कोई आदर-सत्कार नहीं देते हैं, और न पूजते हैं, न सम्मान करते हैं, न भेंट देते हैं'। और इसलिये वह ईर्ष्या हृदय में रखता है और नागरिकों के प्रति दुर्भाव रखता है। यह भी तपस्वी में एक दोष हो जाता है।''

25. ''हे निग्रोध! तपस्वी रहस्यमय होने का अभिनय करता है। जब पूछा जाता है कि 'क्या आप इसको अनुमोदित करते हैं?' वह अनुमोदित न करते हुए कहता है कि 'मैं करता हूँ' या अनुमोदित करते हुए, कहता है 'मैं नहीं करता हूँ'। इस प्रकार वह जानबूझ कर झूठ बोलता है। यह भी तपस्या में एक दोष हो जाता है।''

26. ''हे निग्रोध! तपस्वी क्रोधित हो सकता है और द्वेष भी उत्पन्न कर सकता है।

यह भी तपस्वी में एक दोष हो जाता है।''

27. ''हे निग्रोध! तपस्वी ढोंगी तथा धूर्त हो सकता है, साथ ही साथ ईष्यालु तथा बड़बड़ाने वाला हो सकता है। वह चालाक व चालबाज बन जाता है, कठोर-हृदय व अभिमानी बन जाता है, वह बुरी इच्छायें मन में रखता है और उनका दास बन जाता है, वह मिथ्या धारणायें मन में रखता है, अनुभवातीत मत से ग्रस्त हो जाता है, अपने अनुभवों की गलत व्याख्या करता है, वह कंजूस तथा संन्यास के विरुद्ध है। यह भी तपस्या में एक दोष हो जाता है।''

28. ''इसके विषय में तुम क्या सोचते हो, निग्रोध? क्या ये बातें स्व-क्लेष कर की तपस्याओं में दोष हैं, या वे नहीं हैं?''

29. ''भगवान! वास्तव में ये बातें स्व-क्लेष की तपस्याओं में दोष हैं। यह सम्भव है, भगवान्! कि एक तपस्वी यहाँ तक कि इन सभी दोषों से ग्रस्त हो सकता है, इनमें से किसी एक या दूसरे से अधिक ग्रसित हो सकता है।''

30. भिक्षुओं को इन दोषों से ग्रस्त नहीं होना चाहिये।

3. भिक्षु तथा ब्राह्मण

1. क्या भिक्षु वैसा ही है जैसा कि ब्राह्मण? इस प्रश्न का उत्तर भी नकारात्मक ही है।

2. इस विषय की चर्चा किसी एक स्थल पर नहीं मिलेगी। यह बुद्ध-वचनों की सभी जगह बिखरी पड़ी हैं। किन्तु दोनों के अन्तर को सरलता से सार प्रस्तुत किया जा सकता है।

3. एक ब्राह्मण एक पुरोहित होता है। उसका मुख्य कार्य जन्म, विवाह व मृत्यु से सम्बन्धित कुछ विशेष 'संस्कारों' को कराना है।

4. यह संस्कार इसलिये आवश्यक बन जाते हैं, क्योंकि आत्मा को मूलतः पाप में लिप्त मानने का सिद्धान्त है, जिसे निर्मल कर निष्पाप बनाने के लिये संस्कारों की आवश्यकता होती है, और क्योंकि आत्मा व परमात्मा में विश्वास किया जाता है।

5. इन संस्कारों के करने के लिये एक पुरोहित आवश्यक होता है। एक भिक्षु मूलतः पाप ईश्वर और आत्मा में विश्वास नहीं करता। इसलिए उसे कोई संस्कार करने-कराने की आवश्यकता नहीं होती। अतः वह एक पुरोहित नहीं होता है।

6. एक ब्राह्मण जन्म लेता है। एक भिक्षु बनता है।
7. एक ब्राह्मण की एक जाति है। एक भिक्षु की कोई जाति नहीं होती है।
8. जो एक बार ब्राह्मण पैदा हो गया, वह सदैव के लिये ब्राह्मण हो गया। कोई भी अपराध कोई भी पाप ब्राह्मण को अपदस्थ नहीं कर सकता।
9. किन्तु जो एक बार भिक्षु बन गया वह सदैव के लिये भिक्षु नहीं रहता। एक भिक्षु बनता है। यदि अपने आचरण द्वारा वह स्वयं को एक भिक्षु बने रहने के अयोग्य बना देता है, तो उसे अपदस्थ किया जा सकता है।
10. एक ब्राह्मण बनने के लिए कोई मानसिक या नैतिक प्रशिक्षण आवश्यक नहीं होता है। उससे जिस बात की आशा की जाती है (केवल आशा) वह है अपने धार्मिक शास्त्र को जानने की।
11. भिक्षु का मामला इसके सदैव प्रतिकूल है, मानसिक और नैतिक प्रशिक्षण उसका जीवन-प्राण है।
12. एक ब्राह्मण स्वयं के लिये असीमित सम्पत्ति अर्जित करने के लिये स्वतन्त्र है। दूसरी ओर एक भिक्षु नहीं कर सकता।
13. यह कोई छोटा अन्तर नहीं है। सम्पत्ति और कार्य दोनों के विषय में मनुष्य की मानसिक ओर नैतिक स्वतंत्रता पर कठोरतम प्रतिबन्ध है। यह दोनों प्रवृत्तियों के मध्य एक संघर्ष उत्पन्न कर देती है। इसलिये ब्राह्मण ही सदैव परिवर्तन का विरोधी रहा है। उसके लिये एक परिवर्तन का अर्थ शक्ति की हानि और धन की हानि है।
14. सम्पत्तिविहीन एक भिक्षु मानसिक और नैतिक रूप से स्वतन्त्र है। उसके मामले में ऐसे कोई व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं हैं, जो ईमानदारी और सत्यनिष्ठा के मार्ग में रुकावट बन सके।
15. वे ब्राह्मण हैं, फिर भी प्रत्येक ब्राह्मण स्वयं में एक व्यक्ति होता है। ऐसा कोई धार्मिक संगठन नहीं है, जिसके वह अधीन है। एक ब्राह्मण स्वयं में ही एक कानून है। वे आपस में सामूहिक भौतिक स्वार्थ से बंधे हैं।
16. दूसरी ओर एक भिक्षु सदैव संघ का एक सदस्य रहता है। यह कल्पनातीत है कि एक भिक्षु संघ का एक सदस्य हुए बिना नहीं हो सकता है। एक भिक्षु स्वयं में ही एक कानून नहीं है। वह संघ के अधीन है। संघ एक आध्यात्मिक संगठन है।

4. भिक्षु और उपासक

1. धम्म में भिक्षु के 'धम्म' और उपासक या गृहस्थ के 'धम्म' के मध्य एक सुस्पष्ट अन्तर है।
2. भिक्षु ब्रह्मचर्य से बँधा हैं। उपासक के साथ ऐसा नहीं है। वह विवाह कर सकता है।
3. भिक्षु का कोई भी घर नहीं हो सकता है। उसका कोई परिवार नहीं हो सकता। उपासक के साथ ऐसा नहीं है। उपासक का एक घर हो सकता है और एक परिवार हो सकता है।
4. भिक्षु के पास कोई सम्पत्ति नहीं हो सकती है, किन्तु एक उपासक सम्पत्ति रख सकता है।
5. भिक्षु के लिये जीव-हिंसा वर्जित है, किन्तु उपासक के लिये ऐसा नहीं है। वह कर सकता है।
6. पंचशील दोनों के लिये सर्वसामान्य है, किन्तु भिक्षु के लिये वे व्रत है। वह दण्ड का भागी हुए बिना उनको भंग नहीं कर सकता है। उपासक के लिये वे अनुकरणीय शिक्षा-पद हैं।
7. भिक्षु के लिये पंचशील का पालन अनिवार्य है, किन्तु उपासक द्वारा उनका पालन स्वैच्छिक है।
8. तथागत ने ऐसा एक अन्तर क्यों बनाया है? इसके लिये कोई अच्छा कारण अवश्य होगा। क्योंकि तथागत कोई भी ऐसी बात नहीं करते, जब तक कि इसके लिये कोई अच्छा कारण नहीं होता।
9. इस अन्तर का 'कारण' तथागत द्वारा कहीं भी स्पष्ट नहीं कहा गया है। यह अनुमान लगाने के लिये छोड़ दिया गया है, फिर भी इस अन्तर का कारण जानना आवश्यक है।
10. इसमें कोई सन्देह नहीं है कि तथागत अपने 'धम्म' के द्वारा पृथ्वी पर सदाचरण के एक राज्य की नींव डालना चाहते हैं। इसलिये ही उन्होंने बिना किसी भेद-भाव के सभी को अपने धम्म का उपदेश दिया, भिक्षुओं को भी साथ ही साथ गृहस्थों को भी।
11. किन्तु तथागत यह भी जानते थे कि केवल सामान्य मनुष्यों को 'धम्म' का उपदेश देने भर से ही उस आदर्श समाज का निर्माण नहीं हो पायेगा, जो सदाचरण पर आधारित हो।

12. एक आदर्श के लिए अवश्य ही 'व्यावहारिक' चाहिये और इतना ही नहीं यह लोगों को 'व्यावहारिक' प्रतीत भी होना चाहिये। केवल तब ही लोग उसके लिये प्रयास करेंगे और उसे साकार करने की कोशिश करेंगे।

13. इस तरह का प्रयास तभी आरम्भ हो सकता है, जब लोगों के दिमाग के सामने उस आदर्श पर आधारित कार्यरत एक समाज का यथार्थ रूप हो, जिससे कि सामान्य मनुष्य को यह समझ आ सके कि आदर्श अव्यवहारिक नहीं थे, बल्कि इसके विपरीत साकार करने योग्य थे।

14. संघ उसी का एक साकार सामाजिक नमूना है, जो तथागत द्वारा उपदेशित धम्म को साकार कर बनाया गया था।

15. यही कारण है कि तथागत ने एक भिक्षु के धर्म और धर्म में उपासक के यह विभाजक रेखा खींची थी। भिक्षु बुद्ध के आदर्श समाज का दीप-वाहक था और भिक्षु को यथा सामर्थ्य उसका अनुसरण करना था।

16. एक अन्य प्रश्न और भी है, जिसे एक उत्तर की आवश्यकता है। भिक्षु के क्या कार्य होते हैं?

17. क्या भिक्षु को स्वयं की साधना के लिए ही या उसे लोगों की सेवा करनी और उन्हें मार्ग-निर्देशित करना चाहिये।

18. उसे अवश्य ही दोनों कार्यों को पूरा करना चाहिये।

19. व्यक्तिगत साधना के बिना वह मार्गदर्शन के योग्य नहीं हो सकता। इसलिये उसे स्वयं को एक सम्पूर्ण, सर्वश्रेष्ठ, सदाचरण वाला मनुष्य और एक प्रबुद्ध मनुष्य अवश्य बनना चाहिए। इसलिए उसे व्यक्तिगत साधना का अभ्यास करना चाहिये।

20. एक भिक्षु अपने घर का परित्याग करता है, किन्तु वह संसार का त्याग नहीं करता है। वह गृह-त्याग करता है, जिससे कि उसके पास स्वतंत्रता और अवसर हो उनकी सेवा करने के लिये जो अपने घरों से बुरी तरह आसक्त है, और उनका जीवन दुख, विपत्ति और अमंगल से भरा हुआ है और जो स्वयं अपनी सहायता नहीं कर सकते।

21. करुणा, जो कि धम्म का सार है, की आवश्यकता होती है कि प्रत्येक व्यक्ति प्रेम और सेवा करे और भिक्षु भी इससे मुक्त नहीं है।

22. व्यक्तिगत-साधना में चाहे जितना भी परिपूर्ण हो, एक भिक्षु जो मानव-मात्र की व्यथा से उदासीन है, सरासर एक भिक्षु नहीं है। वह कुछ भी और हो सकता है, किन्तु वह एक भिक्षु नहीं है।

तीसरा भाग

भिक्षु के कर्त्तव्य

1. धम्म-दीक्षा देना भिक्षु का कर्त्तव्य
2. चमत्कारों (प्रतिहार्यों) द्वारा धम-दीक्षा नहीं
3. जोर-जबर्दस्ती से धर्मान्तरण नहीं
4. भिक्षु को धम्म-प्रचार के लिए संघर्ष करना चाहिए

1. धम्म-दीक्षा देना भिक्षु का कर्त्तव्य

1. यश और उसके चार मित्रों का धम्म में धर्मान्तरित होने का समाचार दूर-दूर तक फैल गया जिसका परिणाम यह हुआ कि उच्चतम परिवारों से संबंधित कुल-पुत्र और वे जो उनके निचले दर्जे के परिवारों के हैं, तथागत के पास शिक्षा और उनके धम्म की शरण ग्रहण करने के लिये आने लगे।

2. धम्म की शिक्षा लेने के लिये तथागत के पास लोग आने लगे थे। भगवान् बुद्ध जानते थे कि उनके लिये यह कठिन था कि वे प्रत्येक को व्यक्तिगत रूप से सुशिक्षित कर सकें। उन्होंने संघ की आवश्यकता का अनुभव किया था। भिक्षुओं के रूप में संगठन बनाने की संख्या दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही थी, एक धार्मिक संगठन के रूप बनता जा रहा था, जिसे उन्होंने परिव्राजकों का संघ कहा था।

3. इसलिये उन्होंने परिव्राजकों को संघ का सदस्य बनाया और अनुशासन के नियम निर्धारित किये, जो विनय कहलाये थे और उन्हें संघ के सदस्यों के लिए अनिवार्य बना दिया था।

4. तथागत ने आगे चलकर एक भिक्षु बनने से पहले एक शिष्य के लिए दो अवस्थाओं से गुजरना आवश्यक कर दिया। पहले एक शिष्य एक परिव्राजक बनता था और एक भिक्षु के साथ कुछ वर्षों तक उसके अधीन प्रशिक्षण पाते हुए एक परिव्राजक बना रहता था। उसके प्रशिक्षण काल की समाप्ति के पश्चात् उसे उपसम्पदा ग्रहण करने की आज्ञा मिल जाती थी। यदि उसने परीक्षकों को संतुष्ट कर दिया कि वह इसके लिये योग्य है।

5. धम्म की प्रारम्भिक अवस्था में ऐसी व्यवस्था को करने के लिये कोई समय नहीं था। इसलिये भगवान् ने, उन्हें 'भिक्षु' बना दिया और उन्हें धम्म-दूत के रूप में धम्म का प्रचार करने के लिये बाहर भेज दिया।

6. और उन्हें बाहर भेजने से पहले तथागत ने भिक्षुओं से कहा "हे भिक्षुओ! मैं मानवीय और दिव्य, सभी बन्धनों से मुक्त हूँ, हे भिक्षुओ! तुम भी मानवीय और दिव्य, सभी बन्धनों से मुक्त हो। अब तुम जाओ, और बहुत जनों के हित के लिये, बहुत जनों के सुख के लिये, लोक पर अनुकम्पा करने के लिये; देवताओं और मनुष्यों के हित के लिये, सुख के लिये और कल्याण के लिये चारिका करो।"

7. "तुममें से कोई दो एक दिशा में मत जाओ। भिक्षुओ! उस सिद्धांत का उपदेश दो, जो आदि में कल्याणकारक है, मध्य में कल्याणकारक है, अन्त में कल्याण ाकारक है, अर्थ और व्यंजन से युक्त दोनों में ही, पवित्रता के उत्कृष्ट, पूर्ण और पवित्र जीवन की उद्घोषणा करो।"

8. "प्रत्येक जनपद में जाओ, उन्हें धम्म में दीक्षित, दीक्षित नहीं करो जो अभी तक धर्मान्तरित हुए हों; दु:ख से दग्ध पड़े इस समस्त संसार में, प्रत्येक स्थल पर उसको शिक्षा दो, जिसके पास सम्यक ज्ञान नहीं है।"

9. "वहां जाओ जहां महान् ऋषि, राज ऋषि और ब्रह्म ऋषि भी रहते हैं, ये सब वहां निवास करते हैं, मनुष्यों को वे अपने मतों के अनुसार प्रभावित करते हैं।"

10. "इसलिये जाओ, अकेले-अकेले यात्रा करते हुए, अनुकम्पा से परिपूर्ण हो जाओ! लोगों को बंधन मुक्त करो और धम्म में दीक्षित करो।"

11. तथागत ने भिक्षुओ यह भी कहा:

12. "धम्म का दान सब दानों से बढ़कर है, धम्म का माधुर्य सब माधुर्यों से बढ़कर है;, धम्म का आनंद सब आनन्दों से बढ़कर है।"

13. "खेत खर-पतवार से नष्ट हो जाते हैं, मनुष्य मात्र राग से नष्ट हो जाते हैं, इसलिये धम्म का दान महान फल लाता है।"

14. "खेत खर-पतवार से नष्ट हो जाते हैं, मनुष्य मात्र द्वेष से नष्ट हो जाते हैं, इसलिये धम्म का दान महान फल लाता है।"

15. "खेत खर-पतवार से नष्ट हो जाते हैं, मनुष्य-मात्र मान से नष्ट हो जाते हैं, इसलिये धम्म का दान महान फल लाता है।"

16. "खेत खर-पतवार से नष्ट हो जाते हैं, मनुष्य मात्र लोभ से नष्ट हो जाते हैं, इसलिये धम्म का दान महान फल देता है।"

17. तब साठ भिक्षु धम्म के प्रचार का उद्देश्य पूर्ण करने का आदेश पाकर चारों दिशाओं में फैल गये।

18. तथागत ने उन्हें धम्म-दीक्षा के विषय में और भी निर्देश दिये।

2. चमत्कारों (प्रतिहार्यों) द्वारा धर्म-दीक्षा नहीं

1. तथागत एक बार मल्लों के नगर अनुपिय में ठहरे हुए थे।

2. उस समय पूर्वाह्न में तथागत ने, चीवर धारण कर, चीवर पहन और अपना पात्र लेकर भिक्षाटन के लिये नगर में प्रवेश किया।

3. तथागत ने सोचा "भिक्षाटन के लिये अनुपिय में जाना अभी मेरे लिए काफी शीघ्र है। मैं उस विहार–भूमि में थोड़े समय के लिए हूँ, जहाँ भग्गव परिव्राजक रहते हैं, और उनसे चलकर भेंट करूं।"

4. अत: तथागत विहार–भूमि में उस स्थल पर गये, जहां भग्गव परिव्राजक थे।

5. तब भग्गव तथागत से इस प्रकार बोले, "भगवान्, तथागत पधारें! तथागत आपका स्वागत है। चिरकाल के उपरांत तथागत ने हमारी ओर आने का अनुकम्पा की है। आप कृपा करके आसन ग्रहण करें, आपके लिये आसन सुसज्जित है।"

6. इस पर तथागत ने आसन ग्रहण किया और भग्गव एक नीचा आसन लेकर उनकी बगल में बैठ गये। इस प्रकार बैठे हुए भग्गव परिव्राजक ने तथागत से इस प्रकार कहा :

7. "कुछ दिन पहले, भगवान्! सुनक्खत्त लिच्छवी मेरे पास आया था और इस प्रकार बोला, 'मैंने अब तथागत शिष्यत्व त्याग दिया है, भग्गव! मैं अब शिक्षक के रूप में उनके अधीन नहीं हूँ। क्या यह तथ्य वास्तव में ऐसा ही है?"

8. "यह ठीक ऐसा ही है, भग्गव! जैसे सुनक्खत्त लिच्छवी ने कहा।"

9. "कुछ दिन पहले, भग्गव, काफी दिनों पहले, सुनक्खत्त लिच्छवी मेरे पास आया था और इस प्रकार बोला, 'मैं अब तथागत का शिष्यत्व त्याग करता हूँ, अब से मैं एक शिष्य के रूप में तथागत के अधीन नहीं रहूँगा।' जब उसने मुझसे यह कहा, तो मैंने उससे कहा, 'किन्तु, अब सुनक्खत्त क्या मैंने कभी तुमसे यह कहा था– 'आओ सुनक्खत्त! मेरे अधीन एक शिष्य के रूप में रहो?'''

10. "नहीं, तथागत आपने नहीं कहा, सुनक्खत्त ने उत्तर दिया।"

11. "या तूने कभी मुझसे कहा था 'कि मैं तथागत को अपना गुरु स्वीकार करता हूं।"

12. "नहीं, तथागत! मैंने ऐसा नहीं कहा, सुनक्खत्त ने कहा।"

13. "किन्तु यदि मैंने ऐसा नहीं कहा और तुमने भी वैसा नहीं कहा तो तुम क्या हो और मैं क्या हूँ कि तुम मुझे त्यागने की बात करते हो?"

14. "यही सही, किन्तु तथागत आप मुझे सामान्य मनुष्यों की शक्ति से परे कोई चमत्कार (प्रातिहार्य) नहीं दिखाते हैं।"

15. "क्यों सुनक्खत्त! क्या मैंने तुमसे कभी कहा था, 'आओ मुझे अपने गुरु के रूप

में स्वीकार करो, सुनक्खत्त! मैं सामान्य मनुष्यों की शक्ति से परे कोई प्रतिहार्य तुम्हें दिखाऊंगा?''

16. ''आपने नहीं कहा, भगवान्।''

17. ''या तुमने कभी मुझसे कहा था, कि मैं तथागत को अपने गुरु के रूप में स्वीकार करने को तैयार हूँ, क्योंकि वे मुझे सामान्य मनुष्यों की शक्ति से परे कोई प्रातिहार्य दिखायेंगे?''

18. ''मैंने ऐसा नहीं कहा, भगवान्।'

19. ''किन्तु यदि मैंने ऐसा नही कहा और तुमने भी वैसा नहीं कहा, तो तुम क्या हो और मैं क्या हूँ, मूर्ख कि तुम मुझे त्यागने की बात करते हो? तुम क्या सोचते हो, सुनक्खत्त?''

20. ''चाहे सामान्य मनुष्यों की शक्ति से परे प्रातिहार्य दिखाये जायें, या भले ही वे न दिखाये जायें, यह वह उद्‌देश्य नहीं है, जिसके लिये मैं धम्म का उपदेश देता हूँ, बल्कि इसलिये कि यह इसका अनुसरण करने वाले को दुःख के सम्पूर्ण नाश की ओर ले जाता है?''

21. ''भले ही भगवान्! वे दिखाये जायें या नहीं, निश्चय ही यही वह उद्देश्य है जिसके लिये तथागत द्वारा धम्म का उपदेश दिया गया है।''

22. ''किन्तु भग्गव! सुनक्खत्त मुझसे कह रहा, 'तथागत मेरे समक्ष सृष्टि का आरम्भ प्रकट नहीं करते है।''

23. ''क्यों सुनक्खत्त! क्या मैंने कभी तुमसे कहा था, 'आओ सुनक्खत्त! मेरे शिष्य बनो और मैं तुम्हारे सामने सृष्टि का आरम्भ प्रकट करूंगा?'''

24. ''भगवान्! आपने नहीं कहा।''

25. ''या कभी तुमने मुझसे कहा था, 'मैं तथागत का शिष्य बनूंगा, क्योंकि तथागत मेरे समक्ष सृष्टि का आरम्भ प्रकट करेंगे'?''

26. ''भगवान्! मैंने नहीं कहा।''

27. ''किन्तु यदि मैंने ऐसा नहीं कहा, और तुमने भी वैसा नहीं कहा, तो तुम क्या हो और मैं क्या हूँ, मूर्ख मनुष्य कि तुम उस आधार पर मुझे त्यागने की बात करते हो? तुम क्या सोचते हो, सुनक्खत्त? भले ही सृष्टि का आरम्भ प्रकट किया जाये, या भले ही वह न किया जाये, क्या यह वह उद्देश्य है, जिसके लिये मैं धम्म का उपदेश देता हूँ, नहीं, बल्कि इसलिये कि यह इसका अनुसरण करने वाले को दुख के सम्पूर्ण नाश की ओर ले जाता है?''

28. ''भले ही भगवान्! वे प्रकट किये जायें या नहीं, निश्चय ही यही वह उद्देश्य

है, जिसके लिये तथागत द्वारा धम्म का उपदेश दिया गया है।''

29. ''तब, सुनक्खत्त! इससे उस उद्देश्य पर कोई अन्तर नहीं पड़ता कि भले ही सृष्टि का प्रारम्भ प्रकट किया गया है, या भले ही यह नहीं प्रकट किया गया, यह तुम्हारे किस प्रयोजन का है कि सृष्टि के प्रारम्भ को प्रकट किया जाये?''

30. ''सुनक्खत्त! विभिन्न प्रकार से तुमने वज्जियों के मध्य मेरी प्रशंसा की है।''

31. ''सुनक्खत्त! विभिन्न प्रकार से तुमने वज्जियों के मध्य धम्म की प्रशंसा की है।''

32. ''सुनक्खत्त विभिन्न प्रकार से तुमने वज्जियों के मध्य संघ की प्रशंसा की है।''

33. ''सुनक्खत्त! मैं तुम्हें बताता हूँ, मैं तुम्हें ज्ञात कराता हूँ, कि ऐसे लोग भी होंगे, जो तुम्हारे विषय में इस प्रकार कहेंगे: 'सुनक्खत्त लिच्छवी श्रमण गौतम के अधीन पवित्र जीवन जीने के योग्य नहीं था और इसलिए उसने इसका अनुशासन को त्याग दिया और निम्न वस्तुओं की ओर मुड़ गया।''

34. ''हे भग्गव! इस प्रकार सुनक्खत्त लिच्छवी मेरे बाद इस धर्म और विनय को त्याग गया, जैसे कोई सर्वनाश को प्राप्त हो गया।''

35. ''और कुछ ही समय उपरान्त, बुद्ध के धम्म और विनय को त्याग कर, सुनक्खत्त ने लोगों से कहना प्रारम्भ कर दिया कि बुद्ध के ज्ञान और अन्तर्दृष्टि के परिष्कृत करने वाली भेटों के विषय में कुछ भी अलौकिक नहीं था, कि यह उनकी स्वयं की समझ थी, जिसने उनकी अपनी बोधि और उनकी अपनी व्यक्तिगत खोज को एक सिद्धांत का रूप दिया था, इस प्रकार कि उसे जो कोई सुनता है जो केवल उसके भले के लिये उपदेशित किया गया है उसको इसके अनुसार पालन करना होता है जो दुख के सम्पूर्ण विनाश की ओर ले जाता है।''

36. यद्यपि, सुनक्खत्त बुद्ध की निन्दा कर रहा था, वह जो लोगों को कह रहा था सच था। क्योंकि बुद्ध ने अपने धम्म के प्रचार में अलौकिक या चमत्कार का कभी आश्रय नहीं लिया था।

3. जोर–जबर्दस्ती से धम्म–दीक्षा नहीं

1. एक बार लगभग पांच सौ भिक्षुओं के साथ तथागत राजगृह और नालन्दा के मध्य राजमार्ग से चले जा रहे थे और सुप्पिय परिव्राजक भी अपने शिष्य युवक ब्रह्मरूप के साथ राजगृह और नालन्दा के मध्य राजमार्ग से जा रहा था।

2. उस समय सुप्पिय परिव्राजक विभिन्न प्रकार से बुद्ध की निन्दा में, धम्म की निन्दा में और संघ की निन्दा में बोल रहा था। किन्तु उसके तरुण शिष्य ब्रह्मदत्त ने विभिन्न प्रकार से, बुद्ध की प्रशंसा में, धम्म की प्रशंसा में, और संघ की प्रशंसा में उद्गार व्यक्ति किये।

3. इस प्रकार वे दोनों, गुरु और शिष्य, एक दूसरे के परस्पर-विरोधी मतों को धारण किये हुए उनके कदम-दर-कदम, तथागत और भिक्षु संघ के पीछे-पीछे चले आ रहे थे।

4. तथागत और उनके साथ भिक्षु संघ अब रात गुजारने के लिये अम्बलट्ठि राजकीय उद्यान में ठहरे और वैसा ही सुप्पिय परिव्राजिक और उसके साथ उसके युवक शिष्य ब्रह्मदत्त ने भी किया। और वहां, राजौद्यान में, वे पहले के समान उसी विवाद को जारी रखे रहे।

5. और प्रातः काल कुछ भिक्षु एकत्रित हुए, जब वे सोकर उठे, मंडप के भीतर और जो बातचीत का विषय उनके मध्य उठ खड़ा हुआ वह सुप्पिय और ब्रह्मदत्त का संवाद था।

6. अब तथागत, यह समझकर कि उनकी चर्चा का क्या तात्पर्य था, मण्डप में गये, और अपने लिये बिछे आसन पर अपना स्थान ग्रहण किया। जब वे बैठ गये तो भगवान ने कहा, ''वह चर्चा क्या है? जिस पर आप लोग यहां बैठ कर उलझे हुए हैं और आप लोगों के मध्य संवाद का क्या विषय है? उन लोगों ने तथागत को सब कुछ बता दिया भगवान् तो कहा:

7. ''भिक्षुओ! यदि बाहरी लोग मेरे विरुद्ध, धम्म के विरुद्ध, या संघ के विरुद्ध कुछ कहते हैं, आप लोगों को उस आधार पर न तो दुर्भाव रखना चाहिए, न मन में जलन रखनी चाहिये और न ही बुरा अनुभव करना चाहिये।''

8. ''यदि तुम, उस आधार पर, क्रोधित और आहत होते हो, तो इससे तुम्हारी ही हानि होती है। यदि उस पर तुम क्रोधित होते हो, और नाराज होते हो। क्या तुम यह निर्णय करने में सक्षम हो कि उनका कथन किस सीमा तक ठीक है या गलत?''

9. ''वह ऐसा नहीं हो पायेगा, भगवान्!''

10. ''किन्तु जब बाहरी लोग मेरी या धम्म की, या संघ की निन्दा में बोलें, तो जो बात गलत है उसे सुलझाना चाहिये और उसे गलत कहते हुए निर्देशित करना चाहिये कि इस या उस कारण से यह तथ्य नहीं है, यह ऐसा नहीं है, ऐसी कोई बात हमारे मध्य नहीं पायी जाती है, यह हम में नहीं है।''

11. ''किन्तु साथ ही, भिक्षुओ! बाहरी लोग मेरी प्रशंसा में, धम्म की प्रशंसा में,

संघ की प्रशंसा में कह सकते हैं। वे क्या बात हैं जब वे मेरी प्रशंसा में कहेंगे तो तुम कहोगे?''

12. ''कोई कह सकता है 'प्राणी हिंसा को त्याग कर श्रमण गौतम हिंसा से विरत रहते हैं। उन्होंने दण्ड और तलवार का सर्वथा त्याग कर दिया है, और कठोर व्यवहार से विरत तथा करुणा से परिपूर्ण वे सभी सजीव प्राणियों के प्रति दयालु और स्नेही बन रहे हैं। अतः कोई भी अधर्मान्तरित मनुष्य, जब तथागत की प्रशंसा में बोल रहा हो तो इस प्रकार बोल सकते हो।''

13. ''या कोई कह सकता है: 'श्रमण गौतम अदिन्नादान (चोरी), जो उनका नहीं है, उसे अपना बनाने से दूर रहते हैं। वह केवल वहीं लेते हैं जो उन्हें दिया जाता है और आशा रखते हैं कि भेटें प्राप्त होंगी। वह अपना जीवन ईमानदारी और मन की पवित्रता के साथ व्यतीत करते हैं।''

14. ''या कोई कह सकता है: श्रमण गौतम अब्रह्मचर्य से विरत रह कर शुद्ध हैं। वह स्वयं को अश्लील आचरण से मैथुन क्रिया से दूर बहुत दूर रखते हैं।''

15. ''या कोई कह सकता है: श्रमण गौतम, झूठ बोलने से विरत रह, और स्वयं को मृषावाद से दूर रखते हैं। वह सत्य बोलते हैं, वे संसार को कहे गये अपने वचनों को भंग नहीं करते।''

16. ''या कोई कह सकता है कि श्रमण गौतम 'मिथ्यापवाद से विरत रह, स्वयं को झूठी निन्दा से दूर रखते हैं। जो कुछ वह यहां सुनते हैं, उसे वह यहां के लोगों के मध्य झगड़ा उत्पन्न करने के लिये कहीं और दोहराते नहीं; जो कुछ वह कहीं और सुनते हैं, उसे वहां के लोगों के मध्य एक झगड़ा उत्पन्न करने के लिये वह यहां नहीं दोहराते है। इस प्रकार वह जो विभाजित हैं, उन्हें एक साथ बाँधने वाले के रूप में, जो मित्र हैं उनके प्रेरक के रूप में, एक शांति-स्थापक, एक शान्ति के इच्छुक, शान्ति के लिये प्रयत्नशील जो शांति स्थापित करते हैं, ऐसे वचनों के वक्ता के रूप में जीवन व्यतीत करते हैं।''

17. ''या कोई कह सकता है कि श्रमण गौतम वाणी की कटुता से विरत रह, स्वयं को कठोर वचनों से दूर रखते हैं। जो कोई वचन निर्दोष हैं, कानों को मधुर हैं, प्रिय हैं, हृदय तक जाते हैं, सौम्य, लोगों को मोहित करने वाले हैं, लोगों के प्रिय हैं, वही वचन बोलते हैं।''

18. ''या कोई कह सकता है: 'कि श्रमण गौतम स्वयं को क्षुद्र बातों से विरत रह, वार्तालाप से दूर रखते हैं। वह समयानुसार बोलते हैं, तथ्यों के आधार पर बोलते हैं, अर्थ से भरे वचन, धर्म पर, संघ के नियमों पर बोलते हैं। वह सही समय

पर किसी के मन में घर करने योग्य वचन, पूर्णतया उदाहरणों सहित, स्पष्टतया विभाजित, विषय पर केन्द्रित वचन ही बोलते हैं।'''

19. ''या कोई कह सकता है श्रमण गौतम स्वयं को बीजों या पौधों को हानि पहुंचाने से दूर रखते हैं।''
   - वे एक दिन में केवल एक बार ही भोजन ग्रहण करते हैं, रात को कोई भोजन ग्रहण नहीं करते हैं, अपराह्न के पश्चात् विकाल भोजन नहीं करते हैं।
   - वे प्रदर्शनों, मेलों में नृत्य-गीत और संगीत का दर्शक बनने से विरत रहते हैं।
   - वे माला, इत्र और लेपों को स्वयं पहनने, सजाने व अलंकृत करने से विरत रहते हैं।
   - वे विशाल और ऊंची शैय्याओं के प्रयोग से विरत रहते हैं।
   - वे रजत और स्वर्ण स्वीकार करने से विरत रहते हैं।
   - वे बिना पका अनाज स्वीकार करने से विरत रहते हैं।
   - वे स्त्रियों और लड़कियों को स्वीकार करने से विरत रहते हैं।
   - वे दास-दासियों को स्वीकार करने से विरत रहते हैं।
   - वे भेड़ या बकरियों को स्वीकार करने से विरत रहते हैं।
   - वे मुर्गे-मुर्गियों या सुअरों को स्वीकार करने से विरत रहते हैं।
   - वे हाथियों, गाय-भैंसों, घोड़ों और घोड़ियों को स्वीकार करने से विरत रहते हैं।
   - वे बोये हुए या ऊसर खेतों को स्वीकार करने से विरत रहते हैं। वे एक मध्यस्थ या संदेशवाहक के रूप में कार्य करने से विरत रहते हैं।
   - वे क्रय और विक्रय से विरत रहते हैं।
   - वे तराजू या बंटवारे या पैमानों द्वारा ठगने से विरत रहते हैं।
   - वे रिश्वत, ठगी और धोखे के कुटिल तरीकों से विरत रहते हैं।
   - वे अंग-भंग करने, हत्या करने, बंधनों से जकड़ने, राज मार्ग की डकैती, लूटपाट और हिंसा से विरत रहते हैं।

20. ''भिक्षुओ! ये ऐसी बातें हैं जिन्हें एक धम्म की दीक्षा न ग्रहण करने वाला मनुष्य, जब तथागत की प्रशंसा में बोल रहा हो, कह सकता है। किन्तु तुम लोगों को यहां तक कि उस आधार पर भी, आनन्द या हर्ष से फूलना नहीं चाहिये, या मन प्रफुल्लित नहीं करना चाहिये। यदि तुम लोग ऐसे होंगे, वह भी

तुम्हारी आत्म-विजय के मार्ग में बाधक होगा। जब बाहरी लोग मेरी या धम्म की या संघ की प्रशंसा में बोलें तुम्हें स्वीकार करना चाहिये जो तथ्य होने के कारण नहीं है। यह कहते हुए 'इस या उस कारण से यह तथ्य है, वह ऐसा है, ऐसी बातें हमारे मध्य पायी जाती हैं यह हम में हैं।'''

4. भिक्षु को धम्म-प्रचार के लिए संघर्ष करना चाहिए

1. भिक्षुओ को संबोधित करते हुए तथागत एक बार बोले:-
2. ''हे भिक्षुओ! यह मैं नहीं हूँ जो संसार से विवाद करता हूं, बल्कि संसार है जो मुझसे विवाद करता है। सत्य का एक उपदेशक संसार में किसी से भी विवाद नहीं करता है।''
3. ''योद्धा, योद्धा हम अपने आप को कहते हैं। तथागत! तब हम किस तरह से योद्धा हैं?''
4. ''हे भिक्षुओ! हम युद्ध करते हैं, इसलिये हम योद्धा कहलाते हैं।''
5. ''तथागत! हम किसलिये युद्ध करते हैं?''
6. ''भिक्षुओ! उच्च्च शीलों के लिये, श्रेष्ठ उद्यम के लिये, उदत्त प्रज्ञा के लिए-इन बातों के लिये हम युद्ध करते हैं इसलिये हम योद्धा कहलाते हैं।''
7. जहां शील खतरे में हो संघर्ष से मत घबराओ, मृदुभाषी मत बने रहो अर्थात् ऐसे समय भीगी बिल्ली बने मत बैठे रहो।

चौथा-भाग

भिक्षु और गृहस्थ

1. भिक्षा का बंधन
2. पारस्परिक प्रभाव
3. भिक्षु का 'धम्म' और गृहस्थ का 'धम्म'

1. भिक्षा का बंधन

1. भिक्षु एक संगठित संस्था थी, जिसकी सदस्यता सबके लिये खुली नहीं थी।
2. मात्र एक परिव्राजक होना संघ की सदस्यता लेने के लिये पर्याप्त नहीं था।
3. केवल परिव्राजक के उपसम्पदा प्राप्त करने के पश्चात् ही वह संघ का सदस्य बन सकता था।
4. संघ एक स्वतंत्र संस्था थी। यहाँ तक कि अपने संस्थापक से भी स्वतन्त्र थी।
5. यह स्वायत्त थी। यह जिसे चाहे उसे अपना सदस्य बना सकती थी, यदि उसने विनय-पिटक के नियमों के विरुद्ध कार्य किया हो, तो यह किसी भी सदस्य को सदस्यता से हटा सकती थी।
6. एक मात्र भिक्षा की डोरी हों, भिक्षु को गृहस्थ से बाँधती थी।
7. भिक्षु भिक्षा पर निर्भर करते थे और यह गृहस्थ ही थे, जो भिक्षा देते थे।
8. गृहस्थ संगठित नहीं थे।
9. यह संघ-दीक्षा या संघ में व्यक्ति के प्रवेश के लिये एक संघ का विधान था।
10. संघ-दीक्षा में संघ तथा साथ ही साथ धम्म में दीक्षित होना दोनों समाहित थे।
11. जो धम्म में दीक्षित होना चाहते थे, लेकिन संघ के सदस्य नहीं बनना चाहते थे। उनके लिये कोई पृथक धम्म-दीक्षा नहीं थी। जिसके परिणामों में से एक था गृहस्थ से गृहत्याग की अवस्था में जाना।
12. यह एक गम्भीर चूक थी। यह उन कारणों में से एक थी, जिसने अन्ततोगत्वा भारत में बौद्ध धर्म के पतन में भूमिका निभाई थी।
13. दीक्षा, की इस अनुपस्थिति ने गृहस्थों को एक धर्म से दूसरे धर्म में भटकने के लिये मक्त छोड़ दिया था, इससे भी बदतर एक ही समय में एक से अधिक धर्म अपनाने के लिए मुक्त छोड़ा जाना था।

2. पारस्परिक प्रभाव

1. यद्यपि, 'भिक्षा' का बन्धन भी ऐसा था कि 'कोई' भिक्षु गृहस्थों के किसी भटके हुए सदस्य को सुधारने के लिये पर्याप्त था।

2. इस सम्बंध में अंगुत्तर निकाय में वर्णित निम्नलिखित नियम ध्यान देने योग्य हैं।
3. इन आदेशों के अतिरिक्त, भी गृहस्थों को किसी भी अनिष्ट या अनाचरण के लिये एक भिक्षु की दूसरे भिक्षुओ से शिकायत करने का एक सामान्य अधिकार था।
4. जिस क्षण शिकायत भगवान् बुद्ध तक पहुँचती थी और उन्होंने उसकी पुष्टि कर ली, अब विनय-पिटक में सम्बन्धित नियम संशोधित किया जाता था जिससे ऐसे किसी अनाचरण की पुनरावृत्ति को, संघ के विरुद्ध एक अपराध माना जाए।
5. विनय, पिटक और कुछ नहीं, बल्कि गृहस्थों की शिकायतों का परिमार्जन मात्र है।
6. भिक्षु और गृहस्थों के मध्य ऐसा सम्बन्ध था।

3. भिक्षु का 'धम्म' और गृहस्थ का 'धम्म'

1. बौद्ध धम्म के कुछ आलोचक आरोप लगाते हैं कि बौद्ध धम्म एक धर्म नहीं है।
2. इस प्रकार की आलोचना पर कोई ध्यान देने की आवश्यकता नहीं। यदि कोई उत्तर देना ही है, तो वह यह है कि बौद्ध धम्म ही एक मात्र वास्तविक धम्म है और वे जो ऐसा स्वीकार नहीं करते हैं, उन्हें अवश्य ही अपनी धर्म की परिभाषा बदलनी चाहिए।
3. दूसरे आलोचक इतनी दूर तक नहीं जाते, वे कहते हैं, 'यह बौद्ध धम्म केवल भिक्षुओं से सम्बन्धित है। यह स्वयं को सामान्य मनुष्य से सम्बन्धित नहीं करता। बौद्ध धम्म ने सामान्य मनुष्य को अपने घेरे से बाहर ही रखा है।
4. बुद्ध के प्रवचनों में 'भिक्षु' शब्द का वर्णन इतनी अधिक बार आता है कि वे आलोचना को बल देते हैं।
5. इसलिये इस विषय को स्पष्ट करना आवश्यक हो जाता है।
6. क्या भिक्षुओं और गृहस्थों दोनों के लिये 'धर्म' ही था? अथवा धम्म का कोई ऐसा अंश भी है जो भिक्षुओं के लिये आवश्यक और गृहस्थों के लिए नहीं है।
7. क्योंकि 'प्रवचन' प्राय: भिक्खुओं को सम्बोधित किये गये थे, इससे यह अनुमान नहीं लगाना चाहिए कि जो कुछ उपदेश दिया गया था, वह केवल भिक्षुओं पर

ही लागू होने के लिये आवश्यक था। जो कुछ उपदेश दिए गए थे वे दोनों पर लागू होते थे।

8. जिस समय उन्होंने (i) पंचशील (ii) आष्टांगिक मार्ग और (iii) पारमिताओं का उपदेश दिया, तो उनकी नजर उपासकों पर ही रही होगी, जैसा कि यह उनकी प्रकृति से ही पर्याप्त स्पष्ट है और वास्तव में कहें, तो किसी भी तर्क की आवश्यकता नहीं है।

9. जिन्होंने अपने गृहों का त्याग नहीं किया और जो सक्रिय जीवन में संलग्न हैं उनके लिये पंचशील, आष्टांगिक मार्ग और पारमितायें अनिवार्य हैं। यह वे हैं, जो संभवतः उनका उल्लंघन करते हैं न कि भिक्षु जिन्होंने गृह-त्याग कर दिया है, जो सक्रिय जीवन में संलग्न नहीं हैं और संभवतः वे उनका उल्लंघन नहीं करेंगे।

10. इसलिये, जब बुद्ध ने अपने धम्म का प्रचार प्रारम्भ किया, तो वह नियमतः उपासकों के लिये ही रहा होगा।

11. यद्यपि केवल यह अनुमान पर निर्भर करना आवश्यक नहीं है। आलोचना का खण्डन करने के लिये प्रत्यक्ष साक्ष्य भी है।

12. निम्नलिखित प्रवचन का उल्लेख किया जा सकता है :-

13. एक बार जब तथागत श्रावस्ती के अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में ठहरे हुए थे, वहाँ पाँच सौ अन्य उपासकों के साथ उपासक धम्मिक आया, जिसने यथोचित अभिवादन के पश्चात् एक ओर आसन ग्रहण किया तथा तथागत को इस प्रकार सम्बोधित किया:

14. "हे तथागत! कौन से शील परिशुद्ध करते हैं, दोनों को वे जो भिक्षु हैं और वे जो केवल उपासक हैं, अर्थात् वे जो बेघर है और वे जो बेघर नहीं हैं।"

15. "भगवान्! उपासकों सहित उपस्थित भिक्षुओं को अपने-अपने 'शील' की जानकारी देने की कृपा करें।"

16. तथागत बोले, "भिक्षुओ! ध्यान से सुनो, और बताए हुए नियमों का पालन करो।"

17. जब मध्यान्तर हो चुका हो तो अपने भिक्षाटन (पिण्डपात) के लिए मत जाओ, यथा समय भिक्षा माँग लो। असमय भिक्षाटन करने वालों के लिए जाल (फन्दे) बिछे रहते हैं।

18. "भिक्षाटन से पहले, तुम अपना चित्त, रूप, शब्द, गन्ध, स्वाद और स्पर्श की आसक्ति से मुक्त कर लो।"

19. "भिक्षा प्राप्त कर लेने पर, अकेले लौटो और एकान्त में बैठकर स्थित चित्त से विचार करो तो कभी भी तुम्हें बाहर नहीं भटकना पड़ेगा।"

20. "भिक्षुओ! सज्जन लोगों के साथ वार्तालाप में धम्म को ही अपनी चर्चा का विषय रखो।"

21. "भिक्षा, विहार, शैय्या, जल और सफाई को केवल साधन मानो और कुछ भी नहीं।"

22. "इस प्रकार का तर्कसंगत प्रयोग कर भिक्षु उसी प्रकार निर्लिप्त रखेगा जैसे कमल का पत्ता, जिस पर जल की कोई भी बूंद नहीं टिकती।"

23. तथागत ने कहा, "अब मैं उन शीलों पर आता हूँ, जो उपासकों को परिशुद्ध करते हैं। उनको मैं कहता हूँ-

24. "किसी प्राणी की हत्या मत करो, न प्राणी-हिंसा का अनुमोदन करो। किसी के प्रति जो सजीव है, सबल है या दुर्बल, हिंसा मत करो। सभी प्राणियों से प्रेम करो।"

25. "किसी गृहस्थ की जान-बूझ कर चोरी नहीं करनी चाहिये; केवल वही लेना चाहिये जो दूसरे देते हैं।"

26. "व्यभिचार से दूर रहो, जैसे वह एक अग्नि-कुण्ड हो, ब्रह्मचर्य की कमी पर किसी विवाहित पत्नी को पथ-भ्रष्ट मत करो।"

27. "सभाओं, न्यायालयों में झूठ नहीं बोलना चाहिये, झूठ को प्रोत्साहित या अनुमोदित नहीं करना चाहिये। उसे असत्य को त्याग देना चाहिए।"

28. "इस नियम का पालन करो: मद्यपान से दूर रहो, किसी व्यक्ति को मद्यपान न कराओ; मद्यपान का अनुमोदन न करो। इस बात पर ध्यान दो कि मद्यपान पागलपन की ओर कैसे ले जाता है।"

29. "मद्यपान के द्वारा मूर्ख पाप करते हैं और लापरवाह साथियों को पाप से प्रवृत्त करते हैं। अत: इस पागल बनाने वाले व्यसन, मूर्खता से दूर रहें या मूर्खों का स्वर्ग है।"

30. "प्राणी-हिंसा न करें, चोरी न करें, झूठ न बोलें, नशीले पेय पदार्थों से दूर रहें, व्यभिचार से दूर रहें।"

31. "अत: उपोसय के दिनों में अपने उपोसथ व्रतों का पालन करें जैसे सप्ताह के पश्चात्, सप्ताह आते हैं, पवित्र हृदयों से इन अष्ट-शीलों का पालन करें।"

32. ''प्रातः काल, इन व्रतों को पवित्र और श्रद्धा-युक्त मन से ग्रहण करें, बुद्धिमान रहें और अपनी सामर्थ्य के अनुसार भिक्खुओं को भोजन व पेय पदार्थ दें।''

33. ''अपने माता-पिता की भली-भांति सेवा करें, सदाचरण वाला व्यवसाय अपनायें।

34. ''इस प्रकार उपासक, निष्ठावान होकर दिव्य लोक को प्राप्त होगा।''

35. ''इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि धम्म (भिक्षु और उपासक) दोनों के लिये समान था।''

36. हाँ, निस्सन्देह, दोनों के प्रति की जाने वाली आशा में अन्तर है।

37. एक भिक्खु को पाँच व्रत अवश्य लेने चाहिएं।

38. उसे व्रत लेना चाहिये कि वह कभी झूठ नहीं बोलेगा।

39. उसे व्रत लेना चाहिए कि वह वध नहीं करेगा।

40. उसे व्रत लेना चाहिए कि वह दूसरों की सम्पत्ति को अपनी नहीं बनाएगा जो उसे नहीं दी गयी है।

41. उसे व्रत लेना चाहिए कि वह किसी स्त्री के विषय में शारीरिक ज्ञान जानने का कभी प्रयास नहीं करेगा।

42. उसे व्रत लेना चाहिए कि वह कभी कोई नशीला पदार्थ नहीं पिएगा।

43. ये सभी नियम वैसे तो उपासक पर भी लागू होते हैं।

44. भेद केवल इतना है कि भिक्षु के साथ वे व्रत अनुल्लंघनीय हैं। उपासक के साथ वे स्वैच्छिक रूप से आदर करने के लिये नैतिक कर्त्तव्य हैं।

45. इसके अतिरिक्त, दो अन्य अन्तर हैं, जो ध्यान देने योग्य हैं।

46. एक भिक्षु के पास निजी सम्पत्ति नहीं हो सकती है, उपासक के पास हो सकती है।

47. एक भिक्षु 'परिनिर्वाण' में प्रवेश के लिये स्वतन्त्र हैं। उपासक के लिये निर्वाण पर्याप्त है।

48. एक भिक्षु और उपासक के बीच ये ही समानताएँ और असमानताएँ हैं।

49. यद्यपि धम्म दोनों के लिये समान है।

पाँचवा भाग

उपासकों (गृहस्थों) के लिए विनय (जीवन-नियम)

1. धनवानों के लिए विनय (जीवन-नियम)
2. गृहस्थों के लिए विनय (जीवन-नियम)
3. बच्चों के लिए विनय (जीवन-नियम)
4. शिष्य के लिए विनय (जीवन-नियम)
5. पति और पत्नी के लिए विनय (जीवन-नियम)
6. मालिक और नौकर के लिए विनय (जीवन-नियम)
7. उपसंहार
8. लड़कियों के लिए विनय (जीवन-नियम)

1. धनवानों के लिए विनय (जीवन-नियम)

(i)

1. तथागत ने 'दरिद्रता' को 'जीवन का सौभाग्य' कहकर उसे ऊपर उठाने का प्रयास नहीं किया।
2. और न ही उन्होंने दरिद्रों को यही कहा कि तुम संतुष्ट रहो, क्योंकि वे पृथ्वी के उत्तराधिकारी हैं।
3. इसके विपरीत, उन्होंने धन-सम्पत्ति का स्वागत किया है। जिस पर उन्होंने बल दिया वह है कि धन-सम्पत्ति का अर्जन विनय के आधार पर ही होना चाहिये।

(ii)

1. एक बार जहाँ तथागत विराजमान थे वहां अनार्थापिण्डिक पहुंचा। उन्होंने तथागत को प्रणाम किया और एक ओर एक आसन ग्रहण किया और पूछा, "क्या तथागत बतायेंगे कौन-सी बातें गृहस्थों के लिये स्वागत योग्य, सुखकर और अनुकूल हैं, लेकिन जिन्हें प्राप्त करना कठिन है।"
2. तथागत ने अनार्थापिण्डक के पूछे गये प्रश्न को सुन कर कहा, "ऐसी बातों में पहली बात है, न्याय-संगत तरीके से धन अर्जित करना।"
3. "दूसरी बात है यह देखना कि आपके सगे-सम्बन्धी भी न्यायसंगत तरीके से धन अर्जित करें।"
4. "तीसरी बात है लम्बे समय तक जीवन जीना अर्थात् दीर्घायु होना।"
5. "एक सच्चे गृहस्थ के लिये इन तीनों बातों की उपलब्धि जो संसार में स्वागत योग्य, सुखकर और अनुकूल हैं, किन्तु प्राप्त करने में कठिन हैं, इसके अतिरिक्त चार बातें शर्तें-करणीय हैं, वे हैं श्रद्धा का आशीर्वाद, शीलाचरण का आशीर्वाद, उदारता का आर्शीवाद तथा प्रज्ञा का आशीर्वाद।"
6. "श्रद्धा और विश्वास का आशीर्वाद तथागत के सर्वोच्च ज्ञान में समाहित हैं जो शिक्षित करता है कि वे भगवान अर्हत हैं, सम्यक् सम्बद्ध हैं, विद्या और आचरण में परिपूर्ण हैं, सुगत हैं, सभी लोकों के ज्ञाता हैं। अनुत्तर हैं, मनुष्यों के दमन करने वाले सारथी हैं, देवों और मनुष्यों के शास्ता हैं।"
7. "शीलाचरण का आशीर्वाद प्राणातिपात (जीव-हिंसा), अदिन्नादान (चोरी), काम-मिथ्याचार (व्यभिचार), मृषावाद (असत्य) और नशीले पेय पदार्थों के सेवन के पृथक हैं।

8. ''उदारता का आशीर्वाद समाहित है, गृहस्थ के कृपणता के दोष से मन को मुक्त रखने, उदार बनने, खुले हाथों से दान देने में आनन्दित होने, दाता बनने और दान-शील होकर जीवन जीते हैं।''

9. ''प्रज्ञा का आशीर्वाद किसमें समाहित है? तुम जान लो कि एक गृहस्थ जो लोभ, कृपणता, द्वेष, आलस्य, तन्द्रा, चित्त की व्यग्रता और अनिश्चिता के वशीभूत रहता है, पाप-धर्म करता है और जो किया जाना चाहिये उसकी उपेक्षा करता है, इस प्रकार करने से सुख और सम्मान से वंचित रह जाता है।''

10. ''लोभ, कृपणता, द्वेष, आलस्य और तन्द्रा, चित्त की व्यग्रता और अनिश्चिता और संदेह चित्त के दाग हैं। एक गृहस्थ जो चित्त के ऐसे दागों से पीछा छुड़ा लेता है वह महा-प्रज्ञा, बहुल-प्रज्ञा, निर्मल-दृष्टि और पूर्ण-प्रज्ञा अर्जित कर लेता है।''

11. इस प्रकार, न्याय-संगत और उचित तरीके से धन अर्जित करना, बड़े परिश्रम से अर्जित, बाहुबल द्वारा एकत्रित और पसीना बहाकर प्राप्त धन एक महान् आशीर्वाद है। ऐसा गृहस्थ स्वयं को सुखी और आनन्दित करता है तथा स्वयं को सुख से परिपूर्ण बनाये रखता है, साथ ही माता-पिता, पत्नी और बच्चों, नौकरों और श्रमिकों, मित्रों और साथियों को सुखी और आनन्दित करता है, तथा उन्हें सुख से परिपूर्ण बनाये रखता है।''

2. गृहस्थों के लिय विनय (जीवन-नियम)

इस विषय पर भगवान बुद्ध के विचार सिगाल को दिए उसके उपदेश में प्रस्तुत किये गये हैं।

1. एक समय तथागत राजगृह के वेलुवन के कलन्दक-निवाप में विहार कर रहे थे।

2. उस समय एक गृहस्थ का पुत्र युवक सिगाल, यथासमय उठकर राजगृह में बाहर जामकर गीले केशों तथा गीले वस्त्रों के साथ जुड़े हुए हाथों को उठा कर पृथ्वी व आकाश व सभी दिशाओं, पश्चिम उत्तर, दक्षिण ऊपर और नीचे को प्रणाम करने लगा।

3. और तथागत ने उसी सुबह शीघ्र चीवर धारण किया, अपना पात्र और चीवर लिया तथा भिक्षाटन के लिये राजगृह में प्रवेश किया। उन्होंने युवक सिगाल को इस प्रकार प्रणाम करते देखा, तो उससे पूछा, ''तू इस प्रकार पृथ्वी और आकाश व सभी दिशाओं को प्रणाम क्यों कर रहा है?''

4. ''मृत्युशैया पर पड़े मेरे पिता ने मुझसे कहा था, ''प्रिय पुत्र! तुम पृथ्वी और आकाश व सभी दिशाओं को प्रणाम करना। अतः मैं, अपने पिता के शब्दों का

सम्मान करते हुए इस प्रकार प्रणाम करता हूँ।''

5. तथागत ने पूछा, ''किन्तु यह संसार के मनुष्य का सच्चा धर्म किस प्रकार हो सकता है? सिगाल ने पूछा, ''यदि ऐसा कुछ है तो बड़ी कृपा होगी यदि तथागत मुझे बताएं कि आदमी का दूसरा सच्चा धर्म क्या होता है?''
6. ''तब सुनो युवा गृहस्थ! मेरे शब्दों पर ध्यान दो, और मैं तुम्हें बताता हूँ कि वह क्या है?'' ''ऐसा ही हो, भगवान्!'' युवक ने उत्तर दिया। और तथागत ने कहा:
7. ''एक धर्म तभी मनुष्य का सद्धर्म हो सकता है, यदि वह उसे बुरे आचरण का त्याग करने की शिक्षा दे। प्राणियों की हिंसा, चोरी, व्यभिचार और असत्य बोलना-आचरण के चार अवगुण हैं, जिनसे उसे अवश्य बचना चाहिये।''
8. ''सिगाल! तुम जान लो पाप-कर्म पक्षपात, शत्रुता, मूर्खता और भय के कारण किये जाते हैं। यदि वह इन उद्देश्यों से प्रेरित न हो, तो वह पाप-कर्म नहीं करेगा।''
9. ''एक धर्म तभी मनुष्य का सद्धर्म हो सकता है, यदि वह उसे अपने धन को अपव्यय न करने की शिक्षा दे। धन का अपव्यय, नशीले पेय पदार्थों का आदी होने, अनुचित समय में गलियों में घूमने, मेले देखने, जुए की लत लगाने, कुसंगति में पड़ जाने, आलस्य की आदत के परिणामस्वरूप होता है।''
10. ''सिगाल! नशीले पेय पदार्थों का आदी होने के छः दोष हैं: (1) धन की वास्तविक हानि, (2) कलह होना, (3) रोग की सम्भावना, (4) चरित्र की हानि, (5) अश्लील नग्नता, तथा (6) बुद्धि की हानि।''
11. ''अनुचित समय में गलियों में घूमने से छः हैं : ''(1) वह स्वयं अरक्षित रहता है (2) उसकी पत्नी और बच्चे अरक्षित रहते हैं, (3) उसकी सम्पत्ति भी अरक्षित रहती है, (4) अज्ञात अपराधों का सन्देहास्पद कर्त्ता बन जाता है, (5) उसके साथ अफवाहें जुड़ जाती हैं, और (6) उसे अनेक विपत्तियों का सामना करना पड़ता है।''
12. ''मेले-तमाशे में घूमने-फिरने के छह संकट हैं: (1) वह सदैव सोचता है कि कहाँ नृत्य है? (2) कहाँ संगीत है? (3) कहाँ गायन है? (4) कहाँ बजाना है? (5) कहाँ झाँझ-मंजीरे हैं? (6) कहाँ टम-टम हैं?''
13. ''जो जुए की लत का शिकार हैं, उसके लिये छह संकट हैं: (1) विजेता के रूप में वह घृणा उत्पन्न करता है, (2) जब हारता है, तो वह अपने हारे धन का शोक करता है। (3) उसकी वास्तविक धन सम्पत्ति व्यर्थ हो जाती है, (4) न्यायालय में उसके शब्दों का कोई मोल नहीं रह जाता है, (5) वह मित्रों और अधिकारियों द्वारा तिरस्कृत होता है, (6) विवाह-सम्बन्ध करना नहीं

चाहते हैं, क्योंकि वे कह सकते हैं कि एक व्यक्ति जो जुआरी है वह पत्नी को रख पाने में समर्थ नहीं हो सकता है।''

14. ''कुसंति में पड़ जाने के छह संकट है. (1) कोई जुआरी, (2) कोई व्यभिचारी, (3) कोई शराबी, (4) कोई धूर्त, (5) कोई धोखेबाज, (6) कोई हिंसक, उसका मित्र और साथी बन जाता है।''

15. ''आलस्य की आदत के छह संकट हैं: (1) बहुत ठण्ड है कहकर काम नहीं करता, (2) बहुत गर्मी है कहकर काम नहीं करता, (3) बहुत जल्दी है या बहुत देर हो गयी है कहकर काम नहीं करता, (4) बहुत देर हो गई कहकर काम नहीं करता, (5) मैं बहुत भूखा हूँ कहकर काम नहीं करता, और (6) मेरा पेट बहुत भरा है कहकर काम नहीं करता और इन सबके होते हुए वह बिना कुछ काम किये पड़ा रहता है। नई सम्पत्ति अर्जित नहीं कर पाता और जो संपत्ति उसके पास होती है, वह नष्ट हो जाती है।''

16. ''कोई भी धर्म तभी मनुष्य का सद्धर्म हो सकता है, जब वह उसे यह जानने की शिक्षा दे कि कौन अच्छा-बुरा मित्र है।''

17. ''वे चार हैं, जिन्हें मित्र के भेष में शत्रु समझना चाहिए, अर्थात् एक (1) लोभी मनुष्य, (2) सिर्फ कहने वाला करने वाला नहीं, (3) चापलूस और (4) फिजूल-खर्ची का साथी।''

18. ''इनमें से प्रथम को इसलिए मित्र के भेष में शत्रु समझना चाहिए, क्योंकि वह लोभी है, वह देता कम है माँगता अधिक है, वह अपने कार्य भय के कारण करता है, वह स्वयं अपने स्वार्थ में लगा रहता है।''

19. ''जो केवल कहता है और कर्म करता नहीं, उसे इसलिये मित्र के भेष में शत्रु समझना चाहिए, क्योंकि वह भूत काल के सम्बन्ध में मैत्रीपूर्ण प्रदर्शन करता है, वह भविष्य के सम्बन्ध से मैत्रीपूर्ण प्रदर्शन करता है, वह निरर्थक बातों द्वारा तुम्हारा समर्थन पाने का प्रयास करता है, जब सेवा करने का अवसर आता है, तो वह अपनी असमर्थता प्रकट कर देता है।''

20. ''चापलूस को इसलिए मित्र के भेष में शत्रु समझना चाहिए, क्योंकि, वह बुराई करने के लिये सहमति दर्शाता है, और भलाई करने के लिये असहमति, वह तुम्हारे मुँह पर प्रशंसा करता है, तुम्हारी पीठ पीछे दूसरों से निन्दा करता है।''

21. ''इसी प्रकार फिजूल खर्ची के साथी को भी मित्र के भेष में शत्रु समझना चाहिए, क्योंकि जब तुम अनुचित समय में गलियों में घूमते हो, तुम्हारा साथी होता है, जब तुम मेले में घूमते हो तुम्हारा साथी होता है, जब तुम जुऐ की लत का शिकार होते हो तभी तुम्हारा साथी होता है।''

22. ''चार प्रकार के मित्र हैं, जिन्हें हृदय से यथार्थ मित्र समझना चाहिए: (1) जो सहायक हो, (2) ऐसा मित्र जो सुख और दुख में समान रहे, (3) अच्छी सलाह देने वाला मित्र, और (4) सहानुभूति रखने वाला मित्र।''

23. ''उस मित्र को जो सहायक है इसलिये सच्चा मित्र समझना चाहिये, क्योंकि जब तुम अरक्षित स्थिति में होते हो, तब तुम्हारी रक्षा करता है, जब तुम अरक्षित स्थिति में होते हो तुम्हारी सम्पत्ति की रक्षा करता है। जब तुम्हारे पास करने के लिये कार्य होते हैं, तब जितनी तुम्हें आवश्यकता हो उससे दुगुनी पूर्ति उपलब्ध करा देता है। जब तुम भयभीत होते हो, तब तुम्हारा आश्रय होता है।''

24. ''वह मित्र जो सुख और दुःख में समान रहता है, उसे इसलिए हृदय से सच्चा मित्र समझना चाहिए : क्योंकि, वह तुम्हें अपने 'रहस्य' बता देता है, वह तुम्हारे रहस्यों को गुप्त रखता है, तुम्हारी विपत्तियों में वह तुम्हारा साथ नहीं छोड़ता है, वह तुम्हारे लिए अपने जीवन का बलिदान तक कर देता है।''

25. ''वह मित्र जो तुम्हारी आवश्यकतानुसार परामर्श देता है, उसे इसलिये हृदय से सच्चा समझना चाहिये, क्योंकि वह तुम्हें बुराई करने से रोकता है, वह तुम्हें जो सही है उसे करने का परामर्श देता है, वह तुम्हें ऐसी बातें सुनाता है, जिन बातों को तुमने पहले नहीं सुना होगा, वह तुम्हारे लिए स्वर्ग का मार्ग खोलता है।''

26. ''वह मित्र जो सहानुभूति रखता है उसे इसलिये हृदय से सच्चा मित्र समझना चाहिये, क्योंकि वह तुम्हारे अमंगल में आनन्दित नहीं होता है, वह तुम्हारी खुशहाली पर आनन्दित होता है, वह उन सभी को रोकता है, जो तुम्हारी निन्दा कर रहे होते हैं, वह उन सभी का समर्थन करता है जो तुम्हारी प्रशंसा कर रहे होते हैं।' तथागत ने इस प्रकार कहा।''

27. ''उसे छह दिशाओं में प्रणाम करने की शिक्षा देने के बजाय जो धम्म मनुष्य का सद्धर्म बताने योग्य हो उस धम्म की शिक्षा देनी चाहिए। वह उसे अपने माता-पिता, अपने आचार्यों, अपनी पत्नी और बच्चों, अपने मित्रों और साथियों, अपने नौकरों और कारीगरों तथा अपने धार्मिक गुरुओं का आदर और सम्मान करने की शिक्षा देता है।''

3. बच्चों के लिए विनय (जीवन-नियम)

1. ''एक बालक को अपने माता-पिता की सेवा यह सोचते हुए करनी चाहिये; पहले उनके द्वारा पोषित होकर मैं अब उनका पोषण करूँगा, मैं उनके लिये आवश्यक कर्त्तव्यों को पूरा करूँगा, मैं अपनी वंशावली और वंश-परम्परा को

कायम रखूँगा, मैं स्वयं को अपनी कुल-परम्परा के योग्य बनाऊँगा।'' क्योंकि, माता-पिता उसके प्रति अपने प्रेम को प्रकट करते हैं, वे उसे बुराई से बचाते हैं, वे उसे सद्गुण के लिये प्रेरित करते हैं, उसे वे एक पेशे के लिये प्रशिक्षित करते हैं, वे उसके लिये एक सुयोग्य विवाह-सम्बन्ध करते हैं, और वे उचित समय पर उसे उसकी विरासत सौंप देते हैं।''

4. शिष्य के लिए विनय (जीवन-नियम)

1. ''एक शिष्य को अपने आचार्यों के प्रति यथायोग्य व्यवहार करना चाहिये। उसे अपने आसन से उठकर अभिवादन करना चाहिये। उसे पढ़ने-लिखने में उत्साह दिखा कर, व्यक्तिगत सेवा द्वारा, और उनकी शिक्षा-ग्रहण करते समय विशेष ध्यान द्वारा सेवा करनी चाहिये। आचार्य अपने शिष्यों से प्रेम करते हैं, वे उसे उसमें प्रशिक्षित करते हैं, जिससे वे भली-भांति प्रशिक्षित होते हैं, जिसे उन्होंने दृढ़तापूर्वक ग्रहण किया हुआ है, वे उसे दृढ़तापूर्वक ग्रहण करवाते हैं। वे उसे हर कला की विद्या में पूरी तरह निपुण बनाते हैं, वे उसके मित्रों और साथियों के मध्य उसकी प्रशंसा करते हैं। वे हर तरह से उसे सुरक्षा प्रदान करते हैं।''

5. पति और पत्नी के लिए विनय (जीवन-नियम)

1. ''एक पति और अपनी पत्नी के प्रति आदर-भाव प्रदर्शित कर सम्मान करके, विश्वनीय बनकर, उसे अधिकार सौंप कर, उसे अलंकार की वस्तुयें उपलब्ध कराकर सेवा करनी चाहिये। क्योंकि पत्नी उससे प्रेम करती है, उसके सभी कार्य अच्छी तरह करती है, दोनों के रिश्तेदारों का आतिथ्य करके, विश्वसनीय बन के, उसके द्वारा लाये गये सामान की हिफाजत करके, और अपने सभी कार्यों को दक्षता व परिश्रम से पूर्ण करके पूरा करती है।''
2. ''एक कुल-पुत्र को अपने मित्रों और साथियों के साथ उदारता, सौजन्यता और परोपकारिता का व्यवहार करना चाहिये। उनके साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिये, जैसा वह स्वयं अपने साथ करता है, और अपने वचन का पक्का व भला होना चाहिए, क्योंकि उसके मित्र और परिचित उसे प्रेम करते हैं, जब वह असुरक्षित स्थिति में होता है, वे उसकी रक्षा करते हैं और ऐसे अवसरों पर उसकी सम्पत्ति की रक्षा करते हैं, वे खतरे में एक आश्रय बन जाते हैं, वे उसकी विपत्ति में उसका साथ नहीं छोड़ते और वे उसके परिवार के लिये सम्मान दर्शाते हैं।''

6. मालिक और नौकर के लिए विनय (जीवन-नियम)

1. "एक मालिक को अपने नौकरों और कर्मचारियों के साथ उनकी क्षमता अनुसार काम देकर, उन्हें भोजन तथा पारिश्रमिक देकर, रूग्णावस्था में उनकी तीमारदारी करके, उनके साथ स्वादिष्ट भोज्य पदार्थ बाँट कर खाकर और उन्हें समय-समय पर छुट्टी देकर व्यवहार करना चाहिए, क्योंकि नौकर और कर्मचारी अपने मालिक से प्रेम करते हैं, वे उससे पहले उठते हैं, वे मालिक के सोने के बाद सोते हैं, जो उन्हें दिया जाता है, वे उससे सन्तुष्ट रहते हैं, वे भली-भांति अपना कार्य करते हैं, और वे सर्वत्र उसकी प्रशंसा और यश फैलाते हैं।"
2. "एक कुल-पुत्र को धार्मिक गुरुओं की सेवा कर्म, वचन, और मन से स्नेहपूर्वक करके, उनके लिये सदैव अपने घर के द्वार खुले रखके उनकी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करनी चाहिये, क्योंकि धार्मिक गुरु उसे बुराई से बचाते हैं, वे उसे भलाई के लिये प्रेरित करते हैं, वे उदार विचारों के साथ प्रेम करते हैं, जो उसने नहीं सुना होता है, वे उसे उसकी शिक्षा देते हैं और उसे सही और परिशुद्ध करते हैं, जो उसने सुना होता है।"

7. उपसंहार

1. तथागत के इस प्रकार कहने पर, "युवक गृहथ सिगाल यह बोला, "भगवान अद्भुत है, सुन्दर, जैसे कोई उखड़े को जमा दे या उसे प्रकट कर दे, जो ढका हुआ हो, या उसे रास्ता दिखा दे जो पथ-भ्रष्ट हो गया हो, या अंधेरे में रास्ता दिखला दे। उसे इसी प्रकार तथागत द्वारा विभिन्न तरीकों से सत्य को सुस्पष्ट कर दिया गया है।"
2. "और मैं भी बुद्ध, धम्म तथा संघ की शरण में जाता हूँ। कृपया तथागत मुझे अपने उपासक के रूप में आज से जीवनपर्यन्त तक अपनी शरण में स्वीकार करें।"

8. लड़कियों के लिए विनय (जीवन-नियम)

1. एक बार तथागत भद्दिय के समीप, जजीय वन में निवास कर रहे थे। वहाँ मेण्डक का पौत्र वहां उग्गह उनसे मिलने आया और अभिवादन करके एक ओर बैठ गया। इस प्रकार बैठे हुए उसने तथागत से कहा:
2. "भगवान्, कृपया आप अन्य तीन भिक्षुओं के साथ कल मेरे यहाँ भोजन का निमंत्रण स्वीकार करें।"
3. तथागत ने मौन रहकर स्वीकार किया।

4. तब उग्गह ने देखा कि तथागत ने उसका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया है, अपने आसन से उठा, अभिवादन किया, और जाने की आज्ञा ले, तथागत की प्रदक्षिणा करके चला गया।

5. रात के बीत जाने पर दूसरे दिन तथागत ने प्रातः चीवर धारण किया, पात्र और चीवर ले उग्गह के घर गये, और वहाँ सुसज्जित आस पर बैठ गये। उग्गह ने स्वयं अपने हाथों से भोजन परोसा और विविध व्यंजनों से तथागत को सन्तुष्ट किया।

6. और तब तथागत ने अपने पात्र से अपना हाथ खींच लिया अर्थात् भोजन समाप्त कर लिया तो वह एक और बैठ गया। इस प्रकार बैठे हुए, उसने कहा:

7. "भगवान्! ये मेरी लड़कियाँ अपने-अपने पतियों के परिवारों में जाएँगी; भगवान् कृपया इन्हें परामर्श दें, तथागत उन्हें सलाह दें, जो चिरकाल तक उनके हित व सुख का कारण बने।"

8. तब तथागत ने उनसे कहा, "लड़कियो! इन कारणों से इस प्रकार से स्वयं अभ्यास करो कि हमारा हित चाहने वाले, हमारी खुशी खोजने वाले तथा दयालु हमारे माता-पिता जिस किसी पति को हमें सौंपेंगे प्रातः काल जल्दी उठेंगी, सोने वालों में अन्तिम होंगी, स्वेच्छा से काम करने वाली होंगी, सभी वस्तुओं को मधुरता से व्यवस्थित करेंगी तथा मधुर-भाषिणी होंगी। लड़कियो! स्वयं इस प्रकार अभ्यास करो।"

9. "और इस तरह से भी स्वयं अभ्यास करो, लड़कियो! हम उन सभी का आदर, सम्मान, महत्त्व और मान करेंगी, जो हमारे पति के रिश्तेदार हों, चाहे माता या पिता हों, साधु या दिव्य-पुरुष हों, और उनके आगमन पर उन्हें आसन और जल देने वाली होंगी।"

10. "और इस तरह से भी स्वयं अभ्यास करो। लड़कियो! हम अपने पति का जो काम होगा, उसमें दक्ष और कुशल होंगी, चाहे वह ऊन का हो या रुई का, उस कार्य को समझना हम अपना लक्ष्य बनाएंगी, जिससे हम उस कार्य को कर सकें और करवा सकें।"

11. "और इस तरह से भी स्वयं अभ्यास करो, लड़कियो! कारीगरों के प्रत्येक के कार्य को हम जानेंगी कि क्या कार्य हो गया है और उनकी लापरवाहियों से क्या कार्य नहीं हुआ है। हम रोगी की क्षमता और कमजोरियों को जानेंगी, हम उनके रोग के अनुसार प्रत्येक के लिये गरिष्ठ और सुपाच्य भोजन को विभाजित करेंगी।"

12. "और इस तरह से भी स्वयं अभ्यास करो, लड़कियो! धन, धान, रजत और स्वर्ण को जो हमारे पति घर लायेंगे, उसे हम सुरक्षित रखेंगी, उस पर निगाह रखेंगी और उसकी रक्षा करेंगी, तथा इस प्रकार कार्य करेंगी कि कोई लुटेरा, चोर, उचक्का, डाकू, उसे ले जा न सके।"

13. यह परामर्श सुनकर, उग्गह की लड़कियों ने बहुत खुशी अनुभव की और तथागत के प्रति बड़ी कृतज्ञता दर्शायी।

अध्याय - छह

भगवान बुद्ध और उनके समकालीन

पहला भाग

पहला भाग	-	उनके समर्थक
दूसरा भाग	-	उनके विरोधी
तीसरा भाग	-	उनके धम्म के आलोचक
चौथा भाग	-	मित्र और प्रशंसक

पहला भाग

उनके समर्थक

1. राजा बिम्बिसार का दान
2. अनाथपिण्डिक का दान
3. जीवक का दान
4. आम्रपालि का दान
5. विशाखा की दान-शीलता

1. राजा बिम्बिसार का दान

1. राजा बिम्बिसार तथागत के मात्र एक सामान्य अनुयायी नहीं थे, बल्कि वह एक महान उपासक और उनके धम्म के एक महान समर्थक भी थे।

2. स्वयं को गृहस्थ उपासक बनाने के उपरान्त बिम्बिसार ने पूछा, ''तथागत, कृपा करके भिक्षु संघ सहित कल का अपना भोजन मेरे साथ करने की स्वीकृति दें?''

3. तथागत ने मौन रहकर अपनी सहमति व्यक्त की।

4. राजा बिम्बिसार ने जब यह समझ लिया कि तथागत ने उनका निमंत्रण स्वीकार कर लिया है, अपने आसन से उठे, आदरपूर्वक तथागत का अभिवादन किया और उनकी प्रदक्षिणा करके चले गये।

5. जब रात बीत गयी, बिम्बिसार ने उत्तम भोजन तैयार करने का आदेश दिया और यथोचित समय पर तथागत को इन शब्दों में सूचित किया, ''यह उचित समय है, तथागत! भोजन तैयार है।''

6. पूर्वाह्न में तथागत ने अपना चीवर पहन कर अपना भिक्षा-पात्र लिया और चीवर लेकर सभी पूर्व जटिल भिक्षुओं के साथ राजगृह नगर में प्रवेश किया।

7. तथागत राजा बिम्बिसार के महल में पहुंचे। वहाँ पहुँचने के उपरान्त, वे उन भिक्षुओं के साथ, जो उनका अनुसरण कर रहे थे, अपने लिये सुसज्जित आसनों पर विराजमान हो गये। तब राजा बिम्बिसार ने स्वयं अपने हाथों से बुद्ध प्रमुख भिक्षु-संघ को भोजन परोसा, और जब तथागत ने अपना भोजन समाप्त कर लिया और अपना पात्र व अपने हाथ धो लिये, और बिम्बिसार उनके समीप आ बैठा।

8. उनके समीप बैठे हुए राजा बिम्बिसार ने सोचा, ''मैं तथागत के रहने के लिये स्थान की व्यवस्था कहाँ करूँ? जो न तो गाँव से अत्यधिक दूर हो और न ही अत्यधिक समीप हो, आवागमन के लिये उपयुक्त हो, तथा उन लोगों के लिये, जो उनके पास आना चाहें, सरलता से सुगम्य हो, दिन में अत्यधिक भीड़-भाड़ वाला न हो, जहाँ कम शोर-शराबा हो, रात में आवाज न हो, एकान्त हो, जन-समूह से प्रच्छन्न हो, एकांतवास के जीवन के लिये पूर्णतया उपयुक्त हो।''

9. राजा बिम्बिसार ने सोचा, ''यह वेलुवन है जो मेरा विहार उद्यान है, जो न तो नगर से अत्यधिक दूर है और न ही अत्यधिक समीप है, आवागमन के लिये

उपयुक्त है। कैसा हो यदि मैं बुद्ध प्रमुख भिक्षु-संघ को वेलुवन विहार उद्यान दान के रूप में अर्पित कर दूँ?"

10. तब राजा बिम्बिसार ने जल से भरा एक स्वर्ण-पात्र लिया, जिसमें बुद्ध के हाथ में जल डाला और तथागत को यह कहते हुए दान दिया, "भगवन्! मैं यह वेलुवन विहार उद्यान, बुद्ध प्रमुख भिक्षु संघ को दान में देता हूँ।" तथागत ने उद्यान स्वीकार किया।

11. तब तथागत धार्मिक प्रवचन द्वारा बिम्बिसार को उत्साहित, आनन्दित और आह्लादित करने के उपरान्त अपने आसन से उठे और चले गये।

12. और इस घटना के परिणामस्वरूप तथागत ने, एक धार्मिक प्रवचन देने के उपरान्त भिक्षुओं को सम्बोधित किया, "भिक्षुओ! इस उद्यान विहार को स्वीकार करने की अनुमति देता हूँ।"

2. अनाथपिण्डिक का दान

1. धम्म-दीक्षा ग्रहण करने के उपरान्त अनाथपिण्डिक एक बार तथागत के पास गया। अभिवादन के बाद दाहिनी ओर अपना आसन ग्रहण कर, वह बोले :-

2. "भगवान्! जानते हैं कि मैं श्रावस्ती में निवास करता हूँ, जो धन-धान्य से सम्पन्न है और जहाँ शान्ति व्याप्त है। वहाँ महान् राजा प्रसेनजित् का शासन है।"

3. "अब मैं वहाँ एक विहार स्थापित करना चाहता हूँ, मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि आप श्रावस्ती आयें और मुझसे यह स्वीकार करें।"

4. तथागत मौन रहे और इस प्रकार दान स्वीकार करने की अपनी सहमति प्रदान की।

5. अनाथपिण्डिक ने जो निस्सहाय का मित्र और अनाथों का सहायक था, घर लौटकर हरे-भरे और निर्मल जल के स्रोतों से युक्त राजकुमार जेत के उद्यान को देखा, और सोचा: "यह वह स्थान है, जो एक विहार के रूप में तथागत के भिक्षु-संघ के लिये सबसे उपयुक्त रहेगा।" और वे राजकुमार के पास गये और उनसे वह उद्यान खरीदने की अनुमति माँगी।

6. राजकुमार उद्यान को बेचने के इच्छुक नहीं था, इसलिये उन्होंने उसका बहुत अधिक मूल्य लगाया। उन्होंने पहले तो अस्वीकार कर दिया, किन्तु अन्त में कहा: "यदि तुम इस स्थल को स्वर्ण-मुद्रा (कार्षापण) से ढँक सको, तो तुम इसे ले सकते हो और किसी अन्य मूल्य पर नहीं।"

7. अनाथपिण्डिक प्रसन्न हुए और उन्होंने अपनी स्वर्ण-मुद्राएँ बिछवाना प्रारम्भ कर दिया, किन्तु जेत ने कहा, "अपने को कष्ट मत दो क्योंकि मैं इसे नहीं बेचूँगा।" किन्तु अनाथपिण्डिक ने आग्रह किया, इस प्रकार उनमें मतभेद हुए और विवाद हुआ। अन्ततोगत्वा वे न्यायालय की शरण में गये।

8. इस बीच लोगों ने इस असाधारण कार्यवाही की चर्चा करनी प्रारम्भ कर दी। राजकुमार ने अधिक विवरण सुनने के पश्चात् और यह जानकारी प्राप्त कर कि अनाथपिण्डिक न केवल अत्यधिक धनी था, बल्कि निष्कपट और सच्चा भी था, उसके उद्देश्यों के विषय में पूछताछ की। तथागत का नाम सुनकर राजकुमार एक पुण्य-कार्य में भागीदार बनने के लिये उत्सुक हो गया और उसने यह कहते हुए, स्वर्ण मुद्राओं का आधा भाग ही स्वीकार किया "जमीन तुम्हारी है, किन्तु वृक्ष मेरे हैं। मैं तथागत को दान के अपने हिस्से के रूप में वृक्षों को दान दूँगा।"

9. शिलान्यास कर चुकने के पश्चात्, उन्होंने तथागत के दिये निर्देशों के अनुसार विहार को बनवाना प्रारम्भ कर दिया, जो उचित अनुपात में ऊँचाइयों तक ऊपर उठ गया और यह यथोचित नक्काशियों द्वारा सुंरदरतापूर्वक अलंकृत था।

10. यह विहार जेतवन कहलाया और अनाथपिण्डिक ने तथागत को श्रावस्ती आने और दान स्वीकार करने के लिये आमन्त्रित किया। तथागत कपिलवस्तु को छोड़ श्रावस्ती आ गये।

11. जब तथागत ने जेतवन में प्रवेश किया, अनाथपिण्डिक ने पुष्प-वर्षा की और सुगन्धित धूप जलाई और दान देने की प्रक्रिया के रूप में उसने यह कहते हुए स्वर्ण सुराही से जल उड़ेला, "यह जेतवन विहार मैं संसार भर के भिक्षु-संघ के प्रयोग के लिये समर्पित करता हूँ।"

12. तथागत ने दान स्वीकार किया और उत्तर दिया, "सभी अमंगल प्रभावों का नाश हो; यह दान सदाचरण के राज्य का विस्तार करे और मनुष्यमात्र और विशेषकर दाताओं के स्थायी कल्याण की वृद्धि करे।"

13. अनाथपिण्डिक उन अस्सी प्रमुख शिष्यों में से एक थे, जो प्रमुख दानदाता की पद्वी से अलंकृत थे।

3. जीवक का दान

1. जब कभी तथागत राजगृह में होते थे, जीवक नामक वैद्य दिन में दो बार तथागत के दर्शनार्थ जाया करता था।

2. जीवक को लगा कि राजा बिम्बिसार ने तथागत को जिस वेलुवन को दान किया हुआ, वह अत्यधिक दूर है।

3. जीवक के पास राजगृह में अपना उद्यान था, जो आम्रवन के नाम से जाना जाता था और जो उसके निवास-स्थान के पर्याप्त समीप था।
4. उसने उसको सभी अंगों से युक्त एक विहार बनवाने तथा आम्रवन व विहार तथागत को समर्पित करने के विषय में सोचा।
5. अपने मन में यह विचार लेकर, वह तथागत के पास गया और उनसे अपनी इच्छायें पूर्ण करने की कामना की।
6. तथागत ने मौन रह कर अपनी स्वीकृति दर्शायी

4. आम्रपालि का दान

1. उस समय तथागत नादिका में ठहरे हुए थे और स्थान-परिवर्तन की इच्छा कर रहे थे। उन्होंने आनन्द को सम्बोधित किया और कहा, "आओ, आनन्द! हम वैशाली की ओर चलें।"
2. "ऐसा ही हो भगवन्," आनन्द ने स्वीकृति के रूप में तथागत से कहा।
3. तब तथागत ने एक विशाल भिक्षु-संघ के साथ वैशाली के लिये प्रस्थान किया और वहाँ (वैशाली में) तथागत आम्रपालि के आम्रवन में ठहरे।
4. अब गणिका आम्रपालि ने सुना कि तथागत वैशाली में आये हैं और उसके आम्रवन में ठहरे हुए हैं। तो अपने राजकीय वाहनों को तैयार होने का आदेश देकर, वह उनमें से एक में चढ़ कर, और अपने कारवां सहित वैशाली से अपने आम्रवन की ओर गयी। वह वहाँ तक रथ में गयी, जहाँ तक रथ द्वारा जाने के लिये जमीन उपयुक्त थी; इसके बाद उसने पैदल उस स्थल की ओर प्रस्थान किया जहाँ तथागत थे और आदरपूर्वक अभिवादन कर एक ओर अपना आसन ग्रहण किया। और जब उसने तथागत का प्रवचन ग्रहण किया।
5. उसके बाद उसने तथागत को सम्बोधित किया और कहा, "भगवान्! भिक्षु-संघ के साथ कल मेरे घर में भोजन ग्रहण कर मुझे सम्मानित करेंगे?"
6. तथागत ने मौन द्वारा अपनी स्वीकृति दी। तब जब गणिका आम्रपालि ने देखा कि तथागत ने स्वीकृति दे दी, वह अपने आसन से उठी और उन्हें अभिवादन किया तथा उनकी प्रदक्षिणा कर वह वहाँ से चली गयी।
7. जब वैशाली के लिच्छवियों ने सुना कि तथागत वैशाली में आये हुए हैं, और आम्रपालि के आम्रवन में ठहरे हुए हैं। वे भी बुद्ध को भोजन के लिये अपने निवास-स्थान पर आमंत्रित करना चाहते थे और अनके राजकीय वाहनों को

तैयार कर वे प्रत्येक उनमें से एक-एक में सवार होकर अपने कारवाँ सहित चल पड़े।

8. वे और आम्रपलि मार्ग में एक दूसरे के आमने-सामने आ गये।

9. और आम्रपालि युवक लिच्छवियों रथों के पहियों से पहिया टकराती हुई पास से गुजरी और लिच्छवियों ने गणिका आम्रपालि से पूछा, ''क्या बात हैं, आम्रपालि! कि तुम इस प्रकार हमसे रथ टकराती हुई जा रही हो?''

10. ''मेरे स्वामियों! मैंने अभी तथागत को और उनके भिक्षुओं को कल के भोजन के लिये आमंत्रित किया है,'' आम्रपालि ने कहा।

11. ''आम्रपालि! यह सम्मान एक लाख के बदले हमें बेच दो,'' उन्होंने कहा।

12. ''मेरे स्वामियों! यदि आप इसके उपनगरों सहित सम्पूर्ण वैशाली भी मुझे प्रस्तुत करें, तो भी मैं यह अवसर नहीं छोड़ूँगी।''

13. लिच्छवी यह चिल्लाते हुए अपने हाथ मलने लगे, ''हम इस आम्रपालि द्व ारा परास्त हो गये हैं। हम इसे आम्रपालि द्वारा पराजित हो गये हैं,'' और वे आम्रपालि के आम्रवन की ओर बढ़ गये।

14. यह जानते हुए कि वे परास्त हो गये थे उन्होंने फिर भी इस आशा से तथागत के पास जाने की सोची कि संभवतः तथागत पुनर्विचार करें और उनके निमन्त्रण को प्राथमिकता दें। अतः वे आम्रपालि के आम्रवन की ओर बढ़ गये।

15. जब तथागत ने दूर से लिच्छवियों को आते हुए देखा, उन्होंने भिक्षुओं को सम्बोधित किया और कहा, ''भिक्षुओ! जिन भिक्षुओं ने कभी देवताओं को नहीं देखा है, वह इन लिच्छवियों की मण्डली को ध्यान से देखें, लिच्छवियों की इस मण्डली का अवलोकन करें, लिच्छवियों की इस मण्डली से अनुमान लगायें, क्योंकि वे परलोक के देवताओं के समान हैं।''

16. और जब वे रथों पर चढ़ कर वहाँ तक पहुँच गये, जहाँ तक रथों के लिये जमीन उपयुक्त थी, लिच्छवी वहाँ उतर गये और तब पैदल उस स्थान तक गये जहाँ तथागत विराजमान थे और आदरपूर्वक अभिवादन कर उनकी बगल में अपने आसन ग्रहण किये।

17. तब उन्होंने तथागत को सम्बोधित किया और कहा, ''तथागत! भिक्षु-संघ के साथ कल हमारे घर में भोजन कर हमें सम्मानित करें?''

18. उनका उत्तर था, ''लिच्छवियों! मैंने कल आम्रपालि के यहाँ भोजन करने का वचन दे दिया है।''

19. तब लिच्छवी जान गये कि वे असफल हो गये हैं। और अपना धन्यवाद ज्ञापित करने और तथागत के वचनों का अनुमोदन करने के उपरान्त वे अपने आसनों से उठे और तथागत को प्रणाम किया तथा उनकी प्रदक्षिणा करके वहाँ से विदा हुए।

20. रात की समाप्ति पर गणिका आम्रपालि ने अपने प्रसाद के भिन्न-भिन्न प्रकार के स्वादिष्ट भोजन तैयार कराए और यह कहते हुए तथागत को सूचना भिजवायी कि "भगवान्, समय हो गया है और भोजन तैयार है।"

21. तब तथागत ने प्रातः काल चीवर धारण किया, अपना पात्र और चीवर लिया और भिक्षुओं के साथ उस स्थान पर गये जहाँ आम्रपालि का प्रासाद था और जब वे वहाँ आ गये तब उस आसन पर विराजमान हो गये, जो उनके लिये सुसज्जित था। और गणिका आम्रपालि ने बुद्ध प्रमुख भिक्षु-संघ को स्वादिष्ट भोजन परोसे और अन्त तक आग्रहपूर्वक परोसती रही, जब तक उन्होंने अस्वीकार नहीं कर दिया।

22. जब तथागत ने अपना भोजन समाप्त कर लिया और अपना पात्र तथा अपने हाथ धो लिये, गणिका ने एक नीचा आसन मँगाया और उनके बगल में बैठ गयी तथा तथागत को सम्बोधित कर कहा:

23. "भगवान!, मैं अपना उद्यान आपके एवं भिक्षु-संघ को दान करती हूँ।" तथागत ने दान स्वीकार कर लिया और एक धार्मिक प्रवचन देने के उपरान्त वे अपने आसन से उठे और वहाँ से चले गये।

5. विशाखा की दान-शीलता

1. विशाखा श्रावस्ती की एक धनी महिला थी। उसके अनेक बच्चे और नाती-पोते थे।

2. जब तथागत श्रावस्ती में ठहरे हुए थे, विशाखा उस स्थान पर गयी, जहाँ तथागत थे और उन्हें अपने घर पर भोजन ग्रहण करने का निमन्त्रण दिया, जिसे तथागत ने स्वीकर कर लिया।

3. उस रात में तथा अगली सुगह मूसलाधार वर्षा हुई और भिक्षुओं ने अपने चीवरों को सूखा रखने के लिये उतार दिए और वर्षा अपने नंगे शरीरों पर पड़ने दी।

4. अगले दिन तथागत ने जब अपना भोजन समाप्त कर लिया, विशाखा ने अपना आसन उनके बगल में ग्रहण किया और इस प्रकार बोली, भगवान्! मैं आप से आठ वरदान माँगती हूँ।"

5. तब तथागत ने कहा, "हे विशाखा! तब तक कोई वरदान नहीं देते जब तक वे यह न जाने लें कि वे क्या हैं?"

6. विशाखा ने उत्तर दिया, "भगवन्! जो मैं वरदान मांगने जा रही हूँ वे उचित और आपत्ति-रहित हैं।"

7. वरदान माँगने की अनुमति मिलने पर, विशाखा ने कहा, "मैं चाहती हूँ, भगवान्, अपने पूरे जीवन-काल के दौरान संघ को वर्षा-काल में चीवर, आगन्तुक भिक्षुओं को भोजन, निर्गामी भिक्षुओं को भोजन तथा रोगी भिक्षुओं को भोजन, उनके लिये भोजन, जो रोगियों की सेवा करते हैं, रोगी के लिये दवा, संघ के लिये चावल-दूध की निरन्तर आपूर्ति तथा भिक्षुणियों के लिये नहाने का चीवर दान कर सकूँ।"

8. तथागत ने कहा, "किन्तु, हे विशाखा! तथागत से इन आठ वरदानों को माँगने के पीछे तुम्हारा प्रयोजन क्या है?"

9. तब विशाखा ने उत्तर दिया, "भगवान्! मैंने अपनी नौकरानी को आदेश दिया और कहा, "तुम जाओ और भिक्षु-संघ को सूचित करो कि भोजन तैयार है, तब मेरी नौकरानी गयी; किन्तु जब वह विहार में पहुँची, उसने देखा कि भिक्षुओं ने अपने चीवर उतार रखे थे, उस समय वर्षा हो रही थी, तो उसने सोचा: "भिक्खु नहीं हैं, बल्कि नग्न तपस्वी हैं जो अपने ऊपर वर्षा होने दे रहे हैं। अतः वह मेरे पास लौट आयी, तदनुसार सूचित किया तब मुझे उसको दूसरी बार भेजना पड़ा था।"

10. "भगवान् नग्नता! अशुचिपूर्ण और घृणित है। भगवान्! यही वह परिस्थिति थी जिससे अपने पूरे जीवन-काल के दौरान संघ को वर्षाकाल के प्रयोग के लिये विशेष चीवर उपलब्ध कराने की इच्छा मेरे ध्यान में आई है।"

11. "जहाँ तक मेरी दूसरी इच्छा का सम्बन्ध है, भगवान्! एक आगन्तुक भिक्षु, पीछे मार्गों से अपरिचित होने के कारण टेड़े-मेड़े मार्गों से आगे के कारण, और उन स्थलों को न जानते हुए जहाँ से भोजन प्राप्त किया जा सकता है, भिक्षा के लिये प्रयास करते हुए अपने मार्ग से थका-माँदा आता है। भगवान्! यही वह कारण था जिससे मैं अपने पूरे जीवन-काल के दौरान संघ के आगन्तुक भिक्षुओं के लिये भोजन उपलब्ध कराने की इच्छा मेरे ध्यान में आई है।"

12. "तीसरे, भगवान्! निर्गामी भिक्षु, जब भिक्षाटन की तलाश कर रहा हो, पीछे छूट सकता है, या उस स्थान पर अत्यन्त देर से पहुँचता है, जहाँ वह जाना चाहता हो, वह मार्ग में थक-माँदा ही रवाना हो जाता है।"

13. "चौथे, भगवान्! बीमार भिक्षु को उचित भोजन न मिले, तो उसका रोग बढ़ भी सकता है और मृत्यु भी हो सकती है।"

14. "पाँचवें, भगवान्! भिक्षु जो रोगी की सेवा-सुश्रुषा कर रहा हो, तो उसको अपना भोजन प्राप्त करने के लिये बाहर जाने का अवसर नहीं मिल सकता।"

15. "छठे भगवान्! यदि रोगी भिक्खु को उचित दवायें नहीं प्राप्त हों, तो उसका रोग बढ़ भी सकता है, और उसकी मृत्यु भी हो सकती है।"

16. "सातवें, भगवान्! मैंने सुना है कि तथागत ने चावल-दूध (खीर, पायस) की प्रशंसा की है, क्योंकि यह बुद्धि को तत्परता देता है, भूख और प्यास को मिटाता है; यह स्वास्थ के लिये पौष्टिक आहार है और रोगी के लिये यह दवा है। इसलिये मैं अपने पूरे जीवन-काल के दौरान संघ को चावल-दूध की निरंतर आपूर्ति उपलब्ध कराने की इच्छा रखती हूँ।" "अन्त में, भगवान!, भिक्षुणियों को अचिरवती नदी में एक ही घाट पर गणिकाओं के साथ भी नग्नावस्था में नहाने की आदत है। भगवान! उस समय गणिकायें यह कहकर भिक्षुणियों का मजाक उड़ाती हैं, देवियों जब तुम युवा हो, तो इस ब्रह्मचर्य पालन से क्या प्रयोजन है? जब वृद्ध हो जाओ तब ब्रह्मचर्य पालन करना, इस प्रकार तुम्हारे दोनों हाथों में लड्डू रहेंगे। भगवान्! नग्नता स्त्री के लिये अशुचिपूर्ण, घृणित और वीभत्स है।"

18. भगवान्! "ये ही परिस्थितियाँ हैं जो मेरे ध्यान में थीं।"

19. तथागत ने कहा, "हे विशाखा! किन्तु तथागत से इन आठ वरदानों को माँगने में स्वयं तुम्हारे लिये तुम्हारे ध्यान में क्या प्रयोजन थे?"

20. विशाखा ने उत्तर दिया, "भगवान्! वे भिक्षु, जिन्होंने विभिन्न स्थलों पर वर्षा-काल व्यतीत किया है, तथागत से मिलने श्रावस्ती से आयेंगे। और तथागत के पास आने पर वे कहेंगे, भगवान्! अमुक-अमुक भिक्षु की मृत्यु हो गयी है। अब उसकी गति क्या है?' तब तथागत जैसा भी विषय होगा स्पष्ट करेंगे कि उसने स्रोतापन्न आदि मार्ग-फल प्राप्त कर लिया है; कि उसने निर्वाण में प्रवेश कर लिया है या अर्हत् पद प्राप्त कर लिया है।"

21. "और मैं, उनके पास जाकर, पूछूँगी, भिक्षुओ! क्या वह भिक्षु उनमें से एक था, जो पहले श्रावस्ती में थे, तब मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचूँगी, 'निश्चय ही उस भिक्षु ने वर्षा काल के लिये चीवर प्राप्त किया होगा, या आगन्तुक भिक्षुओं ने भोजन किया होगा, या निर्गामी भिक्षुओं ने भोजन किया होगा, या रोगी के लिये दिया भोजन किया होगा, या वह भोजन प्राप्त किया होगा जो रोगी की सेवा

करने वालों के लिये है, या रोगी के लिये दवा प्राप्त की होगी, या चावल-दूध की निरंतर आपूर्ति प्राप्त होगी।'''

22. ''तब मेरे भीतर प्रसन्नता उत्पन्न होगी, इस प्रकार प्रसन्नता से भरा आनन्द मुझे मिलेगा और इस तरह आनन्दित होने से मेरा सम्पूर्ण शरीर शांति प्राप्त करेगा। इस प्रकार शांत होने से मुझे सन्तोष की एक सुखद भावना की अनुभूति होगी; और उस सुख में मेरा मन शांत हो जायेगा। वह मेरे लिये नैतिक बल प्रदान करेगा, सात सम्बोधि-अंगों का पालन करना होगा! भगवान्! तथागत ने इन आठ वरदानों को माँगने में स्वयं मेरे ध्यान में ये प्रयोजन थे।''

23. तब तथागत ने कहा, ''यह बहुत अच्छा है, विशाखा! तुमने बहुत अच्छा किया है कि तुमने इन प्रयोजनों को ध्यान में रखकर तथागत से इन आठ वरदानों को माँगाा है। उन लोगों को दिया गया दान, जो इसके योग्य हैं अच्छी भूमि में अच्छे बीज डालने के समान हैं, जिससे भरपूर फल प्राप्त होते हैं। किन्तु उनको दी गयी भिक्षा को अभी भी राग-द्वेषों के वशीभूत एक बंजर भूमि के बीज डालने के समान है। भिक्षा ग्रहण करने वाले के राग-द्वेष मानो पुण्य की वृद्धि में बाधक हो जाते हैं।''

24. तब तथागत ने विशाखा के इन शब्दों के प्रति पुण्याभुमोदन किया; ''तथागत की उपासिका, जीवन में एक ईमानदार स्त्री, जो कुछ भी दान श्रद्धायुक्त चित्त से और लोभ रहित होकर देती है, उसका दान दिव्य है, दुख का नाश करने वाला है और सुख को उत्पन्न करने वाला होता है।'' वह मार्ग में प्रवेश करने के उपरान्त दूषित और अपवित्रता से रहित सुखद जीवन रखते हुए, वह सुखी होती है; और वह अपने दानशील कर्मों में आनन्दित होती है।''

25. विशाखा ने संघ को पूर्वाराम-विहार दान कर दिया, वह गृहस्थ उपासिकाओं की बनने वाली प्रथम अध्यक्षा थीं।

दूसरा भाग

भगवान् बुद्ध के विरोधी

1. जादू-टोना द्वारा धर्मान्तरण का आरोप
2. समाज पर व्यर्थ का भार होने का आरोप
3. सुखी गृहस्थियों को उजाड़ने का आरोप
4. तैर्थिकों द्वारा हत्या का मिथ्यारोप
5. तैर्थिकों द्वारा अनैतिकता का मिथ्यारोप
6. देवदत्त फुफेरा भाई तथा शत्रु
7. ब्राह्मण और भगवान् बुद्ध

1. जादू-टोना द्वारा धर्मान्तरण का आरोप

1. एक बार तथागत वैशाली के महावन की कुटागार शाला में निवास कर रहे थे। उस समय लिच्छवीभद्दिय तथागत के पास आया और बोला, "भगवान! लोग कहते हैं' कि श्रमण गौतम एक जादूगर है और जादू-टोना खेल जानता है, जिससे वह दूसरे मतों के अनुयायियों को प्रलोभित करता है।"

2. "जो ऐसा कहते हैं, वे तथागत का मिथ्या ढंग से पेश करते हैं। निस्सन्देह, भगवान्! हम लिच्छवी इस आरोप पर विश्वास नहीं करते। किन्तु हम जानना चाहेंगे कि इस विषय में तथागत का क्या कहना है।"

3. भगवान् ने कहा, "आओ, भद्दिय! सुनो, न तो सुनी-सुनाई बात को, न परंपरा से चली आयी बात को, और न ही उस बात को स्वीकार करो कि लोग ऐसा कहते हैं। न इसलिए स्वीकार करो, क्योंकि यह धर्मग्रन्थों में लिखी है या केवल वह तर्कपूर्ण है, और न ही न्याय शास्त्र के आधार पर ही, न ही आभासों के ध्यान से मान्य है, न ही इसलिये कि वह बात तुम्हारे दृष्टिकोण के अनुरूप है, न ही इसलिये कि तुम सोचते हो यह बात ठीक है, और न ही इस विचार के साथ कि, प्रत्येक को श्रमण का आदर करना चाहिये अर्थात् सम्मान के कारण किसी बात को स्वीकार करना चाहिये।"

4. "किन्तु, भद्दिय! यदि सत्य के आधार पर तथ्यों के परीक्षण द्वारा स्वयं यह जान लो कि किया गया कर्म पाप युक्त है या अकुशल कर्म या बुद्धिमान लोगों द्वारा निन्दित किया गया कर्म और उसका परिणाम हानिकर है, तो भद्दिय! ऐसे कर्मों का त्याग करो।"

5. "अब जहाँ तक तुम्हारे प्रश्न का सम्बन्ध है, भद्दिय! मैं तुमसे पूछता हूँ वे जो मुझ पर जादू-टोना द्वारा धर्मान्तरण का आरोप लगाते हैं, क्या वे महत्वाकांक्षी लोग नहीं हैं?" "हाँ, वे हैं भगवान्" भद्दिय ने उत्तर दिया।

6. "तो भद्दिय! क्या एक आदमी महत्वाकांक्षी हो, लोभ के वशीभूत होकर और लोभ से अभिभूत होकर, अपनी महत्वाकांक्षा को प्राप्त करने के लिये झूठ नहीं बोलता या अपराध नहीं करता?" "ऐसा ही है, भगवन्" भद्दिय ने उत्तर दिया।

7. "तो भद्दिय! जब ऐसा आदमी जो महत्वाकांक्षी हो, और लोभ, द्वेष और बदले की भावना से वशीभूत हो जाता है, वह दूसरे लोगों को उन लोगों के विरुद्ध

झूठे आरोप लगाने के लिये प्रेरित नहीं करता, जो उनकी महत्त्वकांक्षा के मार्ग में आते हैं?'' ''ऐसा ही है, भगवान्,'' भद्दिय ने कहा।

8. ''तो भद्दिय! मैं अपने शिष्य को इस प्रकार प्रेरित करने के लिये कहता हूँ, 'आओ! मेरे प्रिय मानव, कृपणता एवं लोभ के विचारों को नियन्त्रित करते हुए निवास करो। यदि तुम उस पर काबू रखते हो, तो मन, वचन या कर्म को कृपणता व लोभ से उत्पन्न कार्यों को नहीं करोगे। द्वेष और मोह (अविद्या) को नियन्त्रित करते हुए निवास करो।''

9. ''अत: भद्दिय! जो श्रमण और ब्राह्मण, मुझ पर ऐसे झूठा आरोप लगाते हैं, वे झूठे, मृषावादी हैं, जब आरोप लगाते हैं, कि श्रमण गौतम एक जादूगर है और जादू-टोना का खेल जानता है, जिससे वह दूसरे सम्प्रदायों के अनुयायियों का मत बदल देता है।''

10. ''हे भगवान्! निस्सन्देह यह भाग्य की बात है, आप का जादू-टोना मंगलकारी उचित खोज है। भगवान्! क्या ऐसा हो सकता है कि मेरे सभी प्रिय सगे-सम्बन्धी इसी खेल द्वारा प्रलोभित हो जाएँ, तो निश्चय ही उनके हित और सुख के लिये सहायक होगा। भगवान्! क्या ऐसा हो सकता है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ण जादू के इसी खेल द्वारा उत्साहित हो जायें, तो निश्चय ही एक लम्बे समय तक उनके हित और सुख के लिये सहायक होगा।''

11. ''ऐसा ही है, भद्दिय! ऐसा ही है भद्दिय। यदि जादू के इस खेल द्वारा प्रलोभित सभी वर्ण पापयुक्त परिस्थितियों का परित्याग कर दें, तो मेरा यह खेल संसार के महान् हित और सुख के लिए होगा।''

2. समाज पर व्यर्थ का भार होने का आरोप

1. भगवान् बुद्ध पर यह भी आरोप लगाया गया था कि वह समाज पर भार स्वरूप हैं और काम करके अपनी जीविका अर्जित नहीं करते थे। इस आरोप पर उनका उत्तर नीचे दिया गया है:

2. एक बार भगवान! मगध जनपद के दक्षिण-गिरि प्रदेश में एकनाला नामक ब्राह्मण गाँव में निवास कर रहे थे। उसी समय कसि भारद्वाज ब्राह्मण के पाँच सौ हल बुआई के लिये जुते हुए थे।

3. प्रात:काल शीघ्र, चीवर धारण कर और हाथ में भिक्षा-पात्र लेकर तथागत वहां गए, जहाँ ब्राह्मण काम में व्यस्त थे, ऐसे समय में जब भोजन लाया गया था और वहाँ वे एक ओर खड़े हो गये।

4. उन्हें भिक्षा के लिये वहाँ खड़े देखकर, ब्राह्मण ने कहा, "श्रमण! खाना खाने से पूर्व, मैं (हल) जोतता हूँ और (बीज) बोता हूँ, और तुम्हें भी खाना खाने से पहले (हल) जोतना और (बीज) बोना चाहिये।"

5. "ब्राह्मण! मैं खाने से पहले जोतता और बोता हूँ।"

6. "किसी भी तरह, श्रमण गौतम के जुए या हल, या हल की फाल, या बैलों को हाँकने की पैनीया, बैलों की जोड़े मेरे देखने में नहीं आते, तो आप कहते हैं कि आप खाना खाने से पहले जोतते, बोते हैं।"

7. "आप एक कृषक होने का दावा करते हैं, किन्तु हम आपके कृषि के किसी भी साधन को नहीं देखते। हमें बतायें आप कैसे खेती करते हैं, आपकी कृषि के विषय में हम और अधिक सुनना चाहेंगे।"

8. भगवान् ने उत्तर दिया, "श्रद्धा मेरा बीज है, जीवन की तपस्यायें मेरी वर्षा हैं, प्रज्ञा मेरे जुए और हल हैं, पाप-भीरुता मेरा दण्ड है; विचार जुए की रस्सी है और स्मृति (चित्त की जागरूकता) हल की फाल तथा पैनी है।"

9. "वचन और कर्म से संयत और भोजन में संयमी होकर, मैं अपनी फसल को खर-पतवार से मुक्त रखता हूँ, और तब तक विश्राम नहीं करता, जब तक सुख की फसल नहीं कट जाती। अप्रमाद मेरा मजबूत बैल है, जो बाधाएँ देखकर भी पीछे नहीं मुड़ता है। वह मुझे सीधा शान्ति के अन्तिम लक्ष्य तक ले जाता है, जहाँ दु:ख का अन्त हो जाता है। इस प्रकार मैं अमृतत्व के फसल की खेती करता हूँ और जो कोई मेरी तरह खेती करता है उसके दुखों का अन्त हो जाता है।"

10. तत्पश्चात् ब्राह्मण ने एक बड़ी काँसे की थाली में खीर परोसी और यह कहते हुए भगवान् को अर्पित की, "गौतम! यह खाएँ, निस्सन्देह आप भी एक कृषक ही हैं, आप अमृत के फसल की खेती करते हैं।"

11. किन्तु तथागत ने कहा "मैं उपदेश का कोई शुल्क नहीं लेता। प्रज्ञावान् लोग इसका समर्थन नहीं करते, सम्बुद्ध ऐसे शुल्क को तिरस्कारपूर्वक अस्वीकार करते हैं, जब तक यह धम्म-विनय विद्यमान है, तब तक यही प्रचलन बना रहना चाहिये। दूसरे श्रमण ब्राह्मण हैं, जो संयत हैं, शान्त हैं, जिनका सम्यक् आचरण है, जो निर्दोष हैं-ऐसे जो पुण्य क्षेत्र हैं, तुम उन्हीं को यह दो।"

12. इन वचनों को सुनकर ब्राह्मण भगवान् के पास गया और तथागत के चरणों में अपना शीश झुकाकर, रोने लगा, "अद्भुत है, गौतम! सर्वथा अद्भुत है। जैसे एक मनुष्य नीचे गिरे हुए को पुनः सीधा कर दे, या जो छिपा हुआ है उसे

प्रकट कर दे या जो पथ-भ्रष्ट हो गया हो उसे रास्ता दिखा दे या जो ढँका हुआ हो उसे उधाड़ दे या जो भटक गया हो ऐसे मनुष्य को सही मार्ग बता दे, या अन्धेरे में प्रदीप जला दे, जिनके पास देखने के लिये आँखें हैं वह अपने चारों ओर की वस्तुओं को देख सकें-इसी प्रकार विभिन्न तरीकों से गौतम ने अपना धम्म स्पष्ट कर दिया है।

13. ''मैं बुद्ध, धम्म तथा संघ की शरण ग्रहण करता हूँ। मुझे तथागत के हाथों प्रव्रज्या और उप-सम्पदा मिले!'' इस प्रकार ब्राह्मण कसि-भारद्वाज को उपसम्पदा मिली और तथागत के भिक्खु के रूप में पहचान मिली।

3. सुखी गृहस्थियों को उजाड़ने का आरोप

1. यह देखकर कि मगध के अनेक कुल-पुत्र तथागत के शिष्य बने गये थे। लोग यह कहते हुए असन्तुष्ट और क्रोधित हो गये थे, ''श्रमण गौतम, माता-पिताओं को संतान-विहीन बना रहा है, श्रमण गौतम पत्नियों को विधवा बना रहा है, श्रमण गौतम परिवारों का उजाड़ रहा है।''
2. ''अभी उसने एक हजार जटिलों को दीक्षित किया है, और उसने संजय के दो सौ पास परिव्राजकों को प्रव्रजित किया है और ये अनेक युवक मगध कुल-पुत्र अब श्रमण गौतम के अधीन पवित्र जीवन व्यतीत कर रहे हैं। अब आगे क्या होने वाला है? कोई भी नहीं कह सकता।''
3. और इसके अतिरिक्त, जब वे भिक्खुओं को देखते हैं, तो उन्हें निम्नलिखित शब्दों से उनकी निन्दा करते हैं, ''महाश्रमण मगध लोगों के राजगृह में आया है, उसके साथ संजय के सभी अनुयायी घूमते हैं,'' अब पता नहीं किसकी बारी है?''
4. भिक्षुओं ने इस आरोप को सुना और उन्होंने तथागत को इसके विषय में सूचित किया।
5. तथागत ने उत्तर दिया, ''भिक्षुओं! यह शोर, अधिक दिनों तक नहीं चलेगा, यह केवल सात दिनों के पश्चात् समाप्त हो जायेगा। ''
6. ''और भिक्षुओ! यदि वे तुम्हारी भर्त्सना करते हैं, तो तुम्हें उत्तर देना चाहिये कि यह वास्तव में हितकारी धम्म है, जिसके महान विजेता, तथागत अगुवाई करते हैं। यदि बुद्धिमान लोगों को सद्धम्म के मार्ग पर ले जाते हैं, तो ऐसे बुद्धिमान मनुष्य से कोई क्यों ईर्ष्या करेगा? मेरे धम्म में कोई बाध्यता नहीं है। कोई भी गृह-त्याग करने के लिये स्वतन्त्र है। कोई भी चाहे तो अपने घर में ही बना रह सकता है।''

7. जब भिक्षुओं ने निन्दा करने वालों को वैसा उत्तर दिया जैसा कि तथागत ने उन्हें समझ गया था, तब लोग समझ गये। "धम्म द्वारा न कि अधम्म द्वारा साक्यपुत्तिय श्रमण मनुष्यों की अगुवाई करते हैं," और तथागत को दोष देना बंद कर दिया।

4. तैर्थिकों द्वारा हत्या का मिथ्यारोप

1. तैर्थिकों ने यह अनुभव करना प्रारम्भ कर दिया था कि श्रमण गौतम के आविर्भाव के साथ लोगों ने अब उनका सम्मान करना छोड़ दिया है और यहाँ तक कि कुछ लोग तो उनके अस्तित्व के विषय में जानते तक नहीं हैं।
2. अतः तैर्थिक सोचने लगे "क्या किसी षड्यन्त्र द्वारा, हम उसकी प्रतिष्ठा घटा सकते हैं, सम्भवतः सुन्दरी की सहायता से हम सफल हो जायें।"
3. तब वे सुन्दरी के पास गये और उससे बोले, "बहन! तुम अत्यन्त सुन्दर और मनोरम हो। यदि तुम श्रमण गौतम के विषय में अपयश फैला दो, तो हो सकता है लोग तुम्हारा विश्वास कर लें, और इससे उसका प्रभाव घट सकता है।"
4. सुन्दरी प्रत्येक शाम फूलमालाओं, कपूर और सुगंधित इत्रों को लेकर जेतवन की ओर जाया करती। जब लोग नगर को लौटा करते थे, तो कोई उससे पूछता, "सुन्दरी! तुम कहाँ जा रही हो?" वह उत्तर दिया करती थी, "मैं श्रमण गौतम के पास गन्ध कुटी में रुकने जा रही हूँ।"
5. और तीर्थिकों के किसी उद्यान में रात व्यतीत करके, वह सुबह लौट आया करती थी, और यदि कोई उनसे पूछता था, उसने अपनी रात कहाँ व्यतीत की, वह कहा करती थी कि उसने गौतम के साथ रात व्यतीत की।
6. कुछ दिनों पश्चात् तैर्थिकों ने कुछ हत्यारों को कुछ ले-देकर उन्हें कहा, "सुन्दरी की हत्या कर दो और उसका शव गौतम की गन्ध कुटी के समीप कूड़े के ढेर पर फेंक दो।" यह हत्यारों ने कर भी दिया।
7. तब तैर्थिकों ने यह सूचना शान्ति व न्याय के अधिकारियों तक पहुँचा दी कि सुन्दरी प्रायः जेतवन जाया करती थी और वह लापता है।
8. अतः अधिकारियों को साथ लेकर उन्होंने सुन्दरी के शव को कूड़े के ढेर पर से खोज लिया।
9. तैर्थिकों ने गौतम के अनुयायियों पर आरोप लगाया कि उन्होंने अपने नेता की लज्जा को ढँके रखने के लिये सुन्दरी की हत्या कर दी।

10. किन्तु हत्यारे सुन्दरी की हत्या करने के बदले मिले धन के बँटवारे को लेकर में एक शराब की दुकान में आपस में ही लड़ने लगे।

11. अधिकारियों ने तुरंत ही उन्हें गिरफ्तार कर लिया और उन्होंने अपना अपराध स्वीकार कर लिया और उन तैर्थिकों को भी फँसा दिया जिनके उकसाने पर उन्होंने यह अपराध किया था।

12. इस प्रकार तैर्थिकों ने रहा-सहा प्रभाव भी खो दिया।

5 जैनियों द्वारा अनैतिकता का मिथ्यारोप

1. जिस प्रकार सूर्योदय के साथ जुगनू लुप्त हो जाते हैं, उसी प्रकार तैर्थिकों की स्थिति दयनीय हो गयी थी। लोगों ने उन्हें सम्मान तथा दान देना बन्द कर दिया था।

2. आम रास्तों पर खड़े होकर वे उग्र भाषण दिया करते थे, ''यदि श्रमण गौतम प्रबुद्ध हैं, तो हम भी हैं। यदि तुम बुद्ध पर दान की वर्षा करने से पुण्य अर्जित करते हो, तो तुम्हें वही सब कुछ हमें भी दान देने से प्राप्त होगा। इसलिये हमें दान दो।''

3. किन्तु लोगों ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया। तब उन्होंने गुप्त रूप से षड्यंत्र रचा कि श्रमण गौतम चरित्र के विषय में अपयश फैला कर वे संघ को कैसे बदनाम कर सकते हैं।

4. उस समय श्रावस्ती में एक ब्राह्मणी परिव्राजिका रहती थी। जो नाम से जानी जाती थी। शारीरिक संरचना और दैहिक आकर्षण में वह एक सम्मोहक सुन्दरी थी। अपनी शारीरिक भाव-भंगिमाओं से कामोत्तेजक लालित्यपूर्ण थी।

5. तैर्थिकों में से एक षड्यन्त्रकारी ने कहा, ''चिंचा की सहायता से गौतम के विषय में एक अपयश फैलाना होगा। और इस प्रकार उनको बदनाम करना सरल होगा,'' इस पर अन्य तैर्थिकों ने अपनी सहमति दे दी।

6. तब, एक दिन चिंचा तैर्थिकों के उद्यान में आई उन्हें अभिवादन करते हुए, उनके समीप बैठ गयी। किन्तु किसी ने उससे बात नहीं की।

7. इस पर आश्चर्यचकित होकर उसने कहा, ''क्या मैंने कोई अपराध किया है? मैंने आपको तीन बार अभिवादन किया तो भी आपने मुझसे एक भी शब्द नहीं बोला।''

8. तैर्थिकों ने कहा, ''बहन! क्या तुम नहीं जानती हो कि श्रमण गौतम अपनी

लोकप्रियता द्वारा हमें हानि पहुँचा रहा है।'' मैं नहीं जानती, ''इसके लिये मुझे क्या करना है?''

9. ''बहन! यदि तुम हमारा भला करना चाहती हो, तो अपने प्रयत्नों द्वारा गौतम के विषय में अपयश फैला दो इससे उसे अलोकप्रिय बना दो।'' ''ठीक है, सन्तोष रखो और मुझ पर भरोसा रखो'', इस प्रकार कहते हुए वह वहाँ से चली गयी।

10. चिंचा 'स्त्री-चरित्र' दिखाने में पारंगत थी। जब श्रावस्ती के नागरिक जेतवन से धार्मिक प्रवचनों को सुन कर लौटा करते थे, तो चिंचा लाल वस्त्र धारण किये हुए अपने हाथों में सुगंध और फूल-माला लेकर जेतवन की ओर जाया करती।

11. यदि कोई उससे पूछा करता, ''तुम अब कहाँ जा रही हो?'', ''इससे तुम्हें क्या लेना-देना है,'' वह उत्तर दिया करती थी। जेतवन के समीप तैर्थिकाराम में रात व्यतीत करने के उपरान्त, वह सुबह नगर को लौटा करती थी, जब नागरिक बुद्ध को सम्मान देने के लिये जेतवन की ओर जाया करते थे।

12. यदि कोई उससे पूछा करता ''तुमने रात कहाँ व्यतीत की?'' वह कहा करती थी, ''इससे तुम्हें क्या लेना-देना है। मैंने जेतवन में श्रमण गौतम के साथ उनकी गन्ध-कुटी में रात व्यतीत की है।'' यह कथन कुछ लोगों के मन में शंका उत्पन्न किया करता था।

13. चार महीने के उपरान्त उसने कुछ पुराने चिथड़ों को अपने पेट पर एवं इर्द-गिर्द लपेटकर पेट के आकार को बढ़ा लिया और कहने लगी कि वह श्रमण गौतम द्वारा गर्भवती हो गयी है। कुछ लोगों ने इस पर विश्वास करना प्रारम्भ कर दिया।

14. नौवें महीने में, उसने अपने पेट के ऊपर एक गोल एवं खाली लकड़ी का टुकड़ा बाँध लिया और कीड़ों के डंक से अपनी बाँहों को सुजा लिया। भगवान् बुद्ध ''भिक्षुओं और गृहस्थों के समक्ष एक धार्मिक प्रवचन दे रहे थे, जब वह वहां पर आई और बोली, महान आचार्य आप अनेक लोगों को धार्मिक उपदेश देते हैं। आपकी वाणी मधुर है, और आपके होंठ बहुत कोमल हैं। आपके सहवास से मैं गर्भवती हो गयी हूँ और मेरा प्रसव-काल समीप है।

15. ''आपने न तो मेरे लिये कोई प्रसव का स्थान निश्चित किया है और न ही मैं उस आपात्काल के लिये कोई दवा इत्यादि देखती हूँ। यदि आप स्वयं उसकी व्यवस्था नहीं कर सकते, तो क्यों नहीं आप अपने शिष्यों में से किसी को जैसे कोशल नरेश, अनाथपिण्डिक या विशाखा को इस काम के लिये वह देते।''

16. "ऐसा प्रतीत होता है कि आप एक सुन्दर लड़की को अंगीकार करना तो भली-भाँति जानते हैं, किन्तु आप उस अंगीकार के परिणामस्वरूप जन्म लेने वाले नवजात शिशु का ध्यान रखना नहीं जानते।" सभा में उपस्थित लेगा मौन ही बैठ रहे।।

17. भगवान् बुद्ध ने, अपने उपदेश को बीच में रोककर, उसे बड़ी गम्भीरता से उत्तर दिया, "बहन! जो कुछ तुमने कहा, वह सत्य है या असत्य, इसका ज्ञान केवल मुझे और तुझे ही है।"

18. चिंचा जोर-जोर से खाँसते हुए, बोली, "हा-हा, हे आचार्य! ऐसी बातों का ज्ञान केवल हम दोनों को ही हो सकता है।"

19. उसके खाँसने से वह गाँठ ढीली पड़ गयी, जिससे उसने लकड़ी के टुकड़े को अपने पेट पर बाँध रखा था, और वह लकड़ी उसकी पराजय के रूप में उसके पैरों पर गिर पड़ी। चिंचा कहीं की न रही।

20. और लोगों ने उसे पत्थरों और डंडों से मार-मार कर भगा दिया गया।

6. देवदत्त फुफेरा भाई तथा एक शत्रु

1. देवदत्त भगवान् बुद्ध का फुफेरा भाई था। किन्तु प्रारम्भ से ही वह उनसे ईर्ष्यालु था और उन्हें अत्यधिक नापसन्द करता था।

2. जब राजकुमार सिद्धार्थ अपना गृहत्याग कर चले गये, तो देवदत्त ने यशोधरा से प्रेम बढ़ाने का प्रयास किया।

3. एक बार यशोधरा सोने ही वाली थी, तब वह किसी के द्वारा भी न रोका जाकर एक भिक्षु के छद्म रूप में उनके कक्ष में प्रवेश कर गया। यशोधरा ने उससे पूछा, "भिक्षु! आप क्या चाहते हैं? क्या आपके पास मेरे पति का दिया हुआ कोई सन्देश है?"

4. देवदत्त ने कहा, "तुम्हारा पति, उसे तुम्हारी क्या खाक चिंता है। तुम्हारे सुखी संसार में से वह तुम्हें निर्दयतापूर्वक और धूर्तता से छोड़ कर चला गया।"

5. यशोधरा ने उत्तर दिया, "किन्तु ऐसा उन्होंने बहुतों के हित के लिये किया है।"

6. देवदत्त ने सलाह दी, "वह जो कुछ भी हो, अब तुम उसकी अवज्ञापूर्ण क्रूरता का बदला लो।"

7. यशोधरा ने विरोध किया, "जबान बन्द करो, हे भिक्षु! तुम्हारे शब्द और विचार अपवित्र और दुर्गन्ध से भरे हैं।"

8. ''क्या तुमने नहीं पहचाना, यशोधरा! मैं देवदत्त हूँ, जो तुमसे प्रेम करता है।''

9. ''देवदत्त! मैं तुम्हें झूठा और दुष्ट ही समझती थी। मैं ने कभी नहीं सोचा था कि तुम जैसा बुरा आदमी बुरा भिक्षु बन सकता है, किन्तु यह नहीं समझती थी कि तुम इतने कमीने हो सकते हो।''

10. ''यशोधरा! यशोधरा! मैं तुमसे प्रेम करता हूँ'' देवदत्त ने कहा। ''और तुम्हारा पति तुम्हारे प्रति केवल घृणा दर्शाता है। वह तुम्हारे प्रति क्रूर रहा है। मुझे प्रेम करो और उसकी क्रूरता का बदला लो।''

11. यशोधरा के पीले और क्षीण मुख पर एक रक्तरंजित वर्ण का पुट चढ़ गया। आँसू उसके गालों पर से ढलकने लगे।

12. ''देवदत्त! तुम मेरे प्रति क्रूर हो। यदि तुम्हारे प्रेम में कुछ सच्चाई होती, तो यह मेरा अपमान ही होता। जब तुम कहते हो कि तुम मुझसे प्रेम करते हो, तो तुम केवल झूठ बोल रहे हो।''

13. ''जब मैं युवा और सुन्दर थी, तुमने मुश्किल से ही मेरी ओर देखा होगा। अब मैं जीर्ण हूं, दुःख और वेदना से टूट गयी हूँ, तुम रात में आये हो अपना कपटी और दोषी प्रेम प्रकट करने। तुम एक नीच और कायर हो।''

14. और वह चिल्लाई, ''देवदत्त! यहाँ से बाहर, चले जाओ,'' और देवदत्त वहाँ से चला गया।

15. देवदत्त भगवान् बुद्ध से अत्यंत शत्रुता रखता था, क्योंकि उसे संघ का प्रधान नहीं बनाया गया था, जबकि सारिपुत्त और मोगल्लापन को संघ का प्रधान बना दिया था। देवदत्त ने तीन बार भगवान् बुद्ध का जीवन समाप्त करने का प्रयास किया, किन्तु उनमें से किसी एक में भी सफल नहीं हुआ।

16. एक समय तथागत गृध्रकूट पर्वत नामक पहाड़ी की छाया में ऊपर-नीचे चहलकदमी कर रहे थे।

17. देवदत्त उस पहाड़ी के ऊपर चढ़ गया और तथागत के प्राण-हरण की नीयत से एक विशाल चट्टान को नीचे लुढ़का दिया, किन्तु वह एक अन्य चट्टान पर गिरी और वहीं गड़ गयी, केवल उस पत्थर के गिरते हुए उसमें से टूटकर छोटे से टुकड़े ने तथागत के पाँव को लहूलुहान कर दिया।

18. दूसरी बार बुद्ध का जीवन समाप्त करने का एक और प्रयास किया।

19. इस बार देवदत्त राजकुमार अजातशत्रु के पास गया और कहा, ''मुझे कुछ आदमी दो।'' और राजकुमार अजातशत्रु ने अपने आदमियों को आदेश दिया, ''जो कुछ भी योग्य देवदत्त तुम्हें कहते हैं, वह करो।''

20. तब एक आदमी को देवदत्त ने आदेश दिया, ''जाओ, मेरे मित्र! श्रमण गौतम अमुक स्थान पर ठहरे हुए हैं। उनका वध कर दो।'' और आदमी जाकर लौट आया और उससे कहा, ''मैं तथागत को उनके जीवन से वंचित–नहीं कर सकता हूँ।''

21. उसने बुद्ध का जीवन समाप्त करने का एक तीसरा प्रयास भी किया।

22. इस बार राजगृह में नालागिरी नामक एक हाथी था, जो खूंखार और नर–हत्यारा था।

23. देवदत्त राजगृह में हाथियों के अस्तबल में गया और हाथियों की देखभाल करने वालों से कहा, ''मैं अपने मित्र राजा का एक संबंधी हूँ, और नीचे पद पर लगे एक व्यक्ति को उच्च पद पर पहुँचाने में सक्षम हूँ, और उसकी राशन या उसके वेतन में वृद्धि का आदेश देने में सक्षम हूँ।''

24. इसलिये, मेरे मित्रों! जब श्रमण गौतम इस मार्ग पर आ चुका हो, तब नालागिरी हाथी को छोड़ दो और उसे सड़क पर आगे तक जाने दो।

25. देवदत्त ने भगवान बुद्ध की हत्या के लिये धनुषधारियों को काम में लगाया था। उसने मदमस्त नालागिरि हाथी को भी, उनके मार्ग में खुला छुड़वाया।

26. किन्तु वह सफल नहीं हुआ। जब ये दुष्ट प्रयास लोगों को ज्ञात हो गये, तो देवदत्त को मिलने वाला समस्त लोक दान खो दिया। और यहाँ तक कि राजा अजातशत्रु ने उससे मिलना–जुलना बन्द कर दिया।

27. जीवनयापन के लिये उसे घर–घर भीख माँगनी पड़ती थी। देवदत्त अजातशत्रु से बहुत कुछ प्राप्त होता था, जिन्हें वह अधिक समय तक संजोकर नहीं रख पाया। देवदत्त ने अपना समस्त प्रभाव नालागिरी की घटना के पश्चात् खो दिया।

28. अपनी करतूतों द्वारा मगध में अत्यन्त अलोकप्रिय होने पर देवदत्त उसे छोड़ कोशल चला गया, यह सोचते हुए कि सम्भवतः प्रसेनजित् उसका सौहार्द से स्वागत करेंगे। किन्तु वह प्रसेनजित् द्वारा घृणापूर्वक वहां से भगा दिया गया।

7. ब्राह्मण और भगवान् बुद्ध

(i)

1. एक बार जब तथागत भिक्षुओं के एक विशाल संघ के साथ कोशल–जनपद में चारिका कर रहे थे, वे थून नामक एक ब्राह्मण गाँव में पहुँचे।

2. थून के ब्राह्मण गृहस्थों ने समाचार सुना, ''लोगों का कहना है कि श्रमण गौतम हमारे गाँव के खेतों तक आ पहुँचे हैं।''

3. वे ब्राह्मण गृहस्थ अश्रदालु थे, मिथ्या-दृष्टियाँ रखते थे तथा स्वभाव से कृपण थे।

4. उन्होंने कहा, ''यदि श्रमण गौतम इस गाँव में प्रवेश कर गये और दो या तीन दिन ठहर गये, तो इन सभी लोगों को धर्मान्तरित कर देंगे। तब ब्राह्मण-धर्म के पास कोई सहारा नहीं रहेगा। इसलिये, हमें अपने गाँव में उसका प्रवेश अवश्य ही रोकना चाहिये।''

5. गाँव तक पहुँचने के लिये एक नदी पार करनी पड़ती थी। तथागत का गाँव में प्रवेश रोकने के लिये ब्राह्मणों ने नावों को घाटों से दूर हटा दिया और पुलों आदि को अनुपयोगी बना दिया।

6. उन्होंने एक कुंए के अतिरिक्त सभी कुओं को घास-फूस से भर दिया और प्याऊओं, विश्रामालयों तथा छप्परों को छुपा दिया।

7. तथागत ने उनकी करतूतों को जानकर और उनके प्रति करुणापूर्वक रहते हुए, अपने भिक्षु-संघ के साथ नदी पार की और कुछ ही समय में थून-ब्राह्मण गाँव में पहुंच गये।

8. उन्होंने सड़क छोड़ दी और एक पेड़ के नीचे बैठ गये। उस समय बहुत-सी स्त्रियाँ पानी लिये हुए तालाब के समीप से गुजर रही थीं।

9. उस गाँव में एक सहमति हो चुकी थी, ''यदि श्रमण गौतम वहाँ आते हैं, उनका कुछ भी स्वागत-सत्कार इत्यादि नहीं होना चाहिये और जब वे एक-एक घर तक आयें, न तो उन्हें और न ही उनके अनुयायियों को कोई भोजन या जल दिया जाना चाहिये।''

10. तब एक ब्राह्मण की दासी पानी का घड़ा साथ ले जा रही थी, उसने तथागत और भिक्षुओं को देखा और समझा कि वे थके-माँदे और प्यासे हैं, श्रद्धालु हृदय की होने के कारण वह उन्हें जल देना चाहती थी।

11. उसने अपने मन में सोचा, यद्यपि इस गाँव के लोगों ने यह निश्चय किया है कि श्रमण गौतम को कुछ भी नहीं दिया जायेगा और यहाँ तक कि किसी भी प्रकार का सम्मान नहीं दर्शाया जायेगा, ''इस समय यदि मैं इन सर्वोच्च 'पुण्य-क्षेत्रों' को, अपने पुण्यवान दान के योग्य पाने वालों को थोड़ा जल देकर मैं अपनी मुक्ति की नींव न रखूँ, तो इसके बाद कब मैं इन दुःखों से मुक्ति पाऊँगी?''

12. ''मेरे स्वामियो! भले ही गाँव में रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति मुझे पीटे या बाँध डाले, तब भी मैं इस समय 'पुण्य-क्षेत्र' को पानी का दान दूँगी।''

13. यद्यपि पानी ले जाती हुई अन्य स्त्रियों ने उसको रोकने का प्रयास किया, अपनी जान की चिन्ता न करते हुए उसने अपने निश्चय के अनुसार पानी का घड़ा अपने सिर से उतारा, उसे कमर में एक ओर रखा, तथागत के समीप गयी, और उन्हें जल दिया। उन्होंने अपने हाथ और पैर धोये और जल पिया।

14. उसके ब्राह्मण स्वामी ने तथागत को उसके द्वारा जल देने के विषय में सुना तो उसने कहा, "उसने गाँव का नियम तोड़ा है और मैं दोषी कहा जा रहा हूँ," ऐसा क्रोध से जलते हुए तथा अपने दाँत पीसते हुए उसने उसे जमीन पर पटक दिया और उसकी लात-घूसों से पिटाई की। उसके कारण वह मृत्यु को प्राप्त हो गयी।

(ii)

1. तब दोन ब्राह्मण तथागत के पास आया और उन्हें अभिवादन किया और अभिवादन के शब्दों का पारम्परिक आदान-प्रदान करने के पश्चात् वह एक ओर बैठ गया। इस प्रकार बैठे हुए दोन ब्राह्मण ने तथागत से कहा:

2. "श्रमण गौतम! मैंने लोगों को ऐसा कहते हुए सुना है, कि श्रमण गौतम वृद्ध, आयु प्राप्त, जीवन-पथ के अंतिम पड़ाव वाले, वयोवृद्ध ब्राह्मणों को अभिवादन नहीं करते, न तो उनके स्वागत के लिये उठते हैं, और न ही उन्हें आसन प्रस्तुत करते हैं।"

3. "श्रमण गौतम! क्या ऐसा ही है कि श्रमण गौतम इनमें से कोई भी बात नहीं करते .... वृद्ध, आदरणीय ब्राह्मणों को सम्मान और आसन नहीं देते, यह ठीक नहीं है, श्रमण गौतम!"

4. "दोन! क्या तुम अपने आप को ब्राह्मण समझते हो?"

5. "श्रमण गौतम! यदि किसी के भी विषय में, सही प्रकार से कहा जाना हो तो यह कहा जाना चाहिये- 'ब्राह्मण माता-पिता दोनों की ओर से सुजात है, माता-पिता दोनों की ओर से सात पीढ़ियों तक पवित्र होता है, जन्म की दृष्टि से निर्विवाद और निर्दोष; अध्यायी, वेदमन्त्रज्ञ, अक्षर और प्रभेदों सहित तीनों वेदों में पारंगत, स्वर-विज्ञान में भी तथा इतिहास-पुराण का ज्ञाता, काव्य और व्याकरण का आचार्य, महापुरुष लक्षणों के अध्ययन में निपुण, विश्व के पूर्वानुमान में दक्ष' ऐसा ही निश्चय मुझ में भी है, श्रमण गौतम! सही प्रकार से कहे जाने पर यह बात कही जानी चाहिये; क्योंकि मैं भी, श्रमण गौतम! इसी प्रकार जन्मा हूँ, इसी प्रकार निपुण हूँ...........।"

6. "दोन! जो पुराने मंत्र निर्माता, मंत्र रचयिता, मंत्रधर ब्राह्मण हैं, जिन्हें अपने

मंत्रों का अक्षरशः ज्ञान है, जैसे- अट्ठक, वामक, वामदेव वस्समित्त, यमदग्नि, अंगिरस, विश्वमित्र, भारद्वाज ने पाँच तरह के ब्राह्मण बताए है, (1) ब्रह्म-सदृश ब्राह्मण, (2) देव-सदृश ब्राह्मण, (3) बन्धन-युक्त ब्राह्मण, (4) बंधन ब्राह्मण भंजक, और (5) अन्त्यज ब्राह्मण। दोन इसमें से तुम कौन हो?''

7. ''इन पाँच ब्राह्मणों के विषय में हम नहीं जानते हैं, श्रमण गौतम! तथापि हम जानते हैं कि हम ब्राह्मण हैं। यह मेरे लिये अच्छा होता, यदि श्रमण गौतम मुझे धम्म की शिक्षा दें, जिससे कि मैं उन पाँचों के विषय में जान सकूँ।''

8. ''तब सुनो, ब्राह्मण! ध्यान दो जो मैं कहता हूँ।''

9. ''हाँ तथागत,' उसने उत्तर दिया; और तथागत ने कहाः

10. ''दोन! एक ब्राह्मण ब्रह्म-सदृश कैसे होता है?''

11. ''दोन! एक ब्राह्मण का उदाहरण लो, जो माता-पिता दोनों की ओर से सुजात है पूर्व सात पीढ़ियों तक पवित्र है, जन्म की दृष्टि से निर्विवाद और निर्दोष है-वह अड़तालीस वर्षों तक ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करता है, वह अधम्मानुसार नहीं-बल्कि धम्मानुसार आचार्य को दक्षिणा चुकाने के लिए स्वयं को रत रहता है!''

12. ''और धम्म क्या है? दोन! वह कभी भी न तो कृषक, न व्यापारी, न ग्वाला, न धुनर्धारी, न राजकर्मचारी के रूप में और न ही किसी अन्य पेशे द्वारा अपनी जीविका कमाता है, बल्कि केवल भिक्षाटन के द्वारा, भिक्षुक के पात्र का अनादर न करते हुए जीवन व्यतीत करता है।''

13. ''और वह आचार्य को शिक्षण के लिये दक्षिणा चुकाता है, अपने बाल-दाढ़ी मुंडवाता है, काषाय-वस्त्र धारण करता है और गृह-त्याग कर अनागारिक की अवस्था में रहता है।''

14. ''और इस प्रकार प्रव्रजित हो, वह मैत्री भावना से युक्त हो विश्व की एक दिशा, दूसरी दिशा, तीसरी दिशा और चौथी दिशा में विहार करता है, तत्पश्चात् ऊपर, नीचे, आड़े प्रत्येक जगह सम्पूर्ण विस्तृत संसार में वह मैत्री से युक्त हो विहार करता है जो दूरगामी, प्रशस्त, असीम तथा घृणा, द्वेष से रहित होता है। ''

15. ''वह करुणा से युक्त हो, मुदिता से युक्त हो, उपेक्षा से युक्त हो, वह विश्व की एक दिशा, दूसरी दिशा, तीसरी दिशा, और चौथी दिशा में विहार करता है; तत्पश्चात् ऊपर, नीचे, आड़े प्रत्येक जगह, सम्पूर्ण विस्तृत संसार में वह करुणा, मुद्रिता तथा घृणा व द्वेष से रहित होता है।''

16. ''और इन चारों ब्रह्म-विहारों में विहार कर, मृत्यु के पश्चात् शरीर के बिखर जाने पर, ब्रह्म-लोक गामी होता है। दोन! इस प्रकार ब्राह्मण ब्रह्म-सदृश बनता है।''

17. ''और दोन! एक ब्राह्मण देव-सदृश्य कैसे बनता है?''

18. ''दोन! एक ब्राह्मण का उदाहरण लो, जो समान जन्म और आचरण वाला हो, वह अपनी जीविका खेती, इत्यादि से नहीं कमाता हो, बल्कि भिक्षाटन से कमाता हो। ... वह शिक्षण के लिये आचार्य को दक्षिणा चुकाता हो। और अधम्म के अनुसार नहीं, बल्कि धम्मानुसार एक पत्नी खोजता हो।''

19. ''तो धम्म क्या है? वह किसी ऐसी ब्राह्मणी को ग्रहण नही करता, जो खरीदी-बेची गयी हो, बल्कि केवल उसी ब्राह्मणी के साथ, जिसके हाथों पर जल डाला गया हो, वह केवल उसी ब्राह्मणी के पास जाता है। किसी अन्त्यज, शिकारी, बाँस का कारीगर, रथ-कार, या आदिवासी की लड़की के पास नहीं जाता। और न ही बच्चे वाली स्त्री के पास और न दूध पिलाने वाली स्त्री के पास और न ही उसके पास जाता है जो ऋतुनी न हो।

20. ''और दोन! वह ब्राह्मण बच्चे वाली स्त्री के पास किसलिए नहीं जाता है? यदि वह जाये तो लड़का या लड़की का जन्म अपवित्र अवश्य हो जाएगा, इसलिये वह नहीं जाता है। और वह दूध पिलाने वाली स्त्री के पास किसलिए नहीं जाता? यदि वह जाएगा तो लड़का या लड़की का अवश्य ही अशुद्ध दूध-पान हो जायेगा, इसलिये वह नहीं जाता।''

21. ''और वह जो ऋतुनी नहीं है उसके पास किसलिए नहीं जाता? दोन! यदि वह ब्राह्मण ऐसी स्त्री के पास जायेगा, जो ऋतुनी नहीं है, उसके लिए ब्राह्मणी कभी भी भोग का, मनोरंजन का, आनन्द का साधन नहीं बन सकती। वह ब्राह्मणी तो ब्राह्मण के लिये केवल सन्तान उत्पत्ति का एक साधन बनी रहती है।''

22. ''और जब विवाहित अवस्था में उसने एक बच्चे को उत्पन्न कर लिया, वह अपने बाल-दाढ़ी मुँडवाता और वह गृह-त्याग कर अनागरिक हो जाता है।''

23. ''और इस प्रकार प्रव्रजित होकर, काम-भोगों की तृष्णाओं से विरक्त हो विचरता है, वह प्रथम से चतुर्थ ध्यान तक में प्रवेश करता है और विचरण करता है।''

24. ''इन चारों ध्यानों को प्राप्त करने के उपरान्त, मृत्यु-पश्चात् शरीर के बिखर जाने पर, वह देव-लोक में उत्पन्न होता है।''

25. ''दोन! इस प्रकार एक ब्राह्मण देव-सदृश्य बन जाता है।''

26. "और दोन! एक ब्राह्मण बन्धनयुक्त ब्राह्मण कैसे बनता है?"

27. "दोन! एक ब्राह्मण का उदाहरण लो, जो समान जन्म और आचरण वाला हो... जो उसी प्रकार विवाह करता है।"

28. "और जब विवाहित अवस्था में उसने एक बच्चे को उत्पन्न कर लिया हो, बच्चे के प्रति स्नेह उसे अभिभूत कर लेता है और वह पारिवारिक सम्पत्ति में ही बस जाता है, और गृह-त्याग कर अनागरिक नहीं होता।"

29. "प्राचीन ब्राह्मणों के बन्धनों में वह ठहर जाता है, उनका उल्लंघन नहीं करता, और यह कहा जाता है, वह बन्धनों के भीतर ही रहता है, उल्लंघन नहीं करता और इसलिये ब्राह्मण बन्धनयुक्त ब्राह्मण कहलाता है।"

30. "इस प्रकार, दोन, ब्राह्मण बन्धनयुक्त बनता है।"

31. "और दोन! एक ब्राह्मण बन्धन-भंजक कैसे बनता है?"

32. "दोन! एक ब्राह्मण का उदाहरण लो, जो समान जन्म और आचरण वाला है।.... वह गुरु-दक्षिणा चुकाता है और या तो धम्म अनुसार या अधम्म अनुसार एक पत्नी खोज लेता है। एक खरीदी हुई या बेची हुई या वह ब्राह्मणी जिसके ऊपर जलाभिषिक्त रीति हो चुकी हो।"

33. "वह एक ब्राह्मणी या एक कुलीन या एक निम्न जाति की स्त्री या एक दास स्त्री के पास जाता है। एक अन्त्यज या एक शिकारी या एक बाँस के कारीगर या एक रथ-कार या एक आदिवासी की पुत्री के पास जाता है; वह एक बच्चे वाली स्त्री, एक दूध पिलाने वाली स्त्री, जो ऋतुनी है, जो ऋतुनी नहीं है, उनके पास भी जाता है, और उसके लिये ब्राह्मणी केवल भोग का, मनोरंजन का और आनन्द का या सन्तान उत्पन्न करने का साधन बन जाती है।"

34. "वह प्राचीन बन्धनों के भीतर ही नहीं ठहरता, बल्कि उनका उल्लंघन भी करता है, और ऐसा कहा जाता है कि वह बन्धनों के भीतर नहीं ठहरता, बल्कि उल्लंघन करता है, और इसलिये वह एक बन्धन-भंजक ब्राह्मण कहलाता है।"

35. "इस प्रकार दोन! एक ब्राह्मण बन्धन-भंजक ब्राह्मण बन जाता है।"

36. "और दोन! एक ब्राह्मण एक अन्त्यज ब्राह्मण कैसे होता है?"

37. "दोन! एक ब्राह्मण का उदाहरण तो, जो समान जन्म वाला हो, वह अड़तालीस वर्षों तक ब्रह्मचर्य जीवन का पालन करता है, अपने को वह वेद-मन्त्रों में ज्ञाता बनता है, तब विद्याध्ययन समाप्त करने के उपरान्त, वह शिक्षण के लिये

गुरु-दक्षिणा खोजता है, वह कृषक, व्यापारी, ग्वाले, धनुर्धारी, राज कर्मचारी के रूप में या किसी शिल्प द्वारा या भिक्षा पात्र की उपेक्षा न कर, केवल भिक्षाटन द्वारा अपनी जीविका धम्म या अधम्म के अनुसार अर्जित करता है।''

38. ''गुरु-दक्षिणा चुकाने के उपरान्त, वह धम्म या अधम्म के अनुसार एक पत्नी खोजता है, एक खरीदी या बेची गयी, या एक ब्राह्मणी जिसके हाथों में जल डाला गया है। वह एक ब्राह्मणी या किसी अन्य स्त्री के पास जाता है। बच्चे वाली स्त्री, दूध पिलाने वाली स्त्री, इत्यादि के पास जाता है, और वह उसके लिये भोग का एक साधन होती है या सन्तान उत्पत्ति का माध्यम होती है। वह इन सब बातों को करते हुए जीवन व्यतीत करता है।''

39. ''तब ब्राह्मण लोग उसके विषय में इस प्रकार कहते हैं, 'यह कैसा है कि एक आदरणीय ब्राह्मण इस प्रकार का जीवन व्यतीत करता है'?''

40. ''तब उसके लिए वह उत्तर देता है, जिस प्रकार अग्नि स्वच्छ या मैली वस्तुओं को जलाती है, किन्तु इससे अग्नि अशुद्ध नहीं होती, इसी प्रकार, भद्रजनो! यदि एक ब्राह्मण इस प्रकार की सभी बातें करते हुए जीवन व्यतीत करता है, तो उससे एक ब्राह्मण मलिन नहीं होता है।''

41. और यह कहा जाता है, ''वह यह सभी बातें करते हुए जीवन व्यतीत करता है, तो इसलिये वह एक अन्त्यज ब्राह्मण कहलाता है।''

42. ''दोन! इस प्रकार एक ब्राह्मण अंत्यज ब्राह्मण बन जाता है।''

43. ''वास्तव में दोन! वे प्राचीन ब्राह्मण, ऋषि, मन्त्र रचयिता, मन्त्र उच्चारक, जिनको प्राचीन मन्त्र संग्रह का अक्षरशः शब्दशः ज्ञान है, उन्हीं का कहना है कि ब्राह्मण पांच प्रकार के होते हैं, ब्रह्म-सदृश, देव-सदृश, बन्धन-युक्त, बन्धन-भंजक, और अंत्यज ब्राह्मण।

44. ''दोन! इनमें से तुम कौन से ब्राह्मण हो?''

45. ''श्रमण गौतम! यदि ऐसा है, तो हम अन्त्यज ब्राह्मण की भी शर्तें पूरी नहीं करते?''

46. ''किन्तु श्रमण गौतम! यह अद्भुत है, जो आपने कहा, जब तक मेरी जिन्दगी रहती है, मुझे श्रमण गौतम एक उपासक के रूप में अपनी शरण में ले लें।''

तीसरा भाग

उनके धम्म के आलोचक

1. संघ में सभी के खुले प्रवेश के आलोचक
2. व्रत-ग्रहण करने के आलोचक
3. अहिंसा-सिद्धान्त की आलोचना
4. शील का उपदेश देकर अंधकार (निराशा) उत्पन्न करने का आरोप :-
   (i) दु:ख निराशा का कारण बताना;
   (ii) अनित्यता को निराशा का कारण बताना;
   (iii) क्या बौद्ध धम्म निराशावादी है?
5. आत्मा और पुनर्जन्म के सिद्धान्तों की आलोचना
6. उच्छेदवादी होने के आरोप

1. संघ में सभी के खुले प्रवेश के आलोचक

1. किसी भी अनुयायी या उपासक गृहस्थ को भिक्षु-संघ खुला प्रवेश देकर अपना सदस्य बना सकता था।
2. कुछ ऐसे लोग थे, जो भिक्षु-संघ को किसी के भी प्रवेश करने के लिये एक विशाल खुला मन्दिर बना देने के लिये तथागत की आलोचना करते थे।
3. वे तर्क देते थे कि ऐसी व्यवस्था के अधीन ऐसा हो सकता है कि संघ में प्रवेश कर जाने के उपरान्त भिक्षु इसे छोड़ दें, और पुनः अपनी निम्न अवस्था में लौट जायें और उनके वापिस चले जाने से लोगों को कहने का अवसर मिलेगा कि श्रमण गौतम का यह धम्म अवश्य ही निरर्थक है, तभी तो लोगों ने छोड़ दिया है।
4. यह आलोचना निराधार थी, जिस उद्देश्य से इस व्यवस्था को बनाने में तथागत का ध्यान था, वह उद्देश्य आलोचकों के ध्यान में आया ही नहीं था।
5. तथागत ने उत्तर दिया कि अपने धम्म की स्थापना में उन्होंने एक ऐसे अमृत भरे सरोवर का निर्माण किया, जिसमें सद्धर्म का स्नान मुक्ति के श्रेष्ठ जलों से परिपूर्ण है।
6. यह तथागत की इच्छा भी थी कि कोई भी मलिन चित्त वाला दूषित प्राणी इस सद्धम्म रूपी सरोवर में स्नान करके अपने सभी पापों को धो सकता है।
7. और यदि कोई, सद्धम्म के सरोवर तक जाकर, उसमें स्नान नहीं करता, बल्कि पहले की तरह दूषित रहते हुए ही लौट आता है और पुनः निम्न अवस्था में वापस आ जाता है, तो यह उसी को दोष दिया जा सकता है न कि धम्म को।
8. तथागत ने कहा, ''या, क्या मैं लोगों को अपने पापों को धोने के लिये समर्थ बनाने के लिये इस सरोवर का निर्माण करने के पश्चात् कहूँ 'जो दूषित हैं, वे इस सरोवर में स्नान करने न जायें! केवल वही इस सरोवर में स्नान करने जायें जिनकी दुष्चेतनाओं की धूल-गर्द धुली हुई है, जो पवित्र और निर्मल चित्त हों।''
9. ''ऐसी शर्तों पर मेरे धम्म का क्या उपयोग होगा?''
10. आलोचक यह भूल गये कि तथागत अपना धम्म कुछ ही लोगों तक सीमित रखना नहीं चाहते थे। वे चाहते थे कि उसका द्वार सभी के लिये खुला रहे, सभी इसका परीक्षण कर सकें।

2. व्रत-गहण करने के आलोचक

1. पंचशील ही पर्याप्त नहीं है? व्रतों की आवश्यकता का अनुभव क्यों किया गया? ये ऐसे प्रश्न थे, जो प्राय: उठाये जाते थे।

2. यह तर्क दिया जाता था कि यदि रोगों का निवारण दवा के बिना हो सकता है, तो वमनकारी औषधियों द्वारा, जुलाब की औषधियों द्वारा इसी प्रकार की अन्य औषधियों द्वारा शरीर को रोग रहित बनाने का क्या लाभ है?

3. ठीक इसी प्रकार, यदि गृहस्थ लोग, घर में रहते हुए और इन्द्रियों के सुख का आनन्द लेते हुए पंचशील ग्रहण करके स्वयं में शान्ति, सर्वश्रेष्ठ हितकारी निर्वाण प्राप्त कर सकते हैं, तो भिक्खु को इन व्रतों को धारण करने की क्या आवश्यकता है?

4. तथागत ने इसमें अन्तर्निहित सद्गुणों के कारण व्रतों का आविष्कार किया था।

5. व्रतों द्वारा प्रतिबन्धित जीवन के नैतिक पथ पर अग्रसर होना निश्चित है, यह स्वयं में ही पतन के विरुद्ध एक संरक्षण है।

6. जो व्रत धारण करते हैं और उनका स्वतन्त्र रूप से पालन करते हैं वे ही विमुक्त हैं।

7. व्रतों का पालन करने से काम-तृष्णा, ईर्ष्या और अहंकार तथा बुरे विचारों का उच्छेदन होता है।

8. जो व्रत ग्रहण करते हैं और उनका पालन करते हैं। वे निस्सन्देह भली-भांति संरक्षित रहते हैं और वे मन तथा कर्म से पूर्णतया निर्मल होते हैं।

9. मात्र शील ग्रहण करने से ऐसा नहीं होता।

10. शील ग्रहण करने के मामले में नैतिक-पतन के विरुद्ध कोई बचाव नहीं है, जैसा कि व्रत ग्रहण करने के मामले में है।

11. व्रतों का जीवन अत्यन्त कठिन है और शील ग्रहण करने वालों का जीवन उतना कठिन नहीं। मानवता के लिये कुछ ऐसे लोगों का होना आवश्यक है, जो व्रतों का जीवन व्यतीत करें। अत: तथागत ने दोनों को निर्धारित किया था।

3. अहिंसा-सिद्धान्त की आलोचना

1. ऐसे लोग भी थे, जिन्होंने अहिंसा के सिद्धान्त का विरोध किया था। वे कहते थे कि 'अहिंसा' का तात्पर्य अत्याचार और अन्याय के सामने सिर झुकाना था।

2. तथागत ने 'अहिंसा' के अपने सिद्धान्त द्वारा जो सिखाया है यह उन लोगों की पूर्णतया गलत व्याख्या थी।

3. तथागत ने विभिन्न अवसरों पर अपनी स्थिति स्पष्ट कर दी है जिससे कि इसमें किसी को किसी तरह से अस्पष्टता या गलतफहमी के लिये कोई स्थान न रह जाये।

4. एक ऐसा अवसर था, जिसका उल्लेख किया जाना चाहिये, जब उन्होंने एक सैनिक के भिक्षु-संघ में प्रवेश के सम्बन्ध में एक नियम बनाया था।

5. एक समय मगध राज्य के सीमान्त-प्रदेश में उत्पादत मच रहे थे। तब मगध-नरेश सेनिय बिम्बिसार ने सेना के सेनापति को आदेश दिया, "अब जाओ और अपने सेनानायकों को कहो कि वे सीमान्त प्रदेशों में अपराधियों की तलाश करें, उन्हें दण्डित करें और शान्ति स्थापित करें।" सेनापति ने तद्नुसार कार्य किया।

6. सेनापति का आदेश सुनकर सेनानायक स्वयं दुविधा में पड़ गए। वे जानते थे कि तथागत ने शिक्षा दी है कि जो युद्ध में जाते हैं और युद्ध में आनन्द पाते हैं, पाप करते हैं तथा बहुत अपुण्य लाभ करते हैं। दूसरी ओर, अपराधियों को पकड़ने और उनका वध करने की राजा की यह आज्ञा है। अब हम क्या करें? सेनानायकों ने स्वयं अपने से पूछा।

7. तब इन सेनानायकों ने सोचा-"यदि हम बुद्ध के भिक्षु-संघ में प्रवेश कर लें तो हम इस दुविधा से बच निकलने में सक्षम होंगे।"

8. इस प्रकार ये सेनानायक भिक्षुओं के पास गये और उनसे प्रव्रज्या का निवेदन किया। भिक्षुओं ने उन्हें प्रव्रजित तथा उपसम्पदित कर दिया और सेनानायक सेना से लुप्त हो गये।

9. सेना के सेनापति को जब सेना के सेनानायक दिखाई नहीं पड़े, तब सिपाहियों से पूछा, "क्या बात है कि सेनानायक कहीं क्यों नहीं दिखाई पड़ रहे हैं?" "सेनापति! सेनानायकों ने भिक्षुओं के धार्मिक जीवन को अपना लिया है।" सिपाहियों ने उत्तर दिया।

10. तब सेना का सेनापति अप्रसन्न और बहुत क्रोधित हो गया, "भिक्षु राजकीय सेना के लोगों को कैसे प्रव्रजित कर सकते हैं।"

11. जो कुछ घटित हुआ उसे सेनापति ने राजा को सूचित किया और राजा ने न्याय अधिकारियों से पूछा, "यह बताया जाए कि जो राजकीय सेना को प्रव्रजित करे, उसको क्या दण्ड मिलना चाहिये?"

12. "हे महाराज! उपाध्याय का सिर काट डाला जाना चाहिये, जो कम्मावाचा का

उच्चारण करता है, उसकी जिव्हा खींच ली जानी चाहिये, और संघ के उन सदस्यों की पसलियाँ तोड़ दी जानी चाहियें?''

13. तब राजा उस स्थल पर गया जहाँ तथागत थे, और प्रणाम करने के उपरान्त उसने उन्हें सारी बात बताई, जो कुछ घटित हुआ था।

14. ''तथागत! आप भलि-भाँति जानते हैं, कि ऐसे राजा भी हैं, जो धम्म के विरुद्ध हैं। ये विरोधी राजा सदैव भिक्षुओं को मामूली से मामूली बातों के लिए भी कष्ट देने को तैयार रहते हैं। यदि वे जान गए कि भिक्षु सिपाहियों को सेना का त्याग करने और भिक्षु-संघ में सम्मिलित होने के लिये बहका रहे हैं तो उस सीमा की कल्पना करना असम्भव है कि भिक्षुओं के प्रति वे क्या-क्या दुर्व्यवहार कर सकते हैं। कृपया तथागत इस विपत्ति को रोकने के लिये आवश्यक कार्यवाही करें।''

15. तथागत ने उत्तर दिया, ''यह मेरी कभी मंशा नहीं रही कि सैनिकों को अहिंसा की आड़ में या अहिंसा के नाम पर राजा और उनके राष्ट्र के प्रति उनके कर्तव्य का परित्याग करने की अनुमति दी जाये।''

16. तद्नुसार तथागत ने राजकीय सेवा लोगों के लिए भिक्षु-संघ में प्रवेश के विरुद्ध एक नियम बनाया और भिक्षुओं को उसकी उद्घोषणा करते हुए यह कहा, ''हे भिक्षुओ! जो राजकीय सेवा में हों, उसे प्रव्रज्या ग्रहण न कराओ। जो ऐसे व्यक्ति को प्रव्रज्या प्रदान कराता है, वह एक दृष्कृत अपराध का दोषी होगा।''

17. एक दूसरे संदर्भ में भी महावीर के एक अनुयायी तथा सेना के सेनापति सिंह ने अहिंसा के विषय में तथागत से प्रश्न किया था।

18. सिंह ने पूछा, ''तथागत के सिद्धान्त से सम्बन्धित एक सन्देह अब भी मेरे मन में शेष है। तथागत सन्देह को दूर करने की अनुमति देंगे, जिससे कि मैं धम्म को उसी रूप से समझ सकूँ, जिस प्रकार तथागत उसे प्रतिपादित करते हैं।''

19. तथागत द्वारा अपनी अनुमति देने पर, सिंह ने कहा, ''हे तथागत! मैं एक सैनिक हूँ और राजा द्वारा उनके कानून को लागू करने तथा उसके युद्ध लड़ने के लिये नियुक्त किया गया है। क्या तथागत, जो सभी दुखियों के प्रति असीम दया और करुणा की शिक्षा देते हैं, अपराधी को दण्ड देने की अनुमति देंगे? और इसके आगे, क्या तथागत घोषित करते हैं कि अपने घरों, अपनी पत्नियों, अपने बच्चों, और अपनी सम्पत्ति की सुरक्षा करने के लिए युद्ध करना गलत है? क्या तथागत एक पूर्ण आत्म-समर्पण के सिद्धांत की शिक्षा देते हैं? जिससे कि मैं कुकर्मी द्वारा कष्ट पाऊँ, जो वह करना चाहता है वह उसके समक्ष सम्पूर्ण समर्पण कर दूँ, जो हिंसा द्वारा जो कुछ मेरा अपना उसे लेने की धमकी दे? क्या तथागत

यह मानते हैं कि सभी संघर्ष, ऐसे युद्ध सहित भी हैं जो न्यायोचित कारण से लड़े जाते हैं, वर्णित होने चाहिये?''

20. तथागत ने उत्तर दिया, ''वह जो दण्ड के योग्य है उसे अवश्य दण्डित किया जाना चाहिये, और जो उपहार के योग्य है, उसे अवश्य ही उपहार दिया जाना चाहिये। फिर भी किसी भी प्राणी को कोई हानि नहीं पहुँचनी चाहिये बल्कि प्रेम एवं दयापूर्ण बर्ताव करना चाहिये। ये निषेधाज्ञायें परस्पर विरोधी नहीं है, क्योंकि जो कोई भी अपराधों के लिये दण्डित किया जाता है। वह न्यायाधीश की द्वेष-भावना से नहीं, बल्कि अपने बुरे कर्मों के परिणामस्वरूप पीड़ित होता है। उसके अपने कर्म ही उसके लिये वह कष्ट लाए हैं, जो कानून के न्यायाधीश द्वारा दिया गया है। जब एक न्यायाधीश दण्ड देता है, उसके मन में दण्डनीय व्यक्ति के प्रति द्वेष की भावना नहीं होनी चाहिये। यद्यपि एक हत्यारे को जब मृत्युदण्ड दिया जाये उसे सोचना चाहिये कि यह उसके कर्मों का फल है। जितना शीघ्र वह यह समझ जायेगा कि दण्ड उसकी अन्तर-मन को निर्मल बनाएगा तो कोई भी दण्डनीय व्यक्ति अपने कर्म के फल को नहीं रोयेगा बल्कि उस पर प्रसन्न होगा।''

21. इन घटनाओं की उचित समझ यह दर्शायेगी कि तथागत द्वारा उपदेशित 'अहिंसा' मूलभूत थी, किन्तु वह निरपेक्ष नहीं थी।

22. उन्होंने देखा कि बुराई को भलाई के द्वारा जीतना चाहिये। किन्तु उन्होंने यह कभी नहीं उपदेश दिया कि बुराई को भलाई पर नियंत्रण कर लेने देना चाहिये।

23. तथागत अहिंसा के पक्षधर थे और उन्होंने हिंसा की हमेशा निन्दा की थी। किन्तु उन्होंने इससे इन्कार नहीं किया था कि भलाई को बुराई द्वारा नष्ट किये जाने पर हिंसा अन्तिम आश्रय हो सकती है।

24. इस प्रकार यह ऐसा नहीं था कि तथागत ने जिस खतरनाक सिद्धान्त की देशना की थी। ये आलोचक ही हैं जो उसके औचित्य और उसके क्षेत्र को समझ सकने में असफल रहे हैं।

4. शील का उपदेश देकर अंधकार (निराशा) उत्पन्न करने का आरोप

(i) दुख को निराशा का कारण बताना

1. कपिल द्वारा दिया गया दुख के मूल अर्थ का अभिप्राय चंचलता, अशान्ति, उत्तेजना था।

2. प्रारम्भ में इस शब्द का तात्त्विक अर्थ (गूढ़ व रहस्यमय) था।
3. बाद में इस शब्द को शारीरिक पीड़ा और मानसिक व्यथा के रूप में इसका अर्थ ग्रहण कर लिया।
4. लेकिन दोनों अर्थ एक दूसरे से बहुत दूर-दूर नहीं थे। वे अत्यन्त समीप थे।
5. अशान्ति, पीड़ा और व्यथा को लाती है।
6. शीघ्र ही इसने सामाजिक और आर्थिक कारणों से उत्पन्न पीड़ा और व्यथा का अर्थ ग्रहण कर लिया।
7. भगवान् बुद्ध ने 'दु:ख' शब्द को किन अर्थों में प्रयोग किया?
8. भगवान बुद्ध के एक उपदेश से स्पष्ट हो जाता है कि बुद्ध को भली-भांति ज्ञात था कि दरिद्रता दुख की जननी होती है।
9. उस उपदेश में वे कहते हैं, "भिक्षुओ! क्या दरिद्रता एक संसारी आदमी के लिये एक दुखपूर्ण वस्तु है?'
10. 'निश्चित रूप से, भगवान्!"
11. "और जब एक मनुष्य, दरिद्र एवं तंगहाल होता है, वह कर्ज में फंस जाता है और क्या वह भी दुखपूर्ण स्थिति है।"
12. "निश्चित रूप से, भगवान्!"
13. "और जब वह कर्ज में फंस जाता है, वह उधार लेता है, और क्या वह भी दुखद है?"
14. "निश्चित रूप से, भगवान्!"
15. "और जब कर्जा चुकाने का समय आता है, वह चुका नहीं पाता है और वे लोग उस पर दबाव डालते हैं; क्या वह भी दुखद है?"
16. "निश्चित रूप से, भगवान्!"
17. "और जब उस पर दबाव डाला जाता है, फिर भी वह नहीं चुका पाता है और वे लोग उसे पीटते हैं, क्या वह भी दुखद है?"
18. "निश्चित रूप से, भगवान्!"
19. "और जब पीटा जाता है, वह नहीं चुका पाता है और वे लोग उसे बाँध देते हैं, क्या वह भी दुखद है?"
20. "निश्चित रूप से, भगवान्!"
21. "इस प्रकार, भिक्षुओ! दरिद्रता, कर्ज, उधार, दबाव डाला जाना, पीटा जाना और

बाँधा जाना सभी संसारी अनुत्तरदायी के लिये दुखद हैं।''

22. ''संसार में दरिद्रता और कर्ज दुखद हैं।''
23. इस प्रकार बुद्ध की दुख की कल्पना भौतिक है।

(ii) अनित्यता को निराशा का कारण बताना

1. इस दोषारोपण का एक अन्य आधार इस सिद्धान्त से उत्पन्न होता है कि प्रत्येक वस्तु अनेक चीजों से संयुक्त है, वह अब अनित्य है।
2. कोई भी इस सिद्धान्त की सत्यता पर प्रश्न नहीं करता है।
3. प्रत्येक वस्तु अनित्य है, इसे सभी द्वारा स्वीकार किया गया है।
4. यदि कोई सिद्धान्त सत्य है तो उसे अवश्य ही घोषित किया जाना चाहिये भले ही वह कितना भी अप्रिय हो।
5. किन्तु इससे एक निराशावादी परिणाम क्यों निकाला जाये?
6. यदि जीवन लघु है, तो वह लघु है और किसी को भी उसके लिये उदास होने की आवश्यकता नहीं है।
7. यह तो केवल अपनी-अपनी व्याख्या करने का विषय है।
8. बर्मियों की व्याख्या अत्यन्त भिन्न है।
9. बर्मी लोग परिवार में मृत्यु की घटना को इस प्रकार मनाते हैं, जैसे वह आनन्द की घटना रही हो।
10. मृत्यु के दिन गृहस्थ एक सार्वजनिक भोज देता है और लोग नाचते हुए शव को श्मशान-भूमि तक ले जाते हैं। कोई भी मृत्यु का शोक नहीं करता, क्योंकि वह तो आने ही वाली थी।
11. यदि अनित्यता निराशावादी है, तो यह केवल इसलिये है, क्योंकि नित्यता को सत्य मान लिया गया था, यद्यपि यह एक असत्य है।
12. इसलिये बुद्ध की देशना को निराशा फैलाने वाला कदापि नहीं कहा जा सकता है।

(iii) क्या बौद्ध धम्म निराशावादी है?

1. भगवान बुद्ध के धम्म पर निराशावादी होने का आरोप लगाया जाता रहा है।

2. यह आरोप प्रथम आर्य सत्य से उत्पन्न होता है, जो कहता है कि संसार में दुख (चिन्ता-कष्ट) है।

3. यह बल्कि आश्चर्यजनक है कि दुख के उल्लेख ने ऐसे एक आरोप को उत्पन्न करने का अवसर प्रदान किया है।

4. कार्ल मार्क्स ने भी कहा है कि संसार में शोषण है और अमीर और अधिक अमीर तथा गरीब और अधिक गरीब बने जा रहे हैं।

5. फिर भी किसी ने नहीं कहा है, कार्ल मार्क्स का सिद्धान्त निराशावादी है।

6. तब एक भिन्न दृष्टिकोण भगवान् बुद्ध के सिद्धान्त के प्रति क्यों दर्शाया जाता है?

7. ऐसा इसलिये हो सकता है, क्योंकि भगवान् बुद्ध के लिये कहा जाता है कि उन्होंने अपने प्रथम उपदेश में ही कहा है, "जन्म दुख है, जरा (वृदावस्था) दुख है, मृत्यु दुख है", इसलिये उनके धम्म को ही एक गहरी निराशावादी रंगत दे दी गयी है।

8. किन्तु जो साहित्यिक हैं, वे जानते हैं, यह अतिशयोक्ति का एक कौशल है और यह साहित्यिक कला में निपुण लोगों द्वारा प्रभाव उत्पन्न करने के लिये प्रयोग किया गया है।

9. जन्म दुख है, बुद्ध द्वारा कही गयी एक अतिशयोक्ति है। इसे उनके एक प्रवचन का उल्लेख कर सिद्ध किया जा सकता है, जिसमें उन्होंने उपदेश दिया है कि एक मनुष्य के रूप में जन्म अत्यन्त दुर्लभ वस्तु है।

10. पुनः यदि बुद्ध ने केवल दुख का ही उल्लेख किया होता तो संभवतः ऐसा एक आरोप सही माना जा सकता है।

11. किन्तु बुद्ध का दूसरा आर्य सत्य जोर देता है कि इस दुख का अवश्य अन्त होना ही चाहिये। उन्होंने दुख का अन्त करने के उद्देश्य से ही कर्त्तव्य पर जोर देने के अस्तित्व की चर्चा की है।

12. बुद्ध ने दुख को दूर करने की बात को सर्वाधिक महत्त्व दिया है। यही कारण है कि उन्होंने पाया कि कपिल ने केवल दुख की चर्चा की है और इसके विषय में कुछ और नहीं कहा था, जिसके कारण उन्होंने असंतोष अनुभव किया और मुनि आलार कालाम का आश्रम छोड़ दिया था।

13. यह धम्म निराशावादी किस प्रकार कहला सकता है?

14. निश्चित रूप से जो दुख का अन्त करने के लिये उत्सुक थे, ऐसे शास्ता के ऊपर निराशावाद का आरोप नहीं लगाया जा सकता।

5. आत्मा और पुनर्जन्म के सिद्धान्तों की आलोचना

1. तथागत ने देशना दी थी कि कोई आत्मा नहीं है। तथागत ने साथ ही यह भी पुष्टि की थी कि पुनर्जन्म है।
2. ऐसे लोगों की कमी नहीं थी, जिन्होंने ऐसा उपदेश देने पर तथागत की आलोचना की थी, जिसे वे दो परस्पर विरोधी सिद्धान्त मानते थे।
3. वे पूछते थे, यदि कोई आत्मा नहीं है, तो पुनर्जन्म कैसे हो सकता है?
4. इसमें कोई अंतर्विरोध नहीं है। यद्यपि बिना आत्मा के पुनर्जन्म (पुनर्भव) हो सकता है।
5. एक आम का बीज है। बीज एक आम के वृक्ष को उत्पन्न करता है। आम का वृक्ष आम पैदा करता है।
6. यहाँ आम का पुनर्जन्म (पुनर्भव) है।
7. किन्तु यहाँ कोई आत्मा नहीं है।
8. इसी प्रकार बिना आत्मा के पुनर्जन्म (पुनर्भव) हो सकता है।

6. उच्छेदवादी होने के आरोप

1. एक बार जब तथागत श्रावस्ती के जेतवनाराम में ठहरे हुए थे। उन्हें यह सूचित किया गया था कि अरिट्ठ नामक एक भिक्षु ऐसे मतों को तथागत द्वारा शिक्षित सिद्धान्त समझने लगा है, जो तथागत का मत नहीं है।
2. एक सिद्धान्त, जिसके विषय में अरिट्ठ तथागत को मिथ्या-निरुपित कर रहा था, वह यह कि क्या वे उच्छेदवादी हैं।
3. तथागत ने अरिट्ठ को बुलवाया, अरिट्ठ आया। प्रश्न किये जाने पर उसका मुंह बंद हो गया और बैठा रहा।
4. तथागत ने तब उससे कहा, "कुछ श्रमण और ब्राह्मण, गलत तौर से, भ्रान्तिपूर्ण तथा मिथ्या रूप से-मुझ पर तथ्यों की अवज्ञा और एक उच्छेदवादी होने और विघटन की देशना करने का तथा विद्यमान प्राणियों के उच्छेदन का आरोप लगाते हैं।"
5. "यही तो मैं नहीं हूँ और जिसकी मैं पुष्टि नहीं करता।"
6. "जो कुछ मैंने पहले भी और आज भी निरन्तर उपदेशित किया है, वह यह है कि दुख का अस्तित्व है और दुख का निरोध भी है।"

चौथा भाग
मित्र और प्रशंसक

1. धानन्जानी ब्राह्मणी की श्रद्धा
2. विशाखा की दृढ़ श्रद्धा
3. मल्लिका की निष्ठा
4. एक गर्भवती माँ की तीव्र अभिलाषा
5. केनिय द्वारा स्वागत
6. प्रसेनजित् के द्वारा तथागत की प्रशंसा में

1. धानन्जानी ब्राह्मणी की श्रद्धा

1. तथागत के अनेक मित्र और प्रशंसक थे। उनमें से एक धानन्जानी भी थी।

2. वह एक भारद्वाज ब्राह्मण की पत्नी थी। उसका पति तथागत से घृणा करता था। किन्तु धानन्जानी तथागत की अनुयायी थी। उसकी श्रद्धा उल्लेख करने योग्य है।

3. तथागत एक बार राजगृह के समीप वेलुवन विहार कलन्दक निवाप नामक स्थान पर ठहरे हुए थे।

4. उन्हीं दिनों भारद्वाज परिवार के एक ब्राह्मण की पत्नी, धानन्जानी ब्राह्मणी अपने पति के साथ राजगृह में निवास करती थी।

5. यद्यपि उसका पति बुद्ध का एक प्रबल विरोधी था, लेकिन धानन्जानी बुद्ध, धम्म और संघ के प्रति धर्मोत्साही विश्वासी थी। उसे त्रिरत्न की प्रशंसा करने की आदत थी। जब कभी वह इस प्रकार प्रशंसा करने लगती थी, तो उसका पति अपने कान बन्द कर लिया करता था।

6. उसने अपने अनेक साथी ब्राह्मणों को संध्या में दिए जाने वाले एक विशाल भोज पर आमंत्रित किया, उसने अपनी पत्नी से आग्रह किया कि वह चाहे जो करें, किन्तु बुद्ध की प्रशंसा करके उसके अतिथियों को अप्रसन्न न करे।

7. धानन्जानी ऐसा कोई वचन देने को तैयार न थी। उसके पति ने उसे अपनी तलवार से केले के समान उसके टुकड़े कर देने की धमकी दी। वह स्वयं पीड़ा सहन करने के लिये तैयार हो गई। इस प्रकार उसने अपनी वाणी की स्वतंत्रता बचाये रखी और बुद्ध की प्रशंसा में पाँच सौ गाथाएँ कह सुनाईं, और बिना शर्त आत्मसमर्पण कर दिया।

8. भोजन पात्र तथा सुनहरी चम्मचें लगा दी गयी थीं और अतिथि भोजन के लिये बैठ गये थे। अतिथियों को भोजन परोसते समय ही उसकी बलवती भावना ने जोर मारा। भोजन के मध्य ही वह वेलुवनाराम अभिमुख हो गयी और त्रिरत्न की प्रशंसा करने लग गयी।

9. अपमानित अतिथि उठ खड़े हुए, एक नास्तिक की उपस्थिति से अपवित्र भोजन को थूकते हुए वे वहां से विदा हुए और उसके भोज के चौपट हो जाने पर पति ने उसे बहुत गालियाँ दीं।

10. जब भारद्वाज को भोजन परोस रही थी, उसने समक्ष आकर त्रिरत्न की प्रशंसा की। उस भगवान, अर्हन्त, सम्यक सम्बुद्ध को नमस्कार, जय धम्म-धम्म को

नमस्कार, संघ को नमस्कार कहा।

11. जब उसने ऐसा कहा तो भारद्वाज क्रोधित हो गया और चिल्लाया, "यहाँ अब हे अभागिन! तू हमेशा उस सिर-मुण्डे भिक्षु की प्रशंसा करती रहती है? हे अभागिन! अब मैं तेरे उस गुरु को जाकर सबक सिखाऊँगा।"

12. धानन्जानी ने उत्तर दिया, "हे ब्राह्मण! मैं देवों, मारों या ब्रह्मों के सम्पूर्ण लोक में किसी ऐसे, श्रमण या ब्राह्मण को, किसी मनुष्य या देवता को नहीं जानती, जो इस प्रकार उन तथागत, अर्हन्त, सम्यर्क सम्बुद्ध की भर्त्सना कर सके। फिर भी, तुम जाओ ब्राह्मण और तब तुम स्वयं जान जाओगे।"

13. तब खिझा हुआ और अप्रसन्न भारद्वाज तथागत को खोजने गया, वहां पहुंचकर उनके समक्ष उन्हें अभिवादन किया। मित्रवत और शिष्टाचारपूर्वक कुशल-क्षेम पूछा और एक ओर बैठ गया।

14. इस प्रकार बैठे उसने तथागत से निम्नलिखित प्रश्न पूछे, "सुखपूर्वक रहने के लिए हमें किसका वध करना चाहिये? अधिक रोना न पड़े, इसके लिये किसका वध करना चाहिये? गौतम सभी वस्तुओं से ऊपर क्या है, जिसकी हत्या की आप सहमति देते हैं?"

15. तथागत ने इस प्रकार उत्तर दिया, "सुखपूर्वक रहने के लिए तुम्हें क्रोध की ही हत्या करनी चाहिये, और अधिक रोना न पड़े इसके लिए तुम्हें क्रोध का ही वध करना चाहिये। हे ब्राह्मण! क्रोध की हत्या उसके विषैले मूल, व्यग्र पराकाष्ठा और हिंसक माधुर्य सहित करनी चाहिये। यही हत्या आर्यों द्वारा प्रशंसित की गयी है। अधिक न रोने के लिये शान्ति के लिये तुम्हें इसकी हत्या अवश्य कर देनी चाहिये।"

16. तथागत द्वारा दिये गये उत्तर की श्रेष्ठता को समझकर भारद्वाज ब्राह्मण ने उनसे कहा: "भगवान्! अद्भुत है, भगवान्! सर्वाधिक अद्भुत है! ठीक उसी प्रकार जैसे गिरी हुए वस्तु को मनुष्य स्थापित कर दे या उसे प्रकट कर दे, जो प्रच्छन्न रही हो, या उसको सही मार्ग निर्देशित कर दे, जो पथभ्रष्ट हो गया हो, या अन्धकार में दीप जला दे, जिससे कि वे आँखों वाले ब्राह्य वस्तुओं को देख सके, इसी प्रकार भगवन् गौतम ने विभिन्न प्रकार से मुझे अपना सद्धर्म दर्शा दिया है। यहाँ तक कि मैं स्वयं बुद्ध, धम्म और संघ की शरण में जाता हूँ। मैं गौतम के नियमों के अधीन गृह-त्याग करूँगा, मैं उनकी आज्ञा मानूँगा।"

17. अत: धानन्जानी बुद्ध की केवल एक अनुयायी ही नहीं थी, बल्कि उसने अपने पति को भी बुद्ध का एक अनुयायी बना दिया था।

2. विशाखा की दृढ़-श्रद्धा

1. विशाखा अंग जनपद के भद्दिय नगर में जन्मी थी।
2. उसके पिता धनन्जय थे और उसकी माता का नाम सुमना था।
3. एक बार सेल ब्राह्मण के निमन्त्रण पर बुद्ध एक विशाल भिक्षु-संघ के साथ भद्दिय गये थे। उस समय उसकी पोती विशाखा तब सात वर्ष की थी।
4. यद्यपि विशाखा सात वर्ष की थी, तो भी उसने अपने दादा मेण्डक से बुद्ध के दर्शन करने की अपनी इच्छा व्यक्त की थी। मेण्डक ने उसे ऐसा करने की अनुमति दे दी और उसे पाँच साथी, पाँच सौ दास और पाँच सौ रथ दिये, जिससे कि वह बुद्ध के पास जा सके।
5. उसने रथ को कुछ दूरी पर रोक दिया और पैदल बुद्ध के पास गयी थी।
6. भगवान बुद्ध ने उसे धम्म का उपदेश दिया और वह उनकी गृहस्थ शिष्या (उपासिका) बन गयी।
7. अगले पखवाड़े के लिये मेण्डक ने बुद्ध और उनके अनुयायियों को प्रतिदिन अपने घर में आमन्त्रित किया, जहाँ उसने उन्हें भोजन कराया।
8. बाद में प्रसेनजित् के निवेदन पर जब बिम्बिसार ने धनन्जय को कोसल में रहने के लिये भेज दिया, तो विशाखा भी अपने माता-पिता के साथ गयी और साकेत में रहने लगी।
9. श्रीवास्ती का एक धनी नागरिक मिगार अपने पुत्र पुण्यवर्धन का विवाह करना चाहता था। उसने एक सुयोग्य दुल्हन खोजने के लिये कुछ लोगों को भेजा था।
10. दुल्हन की खोज में निकला दल साकेत में आ पहुँचा था। उन्होंने एक त्यौहार के दिन नहाने के लिये झील में अपने रास्ते जाती हुई विशाखा को देखा।
11. उसी समय बड़े जोर की वर्षा हुई। विशाखा की सखियाँ शरण के लिये भाग खड़ी हुई। किन्तु विशाखा नहीं भागी। वह अपनी सामान्य चाल से चलती हुई उस जगह पर पहुँची जहाँ सन्देशवाहक थे।
12. उन्होंने उससे पूछा कि क्यों वह शरण के लिये नहीं दौड़ी और इस प्रकार अपने कपड़े नहीं बचाये। उसने उत्तर दिया कि उसके पास बहुत से कपड़े हैं, किन्तु यदि वह भागती तो उसके अपने किसी अंग में चोट लग सकती थी, जिसे वह बदल नहीं सकती थी। उसने कहा, ''अविवाहित लड़कियाँ बिक्री के लिये रखी वस्तुओं के समान होती हैं, उनकी शक्ल-सूरत ठीक होनी चाहिये।''

13. वह दल जो पहले ही उसकी सुन्दरता से प्रभावित हो गया था, उसकी बुद्धि से और भी प्रभावित हुआ। उस दल ने उसे फूलों का एक गुलदस्ता प्रस्तुत किया, जिसे उसने विवाह के एक प्रस्ताव के रूप में स्वीकार कर लिया।

14. विशाखा ने घर लौटने के पश्चात् विवाह-दल ने उसका अनुसरण किया और पुण्यवर्धन का विवाह प्रस्ताव धनन्जय के सम्मुख रखा। प्रस्ताव स्वीकृत हो गया और पत्रों की अदला-बदली द्वारा सुनिश्चित हो गया।

15. जब प्रसेनजित् ने इसके विषय में सुना, उसने साकेत चलने में पुण्यवर्धन का साथ देने का प्रस्ताव किया, जो एक विशिष्ट सम्मान की बात थी। धनन्जय ने राजा और उसके परिजनों, मिगार पुण्यवर्धन और उनके परिचरों का बड़ा ही आदर-सत्कार किया, आतिथ्य की सभी बातों का व्यक्तिगत रूप से ध्यान रखा गया।

16. पाँच सौ सुनार दुल्हन के लिये गहने बनाने के लिये नियुक्त किये गये। धनन्जय ने अपनी लड़की को, दहेज के रूप में, धन से भरी, पाँच सौ गाड़ियाँ, सोने के पात्रों से लदी हुई और पशुओं इत्यादि को दिया।

17. जब विशाखा की विदाई का समय आया, धनन्जय ने उसको दस चेतावनियाँ दीं, जिन्हें मिगार ने साथ के कमरे में होने के कारण सुन लिया। ये चेतावनियाँ थीं, (1) घर की आग बाहर नहीं जाने देना, (2) बाहर की आग घर में नहीं आने देना, (3) केवल उन्हीं को देना जो बदले में लौटायें, (4) उनको नहीं देना जो बदले में नहीं लौटाये, (5) उसे देना जो देता है जो नहीं देता उसे नहीं देना, (7) प्रसन्नतापूर्वक बैठना, (8) प्रसन्नतापूर्वक खाना-पीना, (9) आग की देखभाल करना और (10) गृह-देवताओं का सम्मान करना।

18. अगले दिन धनन्जय ने अपनी लड़की के लिये आठ गृहस्थों को उत्तरदायी (प्रतिभू) के रूप में नियुक्त किया जो लड़की के गुण-दोषों का विवेचन करें। उनका कर्तव्य था कि यदि विशाखा पर कोई आरोप लगाया जाए तो उसकी जांच करें।

19. मिगार चाहता था कि उसकी पुत्र-वधू श्रावस्ती की जनता द्वारा अवश्य देखी जाये। विशाखा ने अपने रथ पर खड़े हुए श्रावस्ती में प्रवेश किया और जनता सड़क के दोनों ओर पंक्तिबद्ध खड़ी थी। जनता ने उस पर उपहार बरसाये, किन्तु इन्हें उसने लोगों के मध्य ही बाँट दिया।

20. मिगार निगण्ठों का अनुयायी था और विशाखा के घर में आने के बाद शीघ्र ही, उसने उन्हें बुलवाया और उसको उनकी सेवा करने के लिये कहा। किन्तु विशाखा ने उनकी नग्नता के कारण इन्कार कर दिया, उनके प्रति सम्मान प्रदर्शित

करना अस्वीकार कर दिया।

21. निगण्ठों ने आग्रह किया कि उसे वापस भेज दिया जाये, किन्तु मिगार ने प्रतीक्षा करना उचित समझा।

22. एक दिन जब मिगार भोजन कर रहा था, जबकि विशाखा पास खड़ी उसका पंखा झल रही थी, एक भिक्षु घर के बाहर खड़ा दिखाई दिया। विशाखा एक ओर खड़ी हो गयी, जिससे मिगार उसको देख सके। किन्तु मिगार भिक्षु की ओर ध्यान न देते हुए भोजन करता रहा।

23. यह देखकर विशाखा ने भिक्षु से कहा, "आगे बढ़ जायें भन्ते! ससुरबासी भोजन कर रहे हैं।" मिगार क्रोधित हो गया और उसे वापिस भेज देने की धमकी दी, किन्तु उसके आग्रह पर मामला उसके उत्तरदायियों (प्रतिभू) को निर्दिष्ट कर दिया गया।

24. उन्होंने विशाखा विरुद्ध लगाये गये अनेक आरोपों की जाँच की और उसे निर्दोष घोषित किया।

25. विशाखा ने तब आदेश दिया कि उसके माता-पिता के पास उसके लौटने की तैयारियां की जायें। मिगार और उसकी पत्नी दोनों ने ही उससे क्षमा करने का निवेदन किया, जो उसने दे दी, लेकिन इस शर्त पर कि वे बुद्ध और उनके भिक्षुओं को घर में आमन्त्रित करेंगे।

26. यह उसने किया, किन्तु निगण्ठों के प्रभाव के कारण, उसने उनके अतिथि-सत्कार का काम विशाखा को ही सौंप दिया, और भोजन की समाप्ति पर एक पर्दे के पीछे से बुद्ध का उपदेश सुनने मात्र के लिए ही सहमत हुआ।

27. वह उपदेश द्वारा इतना प्रभावित हुआ कि वह एक उपासक बन गया।

28. विशाखा के प्रति अत्यन्त कृतज्ञ था। इसके बाद वह उसको अपनी माता के समान समझने लगा और उसी प्रकार आदर-सत्कार करने लगा। इस समय के बाद वह मिगार माता कहलाती थी।

29. ऐसी थी विशाखा की दृढ़-श्रद्धा।

3. मल्लिका की निष्ठा

1. एक बार जब तथागत श्रावस्ती के जेतवनाराम में ठहरे हुए थे, एक गृहस्थ का प्रिय पुत्र मर गया था। इस शोक में पिता ने अपने व्यवसाय और अपने भोजन को उपेक्षित ही कर दिया।

2. वह सदैव श्मशान-भूमि जाया करता था और वहाँ, यह कहते हुए उच्च स्वर में विलाप किया करता था, ''तुम कहाँ हो, मेरे पुत्र, तुम कहाँ हो?''
3. शोक-संतप्त पिता तथागत के पास आया और अभिवादन के पश्चात् एक ओर बैठ गया।
4. यह देखकर कि उसका चित्त पूर्णतया खाली था, किसी भी वस्तु में रुचि नहीं दर्शा रहा था, अपने आने का उद्देश्य भी नहीं बता रहा था, उसकी अवस्था को समझकर तथागत ने कहा, ''तुम अपने आपे में नहीं हो, तुम्हारा चित्त पूर्णतया अस्थिर है।''
5. ''भगवान्! मेरा चित्त कैसे स्थिर रह सकता है, जब कि मैंने अपना प्रिय और एकमात्र पुत्र खो दिया है?''
6. ''हाँ गृहपति! हमारे प्रियजन ही शोक, संताप, कष्ट, दुःख, पीड़ा और विपत्ति लाते हैं।''
7. ''यह सुनकर उस गृहपति को क्रोध आ गया, और बोला, ''भगवान्! ऐसे एक दृष्टिकोण को कौन स्वीकर कर सकता है? बल्कि, हमारे प्रियजन हमारे लिये आनंद और सुख का कारण होते हैं।''
8. और इन शब्दों के साथ गृहपति, तथागत के कथन को अस्वीकार करते हुए, रुष्ट होकर उठ खड़ा हुआ और चला गया।
9. समीप ही कुछ जुआरी पासा खेल रहे थे। गृहपति उनके पास आया और उन्हें अपनी सब बात कह सुनाई कि कैसे उसने अपना दुःख श्रमण को सुनाया, कैसे उसका स्वागत उन्होंने किया और कैसे वह रुष्ट होकर चला गया।
10. जुआरियों ने कहा, ''तुम एकदम ठीक हो, क्योंकि हमारे प्रियजन हमारे लिये आनंद और सुख के स्रोत होते हैं।'' अतः गृहपति को लगा कि उसे जुआरियों से अपनी बात का समर्थन प्राप्त है।
11. धीरे-धीरे अब यह बात महल के अंतःपुर तक पहुँच गयी, जहाँ राजा ने रानी मल्लिका को बताया कि तुम्हारे श्रमण गौतम ने कहा है कि प्रियजन शोक, संताप, कष्ट, पीड़ा और विपत्ति लाते हैं।
12. ''ठीक है स्वामी! यदि तथागत ने ऐसा कहा है, तो ठीक ही कहा है।''
13. ''मल्लिका! जैसे एक शिष्य जो उसका गुरु उसे कहता है, यह कहते हुए वह सब स्वीकार कर लेता है।'' ठीक उसी प्रकार तू भी जो कुछ श्रमण गौतम कहते हैं, तुम भी यह कहते हुए, वह सब स्वीकार कर लेती हो। यदि तथागत ने ऐसा कहा है, तो यह ऐसा ही है, तुम दूर हट जाओ।

14. तब रानी ने नलि ब्राह्मण को तथागत के पास जाने को कहा और अपनी ओर से, अपना शीश तथागत के चरणों में नवाने और उनके कुशल समाचार पूछने के उपरान्त यह पूछने को कहा कि क्या उन्होंने वास्तव में कहा था, जो उनके विषय में कहा जा रहा है।

15. उसने आगे कहा, ''ध्यान रखना, जो कुछ भी तथागत उत्तर दें ठीक मुझे वही बताना।''

16. रानी की आज्ञा के अनुसार ब्राह्मण गया और तथागत से यथावत पूछा कि क्या वास्तव में उन्होंने ऐसा कहा है।

17. ''हाँ, ब्राह्मण! हमारे प्रियजन शोक, संताप, कष्ट, पीड़ा, दुःख और विपत्ति लाते हैं। ये कुछ प्रमाण हैं।''

18. ''एक बार, यहीं श्रावस्ती में ही, एक स्त्री की माँ मर गयी और पुत्री, पागल हो और अपने आये से बाहर हो, एक सड़क से दूसरी सड़क, एक चौराहे से दूसरे चौराहे यह कहते हुए घूमती थीः क्या तुमने मेरी माँ को देखा है? क्या तुमने मेरी माँ को देखा है?''

19. ''एक अन्य प्रमाण श्रावस्ती की एक स्त्री का है जिसने अपने पिता, एक भाई, एक बहन, एक पुत्र, एक पुत्री, एक पति को खो दिया था। पागल और आपे से बाहर हो, वह स्त्री एक सड़क से दूसरी सड़क और एक चौराहे से दूसरे चौराहे यह पूछते हुए घूमती थी कि क्या किसी ने उसके प्रियजनों को देखा है जिन्हें वह खो चुकी है।''

20. ''एक अन्य प्रमाण श्रावस्ती का ही वह व्यक्ति है, जिसने अपनी माता, अपने पिता–एक भाई, एक बहन, एक पुत्र, एक पुत्री, एक पत्नी को खो दिया था। पागल और आपे से बाहर हो, वह व्यक्ति एक सड़क से दूसरी सड़क और एक चौराहे से दूसरे चौराहे पर पूछते हुए घूमता था कि क्या किसी ने उसके प्रियजनों को देखा है, जिन्हें वह खो चुका है।''

20. ''एक अन्य प्रमाण श्रावस्ती का ही वह व्यक्ति है, जिसने अपनी माता, अपने पिता, एक भाई, एक बहन, एक पुत्री, एक पत्नी को खो दिया था। पागल और आपे से बाहर हो, वह व्यक्ति एक सड़क से दूसरी सड़क और एक चौराहे से दूसरे चौराहे पर पूछते हुए घूमता था कि क्या किसी ने उसके प्रियजनों को देखा है, जिन्हें वह खो चुका है।''

21. ''एक और प्रमाण श्रावस्ती की वह स्त्री है, जो अपने मायके गयी थी और वे लोग उसे उसके पति से छीनकर उसका विवाह किसी और से करना चाहते थे, जिसे वह पसन्द नहीं करती थी।''

22. ''उसने अपने पति को इसके विषय में बता दिया, जिस पर उसने उसके दो टुकड़े कर दिये और तब स्वयं अपनी स्व-हत्या कर ली थी, जिससे कि वे दोनों एक साथ मर सकें।

23. यह सब नली-ध्यान ब्राह्मण ने शब्दशः रानी को सूचित कर दिया था।

24. रानी तब राजा के पास गयी और पूछा, ''महाराज क्या आपको अपनी इकलौती पुत्री, राजकुमारी वजिरा प्रिय है। हां, प्रिय है'', राजा ने उत्तर दिया।

25. ''यदि आपकी वजिरा को कुछ हो जाये, तो क्या आपको दुख होगा या नहीं? 'यदि उसको कुछ हो जायेगा, तो इससे मेरे जीवन पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ेगा।''

26. मल्लिका ने पूछा, ''क्या आपको मैं प्रिय हूँ।'' 'हाँ' प्रिय हो।

27. ''यदि मुझे कुछ हो जाए तो क्या आपको दुःख होगा या नहीं?'', ''यदि तुमको कुछ हो जायेगा, तो इससे मेरे जीवन पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ेगा।''

28. ''स्वामी! क्या आपको काशी और कोशल के लोग प्रिय हैं'' 'हाँ' राजा ने उत्तर दिया। 'यदि उनको कुछ हो जाये तो क्या आपको दुःख होगा या नहीं।''

29. ''यदि उनको कुछ हो जायेगा, इससे बहुत बुरा प्रभाव पड़ेगा, यह अन्यथा कैसे हो सकता है?''

30. ''क्या तथागत ने इससे भिन्न कोई बात कहीं थी?'' राजा ने पश्चाताप प्रकट करते हुए कहा, ''नहीं मल्लिका।''

4. एक गर्भवती माँ की तीव्र अभिलाषा

1. एक बार जब तथागत भग्ग-देश के सुंसुभार पर्वत पर भेसकलावन के मृगदाय में ठहरे हुए थे। राजकुमार बोधि का पद्म नामक महल अभी बनकर पूरा ही हुआ था, किन्तु उसमें अभी तक किसी श्रमण, ब्राह्मण या किसी अन्य व्यक्ति का वास नहीं हुआ था।

2. राजकुमार ने संजिक-पुत्र नामक ब्राह्मण युवक से कहा, ''तथागत के पास जाओ और मेरी ओर से अपना शीश उनके चरणों में नवाओ, उनका कुशल-समाचार पूछो और उन्हें कल के लिये मेरे यहाँ अपने भिक्षु-संघ-सहित भोजन-ग्रहण करने के लिये आमंत्रित करो।''

3. सन्देश तथागत तक पहुँचा दिया गया, उन्होंने उसे मौन रहकर स्वीकृति दे दी और यथावत् राजकुमार को भी सूचित कर दिया गया।

4. रात बीतने पर राजकुमार ने अपने 'पद्म' नामक महल में श्रेष्ठ भोजन तैयार करने का आदेश दिया और महल की सीढ़ियों पर सफेद वस्त्र बिछवाने की आज्ञा दे दी, उसके पश्चात् ब्राह्मण युवक को तथागत को यह सूचित करनेके लिये भेजा कि भोजन तैयार है।

5. यह हो जाने पर उस दिन पूर्वाह्न में, चीवर धारण कर और हाथ में भिक्षा-पात्र लेकर तथागत महल में आये, जहाँ दरवाजे के बाहर राजकुमार उनका इन्तजार कर रहा था।

6. तथागत को आते देखकर राजकुमार आगे बढ़ा और उनका अभिवादन किया तथा उनके भिक्षु-संघ के साथ-साथ महल की ओर बढ़ा।

7. सीढ़ियों के नीचे तथागत चुपचाप रुक गये। राजकुमार ने कहा, "मैं तथागत के बिछे वस्त्रों पर चरण रखने का आग्रह करता हूँ, मैं तथागत से ऐसा करने का आग्रह करता हूँ, जो कि चिरकाल तक हित और कल्याण के लिये होगा।" किन्तु तथागत शान्त खड़े रहे।

8. दूसरी बार राजकुमार ने निवेदन किया और तब भी तथागत शान्त रहे। तीसरी बार भी राजकुमार ने निवेदन किया, और तथागत ने आनन्द की ओर देखा।

9. आनन्द समझ गये कि समस्या क्या थी और उन्होंने कहा कि बिछा हुआ वस्त्र लपेट दिया जाये और हटा दिया जाये क्योंकि तथागत उस पर पैर नहीं रखेंगे, क्योंकि जो उनके बाद उनके पीछे आयेंगे अर्थात् आने वाली जनता का ख्याल कर उस बिछे हुए कालीन पर पैर नहीं रखेंगे।

10. अतः राजकुमार ने बिछे हुए कालीन को लपेटने और हटा देने का आदेश किया, उसके पश्चात् उसने महल में ऊपर आसन लगाने का आदेश दिया।

11. तथागत तब भिक्षु-संघ सहित ऊपर गये और उनके लिये बिछे आसन पर बैठ गये।

12. राजकुमार ने स्वयं अपने हाथों से दिल खोलकर वह श्रेष्ठ भोजन तथागत और भिक्षु-संघ को परोसा।

13. तथागत के भोजन समाप्ति के पश्चात्, राजकुमार बोधि एक ओर एक नीचे आसन पर बैठ गया, और तथागत से बोला, "भगवान्! मेरा मत यह है कि क्या वास्तविक कल्याण सुखद वस्तुओं के द्वारा अथवा असुखद वस्तुओं के द्वारा प्राप्त किया जाना चाहिए।"

14. तथागत ने उत्तर दिया, "राजकुमार!" बीते हुए दिनों में, मैं भी यही मत अपनी बोधि-प्राप्ति से पहले के दिनों में रखता था। वह समय था, जब पर्याप्त युवा

होने के कारण मेरे कोयले समान काले बाल थे और मेरी तारुण्यता की प्रारम्भ की सम्पूर्ण सुन्दरता के साथ अपने माता-पिता की इच्छाओं के बावजूद उन्हें दुःखी और शोकग्रस्त होते हुए छोड़कर मैंने केश और दाढ़ी मुँडवा ली, काषाय वस्त्र धारण कर लिये और गृह से गृह-त्याग की अवस्था में एक प्रव्रजित के रूप में चला गया। अब एक परिव्राजक के रूप में, कल्याण की तलाश में और उस अनुपम शान्ति की ओर जानेवाले मार्ग की खोज में हूँ, जो अतुलनीय है।''

15. ''अब मैं एक भिन्न मत रखता हूँ। यदि एक व्यक्ति सद्धर्म को जानता है, वह सभी दुःखों का अन्त पा सकता है।''

16. राजकुमार ने तथागत से पूछा, ''सद्धर्म क्या है? सद्धर्म की क्या व्याख्या है। यह समझने में कितना सरल है?''

17. तब ब्राह्मण युवक संकिक-पुत्त उठा, ''राजकुमार! यद्यपि आपने इस प्रकार विश्वास प्रकट किया है, किन्तु आपको मैं बुद्ध, धम्म और संघ की शरण जाता हूँ जैसा कहना चाहिये था।''

18. राजकुमार ने उत्तर दिया, ''ऐसा मत कहो, मेरे मित्र ऐसा मत कहो, क्योंकि, मैंने अपनी माँ के होठों से सुना है, कैसे, जब एक बार तथागत कोसाबमी के घोषिताराम में ठहरे हुए थे, तब वे गर्भवती अवस्था में ही तथागत के पास आयीं, उनका अभिवादन किया और एक ओर एक आसन ग्रहण किया, और कहा, 'भले ही यह लड़का हो या लड़की, जिसे मैं अपने गर्भ में धारण किये हुए हूँ, मेरा अजन्मा बच्चा बुद्ध, धम्म और संघ की शरण कर रहा है, और मैं तथागत से इस बच्चे को अपने अनुयायी के रूप में स्वीकार करने का निवेदन करती हूँ, जो अब से जीवनप्रर्यन्त आपका शरणागत उपासक रहे।''

19. ''दूसरी बार जब तथागत यहाँ भग्ग-देश में सुंसुभार पर्वत पर भेसकला वन में मृगदाय में ठहरे हुए थे, मेरी दाई मुझे तथागत के पास ले गयी थी, और उनके समक्ष खड़े होकर कहा था, 'यह राजकुमार बोधि है जो बुद्ध, धम्म और संघ की शरण ग्रहण करता है।''

20. ''अब मैं व्यक्तिगत रूप से, तीसरी बार भी आपकी शरण में जाता हूँ और तथागत से निवेदन करता हूँ कि अपने एक उपासक के रूप में मुझे स्वीकार करें, जिससे जीवनपर्यन्त आपका शरणागत बना रहूँ।''

5. केनिय द्वारा स्वागत

1. आपण में एक सेल ब्राह्मण रहा करता था, जो तीनों वेदों में पारंगत था, व्याख्या सहित कर्मकाण्डों का ज्ञाता था, शब्द-शास्त्र तथा शब्दों की व्युत्पत्ति था, तथा पाँचवी विद्या के रूप में इतिहास-पुराणों से भिज्ञ था, वह व्याकरण जानता था, तथा लोकायत-शास्त्र और महापुरुष लक्षणों में निपुण था, उसके पास तीन सौ युवक ब्राह्मण थे, जिन्हें वह वेद मन्त्र सिखाता था।

2. अग्नि-पूजक केनिक सेल ब्राह्मण का एक अनुयायी था। अपने तीन सौ शिष्यों के साथ, सेल वहाँ गया और उसने सभी अग्नि-पूजकों को अपने विभिन्न कार्यों में व्यस्त देखा और केनिय स्वयं भी अपना पृथक खाना बना रहा था।

3. यह देखने पर ब्राह्मण ने केनिय से कहा, ''यह सब क्या है? क्या यहां विवाह-भोज है? या यहाँ कोई महायज्ञ होने वाला है? या तुमने कल सब राजकर्मचारियों के साथ राजा बिम्बिसार को भोजन के लिये आमंत्रित किया है?''

4. ''सेल! यहाँ कोई विवाह-भोज नहीं है और न ही राजा अपने सब राज-कर्मचारियों के साथ निमंत्रण पर आ रहा है। अपितु मैंने एक महायज्ञ का आयोजन किया है। श्रमण गौतम, एक भिक्षाटन चारिका के दौरान, अपने भिक्षु-संघ में बारह सौ पचास भिक्षुओं के साथ आपण में पधार चुके हैं।''

5. ''इस श्रमण गौतम के बारे में यह कीर्ति-प्रतिष्ठा सुनी गई है कि वे अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध माने जाते हैं।''

6. ''वे ही हैं, जिन्हें मैंने कल के भोजन के लिये उनके भिक्षु-संघ सहित यहाँ आमन्त्रित किया है। तैयार हो रहा यह भोजन उन्हीं के लिये है।''

7. ''सेल ने पूछा, ''केनिय! क्या तुम उन्हें सम्यक् सम्बुद्ध का श्रेय देते हो?'' ''हाँ, मैं देता हूँ'', केनिय ने उत्तर दिया।, ''क्या तुम?'', ''हाँ, मैं देता हूँ।''

6. प्रसेनजित् के द्वारा तथागत की प्रशंसा में

1. एक बार तथागत श्रावस्ती के समीप अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में ठहरे हुए थे।

2. उस समय कोशल का राजा, प्रसेनजित्, अभी-अभी एक बनावटी युद्ध से लौटे ही थे, जिसमें अपने उद्देश्य की पूर्ति करके वे विजयी हुए थे। और उद्यान में पहुंच कर वे उस ओर मुड़ गये। जहाँ तक रथ-मार्ग जाता था वहां तक अपने रथ में चढ़कर गये, तब उतर गये और उद्यान से होते हुए पैदल गये।''

3. उस अवसर पर अनेक भिक्षु खुली हवा में चहल कदमी कर रहे थे। तब कोशल का राजा प्रसेनजित् उन भिक्षुओं के पास गया और इस प्रकार उनको सम्बोधित किया, ‘‘भन्ते! इस समय तथागत कहाँ विराजमान हैं, क्योंकि मैं सम्यक सम्बुद्ध के दर्शन करना चाहता हूँ।’’

4. ‘‘महाराज! वहाँ वे ठहरे हैं और द्वार बन्द है। बिना घबराहट के आप शान्ति से वहाँ जायें, बरामदे में प्रवेश कर खाँसें और दरवाजे की कुण्डी खटखटायें। तथागत आपके लिये द्वारा खोल देंगे।’’

5. तब कोशल का राजा प्रसेनजित् जैसा उन्हें कहा गया था आवास तक उसी प्रकार गये, खाँसे और दरवाजे की कुण्डी खटखटायी और तथागत ने दरवाजा खोल दिया।

6. तब प्रसेनजित् ने आवास में प्रवेश किया, तथागत के चरणों में अपना शीश नवाया, उनके चरणों को चूमा और उन्हें अपने हाथों से स्पर्श किया और अपना नाम बताते हुए यह कहा, ‘‘भगवान! मैं प्रसेनजित् हूँ। कोशल का राजा।’’

7. तथागत ने पूछा, ‘‘किन्तु, महाराज! इस शरीर में ऐसी क्या विशेषता देखकर, आप मेरे प्रति इतना भक्ति-भाव दिखा रहे हैं और इस शरीर को ऐसी स्नेहमय श्रद्धा अर्पित कर रहे हैं?’’

अध्याय - सात

महान श्रमण की अंतिम चारिका

पहला भाग	-	उनके निकटस्थ जनों से भेंट
दूसरा भाग	-	वैशाली से प्रस्थान
तीसरा भाग	-	महापरिनिर्वाण

पहला भाग

उनके निकटस्थ जनों से भेंट

1. उनके धम्म-प्रचार के केन्द्र
2. स्थल, जहाँ वे पधारे थे
3. माता और पुत्र तथा पत्नी और पति की अंतिम भेंट
4. पिता और पुत्र की अंतिम भेंट
5. बुद्ध और सारिपुत्त की अंतिम भेंट

1. उनके धम्म-प्रचार के केन्द्र

1. ऐसा नहीं था कि धम्म-प्रचारकों की नियुक्ति के पश्चात् तथागत एक जगह पर बैठ गये। वे स्वयं भी अपने धर्म-प्रचारक के रूप में कार्य करते रहे थे।
2. ऐसा प्रतीत होता है कि तथागत ने कुछ विशेष स्थलों को धम्म के प्रचार के लिए प्रमुख केन्द्र बनाया था।
3. ऐसे केन्द्रों में प्रधान थे श्रावस्ती और राजगृह।
4. वे लगभग 75 बार श्रावस्ती पहुंचे थे और लगभग 24 बार राजगृह।
5. कुछ दूसरे छोटे केन्द्र भी धर्म-प्रचार के लिए बनाये गये थे।
6. वे थे कपिलवस्तु, जहां वे 6 बार पहुंचे, वैशाली जहां वे 6 बार पहुंचे और कम्मास धम्म 4 बार।

2. वे स्थल, जहाँ भगवान् बुद्ध पधारे थे

1. इन प्रमुख और छोटे केन्द्रों के अतिरिक्त तथागत अपनी धर्म-प्रचार-यात्रा के दौरान अनेक दूसरे स्थलों पर भी पहुचे थे।
2. वे उक्कठा, नादिका, साला, अस्सपुर, घोषिताराम, नालन्दा, आपण एवं एतुमा पधारे थे।
3. वे ओपसाद, इच्छा-नंगल चाण्डाल कुप्प, कुसीनारा भी गए थे।
4. वे देवदह, पावा, अम्बसंदा, सेतव्या, अनुपिय और उगुन्मा भी आये थे।
5. उन स्थलों के नाम जहां वे पहुंचे थे दर्शाते हैं कि वह शाक्य-जनपद, कुरु-जनपद और अंग जनपद भी पधारे थे।
6. मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि उन्होंने सम्पूर्ण उत्तर भारत की यात्रा की थी।
7. ये केवल कुछ ही स्थल प्रतीत होते हैं, किन्तु उनके बीच की दूरी कितनी है? राजगृह लुम्बिनी से 250 मील से कम दूर नहीं है। यह केवल दूरियों का अनुमान मात्र है।
8. ये दूरियां तथागत ने पैदल ही तय की थीं। यहाँ तक कि उन्होंने बैलगाड़ी तक का भी उपयोग नहीं किया।
9. अपनी चारिकाओं के दौरान रास्ते में रुकने के लिए उनके पास कोई जगह नहीं थी। आगे चलकर उनके गृहस्थ उपासकों ने विहारों और विश्राम-स्थलों

का निर्माण करवा दिया था जिन्हें वे और उनके भिक्षु अपनी यात्राओं के समय पड़ाव के रूप में प्रयोग करते थे। प्रायः वे सड़क के किनारे के पेड़ों की छाया के नीचे ही रुका करते थे।

10. जिनके मन में सन्देह थे, उनके संदेह मिटाते हुए, जो विरोधी थे, उनके तर्कों का उत्तर देते हुए, जो बच्चों की तरह उनका विश्वास करते थे, उन्हें सच्चा मार्ग दिखाते हुए, तथागत एक जगह से दूसरी जगह, एक गांव से दूसरे गांव विचरते थे।

11. तथागत जानते थे कि वे जो उन्हें सुनने के लिए उनके पास आते थे उनमें सभी समान रूप से बुद्धिमान नहीं थे, और न ही सभी खुले दिमाग और मुक्त चित्त के होते थे।

12. यहां तक कि उन्होंने भिक्षुओं को आगाह कर दिया था कि श्रोतागण तीन प्रकार के होते हैं।

13. ''खाली दिमाग जिस मूर्ख को कुछ भी , कुछ भी दिखाई देता, यद्यपि वह भिक्षुओं के पास बार-बार जाता है, वह उनकी बातें प्रारम्भ, मध्य और अंत में भी सुनता है किन्तु कुछ समझ नहीं सकता। उसमें बुद्धि ही नहीं होती।''

14. ''लेकिन उससे अच्छा वह आदमी होता है, जो प्रायः भिक्षुओं के पास जाता है, उनकी सारी बातें सुनता है, प्रारम्भ, मध्य और अन्त में भी वहां बैठे हुए सारी बातों को सुनता है, लेकिन वहां से उठने पर, कुछ भी याद नहीं रख पाता, उसका चित्त कोरा हो जाता है।''

15. ''इनमें अच्छा प्रशस्त-प्रज्ञ मनुष्य है। वह प्रायः भिक्षुओं के पास जाता है उनकी सारी बातें सुनता है, प्रारम्भ, मध्य और अन्त में भी वहां बैठे हुए सारी बातों को ग्रहण कर सकता है, सब कुछ चित्त में धारण करता है, स्थिर-चित्त, एकाग्र-चित्त तथा धर्म व धार्मिक विषयों में दक्ष होता है।''

16. यह सब होते हुए भी तथागत एक स्थान से दूसरे स्थान जाकर अपने धर्म का प्रचार करने में कभी नहीं थके।

17. एक 'भिक्षु' के समान तथागत ने कभी भी तीन वस्त्रों से अधिक कभी नहीं रखे। वे एक दिन में एक बार भोजन करते थे और अपना भोजन प्रत्येक सुबह एक घर से दूसरे घर भिक्षा मांगकर प्राप्त करते थे।

18. सम्भवतः किसी भी मनुष्य ने इससे कड़े 'कर्त्तव्य'' को निभाया होगा, जिसे उन्होंने बड़ी प्रसन्नता से निभाया था।

3. माता और पुत्र तथा पत्नी और पति की अंतिम भेंट

1. अपनी मृत्यु से पहले महाप्रजापति और यशोधरा तथागत से मिलीं।
2. यह संभवतः तथागत के साथ उनकी अंतिम भेंट थी।
3. महाप्रजापति ने पहले उनकी पूजा की।
4. वह उनकी ऋणी थी क्योंकि तथागत ने उन्हें सद्धर्म का सुख प्रदान किया था, उसके लिए उन्होंने तथागत का आधार बल किया क्योंकि उनका आध्यात्मिक जन्म उनके द्वारा हुआ था क्योंकि धम्म ने उनके द्वारा उनके अन्तःकरण का विकास था, क्योंकि उन्होंने उनके द्वारा ही धम्म रूप दुग्ध का पान किया था, क्योंकि उन्होंने उनकी सहायता से ही संसार-सागर को तैर कर पार किया था, यह कितनी यशस्वी बात है कि वे बुद्ध की माता के रूप में जानी जाती हैं।
5. और तब महाप्रजापति ने अपनी बात कही "मैं इस देह का त्याग कर मृत्यु को प्राप्त करना चाहती हूँ। हे दुःख का अंत करने वाले, भगवान् मुझे अनुमति दें।"
6. तथागत को संबोधित करते हुए यशोधरा ने भी कहा कि वह अपने अठहत्तरवें वर्ष में है। तथागत ने उत्तर दिया कि वे अपने 80वें वर्ष में है।
7. यशोधरा ने उनसे कहा कि आज की रात ही उसकी अंतिम रात है वे उसी रात मृत्यु को प्राप्त करने वाली है। महाप्रजापति की अपेक्षा उनका स्वर अधिक संयत था। उन्होंने भगवान् से न मृत्यु को प्राप्त करने की अनुमति मांगी और न ही उन्हें अपनी शरण में लेने का आग्रह किया।
8. इसके विपरीत, उन्होंने कहा (मे सरण अट्ठनो) अर्थात् मैं अपनी शरण स्वयं हूँ।
9. वह अपने जीवन के सभी बंधनों को काट चुकी थीं।
10. वह अपनी कृतज्ञता प्रगट करने आयी थी, क्योंकि तथागत ही उनके पथ-प्रदर्शक थे और उन्हें शक्ति प्रदान की थी।

4. पिता और पुत्र की अंतिम भेंट

1. एक बार जब तथागत राजगृह के वेलुवन में ठहरे हुए थे, इसी समय राहुल अम्बलठिका में ठहरे थे।
2. अपराह्न के उपरान्त तथागत जब अपनी समाधि से उठे तो वे राहुल की ओर गये, राहुल ने तथागत को कुछ दूर से आता देखकर उनके बैठने के लिये एक आसन तैयार किया और उनके पैर धोने के लिये जल रख दिया।

3. उनके लिए बिछाए गये आसन पर बैठकर, तथागत ने अपने पांव धोए और राहुल ने भी अभिवादन के पश्चात् एक ओर अपना आसन ग्रहण किया।

4. राहुल को संबोधित करते हुए तथागत ने कहा, ''जिसे जान-बूझकर झूठ बोलने में लज्जा नहीं, ऐसा कोई पाप-कर्म नहीं है, जिसे वह कर नहीं सकता। इसलिए राहुल! यह सीखना चाहिए कि हम हँसी-मज़ाक में भी कभी झूठ नहीं बोलेंगे।''

5. ''इसी प्रकार से तुम कोई भी कार्य करने से पहले उसके बारे में सोचो कोई भी शब्द बोलने से पहले उसके बारे में सोचो, कोई भी बात मन में पैदा हो उसका चिंतन करो।''

6. ''जब तुम कोई भी कार्य करना चाहो तो पहले उसके बारे चिन्तन अवश्य करो कि क्या तुम्हारे तथा दूसरों के लिये या दोनों के लिये अहितकर तो नहीं होगा, क्योंकि एक दुष्ट-कर्म दुःख उत्पादक होता है और उसका परिणाम दुःखदायी होता है। यदि तुम्हारा चिन्तन यह बताये कि अपेक्षित कार्य की यही प्रवृत्ति है, तो तुम्हें वह नहीं करना चाहिये।''

7. ''किन्तु यदि तुम्हारा चिन्तन आश्वासन देता है कि उसमें कोई अहित नहीं, बल्कि हित ही है, तब तुम उसे कर सकते हो।''

8. ''मैत्री का अभ्यास करो, क्योंकि मैत्री-भावना को अभ्यास द्वेष का शमना (समाप्त, अंत) हो जायेगा।''

9. ''करुणा का अभ्यास करो, क्योंकि करुणा-भावना का अभ्यास करने से खीज का शमन (समाप्त, अंत) हो जायेगा।''

10. ''मुदिता का अभ्यास करो, क्योंकि मुदिता-भावना का अभ्यास करने से घृणा का शमन (समाप्त, अंत) हो जायेगा।''

11. ''उपेक्षा का अभ्यास करो, क्योंकि अपेक्षा-भावना का अभ्यास करने से विरोध का शमन हो जायेगा।''

12. ''शरीर के अशुभ रूप चिन्तन का अभ्यास करो; ऐसा करने से काम-राग व मनोविकारों का शमन (समाप्त ,अंत) हो जायेगा।''

13. ''वस्तुओं की 'अनित्य-भावना' के बोध का अभ्यास करो, क्योंकि ऐसा करने से अहंकार का शमन (समाप्त, अंत) हो जायेगा।''

14. तथागत ने जब इस प्रकार कहा, तो राहुल का मन यह सुनकर प्रफुल्लित हो गया। उसने तथागत के कहने पर प्रसन्न मन से अभिनंदन किया।

5. भगवान् बुद्ध और सारिपुत्त की अंतिम भेंट

1. भगवान बुद्ध श्रावस्ती के जेतवन में गन्धकुटी विहार में ठहरे हुए थे।
2. सारिपुत्र पांच सौ भिक्षुओं के साथ वहां पहुंचे।
3. तथागत का अभिवादन करने के पश्चात् सारिपुत्र ने उन्हें कहा कि पृथ्वी पर अब मेरे जीवन का अंतिम समय आ गया है। क्या तथागत मुझे अपने शरीर का त्याग करने की अनुमति देंगे?
4. भगवान बुद्ध ने सरिपुत्र से पूछा, ''क्या तूने अपने निर्वाण के लिये कोई स्थान चुना है?''
5. सारिपुत्र ने तथागत को बताया, ''मैं मगध के नालक नाम के गांव में पैदा हुआ था। वह घर जिसमें मैं पैदा हुआ था, वह अभी तक खड़ा है। मैंने अपना घर अपने निर्वाण के लिये चुना है।''
6. तथागत ने उत्तर दिया, ''प्रिय, सरिपुत्र! तुम्हें जैसा अच्छा लगे वैसा करो।''
7. सारिपुत्र तथागत के चरणों में गिर पड़े और कहा, ''मैंने एक हजार कल्पों तक पारमिताओं का अभ्यास केवल एक ही इच्छा को लेकर किया और वह है, आपके चरणों की वन्दना करने का सम्मान। मेरी वह इच्छा समाप्त हो गयी है और मेरी प्रसन्नता का कोई अंत नहीं।''
8. ''हमारी पुनरुत्पत्ति की संभावना नहीं है, इसलिये यह हमारी अंतिम भेंट है। तथागत मेरे अपराधों को क्षमा करें। मेरा अंतिम दिन आ गया है।''
9. ''सारिपुत्र! क्षमा करने के लिये कुछ भी नहीं है,'' तथागत ने कहा।
10. जब सारिपुत्र जाने के लिये उठे, तथागत भी उनके प्रति गौरव प्रकट करने के लिए उठ खड़े हुए और गन्धकुटी के बाहर बरामदे में खड़े हो गये।
11. तब सारिपुत्र ने तथागत से कहा, ''मैं प्रसन्न था, जब मुझे पहली बार आपके दर्शन हुए थे। मैं आपको अभी देखकर अत्यन्त आनन्दित हूँ। मैं जानता हूँ कि मैं यह आपका अंतिम दर्शन कर रहा हूँ। मुझे पुनः आपके दर्शन प्राप्त नहीं होंगे।''
12. अपने हाथ जोड़कर तथागत को बिना अपनी पीठ दिखलाये, वह वहाँ से विदा हुए।
13. तब तथागत ने उपस्थित भिक्षुओं को कहा, ''अपने ज्येष्ठ भ्राता का अनुसरण करो और पहली बार भिक्षु-संघ तथागत को छोड़कर सारिपुत्त के पीछे-पीछे गया।''

14. सारिपुत्र अपने गाँव में पहुंचकर अपने घर की ठीक उसी कोठरी में निर्वाण को प्राप्त हुए, जिसमें उनका जन्म हुआ था।

15. सारिपुत्र का अंतिम संस्कार किया गया और उनकी पवित्र अस्थियाँ तथागत के पास ले जायी गयीं।

16. सारिपुत्र के फूल प्राप्त करने पर तथागत ने भिक्षुओं से कहा, ''वह सबसे अधिक बुद्धिमान थे, उनमें बिल्कुल संग्रह-वृत्ति नहीं थी, वे उत्साही और परिश्रमी थे, वे पाप से घृणा करते थे। हे भिक्षुओ! उनकी अस्थियाँ देखो! वह अपनी क्षमाशीलता में इतने दृढ़ थे कि जितनी कि पृथ्वी। वे कभी भी किसी भी इच्छा द्वारा नियंत्रित नहीं हुए, उन्होंने अपने सभी मनोविकारों को जीत लिया था, वे करुणा, मैत्री और प्रेम से परिपूर्ण थे।''

17. उसी समय के आस-पास महामोद्गल्यायन तब राजगृह के पास एकान्त विहार में रह रहे थे। तथागत के शत्रुओं द्वारा नियुक्त कुछ हत्यारों ने उसकी हत्या कर डाली थी।

18. उनकी मृत्यु का दुःखद समाचार भी तथागत तक पहुँचा दिया गया था। सारिपुत्र और महामोद्गल्यायन उनके दो प्रमुख शिष्य थे। वे धम्म सेनापति कहलाते थे। तथागत अपने धम्म के प्रचार को चालू रखने के लिये उन पर निर्भर करते थे।

19. उन दोनों की मृत्यु से तथागत के मन में संवेग उत्पन्न हुआ।

20. अब वे श्रावस्ती में और ठहरना नहीं चाहते थे और अपने चित्त को शांत करने के लिये उन्होंने आगे बढ़ जाने का निर्णय लिया था और तथागत ने श्रावस्ती छोड़ दी।

दूसरा भाग

वैशाली से प्रस्थान

1. वैशाली से विदाई
2. पावा में पड़ाव
3. कुसिनारा में आगमन

1. वैशाली से विदाई

1. अपनी अंतिम चारिका पर निकलने से पूर्व तथागत राजगृह के गृध्रकूट पर्वत पर ठहरे हुए थे।
2. वहां कुछ समय ठहरने के पश्चात् उन्होंने कहा "आओ आनन्द! हम लोग अम्ब-लट्ठिका चलें।"
3. "ऐसा ही हो भगवन्!" आनन्द ने स्वीकृति में कहा और तथागत एक विशाल भिक्षु-संघ सहित, अम्बलठिका की ओर चल दिए।
4. कुछ समय अम्बलठिका में ठहरने के पश्चात् वे नालन्दा की ओर चले गये।
5. नालन्दा से वे मगध की राजधानी पाटलिगाम (पाटलीपुत्र) गये।
6. पाटलीगाम से वे कोटिगाम गये और कोटिगाम से वे नादिका गये।
7. इनमें से प्रत्येक स्थान पर वे कुछ दिनों के लिये रुके और भिक्षुओं या गृहस्थों को धार्मिक प्रवचन दिया।
8. नादिका से वे वैशाली गये।
9. वैशाली निगण्ठनाथ पुत्र (महावीर) की जन्म-स्थली थी, अत: वह जैन मत का एक गढ़ थी।
10. किन्तु तथागत शीघ्र ही वैशाली के लोगों को अपने धम्म में धर्मान्तरित करने में सफल हो गये।
11. ऐसा कहा जाता है कि अनावृष्टि के कारण वैशाली में ऐसा अकाल पड़ा कि बड़े पैमाने पर उजड़ गया और लोग बड़ी संख्या में मर गये।
12. वैशाली के लोगों ने अपनी आयोजित सामान्य सभा में इसकी चर्चा की थी।
13. सभा ने पर्याप्त चर्चा के पश्चात् तथागत को नगर में आमंत्रित करने का निर्णय लिया।
14. राजा बिम्बिसर के मित्र वैशाली के पुरोहित के पुत्र महाली नामक लिच्छवी को निमंत्रण देने के लिये भेजा गया।
15. तथागत ने निमंत्रण स्वीकार कर लिया था और पांच सौ भिक्षुओं के साथ चल दिये। ज्यों ही वे वैशाली की सीमा में प्रविष्ट हुए, बड़े जोर से तूफान आया, मूसलाधार वर्षा हुई और अकाल समाप्त हो गया।
16. वैशाली के लोगों ने तथागत का भारी स्वागत किया।

17. तथागत ने वैशाली के लोगों का हृदय जीत लेने के उपरांत यह स्वाभाविक था कि वैशाली के लोग उनका गर्म-जोशी से स्वागत करते।

18. तब वर्षावास का समय आ गया। तथागत अपने वर्षावास के लिये वेलुवन चले गये और भिक्षुओं से अपना वर्षावास वैशाली में ही करने को कहा।

19. अपना वर्षावास समाप्त करने के पश्चात् तथागत यह विचार कर वैशाली आये कि वैशाली से अपनी चारिका पर वे आगे बढ़ेंगे।

20. अतः यथागत ने एक दिन सुबह स्वयं चीवर धारण कर अपना भिक्षा-पात्र ले भिक्षाटन के लिये वैशाली में प्रवेश किया, जब उन्होंने वैशाली से भिक्षा प्राप्त कर और अपना भोजन ग्रहण कर लेने के बाद उन्होंने एक गजराज के समान वैशाली की ओर देखा और भदन्त आनन्द को संबोधित करते हुए कहा, "आनन्द! यह अंतिम बार है कि तथागत वैशाली को देख रहे हैं।"

21. इस प्रकार कहते हुए उन्होंने वैशाली के लोगों से विदा ली।

22. जिस समय उन्होंने उत्तरी सीमा पर प्राचीन नगर तक आकर विदाई दी, तो लिच्छवियों को 'स्मृति-चिन्ह' के रूप में अपना भिक्षा-पात्र दे दिया।

23. यह वैशाली की उनकी अंतिम यात्रा थी। इसके बाद वे पुनः आने के लिए जीवित नहीं रहे।

2. पावा में पड़ाव

1. वैशाली से तथागत भण्डगाम गये।
2. भण्डगाम से वे हत्थिगाम हट्ठी नगर गये और तब भोग-नगर गये।
3. और भोग-नगर से पावा गये।
4. पावा में तथागत चुन्द नामक एक सुनार के आम्रवन में ठहरे।
5. अब चुन्द ने सुना कि तथागत पावा आ चुके हैं और उसके आम्रवन में ठहरे हुए हैं।
6. चुन्द आम वन गया और तथागत के समीप बैठ गया, जहाँ उन्होंने उसे एक धार्मिक प्रवचन दिया।
7. इससे प्रसन्न होकर चुन्द ने तथागत को संबोधित किया और कहा "तथागत! भिक्षु-संघ सहित कल मेरे घर में भोजन ग्रहण करने की कृपा करें।"
8. तथागत ने मौन द्वारा अपनी स्वीकृति दे दी। यह देखकर कि तथागत ने स्वीकृति दे दी है, चुन्द वहाँ से विदा हुआ।

9. अगले दिन चुन्द ने अपने निवास-स्थान पर खीर आदि स्वादिष्ट भोजन तथा कुछ 'सूकर-मद्दव' भी तैयार करवाया और भोजन का समय होने पर उसने तथागत को सूचना भिजवाई कि "भगवान् भोजन का समय हो गया है और भोजन तैयार है।"

10. तथागत ने स्वयं चीवर धारण किया और अपना भिक्षा-पात्र लेकर भिक्षुओं के साथ चुन्द के निवास-स्थान पर गये और उसके द्वारा तैयार भोजन ग्रहण किया।

11. पुनः भोजन के उपरान्त तथागत ने चुन्द को धम्म पर प्रवचन दिया, तब अपने आसन से उठे और वहाँ से विदा हुए।

12. चुन्द द्वारा दिया गया भोजन तथागत के अनुकूल नहीं पड़ा, उन्हें गम्भीर रोग से जकड़ लिया और रक्त-स्राव के साथ तेज व मर्मान्तक वेदना उन्हें मृत्युपर्यन्त होती रही।

13. किन्तु तथागत ने स्मृति-सम्प्रजन्य के साथ उसे बिना किसी शिकायत के सहन किया।

14. आम्रवन से लौटने पर और थोड़ा कुछ स्वास्थ्य सुधरने पर तथागत ने आनंद को कहा, "आओ आनन्द! हम कुसीनारा को चलें" और भिक्षु-संघ सहित भगवान् बुद्ध पावा से आगे कुसीनारा बढ़ गए।

3. कुसीनारा में आगमन

1. तथागत कुछ थोड़ी दूर तक ही चले थे कि शीघ्र ही उन्होंने विश्राम की आवश्यकता अनुभव की।

2. रास्ते में ही तथागत सड़क से एक ओर हटकर एक वृक्ष के छाया में चले गये और आनन्द से कहा, " आनंद! संघाटी की तह लगा कर और मेरे लिए बिछा दो। मैं थका हुआ हूँ आनन्द! कुछ देर विश्राम करूंगा।"

3. "बहुत अच्छा!" तथागत की बात की सहमति से भदन्त आनन्द ने चीवर चौहरा तह किया और बिछा दिया।

4. तथागत ने अपने लिये तैयार आसन पर अपना स्थान ग्रहण किया।

5. जब वे बैठ गये, तथागत ने भदन्त आनन्द को संबोधित किया और कहा "आनन्द! मेरे लिय थोड़ा जल ले आओ। मैं प्यासा हूँ, पानी पीऊंगा। जल पिऊंगा।"

6. आनन्द ने उत्तर दिया, "यह ककुत्थ नदी अधिक दूर नहीं, समीप है, इसका जल स्वच्छ और सुखद है, ठण्डा और पारदर्शी है जल लेने में आसानी है तथा

रुचिकर है। वहां तथागत पानी पी लें और हाथ–मुंह धोकर शरीर के अंगों को भी ठंडा कर सकते हैं। इस जलाशय का जल अस्वच्छ और गन्दा है।''

7. उस समय तथागत इतने दुर्बल हो गए थे कि नदी तक भी चलकर नहीं जा सकते थे। उन्होंने समीप के जलाशय का ही जल लेने को प्राथमिकता दी।

8. आनन्द जल ले आये और तथागत ने उसे पी लिया।

9. कुछ समय विश्राम करने के पश्चात् तथागत भिक्षु–संघ के साथ ककुत्थ नदी की ओर गये और जब वे वहां आ गये, वे नीचे जल में उतरे, नहाया और जल पिया और पुनः दूसरी ओर बाहर निकलकर वे आम्रवन की ओर बढ़ गये।

10. जब वे वहाँ पहुंचे, उन्होंने पुनः चीवर बिछाने के लिये आनन्द से कहा, ''मैं का हुआ हूँ और लेटूँगा।'' आज्ञानुसार चीवर बिछा दिया गया और तथागत ने उसके ऊपर लेट कर विश्राम किया।

11. कुछ समय विश्राम करने के पश्चात् तथागत उठ गये और आनन्द से कहा, ''आओ, आनन्द! हम मल्लों के सालवन में चलें, जो हिरण्यवती नदी के दूसरे किनारे पर कुसिनारा का उपवन है।''

12. उस स्थल पर पहुंचने के उपरान्त, तथागत ने पुनः आनन्द से अपना चीवर जुड़वा साल वृक्षों के मध्य बिछा देने को कहा, ''मैं थका हुआ हूँ और विश्राम करूंगा।''

13. आनन्द ने चीवर बिछा दिया और तथागत अपने आप उस पर लेट गये।

तीसरा भाग

महापरिनिर्वाण

1. उत्तराधिकारी की नियुक्ति
2. अंतिम धम्म–दीक्षा
3. अंतिम वचन
4. आनन्द का शोक
5. मल्लों का विलाप और एक भिक्षु की प्रसन्नता
6. अंतिम संस्कार
7. अस्थियों के लिए संघर्ष
8. बुद्ध के प्रति श्रद्धार्पण

1. उत्तराधिकारी की नियुक्ति

1. एक समय तथागत शाक्यों के मध्य धनुर्धारी नामक शाक्य परिवार के आम्रवन में ठहरे हुए थे।

2. उस समय पावा में अभी-अभी गिगठनातपुत्र (महावीर) का देहांत हुआ ही था। उनकी मृत्यु पर निगण्ठ लोग आपसी संघर्ष और विवाद के कारण अलग हो गये और दो दलों में विभक्त होकर शब्द रूपी बाणों से एक दूसरे से झगड़ने और हानि पहुंचाने लगे।

3. उस समय श्रामणेर चुन्द पावा में वर्षावास व्यतीत करने के उपरान्त भदन्त आनन्द को देखने आया और कहा, "भन्ते! निगण्ठनातपुत्र का अभी-अभी देहान्त हुआ है। और उनकी मृत्यु हो जाने पर निगण्ठ लोग अलग-अलग हो गये हैं तथा एक-दूसरे से झगड़ा कर हानि पहुंचा रहे हैं। यह इसलिये है, क्योंकि वे अब बिना संरक्षक के हैं।"

4. तब भदन्त आनन्द ने कहा, "मित्र चुन्द! यह तथागत के समक्ष रखने लायक योग्य विषय है। आओ हम उनके पास चलें और उन्हें इसके विषय में सूचित करें।"

5. "बहुत अच्छा, भन्ते!" चुन्द ने उत्तर दिया।

6. अत: भदन्त आनन्द और श्रामणेर चुन्द तथागत के पास गये और उन्हें अभिवादन करके उन्हें निगण्ठों के विषयों में बताया और उन्होंने अपने धम्म शासन के लिए एक संरक्षक नियुक्त करने की आवश्यकता के लिये निवेदन किया।

7. तथागत ने यह सुन कर उत्तर दिया "किन्तु चुन्द! विचार करो, जहाँ एक शास्ता अर्हत, सम्यक् संबुद्ध संसार में उत्पन्न होता है, यदि वह सद्धर्म को भलि-भांति स्थापित करता है, जो सु-आख्यात, प्रभावशाली पथ-प्रदर्शन है और शांति की ओर ले जाता है, किन्तु उसके शिष्य सद्धर्म में प्रवीण नहीं हो पाये हैं और न उनके लिये शिष्टाचार बचाने वाली एक वस्तु बन सका है, मनुष्यों के मध्य भली-भाँति उद्घोषित नहीं है, जब उनका शास्ता गुजरता है।"

8. "तो चुन्द! ऐसे शास्ता की मृत्यु होना उसके श्रावकों के लिये बड़े दु:ख की बात है और उसके धम्म के लिये एक बड़ा खतरा है।"

9. "किन्तु चुन्द! विचार करो जहां एक ऐसा शास्ता पूर्णतया प्रबुद्ध संसार में उत्पन्न हुआ है सद्धर्म को भलि-भांति स्थापित करता है जो सु-आख्यात प्रभावशाली पथ-प्रदर्शक और शांति की ओर ले जाने वाले हैं, तथा जहाँ श्रावण सद्धर्म में

प्रवीण हो गये हैं, और जहां श्रेष्ठ जीवन का पूर्ण विस्तार उन्हें स्पष्ट हो चुका है जब वह शास्ता गुजरता है।''

10. ''तो चुन्द! ऐसे शास्ता की मृत्यु होना उसके श्रावकों के लिये दुःख की बात नहीं है। तब एक संरक्षक की क्या आवश्यकता है?''

11. जब आनन्द ने यही बात किसी दूसरे अवसर पर उठाई तो तथागत ने कहा ''तुम क्या सोचते हो, आनन्द? क्या तुम्हें दो भिक्षु भी दिखाई देते हैं, जिनका धम्म में एक मत न हो?''

12. ''नहीं! किन्तु जो तथागत के आस-पास हैं, हो सकता है, वे तथागत की मृत्यु के पश्चात् संघ में विनय संबंधी नियमों के पालन को लेकर विवाद खड़ा कर सकते है और ऐसे विवाद सामान्य दुख का कारण बन सकते हैं?''

13. ''आनन्द! 'विनय' संबंधी विवाद बहुत महत्त्व देने के नहीं हैं। यह संभव हो सकता है कि संघ में 'धम्म' के भी विवाद खड़े हों, जिनका वास्तव में महत्त्व है, जो सचमुच चिंता की बात होगी।'' तथागत ने कहा।

14. ''लेकिन 'धम्म' के विषय में ये विवाद किसी एक तानाशाह (डिक्टेटर) द्वारा नहीं सुलझाये जा सकते हैं। और तब एक उत्तराधिकारी ही क्या कर सकेगा, जब तक कि वह एक तानाशाह (डिक्टेटर) की तरह व्यवहार नहीं करे।''

15. '' 'धम्म' के विषय में मतभेद एक तानाशाह (डिक्टेटर) द्वारा नहीं सुलझाये जा सकते हैं।''

16. ''किसी भी विवाद के विषय में निर्णय संघ द्वारा ही निकाला जाना चाहिये। संपूर्ण भिक्षु-संघ को एकत्रित होना चाहिये और विषय पर विचार करना चाहिये जब तक कि सहमति न हो और तब उसे ऐसी सहमति के अनुरूप सुलझाना चाहिये।

17. ''विवादों को सुलझाने का तरीका बहुमत की सहमति हैं, न कि एक उत्तराधिकारी की नियुक्ति है।''

2. अंतिम धम्म-दीक्षा

1. उस समय सुभद्र परिव्राजक कुसीनारा में ठहरा हुआ था। और सुभद्र परिव्राजक ने यह उड़ती-उड़ती बात सुनी, ''यह कहा जाता है कि आज ही के दिन रात्रि के अंतिम प्रहर में श्रमण गोतम का महापरिनिर्वाण होगा।'' तब सुभद्र परिव्राजक के मन में यह विचार आया।

2. "इस प्रकार मैंने वयोवृद्ध परिव्राजकों, गुरुओं और शिष्यों को यह कहते हुए सुना है, संसार में विरले ही तथागत उत्पन्न होते हैं, जो अर्हत, सम्यक् संबुद्ध हैं, और यहाँ आज रात, अंतिम प्रहर में श्रमण गौतम का महापरिनिर्वाण होगा। आज मेरे मत में एक सन्देह उत्पन्न हुआ है और मुझे श्रमण गौतम पर विश्वास है। श्रमण गौतम मुझे ऐसा उपदेश दे सकते हैं, जिससे कि मैं अपनी संदेहात्मक अवस्था को दूर कर सकूँ।"

3. तब सुभद्र परिव्राजक मल्लों के सालवन की ओर जाने वाली छोटी सड़क की ओर गये, जहां भदंत आनन्द थे और वहां पहुंचने पर उसने भदन्त आनन्द को बताया, जो उन्होंने सोचा था और वह बोले "हे आनन्द स्थविर! कि मैं श्रमण गौतम का दर्शन कर पाता।"

4. इन वचनों को सुनकर भदन्त आनन्द ने सुभद्र परिव्राजक से कहा "बहुत हो गया, मित्र सुभद्र! तथागत को कष्ट मत दो। तथागत थके हुए हैं।"

5. तब दूसरी बार और यहां तक कि तीसरी बार भी सुभद्र परिव्राजक ने वही निवेदन किया और वही उत्तर पाया।

6. भदन्त आनन्द और सुभद्र परिव्राजक के मध्य की इस वार्ता को तब संयोग से तथागत ने सुन लिया। और उन्होंने यह कहते हुए भदन्त आनन्द को पुकारा, "बहुत हो गया, आनन्द! सुभद्र को मत रोको। सुभद्र को तथागत के दर्शन करने की अनुमति दो। जो कुछ भी सुभद्र मुझसे पूछेंगे वे यह सब जानने की इच्छा से पूछेंगे, न कि मुझे कष्ट देने की इच्छा से। और जो कुछ भी मैं उत्तर में कहूंगा, वह शीघ्रता से समझ लिया जायेगा।"

7. अतः अब भदन्त आनन्द ने सुभद्र परिव्राजक से कहा, "आप भीतर जायें, मित्र सुभद्र! तथागत आपको अनुमति देते हैं।"

8. तब सुभद्र परिव्राजक भीतर तथागत के पास गये और उनके पास पहुंच कर उन्होंने तथागत का अभिवादन किया और परस्पर कुशल-क्षेम पूछने के उपरान्त सुभद्र एक ओर बैठ गये। इस प्रकार बैठे हुए सुभद्र परिव्राजक ने इस प्रकार तथागत को संबोधित किया :-

9. "श्रमण गौतम! वे सभी श्रमण और ब्राह्मण जिनके पास जमात व अनुयायी हैं, जो गणाचार्य हैं, सुप्रसिद्ध हैं, जो मतों के सुविख्यात संस्थापक हैं, बहुत लोगों द्वारा धर्मात्मा की तरह पूजे जाते हैं, जैसे कि पूरण काश्यप, मक्खली गोशाल, अजित केशकम्बली, पकुध कच्चायन संजय, बेलट्ठिपुत्त तथा निगण्ठनातपुत्त इन सभी ने जैसा वे कहते हैं, स्वयं अपने ज्ञान द्वारा वस्तुओं के सत्य को जान

लिया है, या उन सभी में से किसी ने भी इसे नहीं जाना या स्वयं अपने ज्ञान द्वारा कुछ ने जान लिया है और दूसरों ने इसे नहीं जाना?''

10. ''इसे जाने दो, सुभद्र! अपने को ऐसी बातों के लिये कष्ट मत दो कि किसी ने भी ज्ञान प्राप्त नहीं किया या कुछ ने जान लिया है या नहीं। मैं तुम्हें धर्म का उपदेश देता हूँ, सूभद्र! तुम ध्यान से सुनो अपना चित्त लगाओ मैं कहता हूँ।''

11. ''बहुत अच्छा भगवान्!'' सुभद्र परिव्राजक ने कहा और तथागत की ओर ध्यान दिया। तब तथागत ने यह कहा:

12. ''सुभद्र! जिस किसी भी धर्म-विनय (मत) में आष्टांगिक मार्ग नहीं पाया जाता है, उसमें कोई श्रमण भी नहीं पाया जाता है। और सुभद्र! जिस किसी ध र्म-विनय में आर्य आष्टांगिक मार्ग पाया जाता है, उसमें श्रमण भी पाया जाता है।''

13. ''सुभद्र! इस (मेरे) धर्म-विनय में आर्य आष्टांगिक मार्ग है। इसलिये इसमें भी इन चार श्रेणियों के (स्रोतापन्न, सकद्ागामी, अनागामी और अर्हत) श्रमण पाये जाते हैं। दूसरे मत श्रमणों से शून्य हैं। किन्तु यदि हे सुभद्र इस धर्म-विनय में भिक्षु सम्यक् जीवन व्यतीत करते रहेंगे, तो संसार अर्हतों से शून्य नहीं होगा।

14. ''जब मेरी आयु उन्नतीस वर्ष की थी, तब मैं कल्याण-पथ की खोज में निकला था।''

15. ''सुभद्र! अब पचास वर्ष से अधिक व्यतीत हो चुके हैं। जब से मैंने सद्धर्म का पक्ष ग्रहण किए हुए हूँ और इसके लिए मैंने संसार का त्याग किया था।''

16. तथागत के इस प्रकार कहने पर सुभद्र परिवाजक ने तथागत से कहा ''आपके मुख से निकले ये वचन अदभुत हैं! श्रमण गौतम अद्भुत हैं।'' ''जैसे कोई मनुष्य फैंके हुए को उसे स्थापित कर दे, जिसे मिटा दिया गया हो, या उसे प्रकट कर दे, जो ढके को उघाड़ दे, या पथभ्रष्ट को मार्ग दिखा दे, या अन्ध कार में दीप जला दे, जिससे कि आंख वाले देख सकें।''

18. ''ठीक इसी प्रकार मुझे तथागत द्वारा सत्य का ज्ञान करा दिया गया है। और यहाँ तक कि मैं स्वयं बुद्ध, धम्म और संघ की शरण में जाता हूँ।''

19. ''सुभद्र! जो पहले किसी दूसरे मत का अनुयायी रहा था संघ में प्रविष्ट हो उसे चार महीने के समय के लिये प्रतिक्षा करनी पड़ती ऐसा नियम था।''

20. ''यदि यह ही नियम है तो मैं भी प्रतिक्षा करने के लिए तैयार हूं।'' सुभद्र ने कहा।

21. किन्तु तथागत ने कहा, ''मैं मनुष्यों में अन्तर को स्वीकार करता हूँ''। इस प्रकार कहते हुए उन्होंने भदन्त आनन्द को बुलाया और आनन्द से कहा, ''आनन्द! सुभद्र को संघ में प्रवेश दे दो।''

22. ''बहुत अच्छा, भगवान्!'' भदन्त आनन्द ने तथागत की आज्ञा स्वीकार की।

23. और सुभद्र परिव्राजक ने भदन्त आनन्द से कहा, ''मित्र आनन्द! आपका लाभ महान है, मित्र आनन्द! आपका गौरव महान है कि आप सभी को तथागत ने स्वयं अपने हाथ से इस भिक्षु-संघ में दीक्षित किया है। धर्म के जल से अभिसिंचित किया है।''

24. ''सुभद्र! तुम्हारे विषय में भी तो यही सत्य हैं'' आनन्द ने उत्तर दिया। इस प्रकार तथागत की अनुज्ञा से सुभद्र परिव्राजक को भिक्षु-संघ में प्रविष्ट कर लिया गया। वह अन्तिम शिष्य था जिसे तथागत ने स्वयं अपने हाथों से दीक्षित किया था।

3 अंतिम वचन

1. तब तथागत ने भदन्त आनन्द से कहा:

2. ''आनन्द! यह हो सकता है कि तुम यह कहो कि हमारे शास्ता चले गये हैं, अब हमारे पास कोई शास्ता नहीं है!'' ''किन्तु आनन्द! तुम्हें ऐसा नहीं सोचना चाहिये, क्योंकि जब मैं नहीं रहूँगा तब मेरे द्वारा प्रशिक्षित और अनुभूतित धम्म और विनय ही तुम्हारा शास्ता होगा।'

3. ''अब, आनन्द! क्योंकि भिक्षु एक दूसरे को समान रूप से सम्बोधित करते हैं, जब मैं नहीं रहूँगा, तब यह प्रचलन बन्द हो जाना चाहिये। आनन्द! अब बड़े-छोटे का कोई भेद नहीं है। भविष्य में बड़े द्वारा जो श्रामणेर है, उसका नाम लेकर या आवुसो (आयुष्मान) कहकर पुकार सकता है किन्तु। आनंद! एक श्रामणेर द्वारा एक अग्रज भिक्षु को उसके गोत्र से अथवा 'भन्ते' सम्बोधित करना चाहिये।''

4. ''और आनन्द! जब मैं नहीं रहूँ, तो संघ चाहे, छोटे-मोटे नियमों को समाप्त कर सकता है।''

5. ''आनन्द! तुम जानते हो कि भिक्षु छन्न कितना जिद्दी, उल्टे मार्ग पर चलने वाला और विनय की भावना से रहित है।''

6. ''आनन्द! जब मैं नहीं रहूँ तो छन्न को 'ब्रह्म-दण्ड' दिया जाये।

7. आनन्द ने पूछा, ''भगवान्! 'ब्रह्म दण्ड' से आपका क्या अभिप्राय है?''

8. ''आनन्द! भिक्षु छन्न जो कुछ भी कहे उसे कहने दिया जाए उसके साथ बात न की जाए, उसे समझाया न जाये, भिक्षुओं द्वारा उसे निर्देशित न किया जाये। उसे अकेला छोड़ दिया जाना चाहिये। इससे सम्भवतः उसमें कुछ सुधर हो जाए।''

9. तब तथागत ने भिक्षुओं को सम्बोधित किया:

10. ''भिक्षुओ! यह हो सकता है कि किसी भिक्षु के मन में या तो बुद्ध के विषय में या धम्म के विषय में, या संघ के विषय में, या मार्ग, या मार्ग के रास्ते के विषय में सन्देह या विचिकित्सा हो। यदि ऐसा है, तो भिक्षुओ! तुम लोग अभी पूछ सकते हो। इसके पश्चात् यह सोचकर पश्चाताप न करना, जब हमारे शास्ता हमारे सम्मुख थे, फिर भी हममें तथागत से प्रश्न पूछने का साहस न था।''

11. ऐसा कहने पर भिक्षु शान्त रहे।

12. तब दूसरी बार और यहाँ तक कि तीसरी बार भी तथागत ने उन्हीं वचनों से भिक्षुओं को सम्बोधित किया। और तीसरी बार भी भिक्षु शान्त रहे।

13. तब तथागत ने कहा, भिक्षुओ! हो सकता है कि शास्ता के प्रति श्रद्धा होने के कारण तुम लोग पूछ नहीं रहे हो। तब भिक्षुओ! मुझसे ऐसे बात करो जैसे एक मित्र दूसरे मित्र से करता है।''

14. इस पर भी वे भिक्षु शान्त रहे।

15. तब भदन्त आनन्द ने तथागत को कहा, ''भगवान्! यह अद्‌भुत है, भगवान्! यह एक आश्चर्य है, भगवान्! इस प्रकार मुझे भिक्षुओं के इस संघ पर विश्वास है। कोई भी ऐसा भिक्षु नहीं है, जिसे बुद्ध, धम्म या संघ के विषय में, या आर्य-मार्ग के विषय में, या आर्य-मार्ग के रास्ते के विषय में कोई सन्देह या विचिकित्सा हो।''

16. ''आनन्द! तुम विश्वास से ऐसा कह रहे हो, किन्तु तथागत को इस तथ्य का ज्ञान है कि किसी भी भिक्षु को इस विषय में कोई सन्देह या विचिकित्सा नहीं है। आनन्द! मेरे इन पाँच सौ भिक्षुओं में से यहाँ तक कि जो सबसे पिछड़ा है वह भी एक स्रोतापन्न है, अर्थात् जो स्रोत में आ पड़ा है वह बोधि तक पहुँचने के लिये सुनिश्चित है।''

17. तब तथागत ने भिक्षुओं से कहा:

18. ''आओ भिक्षुओ! मैं तुम्हें यह पुनः स्मरण कराता हूँ, सभी संस्कार अनित्य हैं। अप्रमादपूर्वक अपने लक्ष्य की प्राप्ति में लगे रहो।''

19. वे ही तथागत के अन्तिम वचन थे।

4. आनन्द का शोक

1. ज्यों-ज्यों आयु बढ़ने लगी तथागत को अपनी देखभाल करने के लिये एक निजी सहायक की आवश्यकता पड़ी।

2. उन्होंने पहले नन्द को चुना। नन्द के उपरान्त उन्होंने आनन्द को चुना, जिन्होंने उनकी मृत्युपर्यन्त निजी सहायक के रूप में सेवा की।

3. आनन्द सहायक मात्र ही नहीं थे, बल्कि उनके सतत और प्रियतम साथी भी थे।

4. जब तथागत कुसीनारा आये और साल वृक्षों के मध्य विश्राम कर रहे थे, उन्हें लगा कि उनका अन्त समीप आ रहा है, और अनुभव किया कि यही समय है कि उन्हें आनन्द को कह देना चाहिये।

5. अतः उन्होंने आनन्द को बुलाया और कहा, "हे आनन्द! अब इसी रात्रि के तीसरे पहर में, कुसीनारा के उपवन में, जुड़वा साल वृक्षों के मध्य, तथागत का महापरिनिर्वाण होगा।"

6. जब उन्होंने इस प्रकार कहा तो भदन्त आनन्द ने तथागत को सम्बोधित किया, और कहा, "हे तथागत! बहुत जनों के हित के लिये, बहुत जनों के सुख के लिये, लोगों पर अनुकम्पा करने के लिये, देवताओं और मनुष्यों के हित, सुख और लाभ के लिए कल्प भर (जीवित) रहने की कृपा करें।"

7. आनन्द ने तीन बार अपना निवेदन किया। तथागत का उत्तर था, "अब बहुत हो गया, आनन्द! तथागत से अनुनय मत करो! ऐसी प्रार्थना करने का समय व्यतीत हो चुका है।"

8. आनन्द! मैं अब वृद्ध हो चुका हूँ, वय-प्राप्त कर चुका हूँ, मेरी जीवन-यात्रा समाप्ति के समीप है। मेरे दिन पूरे होने को आये हैं। मैं अस्सी वर्ष का हो गया हूँ, जिस प्रकार एक पुरानी गाड़ी एक न एक दिन जीर्ण-शीर्ण हो जाती है, मैं सोचता हूँ, वैसा ही तथागत के शरीर के साथ हो गया है। यह सुनकर, आनन्द वहां से चले गये।

9. आनन्द को न देखकर तथागत ने भिक्षुओं को बुलाया और कहा, "आनन्द कहाँ है?" "भगवान्! आनन्द चले गये हैं और रो रहे हैं," भिक्षुओं ने कहा।

10. तथागत ने एक भिक्षु को बुलाया और कहा, "जाओ भिक्षु! और आनन्द को मेरी ओर से कहना, भदन्त आनन्द! शास्ता तुम्हें बुला रहे हैं।"

11. "बहुत अच्छा, भगवन्!" भिक्षु ने कहा।

12. जब आनन्द वापस आये, तो उन्होंने तथागत के एक ओर अपना आसन ग्रहण किया।

13. तब तथागत ने आनन्द से कहा, "रोओ मत, आनन्द! क्या मैंने पहले ही तुम्हें बताया नहीं कि हमारे सबसे समीप और प्रिय वस्तुओं की यही प्रकृति है कि हमें स्वयं को उनसे विमुक्त कर लेना चाहिये, उनका त्याग करना चाहिये और उनसे अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लेना चाहिये?"

14. "आनन्द! एक लम्बे समय तक तुम अपने मैत्रीपूर्ण, दयालु और हितकारी कार्यों के कारण मेरे अत्यन्त समीप रहे हो।"

15. "आनन्द! तुम बहुत कुशल रहे हो। अपने प्रयासों में गम्भीर रहो आनन्द! अप्रमादी रहो तुम भी विषयासक्ति अहं, मोह, भ्रान्ति और अज्ञान जैसे विकारों से मुक्त हो जाओगे।"

16. तब आनन्द के विषय में भिक्षुओं को सम्बोधित करते हुए तथागत ने कहा, "भिक्षुओ! आनन्द एक बुद्धिमान व्यक्ति है।"

17. "वह जानता है कि तथागत के पास आने और भेंट करने का उचित समय कौन-सा है? और संघ के भिक्षुओं और भिक्षुणियों के लिये, उपासक और उपासिकाओं के लिये, एक राजा के लिये, या एक राजा के मंत्रियों के लिये, अन्य आचार्यों और शिष्यों के लिये, तथागत से भेंट करने का उचित समय कौन-सा है?"

18. "भिक्षुओ! आनन्द की ये चार विशेषतायें हैं।"

19. "सभी आनन्द से मिलकर प्रसन्न होते हैं। उनको देख कर सभी आनन्दित होते हैं, उनको सुन कर वे प्रसन्न होते हैं। जब आनन्द मौन होते हैं, तब उन सभी को कष्ट होता है।"

20. इसके उपरान्त आनन्द तथागत के महापरिनिर्वाण के विषय पर पुनः लौट आये। तथागत को सम्बोधित करते हुए, उन्होंने कहा, "तथागत! जंगल के मध्य इस उजाड़ नगरी में कृपा करके महापरि निर्वाण प्राप्त न करें। चम्पा, राजागृह, श्रावस्ती, साकेत, कोसाम्बी और वाराणसी तथागत के लिए महान नगर है। कृपा करके उनमें से किसी एक में महापरिनिर्वाण प्राप्त करें।"

21. "आनन्द! ऐसा मत कहो, आनन्द! ऐसा मत कहो। आनन्द! यह कुसिनारा किसी समय केशवती के नाम के राजा महा-सुदर्शन की राजधानी थी।"

22. तत्पश्चात् तथागत ने आनन्द को दो काम सौंपे।

23. उन्होंने आनन्द को यह देखने को कहा कि यह विश्वास न फैलने देना कि तथागत का महापरिनिर्वाण चुन्द द्वारा उन्हें दिये गये भोजन के परिणामस्वरूप हुआ है। उन्होंने भय व्यक्त किया कि इससे सम्भवत : चुन्द संकट में न पड़ जाए। उन्होंने आनन्द से इस विषय पर जनता को मन का भ्रम दूर करने को कहा।

24. दूसरी बात जो उन्होंने आनन्द से कहीं, वह कुसिनारा के मल्लों को सूचित करना था कि तथागत का वहाँ आगमन हुआ है और रात्रि के अन्तिम प्रहर में उनका महापरिनिर्वाण होगा।

25. तुम उलाहना देने का कोई अवसर न देना। जिससे मल्ल कहने लगें, ''हमारे अपने गाँव में तथागत का महापरिनिर्वाण हुआ है और हमें पता भी नहीं लगा तथा हमें उनके अन्तिम समय दर्शन करने का कोई अवसर नहीं मिला।''

26. तत्पश्चात् भदन्त अनुरूद्ध और भदन्त आनन्द ने धार्मिक प्रवचन में ही रात्रि का शेष भाग व्यतीत किया।

27. और रात्रि के तीसरे पहर में, जैसा कि पहले ही घोषित किया जा चुका था, तथागत ने अपनी अन्तिम साँस ली और महापरिनिर्वाण प्राप्त किया।

28. जब तथागत का महापरिनिर्वाण हो गया, तो कुछ भिक्षुओं और आनन्द ने बाँहें पसार कर रोना प्रारम्भ कर दिया, कुछ तो दुखाभिभूत होकर जमीन पर भी गिर पड़े और दुख में जमीन पर लोट-पोट कर, कहने लगे, ''बहुत शीघ्र महापरिनिर्वाण हो गया। बहुत शीघ्र तथागत का अस्तित्व विलीन हो गया। बहुत शीघ्र संसार से प्रकाश लुप्त हो गया!''

29. यह बैशाख-पूर्णिमा की मध्यरात्रि थी, जब तथागत ने अपनी अन्तिम साँसें ली थीं, उनके महापरिनिर्वाण का वर्ष ईसा पूर्व 483 था।

30. जैसा कि पालि में कहते हैं:

दिवा तपति आदिच्चो रत्तिं आभाति चन्दिमा;

सन्नद्धो खत्तियों तपति झायी तपति ब्राह्मणो;

अथ सब्बंमहोसत्तं बुद्धो तपति तेज सा।।5।।387।। धम्मपद

31. ''सूर्य केवल दिन में चमकता है, चाँद रात्रि को प्रकाशमान होता है। क्षत्रिय शस्त्रधारी होने के समय ही चमकता है। और ब्राह्मण तभी चमकता है जब वह समाधिस्थ होता है। परंतु बुद्ध अपने तेज से दिन और रात चमकते रहता है।''

32. ''इसमें कुछ भी संदेह नहीं है कि वे संसार के प्रकाश-स्तम्भ थे।''

5. मल्लों का विलाप और एक भिक्षु की प्रसन्नता

1. तथागत की इच्छानुसार, आनन्द गये और मल्लों को घटना के विषय में सूचित किया।

2. जब उन्होंने इस विषय में सुना तो मल्लों को, उनकी पत्नियों को, उनके युवक व युवतियों को भारी दुःख हुआ और उदास हुए और सभी के हृदय को आघात पहुँचा।

3. उनमें से कुछ अपने बाल बिखेर कर और अपनी बाँहों को पसार कर रोने लगे और दुःख से अभिभूत हो जमीन पर लोटने लगे।

4. तब मल्ल लोग, अपने नवयुवकों, नवयुवतियों और पत्नियों सहित तथागत के अन्तिम दर्शन करने के लिये उपवन के साल वृक्षों के समीप गये।

5. तब भदन्त ने सोचा, यदि मैं कुसीनारा के मल्लों को एक-एक करके अनुमति दूंगा तो तथागत के मृत शरीर को श्रद्धांजलि देने में उन्हें अत्यंत समय लगेगा।''

6. अतः उन्होंने उन्हें समूहों में, परिवार-दर-परिवार, व्यवस्थित करने का निर्णय लिया। तब प्रत्येक परिवार ने नम्रता से तथागत के चरणों में शीश नवाकर और विदा ली।

7. उस समय भदन्त महाकाश्यप एक विशाल भिक्षु-संघ सहित पावा से कुसीनारा की ओर राजपथ पर यात्रा कर रहे थे।

8. ठीक उसी समय नग्न परिव्राजक पावा की ओर राजपथ से आ रहा था।

9. भदन्त महाकाश्यप ने नग्न परिव्राजक को दूर से आते देखा, तो वे उस नग्न परिव्राजक से बोले, ''हे मित्र! निश्चय ही तुम हमारे शास्ता को जानते होंगे?''

10. ''हां मित्र! मैं उन्हें जानता हूँ।'' आज श्रमण गौतम का महापरिनिर्वाण हुए एक सप्ताह हो गया है!

11. यह समाचार सुनते ही तुरन्त भिक्षु-गण दुःख से अभिभूत हो गये और रोना प्रारम्भ कर दिया।

12. उस समय सुभद्र नामक एक भिक्षु, जो अपनी वृद्धावस्था में संघ में प्रविष्ट हुआ था, उनके साथ में था।

13. सुभद्र ने भिक्षुओं को सम्बोधित किया और कहा, ''बहुत हो गया भिक्षुओ! रोओ मत और न विलाप करो। हम अब श्रमण गौतम से भली-भाँति मुक्त हो गये

हैं। हम उनके द्वारा यह कहे जाने पर उत्पीड़ित किये जाते थे, यह तुम्हारे लिये उचित नहीं है। किन्तु अब जो हम करना चाहेंगे, वह करने में स्वतंत्र होंगे और जो हम नहीं चाहेंगे, वह हमे नहीं करेंगे। क्या यह अच्छा नहीं है कि वे अब नहीं रहे? क्यों रोते हो, क्यों विलाप करते हो? यह तो खुशी की बात है।''

14. तथागत कितने महान और कठोर अनुशासन को मानने वाले थे।

6 अंतिम संस्कार

1. तब कुसीनारा के मल्लों ने भदन्त आनन्द से कहा, ''तथागत के शरीर के प्रति क्या करणीय है?''
2. आनन्द ने उत्तर दिया, ''जिस प्रकार लोग राजाओं एवं महाराजाओं की दाह-क्रिया करते हैं, वैसे ही तथागत की होनी चाहिए।''
3. ''राजाओं और महाराजाओं के मृत शरीर के साथ क्या करणीय व्यवहार होता है?''
4. आनन्द ने उन्हें बताया, ''राजाओं और महाराजाओं के शरीर को एक नये वस्त्र में लपेटा जाता है। जब यह हो जाता है, तो उसे रुई-ऊन से लपेटा जाता है इसके बाद उसे एक नये वस्त्र में लपेटा जाता है और यह क्रम तब तक चलता रहता है, जब तक कि वे शरीर को दोनों प्रकार की परतों से पाँच सौ बार नहीं लपेट देते, तब वे शरीर को लोहे के एक तेल भरे पात्र में रख देते हैं और उसे एक अन्य लोहे के तेल भरे पात्र से ढक देते है। तब वे सभी प्रकार की सामग्रियों से एक चिता का निर्माण करते हैं। यही वह तरीका है, जिस प्रकार वे राजाओं और महाराजाओं के शरीर का अंतिम संस्कार होता है।''
5. ''ऐसा ही होगा'' मल्लों ने कहा।
6. तब कुसीनारा के मल्लों ने कहा, ''तथागत के शरीर का अन्तिम संस्कार करने के लिये आज पर्याप्त विलम्ब हो चुका है। आओ अब हम इसे कल करें।''
7. तब कुसीनारा के मल्लों ने अपने सहायकों को आदेश दिये, यह कहते हुए, ''तथागत की अन्त्येष्टि के लिये तैयारी करो और सुगंध, फूल-मालाओं और कुसीनारा के बाजे वालों को एकत्रित करो।''
8. किन्तु तथागत के शरीर को नृत्य, संगीत, फूल-मालाओं द्वारा आदर, सत्कार, गौरव और श्रद्धाजंलि देते हुए, और कपड़ों के चन्देवे बनाते हुए तथा उन पर लटकाने के लिये फूलों की मालायें गूंथते हुए, उन्होंने दूसरा दिन भी व्यतीत कर दिया, और अब तीसरा दिन, चौथा दिन, पाँचवा दिन और छठा दिन भी व्यतीत कर दिया।

9. तब सातवें दिन कुसीनारा के मल्लों ने सोचा, "आओ! आज तथागत के शरीर को ले चलें और अन्तिम संस्कार करें।"
10. और तत्पश्चात् मल्लों के आठ सरदारों ने अपने सिर से स्नान किया और तथागत की अर्थी को कन्धा देने के उद्देश्य से नये वस्त्रों को पहना कर तैयार किया।
11. वे मृत-शरीर को मुकुट-बंधन नामक मल्लों के चैत्य तक ले गये, जो नगर के पूर्व में था और वहाँ उन्होंने तथागत के शरीर को रख कर उसे अग्नि के सुपुर्द कर दिया।
12. कुछ समय पश्चात् तथागत का पार्थिव शरीर राख में परिवर्तित हो गया।

7. अस्थियों के लिए संघर्ष

1. तथागत का शरीर अग्नि द्वारा भस्म हो जाने के उपरान्त कुसीनारा के मल्लों ने तथागत की चिता की राख और अस्थियों को एकत्रित कर लिया और उन्हें अपने सन्थागार में रख कर उन्हें भालों की जाली तथा तीरों के परकोटे से घेर दिया। और उन पर धनुधारियों का पहरा बैठा दिया किसी के द्वारा उन्हें या उनमें से एक अंश को चुरा न सके।
2. सात दिन तक मल्लों ने उन्हें नृत्य, गीत, संगीत, फूल-मालाओं तथा सुगंधिनों द्वारा आदर, सत्कार, और गौरव प्रदर्शित किया और उनकी पूजा की।
3. जब मगध के राजा अजातशत्रु ने समाचार सुना कि तथागत का कुसीनारा में महापरिनिर्वाण हो गया।
4. तब उन्होंने तथागत के अस्थि-अवशेषों में से एक अंश देने के निवेदन के साथ मल्लों के पास एक दूत भेजा।
5. इसी प्रकार वैशाली के लिच्छवियों, कपिलवस्तु के शाक्यों, अल्लकप्प के बुल्लियों, रामगाम के कोलियों तथा पावा के मल्लों के दूत आये।
6. अस्थि-अवशेषों का दावा करने वालों में वेट्ठद्वीप का एक ब्राह्मण भी था।
7. जब उन्होंने इन दावों को सुना, तो कुसीनारा के मल्लों ने कहा, "तथागत का महापरिनिर्वाण हमारे जनपद में हुआ है। हम तथागत के अस्थि-अवशेषों का कोई भी अंश नहीं देंगे। उन पर हमारा अधिकार है।"
8. यह देख कर स्थिति तनावपूर्ण है, द्रोण नामक एक ब्राह्मण ने मध्यस्थता की ओर कहा, "कृपया मेरे दो शब्द सुनो।"
9. द्रोण ने कहा, "भगवान् बुद्ध ने शान्ति व सहिष्णुता की शिक्षा दी थी, यह अशोभनीय होगा कि उनके अस्थित् अवशेषों के विभाजन के लिये, जो प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ थे, संघर्ष हो तथा मार-काट व युद्ध हो।"

10. ''आओ हम सब एक जुट होकर, मैत्रीपूर्ण, भावना से आठ भाग कर लें। प्रत्येक जनपद में पर उन पर विशाल स्तूप बनाये जायें, जिससे कि सभी स्थानों तथागत को श्रंद्धाजलि दी जा सके।''

11. कुसीनारा के मल्ल सहमत हो गये और बोले, ''हे ब्राह्मण! तब तुम ही, उचित बँटवारे द्वारा अस्थि-अवशेषों को समान आठ भागों में विभक्त कर दो।''

12. ''बहुत अच्छा! कह कर'' द्रोण ने सहमति दे दी।

13. और उसने तथागत के अस्थि-अवशेषों को समान आठ भागों में विभक्त कर दिया।

14. विभाजन करने के पश्चात् द्रोण ने उनसे कहा, ''मुझे यह पात्र मिल जाए। मैं इसके ऊपर एक स्तूप बनवाऊँगा।''

15. और वे सब उसे पात्र देने को सहमत हो गये।

16. इस प्रकार तथागत के अस्थि-अवशेषों का बँटवारा हो गया और विवाद शान्ति और सौहार्द ढंग से निपट गया।

8. बुद्ध के प्रति श्रद्धार्पण

1. श्रावस्ती में घटी घटनाएं....

2. उस समय कुछ भिक्षु यह सोच कर तथागत के लिये एक चीवर तैयार हो जाएगा बनाने में व्यस्त थे क्योंकि तीन महीने के बाद तथागत अपनी चारिका के लिये जायेंगे।

3. उसी समय इसिदत्त तथा पूर्ण नामक दो राज्याधिकारी किसी कार्य से साधुका में ठहरे हुए थे। तब उन्होंने समाचार सुना- 'वे कहते हैं कि कुछ भिक्षु यह सोचकर तथागत के लिये एक चीवर बनाने में व्यस्त हैं कि तीन महीने के बाद जब चीवर बन जायेगा, तथागत अपनी चारिका के लिये जायेंगे।

4. अतः इसिदत्त और पूर्ण राज्याधिकारियों ने एक आदमी को इस प्रकार निर्देश देकर राजपथ पर नियुक्त कर दिया- ''ज्यों ही तुम उन भगवान् तथागत, अर्हत, सम्यक् सम्बुद्ध को आते हुए देखो, तुम तुरन्त आकर हमें सूचित करना।''

5. अतः वहाँ दो या तीन दिन खड़े रहने के पश्चात् उस मनुष्य ने तथागत को आते हुए देखा, यद्यपि वे अभी कुछ दूरी पर ही थे, और वह यह कहते हुए इसिदत्त और पूर्ण राज्याधिकारियों को सूचित करने गया, ''भगवन् तथागत, अर्हत, सम्यक सम्बुद्ध आ रहे हैं, जो आप करना चाहते हैं, वह करें।''

6. अतः इसिदत्त और पूर्ण राज्याधिकारी तथागत की ओर गये, और उनके समीप पहुँच कर, उनका अभिवादन किया। तथागत का कदम-दर-कदम अनुसरण किया।

7. तब तथागत मुख्य सड़क से हटकर एक ओर मुड़ गये और एक वृक्ष की छाया में गये और वहाँ उनके लिये तैयार सुसज्जित आसन पर बैठ गये। और इसित्त और पूर्ण राज्याधिकारी तथागत को नमन कर एक ओर बैठ गये। जब वे इस प्रकार बैठ गये, उन्होंने तथागत से यह कहा:

8. ''तथागत! जब हमने तथागत के विषय में सुना कि वे कौशल जनपद में अपनी चारिका करेंगे, उस समय हम इस विचार से हतोत्साहित और उदास हो गये थे कि तथागत हमसे दूर हो जाएंगे।''

9. ''जब, तथागत हमने सुना कि भगवान् कौशल जनपद में अपनी चारिका के लिये श्रावस्ती से निकल रहे हैं। पुनः इस विचार से हम हतोत्साहित और उदास हो गये कि तथागत हम से दूर हो जाएंगे।

10. ''पुनः भगवान्! जब हमने सुना कि तथागत कौशल जनपद को छोड़ कर मल्ल जनपद में चारिका के लिये जाएंगे.... कि वे वास्तव में ऐसा कर रहे हैं..... हम हतोत्साहित और उदास हो गये थे।''

11. ''भगवान्! यह सुनकर कि तथागत मल्ल जनपद को छोड़ कर वज्जी जनपद चारिका के लिए जायंगे... कि वे वास्तव में ऐसा कर रहे हैं... कि काशी जाने के लिए वज्जी जनपद छोड़ेंगे.... कि वे वास्तव में ऐसा कर रहे हैं.... पुनः हम हतोत्साहित और उदास हो गये थे।''

12. ''किन्तु, भगवान्! जब हमने सुना कि तथागत काशी जनपद के लिये मगध जनपद को छोड़ देंगे और ऐसा कर रहे हैं, तब हम इस विचार से आनंदित, प्रसन्न और प्रफुल्लित हो गए कि तथागत हमारे से समीप ही रहेंगे।''

13. ''जब हमने सुना कि भगवान् वास्तव में मगध जनपद से काशी में अपनी चारिका के लिये जा रहे हैं, हम उसी प्रकार आनन्दित और प्रफुलिल्त हो गये थे।''

14. उन्होंने तथागत के काशी जनपद से वज्जी जनपद, बज्जी जनपद से मल्ल जनपद, मल्ल जनपद से कोसल जनपद में जाने का इसी प्रकार वर्णन करते रहे।

15. ''किन्तु भगवान्! जब हमने सुना कि तथागत अपनी चारिका के लिये कौशल जनपद से श्रावस्ती जा रहे हैं, हम इस विचार से आनन्दित और प्रफुल्लित हो गये थे, अब तथागत हमारे बहुत समीप ही रहेंगे!

16. ''तब, जब हमने सुना, 'तथागत श्रावस्ती के जेतवन के अनाथ पिण्डिकाराम में ठहरे हुए हैं। तब भगवान, इस विचार से हमारा आनन्द और उल्लास असीम था कि तथागत हमारे समीप हैं।''

अध्याय - आठ

महामानव भगवान् बुद्ध

पहला भाग - भगवान् बुद्ध का व्यक्तित्व

दूसरा भाग - उनकी मानवता

तीसरा भाग - उनको क्या पसन्द था और क्या नहीं?

पहला–भाग

भगवान् बुद्ध का व्यक्तित्व

1. उनका व्यक्तिगत स्वरूप
2. प्रत्यक्षदर्शियों के साक्ष्य
3. उनके नेतृत्व की सामर्थ्य

1. उनका व्यक्तिगत स्वरूप

1. जितने भी वर्णन मिलते हैं, उनसे ज्ञात होता है तथागत एक अत्यन्त ही सुन्दर शरीर वाले व्यक्ति थे।
2. उनका स्वरूप एक स्वर्णिम-पर्वत के शिखर के समान था। वे लम्बे और सुडौल। उनका आकार-प्रकार आकर्षक था।
3. उनकी लम्बी-लम्बी बाहें और सिंह की सी चाल, उनकी वृषभ की सी आंखें, स्वर्ण समान दीप्ति, उनकी सुन्दरता, उनका चौड़ा सीना-सभी को अपनी ओर आकर्षित करते थे।
4. उनकी भौंहें, उनका माथा, उनका चेहरा या उनकी आंखें, उनका शरीर, उनके हाथ, उनके पांव एवं उनकी चाल, जिस किसी अंग पर किसी की भी नजर पड़ी, उसकी आंखें उसी की ओर आकृष्ट होकर रह गयीं।
5. जिस किसी ने भी उनको देखा वह, सभी दूसरे मनुष्यों से श्रेष्ठ उनकी तेजस्विता और उनकी सामर्थ्य, उनके अनुपम सौन्दर्य से प्रभावित हुए बिना न रह सका।
6. उनको देख लेने पर जहाँ जो कहीं ओर जा रहा होता, शान्त खड़ा रहता, वह उनका अनुसरण करने लगता था। वह जो सौम्यता व गम्भीरता से चल रहे होते, तो लोग तेजी से दौड़ने लगते थे, और जो कोई बैठा होता वह तुरन्त खड़ा हो जाता था।
7. जो भी उनसे भेंट करते थे, उनमें से कुछ उन्हें हाथ जोड़कर अभिवादन करते थे, कुछ दूसरे श्रद्धा से शीश नवाकर नमन करते थे, कुछ उन्हें स्नेहमय शब्दों से संबोधित करते थे, उनमें से कोई भी उन्हें आदर प्रकट किये बिना नहीं रहता था।
8. वे सभी के प्रिय पात्र और आदरणीय थे।
9. पुरुषों के साथ-साथ स्त्रियां भी सदैव उन्हें सुनने के लिये तत्पर रहती थीं।
10. उनकी वाणी असाधरण रूप से मधुर तथा ढोल के समान गम्भीर, प्रीतिकर, गुंजायमान और भावपूर्ण थी। इससे उनकी वाणी दिव्य संगीत जैसी हो गयी थी।
11. उनकी वही वाणी श्रोताओं को कायल कर देती थी और उनके दर्शन श्रद्धायुक्त विस्मय को प्रेरित करते थे।
12. उनका व्यक्तित्व ही ऐसा था कि वे न केवल लोगों के स्वाभाविक नेता बनने के लिये उपयुक्त थे, बल्कि उन्हें उनके अनुयायियों के दिलों का देवता भी बनाता था।

13. जब वे बोलते थे सदैव उन्हें श्रोता मिल जाते थे।
14. इसका उतना महत्त्व नहीं था कि वे क्या कहते थे। वे भावनाओं को प्रभावित करते थे तथा जो कोई भी उन्हें सुन रहा होता था, उन्हें अपनी इच्छानुसार मोड़ लेते थे।
15. अपने श्रोताओं के चित्त में वे यह बात उत्पन्न कर सकते थे कि, जो कुछ उन्होंने दिया है, वह न केवल सत्य है, बल्कि उनकी मुक्ति का एकमात्र मार्ग भी है।
16. उनके श्रोता उनके वचनों में उस सत्य के दर्शन कर सकते थे, जो दासों को स्वतन्त्र मनुष्यों में परिवर्तित कर सकता था।
17. जब भी वे स्त्री व पुरुषों से वार्तालाप करते थे, उनका शांत स्वरूप उन्हें श्रद्धायुक्त विस्मय और आदर भावना से प्रेरित करता था और उनकी मधुर वाणी उन्हें हर्षोन्माद व आश्चर्य से प्रभावित कर देती थी।
18. डाकू अंगुलिमाल या अटावि व आदमखोर को कौन धम्म में दीक्षित कर सकता था? एक शब्द द्वारा कौन राजा प्रसेनजित् तथा उनकी रानी मल्लिका का मेल-मिलाप करा सकता था? उनके सम्मोहन के अधीन आ जाने वाला सदैव के लिये उनका हो जाता था। उनका व्यक्तित्व इतना आकर्षक था।

2. प्रत्यक्षदर्शियों के साक्ष्य

1. यह परम्परागत दृष्टिकोण उन प्रत्यक्षदर्शियों के साक्ष्यों द्वारा समर्थित होता हैं, जिन्होंने भगवान् बुद्ध को देखा था और उनसे भेंट की थी, जब वे जीवित थे।
2. ऐसा एक प्रत्यक्षदर्शी साल नामक एक ब्राह्मण था। तथागत को आमने-सामने देखने के पश्चात् उसने उनकी प्रशंसा में निम्नलिखित स्तुति की थी :-
3. तथागत ने सम्मुख उपस्थित होकर, ब्राह्मण ने अभिवादन के पश्चात् बैठकर एक महापुरुष के बत्तीस लक्षणों को देखने के लिये भगवान् के शरीर का अवलोक किया और उन्हें देखा।
4. महापुरुष के बत्तीस लक्षणों की उपस्थिति के विषय में पर्याप्त सुनिश्चित होने पर भी साल अभी तक यह नहीं जान पाया कि उन्होंने बोधि प्राप्त कर ली है या नहीं। किन्तु उसने वृद्ध और वय प्राप्त ब्राह्मणों और आचार्यों से यह सुन रखा था कि जो अर्हत् होते हैं, सम्यक् सम्बुद्ध होते हैं, जब उनकी स्तुति की जाती है, तो अपने आप को प्रकट कर

देते हैं और इसलिये उसने तथागत की उनके मुंह पर ही निम्नलिखित पंक्तियों में स्तुति एवं प्रशंसा करने की मन में ठानी।

5. "भगवान्! आप का शरीर श्रेष्ठ, समृद्ध आकर्षक है। आप स्वर्ण-वर्ण तथा ऐसे दांतों से युक्त है, जिनसे स्वर्ण-रश्मियां निकलती हैं; शरीर तेजस्विता से परिपूर्ण है, शरीर पूर्णतः महापुरुष के बत्तीस लक्षणों से युक्त है।"

6. "आपकी स्पष्ट-दृष्टि और मनोहर, ऊंचे तथा सच्चे हैं। अपने अनुयायियों के मध्य सूर्य के समान प्रकाशयुक्त इतने स्वर्ण-वर्ण हैं; अपनी सुन्दरता एवं तारुण्य को एकान्तवासी परिव्राजक के रूप में क्यों व्यर्थ कर रहे हैं?"

7. "चक्रवर्ती राजा के समान आपको राज करना चाहिए और निस्संदेह समुद्र तक आपका राज्य होना चाहिए। अभिमानी राजाओं को आपके सामने नतमस्तक होना चाहिए। आपको चक्रवर्ती राजा के समान मनुष्य मात्र पर शासन करना चाहिए।"

8. "आनन्द तथागत के शरीर के वर्ण को अत्यधिक स्वच्छ और दीप्त वर्णित करते हैं कि जब स्वर्णिम वस्त्र का जोड़ा उनके शरीर पर रखा जाता था तो वह भी अपनी चमक खो बैठता था।"

9. तब इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि वे अपने विरोधियों द्वारा एक जादूगर कहलाते थे।

3. उनके नेतृत्व की सामर्थ्य

1. भिक्षु-संघ का कोई वैधानिक अध्यक्ष नहीं था। तथागत का संघ के ऊपर कोई प्रभुत्व नहीं था। भिक्षु-संघ एक स्वायत्तशासित संस्था थी।

2. तो भी संघ और उसके सदस्यों पर तथागत की क्या स्थिति थी?

3. इस विषय में हमारे पास तथागत के समकालीन दो लोगों, सकुलदायी और उदायी के साक्ष्य हैं।

4. एक बार तथागत राजगृह के वेणुवन में ठहरे हुए थे। एक दिन सुबह तथागत भिक्षाटन के लिये राजगृह गये, किन्तु 'अभी बहुत जल्दी है' समझकर उन्होंने परिव्राजकाराम में सकुलदायी के पास जाने की सोची और वहां वे चले गये।

6. उस समय, सकुलदायी परिव्राजकों के एक विशाल संघ के साथ बैठा था, जो 'है' या 'नहीं' है के विषय में जोर-जोर से चर्चा कर रहे थे।

7. "जब कुछ दूर से ही सकुलदायी ने तथागत को आते देखा, उसने यह कहकर

अपने साथियों को चुप करवाया, ''शांत रहो शोर मत करो, श्रमण गौतम आ रहे हैं, जो शांतिप्रिय हैं।''

8. अतः वे शान्त हो गये और तथागत आ पहुँचे। सकुलदायी ने कहा ''आपसे हमारे साथ बैठने के लिये निवेदन है। आपका सच्चे हृदय से स्वागत है, बहुत समय से आपका इधर आगमन नहीं हुआ। कृपया! आसन ग्रहण करें। भगवान्! आपके लिये आसन सुसज्जित है।''

9. तथागत ने तदनुसार आसन ग्रहण कर लिया और सकुलदायी ने पूछा, ''उनका विषय क्या था और किस बात पर चर्चा हो रही थी, जो बाधित हो गयी।''

10. सकुलदायी ने उत्तर दिया, ''उसे इस समय भूल जायें। आप सरलता से बाद में उसे जान सकते हैं।''

11. कुछ दिनों पहले ही, जब दूसरे नाना मतों के श्रमण और ब्राह्मण सभागार में इकट्ठे हुए थे, यह चर्चा प्रारम्भ हो गयी थी, कि अंग में मगध लोगों के लिये कितनी अच्छी बात है, कितनी अधिक अच्छी बात है कि ऐसे श्रमण और ब्राह्मण जो सभी गणाचार्य हैं, सभी सुविख्यात व प्रसिद्ध आचार्य हैं, सभी उद्धारक मतों के संस्थापक हैं, अनेक लोगों द्वारा उच्च आदरणीय हैं, वे सभी राजगृह में वर्षावास व्यतीत करने आये हैं।

12. ''उनमें पूर्ण काश्यप, मक्खली जो अजित केशकम्बल, पकुध कच्यायन, संजय बेलट्ठिपुत्त और निगण्ठनातपुत्त हैं, सभी विशिष्ठ और सभी यहाँ वर्षावास के लिये आये हैं और उनके मध्य श्रमण गौतम भी यहाँ है, जो भिक्षु-संघ और उपासकों के नायक हैं, एक सुविख्यात और प्रसिद्ध शास्ता हैं, एक उद्धारक व धम्म के संस्थापक हैं, जो अनेक लोगों के श्रद्धाभाजन हैं।'' ''अब इनमें से कौन सा विशिष्ट पुरुष है, जो सुविख्यात आचार्य श्रमणों और ब्राह्मणों में अपने शिष्यों द्व ारा सम्मानित, आदर प्राप्त करने वाला, सत्कार प्राप्त करने वाला और पूजा जाता है? और सम्मान और आदर की किन शर्तों के साथ वे उसके साथ रहते हैं।''

14. कुछ ने कहा : ''पूर्ण काश्यप कोई सम्मान या आदर नहीं पाते, अपने शिष्यों से कोई सत्कार या श्रद्धा उन्हें नहीं मिलती, वे सम्मान और आदर की शर्तों के बिना उनके साथ रहते हैं।''

15. ऐसा भी समय था, जब वे अपना सिद्धान्त अपने कुछ सौ अनुयायियों को उपदेशित कर रहे थे, तब एक शिष्य बीच में ही बोल उठा ''पूर्ण काश्यप से प्रश्न मत करो, जो इस विषय में कुछ नहीं जानते। मुझसे पूछो मैं जानता हूँ, मैं प्रत्येक बात आप लोगों को स्पष्ट कर दूंगा।''

16. तब पूर्ण काश्यप ने आंखों से आंसू भर और बाहें फैला कर, यह कहा ''शान्त रहो, शोर मत करो।''

दूसरा भाग

उनकी मानवता

1. महाकारुणिक की करुणा
2. दु:खियों का दु:ख दूर करने वाले महान् मानसिक चिकित्सक
   (i) विशाखा को दी गई सांत्वना
   (ii) किसा–गौतमी को सांत्वना
3. रोगियों के प्रति उनकी सेवा
4. असहनशीलों के प्रति सहनशीलता
5. समानता और समान–व्यवहार के समर्थक

1. महाकारुणिक की करुणा

1. जब एक बार तथागत श्रावस्ती में ठहरे हुए थे, कुछ भिक्षुओं ने आकर उन्हें सूचित किया कि वे देवों द्वारा निरन्तर परेशान किये जाते हैं, जो उनकी समाधि में विघ्न डाला करते हैं।
2. उनकी परेशानी सुनने के पश्चात् तथागत ने उन्हें निम्नलिखित उपदेश दिये–
3. ''वह जो परमार्थ के विषय में कुशल व में निपुण है, जो उस शान्ति–पद को प्राप्त करने का इच्छुक है, उसे इस प्रकार कार्य करना चाहिये, समर्थ होना चाहिए उसे ईमानदार होना चाहिए, उसे सुवच, मृदु तथा विनम्र होना चाहिये।''
4. ''उसे संतुष्ट, सरलता से भरण–पोषण हो सकने वाला, सीमित कर्त्तव्यों वाला, हल्की जीविका वाला, संयतेन्द्रिय, विवेकी, उद्धत नहीं होना चाहिये तथा गृहस्थों में आसक्त नहीं होना चाहिये।''
5. ''उसे कोई भी ऐसी छोटी से छोटी बात नहीं करनी चाहिये, जिससे कि अन्य विज्ञजन उसकी निन्दा कर सकें। उसकी यही इच्छा होनी चाहिये कि 'सभी प्राणियों का मंगल हो' 'सभी प्राणी सुखी और सकुशल हों और उनके हृदय कल्याणकारी हो।''
6. ''जो कोई भी सजीव प्राणी हो, चाहे दुर्बल हों या सबल, चाहे लम्बे हो या छोटे, मोटे हो या पतले लघु या विशाल कोई भी हो, सबका कल्याण हो।''
7. ''चाहे देखे गये हों या अनदेखे, चाहे वे जो दूर रहते हैं या समीप, चाहे वे जो जन्में हैं, या जो अभी पैदा होंगे, सभी प्राणी सुखी रहें।''
8. ''कोई एक दूसरे को धेखा न दे, और न किसी से घृणा करे, जो भी किसी स्थान पर हो, उसे वे क्रोध या द्वेष के वशीभूत हो किसी अन्य को कोई हानि पहुँचाने की इच्छा न करें।''
9. ''जिस प्रकार एक माँ अपनी जान को जोखिम में डालकर भी अपने इकलौते बच्चे की रक्षा करती है, उसी प्रकार उसमें वही असीम हृदय सभी प्राणियों के लिये होना चाहिए।''
10. ''उसे ऊपर, नीचे और चारों दिशाओं में बिना किसी अवरोध के, बिना किसी द्वेष के समस्त संसार में असीम प्रेम की भावना का संचार करना चाहिए।''
11. ''भले ही वह खड़ा हो, चलता हो, बैठा हो, लेटा हो, जब तक वह जागृत अवस्था में है, उसे अपनी सतत जागरूकता विकसित करनी चाहिये, इसी को श्रेष्ठ जीवन कहते हैं।''

12. "(मिथ्या) दृष्टि की त्रुटि में न पड़कर, शीलवान बनकर और ज्ञानी होकर तथा इन्द्रिय सुखों के प्रति आसक्ति को दूर करे, तो पुनः-पुनः गर्भ में नहीं पड़ता।"

13. संक्षेप में, उन्होंने कहा, "अपने शत्रुओं से भी प्रेम करो।"

2. दुखियों का दुःख दूर करने वाले महान् मानसिक चिकित्सक

(i)

विशाखा को दी गई सांत्वना

1. विशाखा एक उपासिका थी। भिक्षुओं को भिक्षा देना उसकी दिनचर्या थी।
2. एक दिन उसकी पोती सुद्दत जो उसके साथ रहती थी, बीमार पड़ी और मर गयी।
3. विशाखा दुख सहन करने में असमर्थ थी।
4. अंत्येष्टि के पश्चात् वह बुद्ध के समीप गयी और आँखों में आँसू लिए हुए उदास एक ओर बैठ गयी।
5. तथागत ने पूछा, "हे विशाखा! तुम, इस प्रकार दुःखी और शोकाकुल आँखों से आँसू गिराती हुई क्यों बैठी हो?"
6. उसने उन्हें यह कहते हुए अपनी पोती की मृत्यु के विषय में बताया, "वह एक आज्ञाकारी लड़की थी और मुझे उस जैसी दूसरी नहीं मिल सकती।"
7. "हे विशाखा! कहो, श्रावस्ती में कितनी युवा लड़कियाँ निवास करती हैं?"
8. "भगवान्, लोग कहते हैं, वे कई कोटि (कई लाख) हैं।"
9. "यदि वे सब तुम्हारी पोती के समान होती, क्या तुम उन्हें प्यार नहीं करती?"
10. "निश्चय से भगवान्," विशाखा ने उत्तर दिया।
11. "और श्रावस्ती में प्रतिदिन कितनों की मृत्यु होती है?"
12. "अनेक, भगवान्।"
13. "तब तो कोई भी ऐसा क्षण नहीं होगा, जब तुम किसी न किसी के लिये दुःखी न हो रही हो?"
14. "सत्य है, भगवान्।"
15. "तब क्या तुम दिन और रात रोती हुई व्यतीत करोगी?"

16. "मैं समझ गयी भगवान! यह भली-भाति समझा दिया गया है।"

17. अंत में तथागत ने कहा, "तो अब फिर शोक मत करो।"

(ii)
किसा-गौतमी को सांत्वना

1. किस गौतमी का विवाह श्रावस्ती के एक व्यापारी के पुत्र के साथ हुआ था।
2. विवाह के उपरान्त उसने शीघ्र ही एक पुत्र को जन्म दिया था।
3. दुर्भाग्य से चल पाने के योग्य होने से पहले ही उसके पुत्र को सर्प ने दंश लिया और वह मर गया।
4. वह विश्वास ही नहीं कर पा रही थी कि उसका पुत्र वास्तव में मर गया है, क्योंकि उसने इससे पहले कभी 'मृत्यु' को देखा ही नहीं था।
5. सर्प-दंश से बना छोटा सा लाल दाग, ऐसा प्रतीत होता कि वह बच्चे की मृत्यु का कारण भी हो सकता है।
6. अतः उसने अपने मृत बच्चे को उठाकर पागलों जैसी मनोस्थिति में एक घर से दूसरे घर घूमना शुरू कर दिया था कि लोगों ने यह विश्वास करना प्रारम्भ कर दिया कि वह पागल हो गयी है।
7. अन्ततोगत्वा एक वृद्ध व्यक्ति ने उसे श्रमण गौतम के पास जाने और उनकी सहायता लेने की सलाह दी, जो उस समय श्रावस्ती में ही थे।
8. अतः वह तथागत के पास आयी और उसने अपने मृत बच्चे के लिये कुछ दवा माँगी।
9. तथागत ने उसकी दुख-गाथा और उसका विलाप सुना।
10. तब तथागत ने उससे कहा, "नगर में जाओ और किसी भी ऐसे घर से जहाँ पर कोई मरा न हो, कुछ सरसों के दाने ले आओ और उनकी सहायता से मैं तुम्हारे बच्चे को पुनर्जीवित कर दूंगा।"
11. उसने सोचा यह बहुत सरल है और अपने बच्चे की मृत-देह के साथ उसने नगर में प्रवेश किया। किन्तु शीघ्र ही उसने पाया कि वह असफल हो गयी, क्योंकि जिस किसी घर में वह गयी थी, वहाँ किसी न किसी सदस्य की मृत्यु हो चुकी थी।

13. जैसा कि एक गृहस्थ ने उससे कहा, "जो जीवित हैं, वे थोड़े हैं और जो मर

गए हैं वे अधिक हैं।''

14. अतः वह निराशा पूर्ण और खाली हाथ तथागत के पास लौट आई।

15. तथागत ने तब उससे पूछा, ''क्या उसने अभी भी यह नहीं समझा कि मृत्यु सभी के लिये सामान्य बात है? क्या वह अब भी दुःखी होगी जैसे केवल उसी के साथ यह अप्रिय घटना घटी है।''

16. वह तब वहाँ से यह कहते हुए चली गई कि ''सभी कुछ अनित्य है; यही नियम है और उसने बच्चे का दाह-संस्कार कर दिया।''

3. रोगियों के प्रति उनकी सेवा

1. अब एक समय एक भिक्षु अतिसार से पीड़ित था और वह अपने ही मल-मूत्र में पड़ा रहता था।
2. स्थविर आनन्द को साथ लेकर तथागत अपनी चारिका करते हुए उस भिक्षु के आवास पर पहुँचे।
3. तथागत ने देखा कि वह भिक्षु अपने मल-मूत्र में ही पड़ा हुआ है और उसे देख कर वे उसकी ओर गये और कहा, ''भिक्षु! तुम्हें क्या रोग है?''
4. ''मुझे अतिसार है, भगवान!''
5. ''क्या कोई तुम्हारी देखभाल नहीं कर रहा है, भिक्षु?''
6. ''नहीं, भगवान्।''
7. ''भिक्षु! ऐसा क्यों है कि भिक्षु लोग तुम्हारी देखभाल नहीं करते।''
8. ''भगवान्! मैं भिक्षुओं के लिये निरर्थक हूँ, इसलिए भिक्षु लोग मेरी देखभाल नहीं करते हैं।''
9. तब तथागत ने स्थविर आनन्द से कहा, ''तुम जाओ, आनन्द! और पानी ले आओ। मैं इस भिक्षु को धोऊँगा।''
10. ''हाँ, भगवान्'' स्थविर आनन्द ने तथागत को उत्तर दिया। जब वे पानी ले आये, तो तथागत ने पानी डाला, जबकि स्थविर आनन्द ने उस भिक्षु को पूरा धो दिया। तब तथागत ने, उसे सिर की ओर से पकड़ा और स्थविर आनन्द ने उसे पैर की ओर से पकड़ा, दोनों ने मिल कर उसे बिस्तर पर लिटा दिया।
11. तब तथागत ने इस सम्बन्ध में इस अवसर पर, भिक्षुओं के संघ को एक साथ एकत्रित किया और भिक्षुओं से प्रश्न करते हुए यह कहा-
12. ''भिक्षुओ! क्या अमुक आवास में कोई बीमार भिक्षु है?''

13. "हाँ है, भगवान्।"

14. भगवान्, "उस भिक्षु को क्या रोग है?"

15. "भगवान्! उस भिक्षु को अतिसार है।"

16. भगवान् ने पूछा, "किन्तु, भिक्षुओ! क्या कोई उसकी देखभाल कर रहा है?"

17. "नहीं, भगवान्।"

18. भगवान् ने कहा, "क्यों नहीं? भिक्षु लोग उसकी देखभाल क्यों नहीं करते?"

19. "भगवान्! वह भिक्षु लोगों के लिये निरर्थक है। इसलिये भिक्षु लोग उसकी देखभाल नहीं करते।"

20. भगवान् ने कहा, "भिक्षुओ, तुम्हारी देखभाल करने के लिये तुम्हारे कोई माता और पिता नहीं हैं। यदि तुम एक दूसरे की देखभाल नहीं करोगे, तो दूसरा कौन करेगा? मैं पूछता हूँ भिक्षुओ! जो रोगियों की सेवा-टहल करता है, वह मेरी सेवा-टहल करता है।"

21. "यदि उसका एक उपाध्याय हो, उसके उपाध्याय को उसकी देखभाल करनी चाहिये जब तब वह जीवित है, और उसके स्वास्थ्य-लाभ की प्रतीक्षा करनी चाहिये। यदि उसके पास एक आचार्य या एक नेवासिक भिक्षु हो, एक शिष्य या एक साथी भिक्षु हो तथा सहशिष्य हो, उसको उसकी देख-भाल करनी चाहिए और उसके स्वास्थ्य-लाभ की प्रतीक्षा करनी चाहिए, यदि कोई उसकी देखभाल नहीं करता है, तो यह एक अपराध होगा।"

(ii)

1. एक बार तथागत राजगृह के समीप महावन में कलन्दक निवाप में ठहरे हुए थे।

2. इस अवसर पर स्थविर वक्कली रुग्ण, पीड़ित और एक दुःखद रोग से ग्रस्त थे तथा कुम्हार के छप्पर में ठहरे हुए थे।

3. तब स्थविर वक्कली ने अपने सहायकों को बुलाया और कहा, "यहाँ आओ, मित्रो! तुम लोग तथागत के पास जाओ और मेरी ओर से तथागत के चरणों की वन्दना करके, उनसे यह कहना, "भगवान्! भिक्षु वक्कली रुग्ण, पीड़ित और एक दुःखद रोग से ग्रस्त है। वह तथागत के चरणों की वन्दना करता है।" और तुम लोग इस प्रकार भी कहना,-"भगवन!" यह अच्छा होगा, यदि उनके प्रति करुणा के कारण, तथागत भिक्षु वक्कली से भेंट करने की कृपा करें।"

4. तथागत ने अपने मौन द्वारा स्वीकृति दी। तत्पश्चात् तथागत ने स्वयं चीवर धरण

किया और चीवर-पात्र लेकर स्थविर वक्कली से भेंट करने के लिये गये।

5. जब स्थवर वक्कली ने तथागत को आते देखा, जो अभी कुछ दूरी पर ही थे, और उनको देखकर वह अपने बिस्तर पर हिलने-डुलने लगा।

6. तब तथागत ने स्थविर वक्कली से कहा, ''बहुत हो गया, वक्कली! अपने बिस्तर पर मत हिलो-डुलो! ये आसन सुसज्जित है। मैं वहाँ बैठूंगा।'' और वे एक सुसज्जित आसन पर बैठ गये। तथागत बैठने के पश्चात् स्थविर वक्कली से बोले-

7. ''अच्छा, वक्कली! मैं समझता हूँ कि तुम कष्ट को सहन कर रहे हो। मैं समझता हूँ तुम बड़ी सहनशीलता से काम कर रहे हो। क्या तुम्हारी पीड़ा घट रही है और बढ़ तो नहीं रही है। क्या इसके घटने का कोई लक्षण है और उनके बढ़ने के तो नहीं हैं?''

8. ''नहीं, भगवान्! मैं सहन नहीं कर पा रहा हूँ। मैं झेल नहीं पा रहा हूँ। मुझे तीव्र कष्ट हो रहा है। वह घट नहीं रहा। उसके घटने के कोई लक्षण नहीं है, बल्कि उसके बढ़ने के हैं।''

9. ''वक्कली! क्या तुम्हें कोई सन्देह है? क्या तुम्हें कोई अनुताप है?''

10. ''निस्संदेह भगवान!् मुझे कोई सन्देह नहीं है। मुझे कोई अनुताप नहीं है।''

11. ''वक्कली! क्या तुम्हारे मन में ऐसी कोई बात तो नहीं है, जिसके आधार पर तुम अपने शील का ध्यान कर स्वयं को, धिक्कारते हो?''

12. ''नहीं भगवान्! ऐसा कुछ भी नहीं है, जिसके आधर पर मैं अपने शील का ध्यान कर स्वयं को धिक्कारता।''

13. ''तब वक्कली! यदि ऐसा है, तो तुम्हें अवश्य कुछ चिन्ता है, तुम्हें अवश्य किसी न किसी बात का पश्चाताप है।''

14. ''भगवान्! एक लम्बे समय से मैं तथागत के दर्शन करने की इच्छा रखता था, किन्तु इस शरीर में पर्याप्त शक्ति नहीं थी कि तथागत के दर्शन के लिये आ सकूँ।''

15. ''वक्कली! शांत रहो मेरी इस तुच्छ देह में ऐसा क्या है, जिसके दर्शन किये जायें? वह जो 'धम्म' को देखता है, वह मुझे देखता है, वक्कली! वह जो मुझे देखता है, वह 'धम्म' को देखता है। वस्तुतः वक्कली! 'धम्म' को देख कर कोई मुझे देखता है, मुझे देखकर कोई 'धम्म' को देखता है।''

(iii)

1. ऐसा मैंने सुना है, तथागत एक बार भग्गी जनपद के मृगदाय में भेसकुला वन में ठहरे हुए थे। तब गृहपति नकुल पिता तथागत के पास आया, उनका अभिवादन कर एक ओर बैठ गया।

2. वहाँ बैठ कर गृहपति, नकुल पिता ने तथागत को संबोधित किया और यह कहा, ''शास्ता! मैं एक जरा-जीर्ण वृद्ध मनुष्य, बूढ़ा वय प्राप्त हूँ, मैं जीवन के अन्त तक पहुंच गया हूँ, मैं रोगी हूँ और सदैव बीमार रहता हूँ। शास्ता! मैं वह हूँ, जिसे मुश्किल से ही तथागत तथा पूजनीय भिक्षुओं के दर्शन प्राप्त होते हैं। तथागत मुझे प्रसन्न कर दें और सांत्वना दें, जिससे कि चिरकाल तक मेरे लिये हितकर और सुखदायी हों।''

3. ''यह सत्य है गृहपति! कि तुम्हारा शरीर दुर्बल और कष्टों से लदा हुआ है। इस तरह का शरीर लिये हुए किसी के लिये, गृहपति! एक भी क्षण का स्वास्थ्य प्राप्त करने का दावा करना मात्र मूर्खता होगी। यद्यपि, गृहपति! तुम्हें स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिये, 'यद्यपि मेरा शरीर रुग्ण है, मेरा चित्त रुग्ण नहीं होना चाहिये'। इस प्रकार, गृहपति! तुम्हें स्वयं को ऐसा अभ्यास करना चाहिये।''

4. तब गृहपति नकुल पिता ने स्वागत किया और बड़ी प्रसन्नता से तथागत के वचनों को सुना, और अपने स्थान से उठकर उसने उनका अभिवादन किया और प्रदक्षिणा की ओर वहां से चला गया।

(iv)

1. एक बार तथागत शाक्यों के मध्य कपिलवस्तु में अंजीर-वृक्ष उद्यान में ठहरे हुए थे।

2. तब उस अवसर पर कुछ भिक्षु तथागत के लिये चीवर बनाने में व्यस्त थे, उनका कहना था, ''क्योंकि जब तीन महीने व्यतीत हो जायेंगे, उनका चीवर तैयार हो जाने पर, तथागत अपनी चारिका पर निकल जायेंगे।''

3. तब महानाम शाक्य ने यह सुनते हुए कहा, ''कुछ भिक्षु चीवर बनाने में व्यस्त हैं, इत्यादि'' ....और वे तथागत के पास गये, उनका अभिवादन किया और एक ओर बैठ गये। इस प्रकार बैठे हुए, महानाम शाक्य ने कहा-

4. ''भगवान्! मैंने ऐसा सुना है कि कुछ भिक्षु तथागत के लिये चीवर बनाने में व्यस्त हैं, यह कहते हुए, 'जब चीवर तैयार, तो हो जायेगा तीन महीने के अन्त

में, तथागत अपनी चारिका पर निकल जायेंगे' अब भगवान! हमने कभी तथागत से यह कभी नहीं सुना कि एक विवेकी उपासक, जो रुग्ण है, कष्ट में हैं, दु:खद स्थिति में है, उसको एक दूसरे विवेकी उपासक द्वारा कैसे प्रसन्न किया जा सकता है।''

5. ''एक विवेकी उपासक, महानाम! जो रुग्ण है..... एक दूसरे विवेकी उपासक द्वारा चार सुखद आश्वासनों द्वारा प्रसन्न किया जाना चाहिये जो इस प्रकार है, 'सान्त्वना रखो, भले मानुष, धम्म में और भिक्षुओं के संघ में, इसी प्रकार ध म्म के प्रिय शीलों में जो अखण्डित और अदूषित रहने पर चित्त को शान्ति देते हैं।''

6. ''तब, महानाम! जब एक विवेकी उपासक जो रुग्ण है, उसे इस प्रकार एक दूसरे उपासक द्वारा चार सुखद आश्वासनों से प्रसन्न कर दिया जाये, तो उसे आगे इन शब्दों का प्रयोग करना चाहिये-''

7. ''मान लो कि मरणासन्न व्यक्ति को अपने माता-पिता को देखने के लिए व्याकुल है, तो दूसरे को उत्तर देना चाहिये कि 'मेरे मित्र! तुम्हारी मृत्यु समीप है। भले ही तुम्हें अपने माता-पिता को देखने की तीव्र इच्छा है या नहीं है, तुम मृत्यु को प्राप्त करोगे। इसलिये तुम्हारे लिये यही अच्छा होगा कि तुम अपने माता-पिता को देखने की इच्छा का त्याग कर दो।''

8. ''और माल लो रुग्ण व्यक्ति कहता है, 'कि माता-पिता की देखने की इच्छा अब त्याग दी है।' तो दूसरे को उत्तर देना चाहिये, कि मित्र! अभी तुम्हारे में बच्चों की देखने की इच्छा है। क्योंकि किसी भी हाल में तुम अवश्य मृत्यु को प्राप्त करोगे, इसलिये तुम्हारे लिये यही अच्छा होगा कि तुम अपने बच्चों को देखने की इच्छा का त्याग कर दो।'''

9. ''और इसी प्रकार उसे पाँचों इन्द्रिय सुखों के विषय में कहना चाहिये। मान लो रुग्ण व्यक्ति कहता है, 'मुझे पाँच इन्द्रिय-सुखों की उत्कंठा हैं', तो दूसरे को कहना चाहिये, 'मेरे मित्र! इन पाँच इन्द्रिय-सुखों की अपेक्षा दिव्य-लोक के सुख अधिक श्रेष्ठ हैं और उनमें अधिक विकल्प हैं। इसलिये तुम्हारे लिये यही अच्छा होगा कि तुम मानुषिक सुखों से अपना चित्त हटाओ और उसे आप दिव्य-लोक के सुखों पर केन्द्रित करो।''

10. ''पुन: यदि रुग्ण व्यक्ति कहता है, 'मेरा चित्त दिव्य-लोक के सुखों पर केन्द्रित है, तो दूसरे को कहना चाहिये, अपने चित्त को ब्रह्म-लोक पर केन्द्रित करना बेहतर है,' और तब यदि रुग्ण व्यक्ति का चित्त उस प्रकार केन्द्रित होता है तो दूसरे को कहना चाहिये-''

11. "मित्र! ब्रह्म लोक भी अनित्य है, परिवर्तनशील है, उसमें भी ममत्व हो सकता है। मित्र! तुम्हारे लिये अच्छा होगा, यदि तुम अपने चित्त को ब्रह्म-लोक से भी ऊपर उठाओ और ममत्व के उच्छेदन पर केन्द्रित करो।"
12. "और यदि रुग्ण व्यक्ति कहे कि उसने ऐसा कर लिया है, तब मैं घोषित करता हूँ महानाम! कि उस उपासक में जो इस प्रकार निश्चयपूर्वक कहता है और श्रावक में जिनका चित्त आस्रवों से मुक्त है इन दोनों के मध्य कोई अन्तर नहीं है।"

4. असहनीय के प्रति सहनशीलता

1. एक बार तथागत यक्ष आलवक के क्षेत्र में आलवी नगर में निवास कर रहे थे। तब यक्ष आलवक तथागत के पास आया, और उनके पास आकर, इस प्रकार बोला, "हे श्रमण! बाहर निकल जाओ।"
2. तथागत यह कहते हुए चल पड़े, "बहुत अच्छा, मित्र।"
3. यक्ष ने फिर आज्ञा दी, "श्रमण! भीतर आ जाओ।"
4. तथागत ने यह कहते हुए प्रवेश किया, "बहुत अच्छा मित्र।"
5. दूसरी बार भी यक्ष आलवक ने तथागत से कहा, "श्रमण! बाहर निकल जाओ।"
6. तथागत यह कहते हुए चल पड़े, "बहुत अच्छा मित्र।"
7. "हे श्रमण! भीतर आ जाओ," यक्ष ने दूसरी बार कहा।
8. तथागत ने यह कहते हुए प्रवेश किया, "बहुत अच्छा मित्र।"
9. तीसरी बार भी यक्ष आलवक ने तथागत से कहा, "हे श्रमण! बाहर निकल जाओ।"
10. तथागत यह कहते हुए चल पड़े, "बहुत अच्छा मित्र।"
11. "हे श्रमण! भीतर आ जाओ," यक्ष ने पुनः कहा।
12. तथागत ने यह कहते हुए प्रवेश किया, "बहुत अच्छा मित्र।"
13. चौथी बार भी यक्ष ने तथागत से कहा, "हे श्रमण! बाहर निकल जाओ।"
14. इस बार तथागत ने उत्तर दिया, "मैं बाहर नहीं निकलूँगा, मित्र! तुम जो चाहे वह कर सकते हो।"
15. यक्ष को क्रोध आया बोला, "हे श्रमण! मैं तुमसे प्रश्न पूछूँगा, यदि तुम मेरे

प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकोगे, मैं तुम्हें पागल बना दूँगा या मैं तुम्हारे हृदय को फाड़ डालूँगा या मैं तुम्हें पांवों से पकड़कर नदी के दूसरी ओर फेंक दूँगा।''

16. तथागत ने उत्तर दिया, ''मित्र! मुझे संसार में कोई भी ऐसा नहीं दिखाई देता, जो मुझे पागल बना दे या मेरे हृदय को फाड़ डाले या मुझे पांवों से पकड़ कर नदी के उस पार फेंक सके। तथापि मित्र! तुम जो भी प्रश्न पूछना चाहते हो पूछो।''

17. तब यक्ष आलवक ने तथागत से निम्नलिखित प्रश्न पूछे–

18. ''इस संसार में मनुष्य के लिये सर्वश्रेष्ठ धन क्या है? कौन–सा कुशल–कर्म सुखदायक है, सभी रसों में मधुरतम रस कौन सा है? कौन–सा जीवन सर्वश्रेष्ठ जीवन कहा जा सकता है?''

19. तथागत ने उत्तर दिया, ''इस संसार में मनुष्य के लिये सर्वश्रेष्ठ धन श्रद्धा है। भली–भांति पालन किया गया धम्म, सुखदायक है। सभी रसों में मधुरतम रस सत्य है। प्रज्ञा से सम्पन्न जीवन सर्वश्रेष्ठ जीवन कहा जाता है।''

20. यक्ष आलवक ने पूछा, ''आदमी बाढ़ (पुनर्जन्म) को कैसे पार कर सकता है? आदमी सागर (भव) को कैसे लांघ सकता है? आदमी कैसे दु:ख का अन्त कर सकता है?''

21. तथागत ने उत्तर दिया, ''आदमी श्रद्धा द्वारा बाढ़ को पार करता है। आदमी अप्रमाद द्वारा (भव) सागर को पार करता है। कोई प्रयास से दु:ख का अन्त करता है। कोई प्रज्ञा द्वारा स्वयं को परिशुद्ध करता है।''

22. यक्ष आलवक ने पूछा, ''किस प्रकार आदमी ज्ञान प्राप्त करता है? किस प्रकार आदमी धन अर्जित करता है? किस प्रकार वह यश प्राप्त करता है? किस प्रकार आदमी मित्र प्राप्त करता है? मृत्यु के पश्चात् इस लोक से दूसरे लोक को जाते समय, किस प्रकार आदमी को अनुताप नहीं करता है?''

23. तथागत ने उत्तर दिया, ''निर्वाण प्राप्ति के लिये अर्हतों और धम्म में श्रद्धा रखने से आज्ञाकारी होने से, अप्रमादी होने से सतर्क मनुष्य प्रज्ञा प्राप्त करता है।''

24. वह जो उचित करता है, वह जो दृढ़–निश्चयी है, वह जो जागृत है, वह धन अर्जित करता है। जो देता है वह मित्र प्राप्त करता है।

25. वह श्रद्धावान उपासक, जिसमें सत्यवादिता, सद्चरित्रता, धैर्य तथा उदारता पायी जाती है, वह मृत्यु के पश्चात् पश्चाताप नहीं करता है।

26. ''आओ! जो दूसरे बहुत से श्रमण ब्राह्मण हैं, उनसे भी पूछ लो, कि क्या सत्य,

संयम, दानशीलता और धैर्य से भी श्रेष्ठ कोई अन्य गुण है।''

27. यक्ष आलवक ने कहा, ''अब, मैं किसी ब्राह्मण और श्रमण से क्यों सलाह लूँ? आज मैं कल्याण अपने अच्छे भविष्य के ऐश्वर्य से परिचित हो गया हूं।''

28. ''निस्संदेह! भगवान् बुद्ध मेरे कल्याण के लिये ही आलवी पधारे हैं। आज मैं जानता हूँ, कि किसको, (दान) देने से अधिक से अधिक सर्वश्रेष्ठ फल मिलता है।''

29. ''आज से मैं सम्यक् सम्बुद्ध और उनके श्रेष्ठ धम्म को अपना आदर एवं श्रद्धा अर्पित करते हुए, एक गाँव से दूसरे गाँव तथा एक नगर से दूसरे नगर विचरण करूँगा।''

5. समानता और समान-व्यवहार के समर्थक

1. तथागत ने जो कुछ भी नियम संघ के सदस्यों के लिये बनाये थे, वे स्वेच्छा तथा खुशी से उन्होंने स्वयं अपने ऊपर भी लागू किये थे।

2. उन्होंने इस आधार पर कोई भी अपवाद या विशेष व्यवहार का दावा नहीं किया था कि वे 'संघ' के स्वीकार्य प्रमुख हैं और उन्हें संघ द्वारा कोई भी सुविधा उनके प्रति असीम आदर और प्रेम की भावना के कारण बड़ी प्रसन्नता से प्राप्त हो सकती थी।

3. संघ के भिक्षु एक दिन में केवल एक बार भोजन ग्रहण करते, तथागत द्वारा भी यह नियम उसी प्रकार स्वीकार्य और पालन किया जाता था, जैसे कि भिक्षुओ के द्वारा किया जाता था।

4. भिक्षु के पास कोई व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं होती थी, तथागत के द्वारा यह नियम उसी प्रकार स्वीकार्य और पालन किया जाता था, जैसे भिक्षुओ द्वारा किया जाता था।

5. संघ के किसी भी सदस्य के पास तीन चीवर से अधिक नहीं होना चाहिये। यह नियम तथागत द्वारा भी उसी प्रकार स्वीकार्य और पालन किया जाता था, जैसे भिक्षुओं के द्वारा किया जाता था।

6. एक बार, जब तथागत शाक्य जनपद में कपिलवस्तु नगर के न्याग्रोधाराम में रहते थे, तो तथागत की मौसी महाप्रजापति गौतमी अपने हाथ का कता, हाथ का बुना कपड़ा तथागत के पास लेकर आयी, जिनके लिये उन्होंने प्रार्थना की कि उनके द्वारा स्वीकार किये जाने चाहिये, क्योंकि उसे स्वयं उन्होंने अपने

हाथों से करघे पर उनके लिये बनाया है।

7. तथागत ने उसे उत्तर दिया, "प्रजापति! इसे संघ को दे दें।"

8. दूसरी बार और तीसरी बार भी गौतमी ने अपनी प्रार्थना दोहराई, किन्तु उन्हें हर बार समान उत्तर ही मिला।

9. तब आनन्द ने यह कहते हुए, आग्रह किया, "भगवान्! प्रजापति गौतमी द्वारा भेंट किया गया वस्त्र स्वीकार करें। गौतमी आपकी मौसी हैं। उन्हें सेविका (नर्स) की तरह आपकी सेवा की है। जब आपकी मां की मृत्यु हो गई थी तो अपने भानजे को अपना दूध पिलाया था। किन्तु तथागत ने यही कहा कि वस्त्र संघ को ही दिया जाये।

10. मूलतः संघ का यह नियम था कि सदस्यों के चीवर कूड़े के ढेरों पर से चुने गये चीथड़ों से ही बनाये जाने चाहिये। यह नियम धनी वर्ग के लोगों के संघ में प्रवेश को रोकने के लिये बनाया गया था।

11. एक बार जीवक नए कपड़े से बना एक चीवर तथागत को स्वीकार कराने में सफल हो गये थे। जब तथागत ने उसे स्वीकार कर लिया, तो साथ ही साथ उन्होंने मूल नियम में छूट दे दी तथा भिक्खुओं को भी नया चीवर पहनने की अनुमति प्रदान कर दी थी।

तीसरा भाग

उनकी पसंद और नापसंद

1. उन्हें दरिद्रता पसंद नहीं थी

1. एक बार भगवान् बुद्ध श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में विहार कर रहे थे। वहां अनाथपिण्डिक गृहपति आया और तथागत का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। इस प्रकार बैठे हुए उसने तथागत से प्रश्न किया, "भगवान्! आदमी को धनार्जन क्यों करना चाहिए?"

2. भगवान् बुद्ध ने उत्तर दिया, "क्योंकि तुम पूछ रहे हो, इसलिए मैं तुम्हें बताता हूं।"

3. "किसी एक आर्य-श्रावक को लो, जिसने मेहनत और लगन के साथ संपत्ति अर्जित है, जिसने हाथों की शक्ति से, पसीना बहाकर, ईमानदारी और न्यायसंगत तरीके से धन कमाया है, वह उस धन से अपने आप को प्रसन्न बनाता है, आनंदित रहता है, वह अपने माता-पिता को सुखी और प्रसन्न करता है। इसी प्रकार अपने पत्नी-बच्चों को, अपने दासों को, अपने कर्मकारों तथा अन्य आदमियों को भी ऐसे ही रखता है। धनार्जन करने का पहला कारण यह है।"

4. "जब इस प्रकार धन प्राप्त होता है, तो वह अपने मित्रों और अपने साथियों को प्रसन्न और आनंदित करता है। यह दूसरा कारण है।"

5. "जब इस प्रकार धन प्राप्त हो जाता है, तो वह बुरे समय से, अग्नि और पानी से, राजाओं तथा चीरों, शत्रुओं तथा उत्तराधिकारियों से अपनी रक्षा करता है और हानि नहीं होने देता, वह अपने माल को सुरक्षित रखता है। यह तीसरा कारण है।"

6. "जब इस प्रकार धन अर्जित करता है, तो वह पांच प्रकार के कार्य करता है, जैसे रिश्तेदारों, अतिथियों, राजाओं और देवताओं के लिए यज्ञ करता है। यह चौथा कारण है।"

7. "जब इस प्रकार धन प्राप्त होता है, तो गृहपति उन सब श्रमणों तथा संत-पुरुषों को दान देता है, जो अहंकार तथा प्रमाद से दूर रहते हैं, जो सभी बातों को धैर्य और विनम्रता से सहन कर लेते हैं, जो संयत हैं, जो शांत हैं तथा जो श्रेष्ठ बनने में लगे हैं। उसका वह दान महान साध्य के लिए होता है, सुख में वृद्धि करने वाला और देवलोक की ओर ले जाने वाला होता है। यह धनार्जन का पांचवां कारण है।"

8. अनाथपिण्डिक ठीक प्रकार से समझ गया कि भगवान् कुछ दरिद्रों की दरिद्रता की प्रशंसा करके उन्हें सांत्वना नहीं देते। वे 'दरिद्रता' को अच्छा बताकर उसे सुखी जीवन यापन नहीं कहते हैं।

2. उन्हें संग्रह-वृत्ति नापसंद थी

1. भगवान् बुद्ध एक बार कुरु जनपद के कम्मासदम्म नामक जनपद में ठहरे हुए थे।
2. आनन्द थेर भगवान् बुद्ध के पास वहाँ आए और झुककर अभिवादन कर एक ओर बैठ गए।
3. इस प्रकार बैठे हुए आनन्द ने थेर ने कहा, ''तथागत द्वारा उपदेशित प्रतीत्य-समुत्पाद का नियम अद्भुत है। यह अत्यंत गंभीर है, किन्तु मुझे यह अत्यंत स्पष्ट प्रतीत होता है।''
4. भगवान् बुद्ध ने कहा, ''आनन्द! ऐसा मत कहो, ऐसा मत कहो। यह प्रतीत्य-समुत्पाद का नियम बहुत गंभीर है। इसी प्रतीत्य-समुत्पाद के नियम को न समझ सकने के कारण, इसी प्रतीत्य-समुत्पाद के नियम को गम्भीरता से न समझने के कारण, यह पीढ़ी उलझन में फंसी सूत के उलझे हुए गोले की तरह है और दु:ख के मार्ग को पार कर सकने में असमर्थ है।''
5. ''मैंने कहा है कि तृष्णा होने से उपादान होता है। जहां किसी के मन में किसी भी तरह की और किसी चीज के लिए कोई तृष्णा न हो, तो क्या किसी प्रकार का भी उपादान पैदा होगा?''
6. ''भगवान्! नहीं होगा।''
7. ''तृष्णा होने से आदमी लाभ के पीछे भागता है।''
8. ''लाभ के पीछे भागने से काम और राग उत्पन्न होते हैं।''
9. ''काम और राग होने से वस्तुओं के लिए दुराग्रह उत्पन्न होता है।''
10. ''दुराग्रह होने से अधिकार की भावना उत्पन्न होती है।''
11. ''अधिकार की भावना होने से तृष्णा तथा और भी अधिक संपत्ति रखने की इच्छा होती है।''
12. ''अधिकार की भावना होने से संपत्ति की देख-भाल करने की आवश्यकता पैदा होती है।''
13. ''सम्पत्ति की देख-भाल में बुरी और अनैतिक बातें पैदा होती हैं। जैसे घूंसे तथा घाव, कलह, झगड़े मिथ्यावाद और झूठ।''
14. ''आनन्द! इस प्रकार यह प्रतीत्य-समुत्पाद नियम की शृंखला है। आनन्द! यदि तृष्णा न हो, तो क्या लाभ के पीछे भागना होगा? यदि लाभ के पीछे भागना

न हो, तो क्या कामना उत्पन्न होगी? यदि कामना न हो, तो क्या दुराग्रह होगा? यदि दुराग्रह न हो, तो क्या व्यक्तिगत संपत्ति के लिए प्रेम पैदा होगा? यदि संपत्ति ही न हो, तो क्या अधिक संपत्ति के लिए लोभ पैदा होगा?''

15. ''भगवान्! नहीं होगा।''

16. ''यदि निजी संपत्ति के लिए आसक्ति न हो, तो क्या संसार में शांति नहीं होगी?''

17. ''भगवान्! होगी।''

18. तब तथागत ने कहा, ''मैं पृथ्वी को पृथ्वी मानता हूं। लेकिन मेरे मन में इसके लिए कोई तृष्णा नहीं है।''

19. ''इसलिए मैं कहता हूं कि सभी तृष्णाओं का मूलोच्छेद कर देने से, उनके पीछे न भागने से, बल्कि उनका नाश कर देने और त्याग कर देने से, उनका परित्याग कर देने से ही मुझे 'बुद्धत्व' लाभ प्राप्त हुआ।

20. ''भिक्षुओ! भौतिक वस्तुओं के नहीं, किन्तु मेरे धम्म के उत्तराधिकारी बनो, क्योंकि तृष्णा से आसक्ति पैदा होती है और आसक्ति चित्त को दास बनाती है।''

21. इन शब्दों में भगवान् बुद्ध ने आनन्द थेर तथा अन्य भिक्षुओ को संग्रह करने की प्रवृत्ति के दुष्परिणाम समझाए।

3. उन्हें सुसंगति पसंद थी

1. भगवान्! बुद्ध को सुसंगति इतनी अधिक प्रिय थी कि उन्हें 'सुसंगति प्रेमी बुद्ध' का उपनाम दिया जा सकता है।

2. इसलिए उन्होंने अपने अनुयायियों को शिक्षा दी, ''कल्याण मित्रों की संगति में रहो।''

3. भगवान् बुद्ध ने सभी भिक्षुओं को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा–

4. ''भिक्षुओ! मैं कोई दूसरी एक भी ऐसी बात नहीं जानता, जिसमें इतनी शक्ति हो कि वह अनुत्पन्न कुशल धम्मों को उत्पन्न कर सके अथवा उत्पन्न अकुशल धम्मों को निस्तेज कर सके, किन्तु ऐसी शक्ति सुसंगति के साथ मित्रता में है।''

5. ''जो सुसंगति का प्रेमी है, उसमें अनुत्पन्न कुशल धम्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न अकुशल धम्म निस्तेज हो जाते हैं। अकुशल धम्म से अनुरक्ति निस्तेज

हो जाती है, कुशल धम्म में अनुरक्ति का अभाव दूर हो जाता है, कुशल धम्म और उसमें अनुरक्ति उत्पन्न हो जाती है, अकुशल धम्म में अनुरक्ति के अभाव में वृद्धि हो जाती है।''

6. ''भिक्षुओ! मैं कोई दूसरी एक भी ऐसी चीज़ नहीं जानता, जिसमें इतनी सामर्थ्य हो कि वह अनुत्पन्न बोधि अंगों को उत्पन्न होने से रोक सके, अथवा उत्पन्न बोध्यंगों (बोधि अंगों) को पूर्णता तक पहुंचने से रोक सके, जैसे कि असुव्यवस्थित ध्यान।''
7. ''जो असुव्यवस्थित ध्यान का अभ्यास करता है, उसमें अनुत्पन्न बोधि अंग उत्पल्न नहीं होते और उत्पन्न बोधि अंग पूर्णता को नहीं प्राप्त होते।''
8. ''भिक्षुओ! सगे-संबंधियों की हानि कोई बड़ी हानि नहीं है। किन्तु प्रज्ञा की हानि यथार्थ में ही दुःखद है।''
9. ''भिक्षुओ! सगे-सम्बंधियों की वृद्धि कोई बड़ी अभिवृद्धि नहीं है। किन्तु प्रज्ञा की वृद्धि सबसे बड़ी अभिवृद्धि होती है।''
10. ''इसलिए भिक्षुओ! मैं कहता हूं कि तुम्हें इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए, हम प्रज्ञा में वृद्धि करेंगे। तुम्हें प्रज्ञावान बनने के लिए अवश्य अभ्यास करना चाहिए।''
11. ''भिक्षुओ! धन की वृद्धि कोई बड़ी अभिवृद्धि नहीं है। सभी अभिवृद्धियों में श्रेष्ठ है प्रज्ञा की अभिवृद्धि। इसलिए हे भिक्षुओ! तुम्हें यही अभ्यास करना चाहिए, हम प्रज्ञा में वृद्धि करेंगे। तुम्हें प्रज्ञावान बनने के लिए अवश्य अभ्यास करना चाहिए।''
12. ''भिक्षुओ! यश की हानि कोई बड़ी हानी नहीं है। प्रज्ञा की हानि दुःखद हानि है।''

4. वे सुसंगति से प्रेम करते थे

1. एक बार तथागत शाक्य जनपद में शाक्यों के एक नगर सक्कर में ठहरे हुए थे।
2. तब आनंद तथागत के पास आए, अभिवादन करके एक ओर बैठ गए। इस प्रकार बैठे हुए आनंद थेर ने कहा-
3. ''भगवान्! रमणीय से मित्रता, रमणीय से संसर्ग, रमणीय से घनिष्ठता आधा पवित्र जीवन है।

4. भगवान् बुद्ध ने उत्तर दिया, ''आनंद! ऐसा मत कहो। आनंद! ऐसा मत कहो। रमणीय से मित्रता, रमणीय से संसर्ग, रमणीय से घनिष्ठता-आधा नहीं, बल्कि पूरा पवित्र जीवन है।''

5. ''जो भिक्षु रमणीय का मित्र, साथी और घनिष्ठ है, उससे हम यह अपेक्षा कर सकते हैं कि वह स्वयं में आर्य आष्टांगिक मार्ग को विकसित करेगा, वह आष्टांगिक मार्ग से अधिक लाभान्वित होगा।''

6. ''और आनंद! ऐसा भिक्षु आर्य आष्टांगिक मार्ग से कैसे अधिक लाभान्वित होगा?''

7. ''आनंद! यहां वह भिक्षु सम्यक दृष्टि में लगता है, जो अनासक्ति, विरक्ति, स्तत्व-त्याग और स्वयं के समर्पण पर आधारित है। यह सम्यक संकल्प में लगता है, जिसका आधार भी वही है, उसी प्रकार सम्यक व्यायाम, सम्यक कर्मांत, सम्यक समाधि में लगता है, अंत में स्वयं का समर्पण करता है।''

8. ''आनंद! इस प्रकार रमणीय का मित्र, रमणीय का साथी, रमणीय का घनिष्ठ भिक्षु आर्य आष्टांगिक मार्ग में लगता है और उससे लाभान्वित होता है।''

9. ''आनंद! यह विधि है, जिसके द्वारा तुम्हें समझना है कि किस प्रकार पवित्र जीवन रमणीय से मित्रता, रमणीय से संसर्ग, रमणीय से घनिष्ठता में पूर्णता पाता है।''

10. ''आनंद! यथार्थ में, मरण-स्वभाव प्राणी, दुख, शोक, विलाप और निराशा को प्राप्त होने वाले प्राणी, रमणीय से मित्रता होने के कारण इन सबसे मुक्त हो जाते हैं।''

11. ''आनंद! यह विधि है, जिसके द्वारा तुम्हें समझना है कि पूर्ण पवित्र जीवन रमणीय के साथ, मित्रता से संसर्ग से और घनिष्ठता से बनता है।''

(प्राकृतिक सौंदर्य से पूर्ण वन, एकांत एवं सूना क्षेत्र एवं विपस्सना (ध्यान) योग्य स्थान ही 'रमणीय' कहा जा सकता है।)

उपसंहार

1. भगवान् बुद्ध की प्रशस्ति
2. उनके धम्म के प्रचार की शपथ
3. भगवान् बुद्ध के पुनः स्वदेश लौट आने की प्रार्थना

1. भगवान् बुद्ध की प्रशस्ति

1. भगवान् बुद्ध का जन्म पच्चीस सौ वर्ष पूर्व हुआ था।
2. आधुनिक विचारक और वैज्ञानिक उनके तथा उनके धम्म के विषय में क्या कहते हैं? इस विषय पर उनके विचारों का संग्रह उपयोगी होगा।
3. प्रोफेसर एस.एस. राघवाचार्य कहते हैं–
4. "भगवान् बुद्ध के अविर्भाव से ठीक पहले का काल भारतीय इतिहास के सर्वाधिक अन्धकारमय युगों में से एक था।"
5. "बौद्धिक रूप से यह एक पिछड़ा युग था। उस समय के विचार धर्म-ग्रन्थों की सत्ता के प्रति निर्विवाद अंधविश्वासों से जकड़ा हुआ था।"
6. "नैतिकता दृष्टि से यह एक अन्धकारमय युग था।"
7. "आस्तिक हिन्दुओं के लिये नैतिकता का अर्थ धर्म-ग्रन्थों के अनुसार अनुष्ठानों और कर्मकाण्डों का उचित निष्पादन था।"
8. "यथार्थ नैतिक विचार जैसे आत्म-त्याग या चित्त की पवित्रता का उस समय की नैतिक चेतना में यथोचित स्थान प्राप्त नहीं था।"
9. माननीय आर.जे. जैक्सन का कथन है–
10. "भगवान् बुद्ध की शिक्षाओं का विशिष्ट गुण भारतीय धार्मिक विचारधाराओं के अध्ययन द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।"
11. "ऋग्वेद की ऋचाओं में हम मनुष्य के विचारों को बहिर्मुखी, स्वयं से दूर, देवताओं के लोक की ओर देखते हैं।"
12. "बौद्ध धम्म ने मनुष्य की खोज को स्वयं के भीतर छुपी सामर्थ्य की ओर आकर्षित किया।"
13. "वेदों में हमें प्रार्थना, प्रशंसा और आराधना मिलती है।"
14. "बौद्ध धम्म में ही पहली बार हम सम्यक् रूप से कार्य करने के लिए चित्त का प्रशिक्षण पाते हैं।"
15. माननीय विनवुड रीड कहते हैं–
16. "जब हम प्रकृति की पुस्तक खोलकर देखते हैं, जब हम खून और आँसुओं से लिखी, लाखों-करोड़ों वर्षों के विकास की कथा पढ़ते हैं, जब हम जीवन को नियन्त्रित करने वाले नियमों, विकास के उत्पादक नियमों को पढ़ते हैं, तब हम स्पष्टतया देखते हैं कि ईश्वर प्रेम स्वरूप है, यह सिद्धान्त कितना भ्रामक

है।''

17. ''प्रत्येक वस्तु में अन्यायपूर्ण चरित्रहीनता और असंयमित अपव्यय है। जितने भी प्राणी जन्म लेते हैं, अंत में केवल बहुत थोड़े प्रतिशत बच पाते हैं।''
18. ''समुद्र, आकाश और जंगल में केवल यही नियम लागू है कि दूसरों को खाओ या दूसरों द्वारा खाये जाने के लिए तैयार रहो। हत्या ही विकास का नियम है।''
19. माननीय रीडे ने अपनी ''मारटरडम ऑफ मैन,'' (Martyrdom of Man) नामक पुस्तक में यही कहा है कि बुद्ध का धम्म कितना भिन्न है?
20. डॉ. रजन राय का कथन है-
21. ''उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध के दौरान संरक्षण के तीन नियम प्रभावी थे। किसी ने भी उनका विरोध नहीं किया।''
22. वे थे (1) जड़ पदार्थ का नियम पदार्थ, (2) जड़ पदार्थ के समूह का नियम और (3) शक्ति का नियम।
23. ''वे उन आदर्शवादी चिन्तकों के तुरुप के पत्ते थे, जो उनके अविनाशी होने के विचार की कदर करते थे।''
24. ''उन्नीसवीं शताब्दी के वैज्ञानिक उन्हें सृष्टि के संचालक घटक स्वीकार करते थे।''
25. ''उन्नीसवीं शताब्दी के वैज्ञानिक उन्हें ब्रह्मांड की मूलभूत प्रकृति को समाहित करने वाले तत्व स्वीकार करते थे।''
26. ''वे समझते थे कि ब्रह्माण्ड अविनाशी अणुओं (Atoms) का समूह है।''
27. ''ज्यों ही उन्नीसवीं शताब्दी अपनी समाप्ति के समीप पहुँच रही थी, सर जे. जे. थामसन और उनके अनुयायियों ने अणुओं पर प्रहार करने प्रारम्भ कर दिये।''
28. ''आश्चर्यजनक बात यह हुई कि अणु भी टुकड़ों-टुकड़ों में विभक्त होने शुरू हो गये थे।''
29. ''ये टुकड़े परमाणु कहे जाने लगे जो सभी समान थे तथा ऋणात्मक विद्युत से संचालित थे।''
30. ''जिन अणुओं को मैक्सवैल द्वारा ब्रह्माण्ड के अथवा वास्तविकता के अविनाशी आधार-स्तम्भ के रूप में माना जाता था, वे खण्ड-खण्ड हो गये।''
31. ''वे छोटे-छोटे खण्डों, प्रोटॉन और इलैक्ट्रोन (विद्युदणु) में खण्डित हो गये जो

क्रमशः घनात्मक और ऋणात्मक विद्युत से आवेशित थे।''

32. ''एक निश्चित अविनाशी जड़ पदार्थ-समूह की कल्पना विज्ञान से विदा हुई। इस शताब्दी में सभी का विश्वास है कि पदार्थ का प्रत्येक क्षण क्षय हो रहा है।''

33. ''भगवान् बुद्ध का अनित्यता का सिद्धान्त सुदृढ़ हो जाता है।''

34. ''विज्ञान के द्वारा सिद्ध कर दिया गया है कि ब्रह्माण्ड का क्रम (चीजों का) जुड़ना और बिखरना तथा पुनः जुड़ना है।''

35. ''आधुनिक विज्ञान, के अनुसार अंतिम तत्त्व अनेक होकर एक भासित होने वाला है।''

36. ''आधुनिक विज्ञान भगवान् बुद्ध के अनित्यता और अनात्मवाद के सिद्धान्तों की प्रतिध्वनि है।''

37. श्री ई. जी. टेलर अपनी 'बुद्धिज़्य एण्ड मॉडर्न थॉट' (बौद्ध धर्म और आधुनिक विचार) में कहते हैं-

38. ''मनुष्य काफी समय से बाहरी सत्ता द्वारा शासित होता रहा है। यदि उसे वास्तविक अर्थ में सभ्य बनना है, तो उसे स्वयं अपने नियमों द्वारा अनुशासित होना अवश्य ही सीखना पड़ेगा। बौद्ध धम्म ही प्राचीनतम नैतिक-व्यवस्था है, जिसमें मनुष्य को स्वयं अपने आप का अनुशासक बनने की शिक्षा दी गयी है।''

39. ''इसलिये इस प्रगतिशील संसार को बौद्ध धम्म की आवश्यकता है, ताकि वह उससे सर्वोच्च शिक्षा प्राप्त कर सके।''

40. ईसाई धर्म के यूनिटेरयन सम्प्रदाय के पादरी सन्त लेसली बोल्टन का कहना है-

41. ''मैं बौद्ध धम्म के आध्यात्मिक मनोविज्ञान में इसका सबसे शक्तिशाली योगदान मानता हूँ।''

42. ''बौद्धों के समान यूनिटेरियन ईसाई भी धार्मिक ग्रन्थों (चर्च पुस्तक) या मतों की बाह्य सत्ता को अस्वीकार करते हैं और स्वयं मनुष्य के भीतर मार्ग-दर्शक प्रदीप देखते हैं।''

43. ''यूनिटेरियन मत के अनुयायी ईसा मसीह और गौतम बुद्ध दोनों की ही जीवन-शैली को श्रेष्ठ प्रतिपादक के रूप में देखते हैं।''

44. प्रोफेसर डेविड गोडर्ड कहते हैं–

45. "विश्व के समस्त धार्मिक संस्थापकों में से केवल भगवान् बुद्ध को यह गौरव प्राप्त है कि उन्होंने मनुष्य में मूलतः विद्यमान उस निहित शक्ति को पहचाना, जो कि बिना किसी बाह्य निर्भरता के उसे मुक्ति के मार्ग पर अग्रसर कर सकती है।"

46. "यदि एक वास्तविक महान पुरुष का महात्म्य इसी बात में है कि समस्त मानव–मात्र के महत्त्व को ऊँचा उठाने में निहित है, तो वास्तविक महान कहलाने के लिये तथागत से बढ़कर अन्य कौन हकदार है।"

47. "जिन्होंने किसी अन्य 'बाह्य शक्ति' को मनुष्य के ऊपर स्थापित कर उसे निम्न दर्जे पर पहुँचाने के स्थान पर, उसे प्रज्ञा और मैत्री के सर्वोच्च शिखर तक ऊँचा उठा दिया है।"

48. 'बुद्धिज्म्' (बौद्ध धर्म) नामक पुस्तक के लेखक श्री ई. जे. मिल्स का कथन है–

49. "किसी भी अन्य धर्म में 'विद्या' को इतना महत्त्व नहीं दिया गया और अविद्या (अज्ञान) की इतनी भर्त्सना नहीं की गई, जितनी बुद्धधाम में।"

50. "किसी भी अन्य धर्म में अपनी आँखें खुली रखने पर इतना अधिक बल नहीं दिया गया है।"

51. "किसी भी अन्य धर्म ने मानसिक–संस्कृति के संवर्धन के लिये इतनी गहराई तक व्यवस्थित योजना नहीं बनायी है।"

52. प्रोफेसर डब्ल्यू. टी. स्टेस अपने 'बुद्धिस्ट एथिक्स (बौद्ध नीतिशास्त्र) नामक पुस्तक में कहते हैं–

53. "बौद्ध धम्म का नैतिक आदर्श–पुरुष 'अर्हत' न केवल अर्हत, की दृष्टि से, बल्कि सदाचार और बौद्धिक विकास की दृष्टि से महान होना चाहिये।"

54. "उसे एक दार्शनिक के साथ ही साथ एक अच्छे आचरण का मनुष्य भी होना चाहिये।"

55. "बौद्ध धर्म के द्वारा सदैव ही 'विद्या' (ज्ञान) को मुक्ति के लिये अनिवार्य माना गया है तथा 'अविद्या' (अज्ञान) और 'तृष्णा' को निर्वाण का प्रधान बाधक कारण स्वीकार किया है।"

56. "इसके विपरीत ईसाई आदर्श पुरुष के लिये ज्ञान का होना कभी भी आवश्यक अंग नहीं माना है।"

57. ''क्यों इसके संस्थापक का अदार्शनिकचरित्र था, जिसके कारण ईसाई धर्म वैचारिक-व्यवस्था में मनुष्य का नैतिक पहलू बौद्धिक पहलू से अलग कर दिया गया है।''
58. ''संसारी दुःखों के मूल में धृष्टता से कहीं अधिक अज्ञानता और अन्ध-विश्वास का हाथ रहा है।''
59. ''भगवान् बुद्ध ने इसकी अनुमति नहीं दी थी।''
60. ''यह दर्शाने के लिये इतना पर्याप्त है कि भगवान् बुद्ध और उनका धम्म कितना महान् और कितना अनुपम है।''
61. कौन ऐसा होगा, जो भगवान् बुद्ध को अपना शास्ता स्वीकार नहीं करना चाहेगा।

2. उनके धम्म के प्रचार की शपथ

1. प्राणी असीमित (एवं अनंत) है; आओ हम उन सभी को भवसागर से पार उतारने की शपथ लें।
2. हम में असंख्य कमजोरियां हैं, आओ हम उन सभी को मिटा देने की शपथ लें।
3. सत्य अनन्त हैं; आओ हम उन सभी को समझने की शपथ लें।
4. बुद्ध का मार्ग अनुपम एवं अतुलनीय है; आओ हम पूर्णता से उसे निष्पादित करने की शपथ लें।

3. भगवान् बुद्ध के पुनः स्वदेश लौट आने की प्रार्थना

1. हे महामानव! मैं आप पर सम्पूर्ण हृदय से विश्वास के साथ आपकी शरण ग्रहण करता हूँ, जिनकी ज्योति चारों ओर बिना किसी बाधा के, दस दिशाओं में व्याप्त है, और अपनी गम्भीर इच्छा व्यक्त करता हूँ कि आपके (ज्ञान) लोक में जन्म लूँ।
2. आपके लोक के लोक की जब मैं कल्पना करता हूं, तो पाता हूँ कि वह सभी लोकों से बढ़कर है।
3. यह बिना किसी सीमा के आकाश के समान विशाल और विस्तृत सभी को अपने में समेटे हुए है।
4. अपने में समेटे हुए आपकी सम्यक् मार्ग-गामिनी करुणा और मैत्री सभी भौतिक

वस्तुओं से श्रेष्ठतर उस राशि का परिणाम है, जिसे आपने अनन्त जन्मों में संचित किया है।

5. आपकी ज्योति सूर्य और चन्द्रमा रूपी दर्पणों के समान सर्वत्र व्याप्त है।
6. मेरी प्रार्थना है कि सभी प्राणी, जो वहाँ सुखावति–लोक में जन्म ग्रहण करें, वे सभी तथागत के समान ही सद्धर्म की घोषणा करें।
7. यहाँ मैं यह निबन्ध लिख रहा हूँ और इन पुण्य श्लोकों का उच्चारण कर रहा हूँ, मैं प्रार्थना करता हूँ, हे भगवान् बुद्ध! मुझे आपका साक्षात् दर्शन हो सके।
8. और मैं समस्त प्राणियों के साथ सुखावति–लोक में जन्म ग्रहण कर सकूं।

---समाप्त---

बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय (भाग-II)

खंड 22 बुद्ध और उनका धम्म

खंड 23 प्राचीन भारतीय वाणिज्य, अस्पृश्य तथा 'पेक्स ब्रिटानिका', ब्रिटिश संविधान भाषण

खंड 24 सामान्य विधि औपनिवेशिक पद, विनिर्दिष्ट अनुतोशविधि, न्यास–विधि टिप्पणियां

खंड 25 ब्रिटिश भारत का संविधान, संसदीय प्रक्रिया पर टिप्पणियां, सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखना–विविध टिप्पणियां

खंड 26 प्रारूप संविधान : भारत के राजपत्र में प्रकाशित : 26 फरवरी 1948

खंड 27 प्रारूप संविधान : खंड प्रति खंड चर्चा (9.12.1946 से 31.7.1947)

खंड 28 प्रारूप संविधान : भाग II (खंड–5) (16.5.1949 से 16.6.1949)

खंड 29 प्रारूप संविधान : भाग II (खंड–6) (30.7.1949 से 16.9.1949)

खंड 30 प्रारूप संविधान : भाग II (खंड–7) (17.9.1949 से 16.11.1949)

खंड 31 डॉ. भीमराव अम्बेडकर और हिंदू संहिता विधेयक (भाग– I)

खंड 32 डॉ. भीमराव अम्बेडकर और हिंदू संहिता विधेयक (भाग– II)

खंड 33 डॉ. भीमराव अम्बेडकर : लेख और वक्तव्य (20 नवंबर 1947 से 19 मई 1951)

खंड 34 डॉ. भीमराव अम्बेडकर : लेख और वक्तव्य (7 अगस्त 1951 से 28 सितंबर 1951)

खंड 35 डॉ. भीमराव अम्बेडकर और उनकी समतावादी क्रांति : मानवाधिकारों के परिप्रेक्ष्य में

खंड 36 डॉ. भीमराव अम्बेडकर और उनकी समतावादी क्रांति : सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक गतिविधियों के परिप्रेक्ष्य में

खंड 37 डॉ. भीमराव अम्बेडकर और उनकी समतावादी क्रांति : भाषण

खंड 38 डॉ. भीमराव अम्बेडकर : लेख तथा वक्तव्य, भाग–1 (वर्ष 1920 – 1936)

खंड 39 डॉ. भीमराव अम्बेडकर : लेख तथा वक्तव्य, भाग–2 (वर्ष 1937 – 1945)

खंड 40 डॉ. भीमराव अम्बेडकर : लेख तथा वक्तव्य, भाग–3 (वर्ष 1946 – 1956)

ISBN (सेट) : 978-93-5109-129-5

सामान्य (पेपरबैक) खंड 22-40

के 1 सेट का मूल्य :

ISBN 978-93-5109-130-1

9 789351 091301

प्रकाशक :

डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान

15, जनपथ

सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय

भारत सरकार, नई दिल्ली – 110 001

फोन : 011–23320588, 23320571

जनसंपर्क अधिकारी मोबाईल नं. 85880–38789

वेबसाइट : http://drambedkarwritings.gov.in

ईमेल : cwbadaf17@gmail.com